॥ विज्ञापन ॥

विदित रहे कि जिस ग्रन्थ पर दिगम्बर जैन धर्म्म पुस्तकालय लाहौर की मोहर न होगी, वह ग्रन्थ चोरी का समझा जावेगा ॥

इस ग्रन्थ की बमूजिब क़ानून के रजिस्टरी कराई गई है, अन्य किसी पुरुष को छापने का अधिकार नहीं है ॥

मूल्य प्रत्येक ग्रन्थ का ३) तीन रुपये ।

जिस महाशय ने यह ग्रन्थ मंगाना हो निम्न लिखित पते पर मंगा सक्ता है :—

पता :—

बाबू ज्ञानचन्द्र जैनी

मालिक दिगम्बर जैन धर्म्म पुस्तकालय पुरानी अनारकली,

लाहौर ।

॥ मोक्षमार्ग प्रकाश का सूची पत्र ॥

॥ भूमिका ॥

—*—

विदित हो कि दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य्यों ने न्याय, व्याकरण, अलङ्कार, काव्य, कोष, छन्द, अध्यात्म, पुराण, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में लाखों ग्रन्थों की रचना करी है, जिन की बुद्धि की वैभव देख कर अन्यमतानुयायी बड़े २ विद्वान् पण्डितों की बुद्धि आश्चर्य्य के भंवर में चकित हो जाती है, और जिन का सिंह नाद सुन कर दीन मृगवत् कांपते हैं, परन्तु वह सब ग्रन्थ संस्कृत और प्राकृत भाषा में हैं, इस लिये अवार इस निकृष्ट काल के हीन बुद्धि के धारक जैन लोग उन के रसास्वादन से तृषातुर ही रहते थे, ऐसी इन की दुर्दशा देख अति करुणा भाव धर, परम उपकारार्थ कितनेक बुद्धिमान् पण्डितों ने कुछ ग्रन्थों का देश भाषा में अनुवाद किया, तथा पूर्व ग्रन्थों के अनुसार नवीन भाषा ग्रन्थों की रचना करी तथा संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों पर टीका लिखी, तथाहि अब से १३५ वर्ष पूर्व जयपुर नाम राजधानी में श्रीमान् अखिल विद्यानिधान आचार्य्य समान विद्वान् पण्डित गण शिरोमणि पण्डित श्री १०८ टोडरमल्ल जी हुए, जिन्हों ने प्रथम निम्न लिखित संस्कृत, प्राकृत शास्त्रों का भाषा में उल्था किया गोमट्टसार जी, लब्धिसार जी, क्षपणासार जी, त्रिलोकसार जी, आत्मानुशासन जी, पुरुषार्थसिध्युपाय जी पश्चात् सर्व धर्मामृत पिपासुओं के लाभार्थ स्वमत मण्डन मिथ्यामत खण्डन यथा नाम तथा गुणवान् भ्रान्ति विनाशक इस मोक्ष मार्ग प्रकाश शास्त्र की देश भाषा में स्वतः रचना करी

इस ग्रन्थ के गुणों की गणना करना तो भुजाओं कर अपार दुस्तर समुद्र का तरना और हाथों से अनन्त गगन का मापना है। परन्तु इतना कह सकते हैं, कि जिन मत में जो २ वार्त्ता स्थूल दृष्टि वाले पुरुषों को असम्भव प्रतीति होती हैं और जिन पर वह विना विचारे आक्षेप करते हैं, उन सब का इस ग्रन्थ में निर्णय किया है। तथा उन के ही मत के शास्त्रों से उन के मत की असत्यता और स्वमत की परिपुष्टता स्पष्ट रीति से दिखलाई है। इस समय जो हम दिगम्बर जैन लोगों में विद्या का अभाव और मूर्खता का प्रकाश हुआ है। उस के कितने ही कारण हैं, प्रथम तो ग्रन्थों की बहुतायत के अभाव से सब साधारण लोगों को ग्रन्थ नहीं मिलते, दूसरे ग्रन्थों के बहुत मूल्य होने का कारण सब साधारण जन नहीं ले सकते, तीसरे मूर्ख लेखकोंके लिखनेसे और फिर शुद्ध न करने से ग्रन्थ में सहस्रों अशुद्धियें रह जाती हैं। जिस से पढ़ने वालों को घृणा हो जाती है और यथावत् अर्थ समझ में नहीं आता। इसलिये निराश हो कर पढ़ना छोड़ देते हैं, चौथे अति विनय का पद बद्ध रहने से शास्त्रावलोकन का अवसर ही नहीं मिलता मैं यह नहीं कहता कि विनय नहीं किया जावे। अवश्य करना चाहिये। परन्तु ऐसा वर्ताव जो आजकल अज्ञानी पुरुषों में प्रचलित है, वह विनय नहीं है। वह धर्म्म विनाशक और मूढ़ता प्रकाशक कारण है। विनय वही है, जिस से धर्म्म का उद्योत हो केवल अलमारियों और सन्दूकों में विराजित शास्त्रों को नमस्कार करना और उन का रसास्वादन न करना, विनय नहीं है। देखो श्री समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्ड श्रावकाचारके १८ वें श्लोक में कहते हैं:—श्लोक अज्ञान तिमिर व्याप्तिमपाकृत्य यथायथं। जिनशासन

माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ **अर्थः**—अज्ञान रूप अन्धकार की व्याप्ति को दूर करके जैसे होय तैसे जैन धर्म्म का प्रकाश करना सो प्रभावना है। और देखो श्रीअकलङ्क देवने भी धर्म्मकी रक्षा के हेतु जिन बिम्ब पर डोरा डाल उलङ्घन किया, इस लिये मैंने सर्व जैन लोगों के हितार्थ दिगम्बर जैन ग्रन्थों के मुद्रित करानेका भार केवल अपने शिर पर उठाया है। प्रथम इस "मोक्षमार्गप्रकाश" नाम ग्रन्थ को बड़े२ विद्वान् स्वमत परमत वेत्ता जैनी पण्डितों से संशोधन कराय अत्युत्तम कागज़ पर मुद्रित कराया है। मुझ को कोई अपने जातीय लाभ की इच्छा नहीं है, केवल परोपकारार्थ इस महान् कार्य्य का आरम्भ किया है, इस लिये मूल्य भी बहुत थोड़ा केवल प्रत्येक पुस्तक का ३) रु० रक्खा है जो ग्राहक जनों को भी कठिन नहीं होगा। यदि यह ही पुस्तक लेखक से लिखाया जावे तो किसी दशा में भी २५) रुपये से कम नहीं लगेंगे फिर भी ऐसा सुन्दर श्रेष्ठ और शुद्ध नहीं होगा, वरन महा अशुद्ध होगा, पढ़ने वाले को ग्लानि होगी और यथार्थ अर्थ के न समझने से विपर्य्ययार्थ का श्रद्धानी होगा। इस लिये प्रत्येक जैनी मोक्षाभिलाषी भाइयों को यह ग्रन्थ अवश्य मोल लेना चाहिये ॥

सब जैनगण का शुभचिन्तक,

बाबू ज्ञानचन्द्र अग्रवाल मीतल गोत्री जैनी, शुद्ध आम्नाय

विक्रम संवत् १९५४, सन् १८९७ ई०] तेरापन्थी, पुरानी अनारकली निवासी लाहौर ॥

इस मंगलाचरण को सदैव ही शास्त्र पढ़ने से पहिले पढ़ना चाहिये ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

ओंकारम्बिन्दु संयुक्तं नित्यन्ध्यायन्ति योगिनः कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥ अविरलशब्द घनौघ प्रक्षालित भूतल मल कलङ्का मुनिभिरुपासित तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥ परमगुरवे नमः परम्पराचार्य्यगुरवे नमः सकलकलङ्क विध्वंसकं श्रेयसांप्रवर्द्धकं धर्म्म सम्बन्धकं भव्यजीव प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री मोक्षमार्गप्रकाश नाम धेयं तस्यमूलकर्त्तारः श्रीसर्व्वज्ञदेवाः तदुत्तरकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाःतेषां वचोनुसारमासाद्य विद्वद्वर्य्येण श्री टोडरमल्ल पद वाच्येन पूर्व मतानुया यिनाविरचितं मङ्गलंभगवान्वीरो मङ्गलं गौतमोगणी मङ्गलं कुंदकुंदाद्यो जैनधर्म्मस्तु मङ्गलम् ॥वक्तारःश्रोतारःश्रोतारश्च सावधानतयाशृण्वन्तु।

॥ ओं नमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ अथ मोक्ष मार्ग प्रकाश नाम शास्त्र लिख्यते ॥

दोहा—मङ्गलमय मङ्गल करन, वीतराग विज्ञान ।
नमो ताहि जातै भए, अरहन्तादि महान् ॥ १ ॥
कर मङ्गल कर हूं महा, ग्रन्थ करन को काज ।
जातैं मिलै समाज सब, पावैं निज पद राज ॥ २ ॥

अथ मोक्ष मार्ग प्रकाशक नाम शास्त्र का उदय होय है। तहां मङ्गल करिये है ॥

णमो अरहन्ताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं ।
णमोउवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

यह प्राकृत भाषा में नमस्कार मंत्र है। सो महा मङ्गलरूप है। और इस की संस्कृत यह है।

नमोऽर्हद्भ्यः। नमः सिद्धेभ्यः। नम आचार्य्येभ्यः।
नम उपाध्यायेभ्यः। नमो लोके सर्वसाधुभ्यः॥

इसका अर्थ ऐसा है नमस्कार अरहन्तन के अर्थं । नमस्कार सिद्धन के अर्थं । आचार्य्यन के अर्थं ॥ नम-
स्कार उपाध्यायन के अर्थं । नमस्कार लोक विषे सर्व साधुनके अर्थं ऐसा इस विषे नमस्कार किया ॥ इस
लिये इसका नाम नमस्कार मंत्र है । अब यहां जिन को नमस्कार किया तिन का स्वरूप चिन्तवन कीजिये
है । क्योंकि स्वरूप जाने बिना यह जाना नहीं जाय, कि मैं किस को नमस्कार करूं हूं, तब उत्तम फल की
प्राप्ति कैसे होय, तहां प्रथम ही अरहन्तन का स्वरूप विचारिये है । जे गृहस्थपनो त्याग मुनि धर्म्म अङ्गी-
कार कर । निज स्वरूप स्वभाव साधने तैं, चार घातिया कर्म्मन को खिपाय । अनन्त चतुष्टय विराज-
मान भए हैं । तहां अनन्त ज्ञान कर तो अपने अपने अनन्त गुण पर्य्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यन
को युगपत । विशेषपने कर प्रत्यक्ष जाने हैं । अनन्त दर्शन कर, तिन को सामान्यपने अवलोके हैं, अनन्त
वीर्य्य कर ऐसी ही सामर्थ्य को धारे हैं, अनन्त सुख कर । निराकुल परमानन्द को अनुभवे हैं । और
जे सर्वथा सर्व राग द्वेषादिक विकार भावनि कर रहित होय शान्ति रस रूप परिणमे हैं । और क्षुधा
तृषादि समस्त दोषन से मुक्त होय देवादिदेवपना को प्राप्त भए हैं । और आयुध अम्बरादिक वा अङ्ग
विकारादिक । जे काम क्रोधादिक । निन्द्य भावनि के चिन्ह । तिन करि रहित । जिन का परमौदारिक
शरीर भया है । और जिन के वचनन तैं । लोक विषे धर्म्म तीर्थ प्रवर्तै है । तिसकर जीवन का कल्याण
होय है । और जिन के लौकिक जीवन को प्रभुत्व मानने का कारण अनेक अतिशय और नाना प्रकार
विभव तिन का संयुक्तपना पाइये है । और जिन को अपने हित के अर्थं । गन्धर्व इन्द्रादिक उत्तम जीव

सेवे हैं। ऐसे सर्व प्रकार पूजने योग्य श्री अरहन्त देव हैं। तिन को हमारा नमस्कार होउ॥ अब सिद्धन का स्वरूप ध्याईए है॥ जे गृहस्थ अवस्था त्याग मुनि धर्म साधन तैं। चारघातिया कर्मन का नाश भए अनन्त चतुष्टय स्वभाव प्रगटकर कितनेक काल पीछे चार अघातिया कर्म्मनका भी भस्म होने से॥ परम औदारिक शरीर को भी छोड। ऊर्द्ध गमन स्वभाव तैं लोक के अग्र भाग विषे जाय विराजमान भए हैं॥ तहां जिन के समस्त पर द्रव्य सम्बन्ध छूटने तैं मुक्ति अवस्था की सिद्धि भई॥ और जिन के चरम शरीर तैं किञ्चित् ऊन पुरुषाकारवत् आत्म प्रदेशन का आकार अवस्थित भया॥ और उन के प्रतिपक्षी कर्मन का नाश भया इस लिये समस्त सम्यक् ज्ञान दर्शनादिक॥ आत्मीकगुण ज्ञान संपूर्ण अपने स्वभाव को प्राप्त भए हैं। और जिन के भाव कर्म का अभाव भया इस लिये निराकुल आनन्दमय शुद्ध स्वभाव रूप परिणमन होय है। और जिन के ध्यान कर भव्य जीवन के स्वद्रव्य परद्रव्य का और उपाधिक भाव स्वभाव भावन का विज्ञान होय हैं। तिसकर तिन सिद्धनके समान आप होनेका साधन होयहै। इस लिये साधने योग्य। जो अपना शुद्ध स्वरूप तिसके दिखावने को प्रतिबिम्ब समान हैं। और जे कृत्यकृत्य भए हैं। इस लिये ऐसेही अनन्तकाल पर्य्यन्त रहे हैं।ऐसे *निष्पन्न भए जे सिद्ध भगवान तिन को हमारा नमस्कार होउ। अब आचार्य्य उपाध्याय साधुन का स्वरूप अवलोकिये है। जे वीतरागी होय समस्त परिग्रह को त्याग शुद्धोपयोग रूप मुनि धर्म अङ्गीकार कर अन्तरंग विषे तो तिस शुद्धोपयोग कर आप को आप अनु-

---

* निष्पन्न अर्थात् परे कुछ करना बाकी नहीं रहा है।

भवे हैं ॥ परद्रव्य विषे अहं बुद्धि नाहीं धारे हैं । और अपने ज्ञानादिक स्वभावन ही को अपने माने हैं। पर भावन विषे ममत्व नाहीं करे हैं। और जे परद्रव्य वा तिन के स्वभाव ज्ञान विषे प्रतिभासे हैं तिन को जाने हैं। परन्तु इष्ट अनिष्ट मान तिन विषे राग द्वेष नाहीं करे हैं। शरीर की अनेक अवस्था होय हैं। वाह्य नाना निमित्त बने हैं। परन्तु तहां कुछ भी सुख दुःख मानते नाहीं। और अपने योग्य वाह्य क्रिया जैसे बने है तैसे बने है। खैंच कर तिन को करते नाहीं। और अपने उपयोग को बहुत नाहीं भ्रमावे हैं। उदासीन होय निश्चल व्रत को धारे हैं। और कदाचित् मन्दराग के उदय ते शुभोपयोग भी होय है तिस कर जे शुद्धोपयोग के वाह्य साधन हैं तिन विषे अनुराग करे हैं। परन्तु तिस राग भाव को हेय जान दूर किया चाहे हैं। और तीव्र कषाय के उदय का अभाव ते हिंसादि रूप अशुभोपयोग परिणति का तो अस्तित्व ही रहा नाहीं। और ऐसा अन्तरङ्ग होते वाह्य दिगम्बर सौम्य मुद्रा को धारे हैं । शरीर का सवारना आदि क्रियान कर रहित भए हैं। वन खंडादि विषे वसे हैं। अठाईस मूल गुणन को अखण्डित पाले हैं। बाईस परीसहन को सहे हैं। बारह प्रकार तपन को आदरे हैं। कदाचित् ध्यान मुद्राधार प्रतिमावत् निश्चल होय हैं ॥ कदाचित् अध्ययनादि वाह्य धर्म्म क्रियान विषे प्रवर्त्ते हैं ॥ कदाचित् मुनि धर्म्म का सहकारी शरीर की स्थिति के लिये योग्य आहार व्यवहारादि क्रिया विषे सावधान होय हैं। ऐसे जैनी मुनि हैं उन सबन की ऐसी ही अवस्था होय है ॥ तिन विषे जे सम्यग्दर्शन सम्यक् ज्ञान ॥ सम्यक् चारित्र की अधिकता कर प्रधान पद को पाय संघ विषे नायक भए हैं ॥ और जे मुख्यपने तो निर्विकल्प

स्वरूपाचरण विषे ही मग्न हैं ॥ परन्तु जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक को देख राग अंश उदय से करुणा बुद्धि होवे तो तिन को धर्म्मोपदेश देते हैं ॥ जो दीक्षा ग्राहक हैं तिन को दीक्षा देते हैं ॥ जो अपने दोष प्रकट करते हैं ॥ तिन को प्रायश्चित विधि करके शुद्ध करते हैं ॥ ऐसे आचरण आचरावण वाले आचार्य तिन को हमारा नमस्कार होऊ ॥ और जो बहुत जैन शास्त्रों के ज्ञाता होय संघ विषे पठन पाठन के अधिकारी हुए हैं ॥ और जो समस्त शास्त्रों का प्रयोजनभूत अर्थ जान एकाग्र होय अपने स्वरूप को ध्यावै हैं ॥ और जो कदाचित् कषाय अंश उदय से तहां उपयोग नाहीं थंभै है ॥ तो तिन शास्त्रों को आप पढ़ै हैं वा अन्य धर्म बुद्धीन को पढ़ावै हैं ॥ ऐसे समीपवर्त्ती भव्य जीवन को अध्ययन करावन हारे उपाध्याय तिनको हमारा नमस्कार होऊ ॥ और इन दो पदवी धारक बिना अन्य समस्त जो मुनि पद के धारक हैं ॥ और जो आत्म स्वरूपको साधै हैं ॥ जैसे अपना उपयोग पर द्रव्यों विषे इष्ट अनिष्ट पनों मान फसै नाहीं ॥ वा भागै नाहीं तैसे उपयोग को सधावै हैं ॥ और बाह्यता के साधन भूत तपश्चरण आदि क्रियाओं विषे प्रवर्तैं हैं ॥ वा कदाचित् भक्ति वन्दनादि कार्यों विषे भी प्रवर्तैं हैं ॥ ऐसे आत्म स्वभावके साधक जे जैनी साधु हैं उनको हमारा नमस्कार होऊ ॥ ऐसे इन अरहंतादिकोंका स्वरूप है ॥ सो वीत राग विज्ञानमय है ॥ तिस ही कर अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् भये हैं ॥ इसलिये जीव तत्व कर तो सर्व जीव समान हैं ॥ परन्तु रागादिक विकार कर वा ज्ञान की हीनता कर तो जीव निन्दा योग्य होय हैं ॥ और रागादिक की हीनता कर वा ज्ञान की विशेषता कर स्तुति योग्य होय हैं ॥ सो अरहंत सिद्धों

कै तौ संपूर्ण रागादिक की हीनता और ज्ञान की विशेषता कर सम्पूर्ण वीतराग विज्ञान भाव संभवे है। और आचार्य उपाध्याय साधुओं के एकोदेश रागादिक की हीनता, और ज्ञानकी विशेषता होने कर एकोदेश वीत-राग विज्ञान संभवे है, इसलिये सो अरहंतादिक स्तुति योग्य महान् जानने। और यह अरहंतादिक पद हैं, तिन विषे ऐसा जानना, जो मुख्यपने तो तीर्थंकर का और गौणपने सर्व केवली का अधिकार है। प्राकृत भाषा विषे अरहंत और संस्कृत विषे अर्हंत् ऐसा नाम जानना। और चौदवें गुण स्थान के अनन्तर समय से लगाय सिद्ध नाम जानना। और जिन को आचार्य पद भया होय सो संघ विषे रहैं। या एकाकी आत्म ध्यान करें, या एका विहारी होवें, या आचार्यन विषे भी प्रधानता को पाय गणधर पदवी के धारक होवें। उन सबन का नाम आचार्य कहिये है। और पठन पाठन तो अन्य भी मुनि करे हैं, परन्तु जिन के आचार्यों कर दिया उपाध्याय पद भया होय, और वे आत्म ध्यानादि कार्य करें तौभी उपायध्याय ही नाम पावै हैं। और जे पदवी धारक नाहीं हैं, वे सर्व मुनि साधु संज्ञा के धारक जानने। यहां ऐसा नियम नहीं है, कि पंचा-चरण कर तो आचार्य पद होय है, पठन पाठन कर उपाध्याय पद होय है, मूल गुण साधन कर साधु पद होय है, क्योंकि यह तो क्रिया सर्व मुनिन के साधारण होय हैं। परन्तु शब्द नय कर तिन का अक्षरार्थ से नाम न कहिये समभिरूढ नय कर पदवी की अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसे शब्द नय कर गमन करै सो गज कहिए। सो गमन तो मनुष्यादिक भी करै हैं, परन्तु समभिरूढ नय कर पर्याय अपेक्षा नाम है। तैसै ही यहां समझना ॥ प्रश्न ॥ यहां सिद्धन से पहिले अरहंतन को नमस्कार किया, सो कौन कारण ऐसा

संदेह उपजे है ॥ तिसका समाधान नमस्कार करिए है, सो अपने प्रयोजन साधने की अपेक्षा करिये है, सो अरहंतन से उपदेशादिक का प्रयोजन विशेष सिद्ध होय है। इस लिये पहले नमस्कार किया है। इस प्रकार अरहंतादिकन का स्वरूप चितवन किया, क्योंकि स्वरूप चितवन करने से विशेष कार्य सिद्ध होय है। और उन्हीं अरहंतादिकों को पंच परमेष्ठी कहिते हैं, जिस से जो सर्वोत्कृष्ट होवे उसका नाम परमेष्ठी है ॥ पंच जो परमेष्ठी तिन का समाहार समुदाय समान तिस का नाम पंच परमेष्ठी जानना। —:(अब चौबीस तीर्थंकरों को वन्दिये है):— १ *श्री वृषभनाथ जी, २ अजितनाथ जी, ३ सम्भवनाथ जी, ४ अभिनन्दन नाथ जी, ५ सुमतिनाथ जी, ६ पद्मप्रभु जी, ७ सुपार्श्वनाथ जी, ८ चन्द्रप्रभुजी, ९ पुष्पदन्तजी, १० शीतलनाथजी, ११ श्रेयांसनाथ जी १२ वासपूज्य जी, १३ विमलनाथ जी, १४ अनंतनाथजी, १५ धर्म्मनाथजी, १६ शांतिनाथजी, १७ कुन्थुनाथजी, १८ अरहनाथजी, १९ मल्लिनाथजी, २० मुनिसुव्रत नाथजी, २१ नमिनाथजी, २२ नेमिनाथजी, २३ पार्श्वनाथजी, २४ वर्द्धमानजी, यह चौबीस तीर्थंकर इस भारथक्षेत्र विषे वर्त्तमान धर्मतीर्थ के नायक हुए हैं। गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाण, कल्याणक विषे इन्द्रादिकों कर विशेष पूज्य होय, अब सिद्धालय में विराजमान हैं। तिनको हमारा नमस्कार होऊ।

—:(अब बीस तीर्थङ्करों को वन्दिये है):— १ श्री सीमन्धरजी, २ युगमन्धरजी, ३ बाहूजी, ४ सुबाहूजी,

*ऋषभनाथजी को वृषभनाथ, आदिनाथ भी कहते हैं। पुष्पदन्त जी को श्री सुविधिनाथजी भी कहते हैं। वर्द्धमानजी को वीर, महावीर, अति वीर सन्मत भी कहते हैं ॥

५ संजातकजी, ६ स्वयंप्रभु जी, ७ वृषभाननजी, ८ अनन्तवीर्य जी, ६ सूर्यप्रभु जी, १० विशाल कीर्ति जी, ११ वज्रधरजी, १२ चन्द्राननजी, १३ चंद्रवाहुजी, १४ भुयंगमजी, १५ ईश्वरजी, १६ नेमिप्रभुजी, १७ वीरसेनजी, १८ महाभद्रजी, १६ देवयशजी, २० अजितवीर्यजी,। यह बीस तीर्थंकर पंचमेरु संबंधी विदेह चेत्रन विषे अवार केवल ज्ञान विराजमान हैं, तिन को हमारा नमस्कार होउ। यद्यपि परमेष्ठी पद विषे इनको भी गर्भितपना है। तथापि विद्यमान काल विषे इनको विशेष जान जुदा नमस्कार किया है। और त्रैलोक विषे जे अकृत्रिम जिनबिंब विराजे हैं, और मध्यलोक विषे विधिपूर्वक कृत्रिम जिनबिंब विराजे हैं, जिनके दर्शनादिक से स्वय परभेद विज्ञान होय है, कषाय मंद होय शान्त भाव होय हैं, एक धर्मोपदेश बिना अन्य अपने हितकी सिद्धि जैसी तीर्थंकर केवली के दर्शनादिक से होय है, तैसी ही होय है। तिन जिनबिंबन को हमारा नमस्कार होउ। और केवली की दिव्य ध्वनि कर दिया उपदेश तिसके अनुसार गणधर कर रचित अङ्ग प्रकीर्णक तिनके अनुसार अन्य आचार्यादिकन कर रचे ग्रन्थादिक ऐसे यह सर्व जिन बचन हैं॥ स्याद्वाद चिन्ह कर पहिचानने योग्य हैं, न्याय मार्ग से अविरुद्ध हैं, इस लिये प्रमाणीक हैं, जीवन को तत्वज्ञान के कारण हैं, इस लिये उपकारी हैं, तिनको हमारा नमस्कार होउ॥ और चैत्यालय आर्यिका उत्कृष्ट श्रावकादि द्रव्य और उत्कृष्ट तीर्थ क्षेत्रादि क्षेत्र और कल्याणक काल रत्नत्रय आदि भाव जे मुझ कर नमस्कार करने योग्य हैं, तिन सबन को हमारा नमस्कार होउ॥ और जो किञ्चित् विनय करने योग्य हैं तिन सभन का यथायोग्य विनय करूं हूं॥ ऐसे अपने इष्टन का सन्मान कर मङ्गल किया

है॥ अब यह अरहंतादिक इष्ट कैसे हैं,सो विचार करिये है,जिस कर सुख उपजै दुःख विनसै तिस कार्य का नाम प्रयोजन है॥ और तिस प्रयोजन की जिसकर सिद्धि होय सोही अपना इष्ट है॥ सो हमारे इस अवसर विषे वीतराग विशेष ज्ञान का होना सोही प्रयोजन है॥ क्योंकि इस कर निराकुल सांचे सुख की प्राप्ति होय है, और सर्व आकुलतारूप दुःख का नाश होय है, और इस प्रयोजन की सिद्धि अरहंतादिकन कर हीहोय है,कैसे सो विचारिए है॥ —:(आत्मा के परिणाम तीन प्रकार के हैं):— संक्लेश, विशुद्ध, शुद्ध, तहां तीव्र कषाय रूप संक्लेश हैं, मन्द कषाय रूप विशुद्ध हैं॥ कषाय रहित शुद्ध हैं, तहां वीतराग विशेष ज्ञान रूप अपने स्वभाव के घातक जो ज्ञानावरणादिक घातिया कर्म तिन के संक्लेश परिणाम कर तो तीव्र बन्ध होय है॥ और विशुद्ध परिणाम कर मन्द बन्ध होय है॥ वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तो पूर्व जो तीव्र बन्ध भयाथा, तिस को भी मन्द करै है, और शुद्ध परिणाम कर बन्ध नहीं होय है॥ केवल तिन की निर्जरा ही होय है॥ और अरहंतादिक विषे स्तवनादिरूप भाव होय है, सो कषाय की मन्दता लिये होय है, इस लिये विशुद्ध परिणाम है, और समस्त कषाय मिटावने का साधन है॥ इस लिये शुद्ध परिणाम का कारण है, सो ऐसे परिणाम कर अपने घातिया कर्म का हीनपना होने से सहज ही वीतराग विशेष ज्ञान प्रगट होय है॥ जितने अंशन कर वह हीन होय है, तितने अंशन कर यह प्रगट होय है, ऐसे अरहंतादिक कर अपना प्रयोजन सिद्ध होय है, अथवा अरहंतादिक का आकार अवलोकना, वा स्वरूप का विचार करना, वा वचन सुनना, वा निकटवर्त्ती होना, वा तिन के अनुसार प्रव-

संना, इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्त भूत होय रागादिकों को हीन करे हैं, जीव अजीवादिक का विशेष ज्ञान को उपजावे हैं, इस लिये ऐसे भी अरहंतादिक कर बीतराग विशेष ज्ञान रूप प्रयोजन की सिद्धि होय है ॥ —:(यहां कोई प्रश्न करे है):—कि इन कर ऐसे प्रयोजन की तो सिद्धि होय है ॥ परन्तु जिस कर इन्द्रिय जनित सुख उपजै दुःख विनसै ऐसे भी प्रयोजन सिद्ध होय हैं कि नांही ॥

—:(तिस का समाधान):— अरहंतादिक विषे जो स्तवानादि रूप विशुद्ध परिणाम होय हैं ॥ तिस कर अघातिया कर्मों की साता आदि पुण्य प्रकृति का वन्ध होय है, और जो वह परिणाम तीव्र होय तो पूर्वें असाता आदि पाप प्रकृति बान्धी थी, तिन को भी मन्द करे है, अथवा नष्टकर पुण्य प्रकृति रूप परिणमावे है ॥ और तिस पुण्य का उदय होने से स्वयमेव ही इन्द्रिय सुख को कारण भूत सामग्री मिले है॥ और पापका उदय दूर होनेसे स्वयमेव ही दुःख का कारणभूतसामग्री दूर होय है॥ ऐसे इस प्रयोजन की भी सिद्धि तिन कर ही होय है ॥ अथवा जैनशासन के भक्त जे देवादिक हैं, सो तिस भक्त पुरुष को अनेक इन्द्रिय सुख के कारण सामग्रीन का संयोग करावे हैं, दुःख के कारण सामग्रीन को दूर करे हैं ॥ ऐसे भी इस प्रयोजन की सिद्धि तिन अरहंतादिकों कर होय है॥ परन्तु इस प्रयोजन से कुछ अपना आत्मीक हित होता नाहीं, क्योंकि यह आत्मा कषाय भावन से वाह्य सामग्रीन विषे, इष्ट अनिष्टपनो मान आप ही सुख दुःख की कल्पना करे है, विना कषाय वाह्य सामग्री कुछ सुख दुःख को दाता नाहीं ॥ और कषाय है, सो सर्व आकुलतामय है ॥ इस लिये इन्द्रिय जनित सुख की इच्छा करनी ॥ और दुःख से डरना सो यह

भी भ्रम है ॥ और इस प्रयोजन के अर्थ अरहंतादिक की भक्ति किये भी तीव्र कषाय होने कर पाप वन्ध ही होय है ॥ इस लिये आप को इस प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नाहीं, अरहंतादिक की भक्ति किये ऐसे प्रयोजन तो स्वयमेव ही सधैं हैं॥ इसप्रकार अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं, और यह अरहंतादिक ही परम मंगल हैं, इन विषै भक्तिभाव भए परम मंगल होय है ॥ क्योंकि मंगल कहिए सुख तिस को लाति कहिए देवै है अथवा मंग कहिये पाप ताहि गालयति कहिये गाले तिस का नाम मंगल है॥ सो तिन कर पूर्वोक्त प्रकार दोऊकार्यन की सिद्धि होय है, इस लिये तिनके परममंगलपना संभवै है —:(यहां कोई पूछे है):— कि प्रथम ग्रंथकी आदि विषै मंगल ही किया, सो कौन कारण —:(तिसका उत्तर):— जो सुखसे ग्रंथ की समाप्ति होय पाप कर कोई विघ्न न होय, इसलिये यहां प्रथम मङ्गल किया है ॥ —:(यहां तर्क):— जो अन्यमती ऐसे मङ्गल नहीं करे हैं ॥ तिन के भी ग्रन्थ की समाप्ति और विघ्न का नाश होता देखिये है ॥ तहां कौन कारण है। —:(तिस का समाधान):— जो अन्य मती ग्रन्थ करे हैं, तिसविषै मोह को तीव्र उदय कर मिथ्यात्व कषाय भावनि को पोषते विपरीत अर्थन को धरे हैं, इस लिये तिस की निर्विघ्न समाप्ति तो ऐसे मङ्गल बिना किये ही होय है, जो ऐसे मंगलन कर मोह मंद हो जाय तो वैसा विपरीत कार्य्य कैसे वने और हम जो ग्रन्थ करे हैं ॥ तिस विषै मोह की मन्दता कर बीतराग तत्वज्ञान को पोषते अर्थिन को धरेंगे। तिसकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसे मङ्गल किये ही होय है, जो ऐसे मंगल न करें तो मोह का तीव्रपना रहे, तब ऐसा उत्तम कार्य्य कैसे वनें, और वह कहे है जो ऐसे माना परन्तु कोई ऐसा मंगल न करै तिस

के भी सुख देखिये है, पाप का उदय न देखिये है, कोई ऐसा मंगल करे है, तिसके भी सुख न देखिये है। पाप का उदय देखिये है, इस लिये पूर्वोक्त मंगलपना कैसे बने तिसको कहिये है जीवन के संक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जाति के हैं, और तिन कर अनेक काल विषे, पूर्वे बान्धे कर्म्म एक काल विषे उदय आवे हैं। जैसे किसी जीव के पूर्वे बहुत धन का सञ्चय होय तिस के बिना कमाये भी धन देखिये है। और देना न देखिये है, और जिस के पूर्वं ऋण बहुत होय तिस के धन कुमावते भी देना देखिये है धन न देखिये है। परन्तु विचार किये तो कुमावना ही धन का कारण है, ऋण का कारण नाहीं, तैसे जिसके पूर्वं ही बहुत पुण्य बंधा होय, तिस के यहां ऐसा मङ्गल बिना किये भी सुख देखिये है, और जिसके पूर्वे बहुत पाप बन्धा होय तिस के यहां ऐसा मंगल किये भी सुख न देखिये है, पाप का ही उदय देखिये है। परन्तु विचार किये तो ऐसा मङ्गल सुख का कारण है। पाप उदय का कारण नाहीं है ऐसे पूर्वोक्त प्रकार मंगलपना बने है और वह कहे है, कि यह भी मानी परन्तु जिनशासन के भक्त देवादिक हैं सो तिस मंगल करने वाले की सहायता न करी और मंगल न करने वाले को दण्ड न दिया, सो कौन कारण —:(तिस का समाधान):— जो जीवन के सुख दुःख होने का प्रबल कारण अपने कर्म्म का उदय है तिस ही के अनुसार बाह्य निमित्त बने है। इस लिये जिस के पाप का उदय होय तिस के सहाय का निमित्त न बने है। और जिस के पुण्य का उदय होय है तिस को दण्ड का निमित्त न बने है। यह निमित्त कैसे न बने है सो कहिये है। देवादिक हैं सो क्षयोपशम

ज्ञान से सर्व को युगपत जान सकते नाहीं। इस लिये मंगल करने वाले और न करने वाले का जानपना किसी देवादिक के किसी काल विषे होय है। सो जब तिन का जानपना ही न होय तो कैसे सहाय करे, वा दण्ड देवे, और जो जानपना भी होय और उस समय उन के कषाय अति मन्द होय तो सहाय करने के वा दण्ड देने के परिणाम ही न होंय और तीव्र कषाय होय तो धर्म्मानुराग होय सके नाहीं॥ और जो मध्य कषाय रूप तिस कार्य करने के परिणाम भए होंय और अपनी शक्ति न होय तो कुछ कर सकते नाहीं॥ ऐसे सहाय करने का वा दण्ड देने का निमित्त नाहीं बने है, और जो अपनी शक्ति होय और आप के धर्म्मानुराग रूप मन्द कषाय के उदय तैं, तैसे ही परिणाम होंय॥ और तिस समय अन्य जीव का धर्म्म अधर्म्म रूप कर्त्तव्य जाने॥ तब कोई देवादिक किसी धर्मात्मा की सहाय करे है, वा किसी अधर्म्मी को दण्ड देवे है। ऐसे कार्य होने का कुछ नियम तो है ही नाहीं, ऐसे समाधान किया। यहां इतना जानना, सुख होने की दुख होने की सहाय करावने की। दुःख देने की जो इच्छा है सो कषाय मयी है। तत्काल विषे वा अगामि काल विषे दुःख दायक है, इस लिये ऐसी इच्छा को छोड़ हमने तो केवल एक वीतराग विशेष ज्ञान होने के अर्थी होय अरहंतादिक को नमस्कारादिरूप मंगल किया है॥ ऐसे मंगलाचरण कर अब सत्यार्थ मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम ग्रंथका उद्योत करे हैं। तहां यह ग्रंथ प्रमाण है, ऐसी प्रतीति जनावने के अर्थ पूर्वानुसार स्वरूप निरूपण करे हैं। अकारादि अक्षर हैं सो अनादि निधन हैं, किसी के किये नाहीं हैं, इनका आकार लिखना तो अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार है। परन्तु

बोलने में आवे सो अक्षर तो सर्वत्र सर्वदा ऐसे ही प्रवर्त्तें हैं, सोई कहा है "सिद्धोवर्णा समाम्नाय" इस का अर्थ यह है जो अक्षरन का सम्प्रदाय है, सो स्वयं सिद्ध है। और तिन अक्षरन कर निपजे जे सत्यार्थ के प्रकाशक पद तिन के समूह का नाम श्रुति है। सो भी अनादि निधन है, जैसे जीव ऐसा अनादि निधन पद है, सो जीवका जनावनहारा है। ऐसे अपने अपने सत्यार्थ के प्रकाशक अनेक पदों का जो समुदाय सो श्रुति जानना, और जैसे मोती तो स्वयं सिद्ध हैं, तिन विषे कोई तो थोड़े मोतीयन के कोई घने मोतीयन के कोई किसी प्रकार कोई किसी प्रकार गूंथ गहना बनावे हैं। तैसे पद तो स्वयं सिद्ध हैं, तिन विषे कोई तो थोड़े पदन को कोई घने पदन को कोई किसी प्रकार कोई किसी प्रकार गूंथ ग्रन्थ बनावे हैं। यहां मैं भी सत्यार्थ पदों को अपनी बुद्धि के अनुसार गूंथ ग्रन्थ बनाऊं हूं, अपनी मति कर कल्पित झूठे अर्थ सूचक पद इस विषे नाहीं गूंथूं हूं। इस लिये यह ग्रन्थ भी प्रमाणीक जानना —:(यहां प्रश्न):— जो उन पदन की परंपरा इस ग्रंथ पर्य्यंत कैसे प्रवर्त्तें है —:(तिस का समाधान):— अनादि तैं तीर्थंकर केवली होते आए हैं। तिन के सर्व का ज्ञान होय है, इस लिये उन के तिन पदों का वा तिन के अर्थ का भी ज्ञान होय है, और उन तीर्थंकर केवलीन का दिव्य ध्वनि कर उपदेश होय है, तिस कर अन्य जीवन के उन पदों का ज्ञान होय है, तिस के अनुसार गणधरदेव अङ्ग प्रकीर्णक रूप ग्रंथ गूंथे हैं, और तिन के अनुसार अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रंथादिक की रचना करे हैं। तिन को कई पढ़े हैं, कई सुने हैं, ऐसे परंपरा से मार्ग चला आवे है। सो अब इस भरथक्षेत्र विषे वर्त्तमान अवसर्पणी काल है। इस विषे चौबीस

तीर्थंकर भए हैं। तिन विषे श्री वर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थंकर देव हुए हैं। सो केवल ज्ञान युक्त विराजमान हुए हैं। जीवन को दिव्य ध्वनि कर उपदेश देते भए। तिस के सुनने का निमित्त पाय गोत्तम नामा गणधर अगम्य अर्थन को जान कर धर्मानुराग के वश तैं अङ्ग प्रकीर्णक की रचना करते भए। और वर्द्धमान स्वामी तो मुक्त भए, तिस पीछे इस पञ्चमकाल विषे तीन केवली और भए। गोतम स्वामी १, सुधर्माचार्य २, जम्बूस्वामी ३, ता पीछे काल दोष तैं केवल ज्ञानी होने का तो अभाव भया। और केतेक काल ताईं द्वादशांग के पाठी श्रुत केवली भए। पीछे तिन का भी अभाव भया॥ और ता पीछे केतेक काल ताईं, थोड़े अङ्गन के पाठी भए, तिन्हों ने यह जानकर कि भविष्यत काल में हम सरीखे भी ज्ञानी न रहेंगे, इस लिये ग्रंथ रचना आरम्भ करी। और द्वादशाङ्ग अनुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग के अनेक ग्रंथ रचे। पीछे तिन अंगन के पाठियों का भी अभाव भया, ता पीछे तिन ग्रंथन के अनुसार अन्य आचार्य्यादिकन ने अनेक ग्रंथ रचे, पीछे तिन आचार्य्यादिकन का भी अभाव भया, ता पीछे उन ही ग्रंथन की प्रवर्त्ती रही। तिन विषे काल दोष तैं दुष्टन कर केतेक ग्रन्थन के विक्षेप से वा महान् ग्रंथन का अभ्यासादिक न होने से व्युछुति भई। और केतेक महान् ग्रंथ पाइये हैं। तिनकी बुद्धि की मंदता से अभ्यास होता नाहीं। जैसे दक्षिण में गोमट्ठ स्वामी के निकट मूल वद्री नगर विषे धवल१, महाधवल २, जयधवल३, पाइये हैं। परंतु यह दर्शनमात्र ही हैं। और केतेक ग्रंथ अपनी बुद्धि कर अभ्यास करने योग्य पाइये हैं। तिन विषे भी केतेक ग्रंथन का ही अभ्यास बने हैं। ऐसे इस

निकृष्ट काल विषे उत्कृष्ट जैन मत का घटना तो भया, परन्तु इस परम्परा कर अब भी जैन शास्त्रन विषे सत्यार्थ के प्रकाशन हारे पदों का सद्भाव प्रवर्त्तै है । और हम ने इस काल विषे यहां अब मनुष्य पर्याय पाई है । सो अब हमारे पूर्व संस्कार तैं वा भला होन हार तैं जैन शास्त्रन विषे अभ्यास करने का उद्यम होता भया । इस लिये व्याकरण, न्याय, गणित, आदि उपयोगी ग्रन्थन का किंचित् अभ्यास कर टीका सहित समयसार १, पञ्चास्तिकाय २, प्रवचनसार ३, नियमसार ४, गोमट्टसार ५, लब्धिसार ६, त्रिलोकसार ७, तत्वार्थसूत्र ८, क्षपणासार ९, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय १०, अष्टपाहुड़ ११, आत्मानुशासन १२, आदि शास्त्र और श्रावक मुनि के आचार के प्ररूपक अनेक शास्त्र और सुष्टु कथा सहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं, तिन विषे हमारे बुद्धि अनुसार अभ्यास प्रवर्त्तै है । तिस कर हमारे भी किंचित् सत्यार्थ पदन का ज्ञान भया है । और इस निकृष्ट समय विषे हम सारखे मंद बुद्धिन तैं भी हीन बुद्धि के धनी घने ही जन अवलोकिये हैं। तिनको तिन पदन के अर्थ का ज्ञान होने के अर्थ धर्मानुराग के वश तैं देश भाषा में सुगम ग्रन्थ रचने की हमारे इच्छा भई है। इस लिये हम यह ग्रन्थ बनावे हैं। सो इस विषे भी अर्थ सहित तिन ही पदन का प्रकाश होय है। इतना तो विशेष है, जैसे प्राकृत संस्कृत शास्त्रन विषे प्राकृत संस्कृत पद लिखे हैं। तैसे यहां अपभ्रंश लिये वा यथार्थपनाको लिये देश भाषा रूप पद लिखिये हैं। परन्तु अर्थ विषे व्यभिचार कुछ भी नाहीं है। ऐसे इस ग्रंथ पर्यंत तिन सत्यार्थ पदन की परम्परा प्रवर्त्तै है। यहां कोई पूछे कि परम्परा तो हम ऐसे जानी परन्तु इस

परम्परा विषे सत्यार्थ पदन की ही रचना होती आई तिस विषे असत्यार्थ पद न मिले, ऐसी प्रतीति हम को कैसे होवे ॥ —:(तिसका समाधान):— असत्यार्थ पद की रचना अति तीव्र कषाय भये विना बने नाहीं, क्योंकि जिस असत्य रचना कर ॥ परम्परा अनेक जीवों का महा बुरा होय आप को ऐसी महा हिंसा का फल कर नर्क निगोद विषे गमन करना होय ॥ सो ऐसा महा विपरीत कार्य्य तो क्रोध, मान, माया, लोभादि अत्यंत तीव्र भये ही होय है ॥ सो जैन धर्म विषे तो ऐसा कषायवान होता नाहीं ॥ प्रथम मूल उपदेश दाता तो श्री तीर्थं कर केवली ही भये हैं, सो तो सर्वथा मोह के नाश तैं सर्व कषायन कर रहित हुये हैं, और ग्रन्थ कर्त्ता श्री गणधरदेव अथवा अन्य आचार्य्यादिक भये हैं, सो भी मोह के मन्द उदय कर सर्व वाह्य अभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी महा मन्द कषायी भये हैं, तिन के तिस मंद कषाय कर किञ्चित् शुभोपयोग ही की प्रवृत्ति पाइये है, और कुछ प्रयोजन नाहीं ॥ और कोई श्रद्धानी गृहस्थी भी ग्रन्थ बनावै है, सो भी तीव्र कषायी नाहीं होय है ॥ जो उसके तीव्र कषाय होय तो सर्व कषायन का जिसे तिस प्रकार नाश करन हारा जो जैनधर्म्म तिस विषे रुचि कैसे होय ॥ अथवा जो मोह के उदय तैं अन्य कार्यन कर कषाय पोषे है तो पोषो ॥ परन्तु जिन आज्ञाभङ्ग कर अपना कषाय पोषे तो जैनी पना रहता नाहीं ॥ ऐसे जिनधर्म्म विषे ऐसा तीव्र कषायी कोई होता नाहीं ॥ जो असत्य पदन की रचना कर पर का और अपना पर्य्याय विषे बुरा करे ॥ —:(यहां प्रश्न):— जो कोई जैनाभासी तीव्र कषायी होय असत्यार्थ पदन को जैन शास्त्रन विषे मिलावे पीछे तिस की परम्परा चली जाय तो क्या करिये ॥

—:(तिस का समाधान):— जैसे कोई सांचे मोतीयन के गहने विषे झूठे मोती मिलावै॥ परन्तु झलक तो मिले नाहीं॥ इस लिये परीक्षा कर पारखी ठिगावता नाहीं॥ कोई भोला होय सोही मोती नाम कर ठिगावे है॥ और तिस की परम्परा भी चाले नाहीं॥ शीघ्र ही कोई झूठे मोतियन का निषेध करे है॥ तैसे कोई सत्यार्थ पदन के समूह रूप जैन शास्त्रों के विषे असत्यार्थ पद मिलावे, परन्तु जिन शास्त्रों के पदन विषे तो कषाय मिटावने का वा लौकिक कार्य घटावने का प्रयोजन है॥ और उस पापीने जो असत्यार्थ पद मिलाये हैं॥ तिन विषे कषाय पोषने का वा लौकिक कार्य साधने का प्रयोजन है॥ सो यह प्रयोजन तो मिलता नाहीं, इस लिये परीक्षा कर ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं॥ कोई मूर्ख होय सोई जैनशास्त्र नाम कर ठिगावे है॥ और तिस की परम्परा भी चाले नाहीं॥ शीघ्र ही कोई तिन असत्यार्थ पदों का निषेध करे है॥ और ऐसे तीव्र कषायी जैनाभासी यहां इस निकृष्ट काल विषे ही होय हैं॥ उत्कृष्ट क्षेत्र काल बहुत है, तिस विषे तो ऐसे होते नाहीं॥ इस लिये जैनशास्त्रों विषे असत्यार्थ पदन की परम्परा चले नाहीं, ऐसा निश्चय करना॥ और वह कहे है, कि कषायन कर तो असत्यार्थ पद न मिलावे परन्तु ग्रन्थ करने वालों को क्षयोपशम ज्ञान है, इस लिये कोई अन्यथा अर्थ भासे तिस कर असत्यार्थ पद मिलावे तिस की परम्परा चाले॥ —:(तिस का समाधान):— मूल ग्रन्थकर्त्ता तो गणधर देव हैं, सो तो आप चार ज्ञान के धारक हैं, और साक्षात् केवली की दिव्य ध्वनि का उपदेश सुने हैं॥ तिस का अतिशय कर सत्यार्थ ही भासे है॥ और तिस ही के अनुसार ग्रंथ बनावे हैं।

सो उन ग्रंथन विषे असत्यार्थ पद कैसे गूंथे जायें। और अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावे हैं, सो जिन पदन का आप को ज्ञान नहीं होय तिनको तो आप रचना करते नाहीं। और जिन पदन का ज्ञान होय तिनको सम्यक्ज्ञान प्रमाण से ठीक कर गूंथे हैं, सो प्रथम तो ऐसी सावधानी विषे असत्यार्थ पद गूंथे जायें नाहीं। और कदाचित् आप को पूर्व ग्रंथन के पदन का अर्थ अन्यथा ही भासे। और अपने प्रमाणता में भी तैसे ही आय जाय तो इस का कुछ सार नाहीं। परन्तु ऐसे किसी को भासे सब ही को तो न भासे इस लिये जिन को सत्यार्थ भासे सो तिसका निषेध कर परंपरा चलने देते नाहीं। और इतना और जानना। जिन को अन्यथा जाने जीव का बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्वन का तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जाने ही नाहीं, इनका तो जैनशास्त्रों विषे प्रसिद्ध कथन है॥ और जिन को भ्रम कर अन्यथा जाने भी जिन की आज्ञा मानने से जीव का बुरा न होय। ऐसे कोई सूक्ष्म अर्थ हैं। तिन विषे किसी को कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणता में लावे तौ भी तिस का विशेष दोष नाहीं सो "गोमट्टसार" विषे ऐसा कहा है :—

छन्द :—सम्माइट्ठीजीवो उवपठ्ठंपवयणंतु सद्दहदि सद्दहदि
असंभावं। अजाणमाणो गुरुणियोगा॥ १॥

इसका अर्थ :—सम्यग् दृष्टि जीव सत्य उपदेश किये हुये वचन को श्रद्धान करें हैं॥ और

अजाण माथ गुरु के योग से असत्य को भी श्रद्धान करें हैं, ऐसा कहा है, सो हमारे भी विशेष ज्ञान नाहीं है, परन्तु जिन आज्ञा भंग करने का बहुत भय है। इस लिये हम भी जो इस ग्रन्थ करने का साहस करते हैं। सो इस ग्रंथ विषे केवल जैसै पूर्व ग्रंथन में वर्णन है, तैसे ही वर्णन करेंगे॥ अथवा कहीं पूर्व ग्रंथन विषे सामान्य गूढ़ वर्णन है॥ तिसका विशेष प्रगट कर वर्णन यहां करेंगे, सो ऐसे वर्णन करने विषे मैं तो बहुत सावधानी राखूंगा। यद्यपि सावधानी करते भी कहीं बुद्धि की मन्दता से सूक्ष्म अर्थ का अन्यथा वर्णन होय जाय तो विशेष बुद्धिमान् होय सो संवारि कर शुद्ध करियो। यह मेरी प्रार्थना है। ऐसे शास्त्र करने का निश्चय किया॥

अब कैसे शास्त्र वांचने सुनने योग्य हैं॥ और तिन शास्त्रनके वक्ता श्रोता कैसे होने चाहियें, सो वर्णन करिए है॥

जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करें सोई शास्त्र वांचने और सुनने योग्य हैं, क्योंकि जीव संसार विषे नाना दुःखन कर पीड़ित हैं, सो शास्त्र रूपी दीपक कर मोक्षमार्ग को पावें तो उस मार्ग विषे आप गमन कर उन दुःखन से मुक्त होवें, सो मोक्षमार्ग तो एक वीतराग भाव है॥ इस लिये जिन शास्त्रन विषे राग द्वेष मोह भाव का निषेध कर, वीतराग भाव का प्रयोजन प्रगट किया होय॥ सोई शास्त्रों का वांचना सुनना उचित है। और जिन शास्त्रों विषे शृंगार भोग कौतूहलादिक पोष राग भाव का और हिंसा युद्धादिक पोष द्वेष भाव का और अतत्व श्रद्धानपोष मोह भाव का प्रयोजन प्रगट

किया होय, सो शास्त्र नाहीं शस्त्र हैं। क्योंकि जिन राग द्वेष मोह भावन कर जीव अनादि से दुःखी भया तिनकी वासना जीव के बिना सिखाये ही भई। और इन शास्त्रन कर उन ही का पोषण किया। भले होने की क्या शिक्षा दई, जीव का स्वभाव ही घात किया, इसलिये ऐसे शास्त्रन का वांचना सुनना उचित नाहीं है। यहां वांचना सुनना जैसे कहा है, तैसे ही जोड़ना, सीखना, सिखावना, विचारना, लिखना, लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षण कर जान लेने। इस लिये जो साक्षात् वा परम्परा कर वीतराग भाव को पोषैं ऐसे शास्त्र ही अभ्यास करने योग्य हैं।

॥ अब वक्ता का स्वरूप कहिये है ॥

वक्ता ऐसा होना चाहिये, प्रथम तो जैन श्रद्धान विषे दृढ़ होय, क्योंकि जो आप ही अश्रद्धानी होय तो औरों को श्रद्धानी कैसे करे। श्रोता तो आप से हीन बुद्धि के धारक होय हैं, सो उन को कोई और युक्ति कर श्रद्धानी कैसे करे, क्योंकि श्रद्धान ही सर्व धर्म का मूल है। और वक्ता कैसा चाहिये जिसकै विद्याभ्यास करने से शास्त्र वांचने योग्य बुद्धि प्रगट भई होय, क्योंकि ऐसी शक्ति बिना वक्तापने का अधिकारी कैसे होय, और वक्ता कैसा चाहिये, जो सम्यग्ज्ञान कर सर्व प्रकार के व्यवहार निश्चयादि रूप व्याख्यान का अभिप्राय पहिचानता होय। क्योंकि जो ऐसा न होय तो कहीं अन्य प्रयोजन लीए व्याख्यान होय, तिसका अन्य प्रयोजन प्रगट कर विपरीत प्रवृत्ति करावै। और वक्ता कैसा चाहिये, जिस

के जिन आज्ञा भंग करने का भय बहुत होय, क्योंकि जो ऐसा न होय तो कोई अभिप्राय विचार सूत्र विरुद्ध उपदेश देकर जीवन का बुरा करे सोई कहिये है:—

बहुगुण विज्जाणिलओ असुत्त भासीतहा विनुत्तव्वो
जह वरमण जुत्तोदिहु विग्धहरो विसहरोलोरा ॥

इसका अर्थ :—जो बहुत क्षमादिक गुण और व्याकरण आदि विद्या का स्थान है, तथापि सूत्र विरुद्ध भाषी है, तो छोड़ने योग्य ही है। जैसे उत्कृष्ट मणि संयुक्त सर्प है, सो भी लोक विषे विघ्न ही का करन हारा है । और वक्ता कैसा चाहिये, जिस को शास्त्र वांच कर आजीवका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न होय। क्योंकि जो आशावान होय तो यथार्थ उपदेश दे सकता नाहीं। उसको तो कुछ श्रोतान के अभिप्राय के अनुसार व्याख्यान कर, अपने प्रयोजन साधने ही का अभिप्राय रहे॥ और श्रोतान से वक्ता का पद ऊंचा है, सो जो वक्ता लोभी होय तो वक्ता आप ही हीन हो जाय, और श्रोता ऊंचे हो जायें। और वक्ता कैसा चाहिये जिस के तीव्र क्रोध मान न होय। क्योंकि तीव्र क्रोधी मानी की निन्दा होय है। और श्रोता तिस से डरते रहें। तब तिस से अपना हित कैसे करें, और वक्ता कैसा चाहिये जो आप ही नाना प्रकार के प्रश्न उठाय, आप ही उत्तर करे। अथवा अन्य जीव अनेक प्रकार

बहुत वार प्रश्न करें, तो मिष्ट वचन कर जैसे उनका संदेह दूर होय, तैसे समाधान करे, जो आप के उत्तर देने की सामर्थ्य न होय तो यह कहै। इसका मुझको ज्ञान नाहीं है, किसी विशेष ज्ञानी से पूछ कर मैं तुम्हारे ताईं उत्तर दूंगा, या कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुम को मिले तो तुम उन से पूछ कर अपना संदेह दूर करना। और मुझ को भी बतला देना। क्योंकि जो वक्ता ऐसा न होय तो अभिमान के वश तैं अपनी पण्डिताई जितावने के लिये प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशे, तिस से श्रोताओं का विरुद्ध अर्थ श्रद्धान करने से बुरा होय, और जैन धर्म्म की निन्दा होय। जो ऐसा न होय तो श्रोतान का कल्याण और जिन मत्त की प्रभावना होय सके नाहीं। और वक्ता कैसा चाहिये जिसके अनीति रूप लोक निंद्य कार्यन की प्रवृत्ति न होय, क्योंकि लोक निन्द्य कार्य करने से हास्य का स्थान हो जाय, तब तिसका वचन कौन प्रमाण करे। जिन धर्म्म को लजावै। और वक्ता कैसा चाहिये जिसका कुल हीन न होय, अंग हीन न होय, स्वर भंग न होय, मिष्ट वचन होय, प्रभुत्व होय, लोक विषे मान्य होय क्योंकि जो ऐसा न होय तो वक्तापना की महंतता शोभै नाहीं, इस लिये इतने गुण तो वक्ता विषे अवश्य ही चाहियें सोई "आत्मानुशासन" विषे कहा है॥

श्लोक—प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः॥
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेवदृष्टोत्तरः॥

प्राय: प्रश्नसहः प्रभुः परमनो हारीपरा निंदया ब्रयाद्धर्मकथां गुणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥ १ ॥

इस का अर्थ यह है, कि जो बुद्धिमान होय, और समस्त शास्त्रन का रहस्य जानता होय, लोक मर्यादा जिसके प्रगट भई होय, जिसकी आशा अस्त भइ होय, कांतिमान होय, उपशमी होय, प्रश्न करने से पहिले ही जान लेवे, उत्तर देखा होय अनेक प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने वाला होय, प्रभु होय, परकी वा परकर आप की निन्दा रहित पना कर पर मन का हरनहारा होय, गुण का निधान होय, स्पष्ट मिष्ट जिस के वचन होयें, ऐसा सभा नायक धर्म कथा कहै। और वक्ता का लक्षण विशेष लक्षण ऐसा है। जो व्याकरण न्यायादिक वा बड़े बड़े जैन शास्त्रन का जिसके विशेष ज्ञान भया होय, सो विशेषपने तिस के ही वक्तापना शोभै है, इस लिये ऐसा ही वक्ता होना चाहिये क्योंकि जिसके अध्यात्म रस कर यथार्थ अपने स्वरूप का अनुभव न भया होय, सो जिन धर्म का मरम जाने नाहीं उसके तो पद्धति ही कर वक्तापना होय है। और वह अध्यात्म रसमयी, सांचा जिन धर्म का स्वरूप प्रगट करसके नाहीं। इस लिये जिसकै आत्म ज्ञान होय उस ही कै सांचा वक्तापना होय है। क्योंकि प्रवचनसार विषे ऐसा कहा है। आगमज्ञान, तत्वार्थश्रद्धान, संयमभाव, यह तीनों आत्म ज्ञान कर शून्य कार्यकारी नाहीं। और अष्ट पाहुड़ विषे ऐसा कहा है :—

पण्डिय पण्डिय पण्डिय कणच्छोडिउ तुसखण्डिया
पइअत्थं सन्तुट्ठोसि परमत्थं नजानमूढोसि ॥ २॥

इस का अर्थ :—हे पाण्डे हे पाण्डे हे पाण्डे ! तूं कण छोड़ तुस ही खोटे तू अर्थ और शब्द विषे सन्तुष्ट है, परमार्थ न जाने है। इस लिये तू मूर्ख ही है, ऐसा कहा है। और चौदह विद्या विषे भी पहिले अध्यात्म विद्या ही प्रधान कही है। इस लिये अध्यात्म रस का रसिया वक्ता है, सो जिन धर्म्म के रहस्य का वक्ता जानना, और जो बुद्धि ऋद्धि के धारक हैं। वा अवधि मनः पर्यय केवल ज्ञान के धनी वक्ता हैं, सो महान् वक्ता जानने। ऐसे वक्तान के विशेष गुण जानने। सो जो इन विशेष गुणन के धारी वक्तान का संयोग मिले तो बहुत ही भला है। और जो न मिले तो श्रद्धानादिक गुणन के धारी वक्तान ही के मुख तें शास्त्र सुनना इस प्रकार गुण के धारी मुनि वा श्रावक तिन के मुख से ही शास्त्र सुनना योग्य है। और जे पद्धति बुद्धि कर वा शास्त्र सुनने के लोभ कर श्रद्धानादिक गुण रहित पापी पुरुष हैं तिन के मुख से शास्त्र सुनना उचित नाहीं है॥

उक्तंच। तंजिणआणपरेणा। धम्म्यो सोयब्ब सुगुरु पासम्मी।
अह उचिउ सद्दाउ। तस्सुवए संस्सकहगाउ॥ १॥

इस का अर्थ:—जो जिन आज्ञा मानने विषे सावधान है, तिस को निर्ग्रन्थ सुगुरु ही के निकट धर्म्म सुनना योग्य है। अथवा तिस गुरु ही के उपदेश का कहन हारा उचित श्रद्धानी श्रावक तिससे धर्म्म सुनना योग्य है। इस लिये जो वक्ता धर्म्म बुद्धि कर उपदेश दाता होय, सोही अपना और अन्य जीवन का भला करे है। और जो कषाय बुद्धि कर उपदेश दे हैं, सो अपना और अन्य जीवन का बुरा करे हैं ऐसे जानना। ऐसे वक्तान का स्वरूप कहा॥

॥ अब श्रोतान का स्वरूप कहे हैं ॥

जिस जीव का भला होनहार है, तिस ही जीव कै ऐसा विचार आवे है, कि मैं कौन हूं, और कहां से आकर यहां जन्म धारा है, और अब मर कर कहां जाऊंगा। और मेरा क्या स्वरूप है, यह चरित्र कैसा बन रहा है, यह मेरे भाव होय हैं, तिन का क्या फल लगेगा, जीव दुःखी होय रहा है। सो दुःख दूर होने का क्या उपाय है, मुझ को इन बातन का ठीक कर जिसमें कुछ मेरा हित होय सो ही करना उचित है, ऐसे विचार कर अपने हित के हेतु उद्यम करै। और इस कार्य की सिद्धि शास्त्र सुनने से होती जान अति प्रीति कर शास्त्र सुने, और जो कुछ पूछना होय सो पूछे, और गुरुन के कहे अर्थ को अपने अन्तरङ्ग विषे वारम्वार विचारे, और यह विचार सत्य अर्थ का निश्चय कर जो कर्त्तव्य होय तिस के करने को उद्यमी होय. सो ऐसा तो नवीन श्रोताओं का स्वरूप जानना। और जो जैन धर्म्म के गाढ़े

अज्ञानी हैं, और नाना प्रकार शास्त्र सुनने कर जिन की बुद्धि निर्मल भई है। और व्यवहार निश्चयादिक के स्वरूप को जान कर जिस अर्थ को सुने हैं। तिस को यथावत् धारण करे हैं। और जब प्रश्न उपजे है, तब अति विनयवान् होय प्रश्न करे हैं। अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तर कर वस्तु का निर्णय करे हैं, शास्त्राभ्यास विषे अति आसक्त हैं। धर्म्म बुद्धि कर निन्द्य कार्य के त्यागी भये हैं। ऐसे जैन शास्त्रन के श्रोता चाहियें, सो श्रोतान के विशेष लक्षण ऐसे हैं। और जो याके कुछ व्याकरण न्यायादिक का वा बड़े २ जैन शास्त्रों का अधिक ज्ञान भया होय तो उसके श्रोतापना विशेष शोभे है। और जो ऐसा भी श्रोता होय और उसके आत्मज्ञान न भया होय तो उपदेश का मरम समझ सके नाहीं। इस लिये आत्मज्ञान कर जो स्वरूप का आस्वादी भया है, सोई जिन धर्म के रहस्य का श्रोता है। और जो अतिशयवन्त बुद्धि कर वा अवधि मनः पर्यय कर संयुक्त होय तो वह महान् श्रोता जानना, ऐसे श्रोतान के विशेष गुण हैं। ऐसे जैन शास्त्रन के श्रोता चाहियें। और शास्त्र सुनने से हमारा भला होयगा, ऐसी बुद्धि कर जो शास्त्र सुने हैं। परन्तु ज्ञान की मन्दता कर विशेष समझे नाहीं, तिन के पुण्य बन्ध होय है। विशेष कार्य सिद्ध होता नाहीं। और जे कुल प्रवृत्ति कर, वा पद्धति बुद्धि कर, वा सहज संयोग बनने कर शास्त्र सुने हैं, वा सुने तो हैं, परन्तु कुछ अवधारण करते नाहीं। तिनके परणाम अनुसार कदाचित पुण्य बन्ध भी होय है और कदाचित् पाप बन्ध भी होय है। और जे मद मत्सर भाव कर शास्त्र सुने हैं, वा तर्क करने ही का जिन का अभिप्राय है, और जे महन्तता के अर्थ वा किसी लोभादिक के प्रयोजन के अर्थ शास्त्र

सुने हैं, और शास्त्र तो सुने हैं, परन्तु सुहावता नाहीं। ऐसे श्रोतान के केवल पाप बन्ध ही होय है, ऐसा श्रोतान का स्वरूप जानना ऐसे ही यथासम्भव सीखना सिखावना आदि जिन के पाइये है, तिन का भी स्वरूप जानना इस प्रकार शास्त्र का और वक्ता श्रोता का स्वरूप कहा। सो उचित शास्त्र को उचित वक्ता होय वाचना, उचित श्रोता होय सुनना योग्य है॥

अब यह मोक्षमार्ग प्रकाश नामा शास्त्र रचिये है।

तिस का सार्थकपना दिखाइये है। इस संसार अटवी विषे समस्त जीव हैं, ते कर्म निमित्त तें निपजे नाना प्रकार दुःख तिन कर पीड़ित होय रहे हैं। और तहां मिथ्यात्व अंधकार व्याप्त होय रहा है तिस कर तहां से मुक्त होने का मार्ग पावते नाहीं। तड़फ तड़फ कर तहां ही दुःख को सहते हैं, और ऐसे जीवन का भला होने को कारण तीर्थंकर केवली भगवान् सोई भया सूर्य्य तिस का उदय होव है। तिस की दिव्यध्वनि रूपी किरणान कर तहां से मुक्त होने का मार्ग प्रकाशित होय है। जैसे सूर्य्य के ऐसी इच्छा नाहीं है, कि मैं मार्ग प्रकाशूं परन्तु सहज ही उस की किरणें फैलें हैं। तिस कर मार्ग का प्रकाश होय है, तैसे केवली वीतराग हैं। उन के ऐसी इच्छा नाहीं है, कि हम मोक्षमार्ग प्रगट करें। परन्तु सहज ही अघाति कर्म्मन का उदय कर तिन का शरीर रूप पुद्गल दिव्यध्वनि रूप परिणमें है। तिस कर मोक्षमार्ग का प्रकाश होय है। और गणधर देवन के यह विचार आया कि जहां केवली सूर्य का अस्तपना होय तहां जीव मोक्षमार्ग को कैसे पावें। और मोक्ष-

मार्ग पाये विना जीव दुःख सहेंगे। ऐसी करुणा बुद्धि कर अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रन्थ ते ही भये महान् दीपक तिन का उद्योत किया। और जैसे दीपक कर दीपक जलावने से दीपकन की परम्परा प्रवर्त्तै है, तैसे ही आचार्यादिकन ने तिन ग्रन्थन से अन्य ग्रन्थ बनाये। और तिन से किन्हीं ने अन्य ग्रन्थ बनाये। ऐसे ग्रन्थन से अन्य ग्रन्थ होने से ग्रन्थन की परम्परा प्रवर्त्तै है। मैं भी पूर्व ग्रंथन से इस ग्रन्थ को बनाऊं हूं। और जैसे सूर्य्य वा सर्व दीपक मार्ग को एक रूप ही प्रकाशैं हैं। तैसे दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रन्थ मोक्षमार्ग को एक रूप ही प्रकाशैं हैं। और जैसे प्रकाश में भी नेत्र रहित वा नेत्र विकार सहित पुरुष हैं, तिनको मार्ग सूझता नाहीं तो दीपक के तो मार्ग प्रकाशकपने का अभाव भया नाहीं। तैसे प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं, या मिथ्यात्वादि विकार सहित हैं, तिन को मोक्षमार्ग सूझता नाहीं, तो ग्रन्थ के तो मोक्षमार्ग प्रकाशपने का अभाव भया नाहीं। ऐसे इस ग्रन्थ का मोक्षमार्ग प्रकाश ऐसा नाम सार्थिक जानना।

—:(यहां प्रश्न):— जो मोक्षमार्ग के प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तो थे ही। तुम नवीन ग्रन्थ किस लिये बनावो हो। —:(तिस का समाधान):— जैसे बड़े दीपकन का तो उद्योत बहुत तैलादिक के साधन से रहे है। जिन के बहुत तैलादिक की शक्ती न होय। तिनको स्तोक दीपक जोय दीजिये तो वह उसका साधन राख तिसके उद्योत से अपना कार्य करे हैं। तैसे बड़े ग्रन्थन का तो प्रकाश बहुत ज्ञानादिक का साधन से रहे है। जिस के बहुत ज्ञानादिक की शक्ति नाहीं तिन को स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तो वह उस का साधन राख तिस के प्रकाश से अपना कार्य करैं। इस लिये यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइये है। और यहां

जो मैं यह ग्रन्थ बनाऊ हूं सो कषायन तैं अपना मान बधावने को, वा लोभ साधने को वा यश होने को
वा अपनी पद्धति राखने को, नाहीं बनाऊ हूं। जिन के व्याकरण न्यायादिक के वा नय प्रमाणादिक के
विशेष अर्थ का ज्ञान नाहीं है, उनकै तिन बड़े ग्रन्थन का अभ्यास तो बन सके नाहीं। और कोई छोटे ग्रंथन
का अभ्यास बने तो भी यथार्थ अर्थ भासे नाहीं। ऐसे इस समय विषे मन्द बुद्धि जीव बहुत देख
तिन का भला होने के अर्थ धर्म बुद्धि से यह भाषामय ग्रन्थ बनाऊं हूं, और जैसे बड़े दरिद्री को अव-
लोकन मात्र चिन्तामणि की प्राप्ति होय। और वह न अवलोके, और जैसे कोढ़ी को अमृत पान करावे,
और वह न करे तो तैसे संसार पीड़ित जीव को सुगम मोक्षमार्ग का उपदेश का निमित्त बनै और वह
अभ्यास न करे तो उसके अभाग्य की महिमा हम से तो होय सके नाहीं। उस का होनहार को विचार
हमारे समता भाव आवै है॥

गाथा॥ साहीणे गुरुयोगे। जेणसुणंतीह धम्म वयणाई।
ते धीठ दुट्ठ चित्ता। अहसुहडा भवभय विहूणा॥

इसका अर्थ—स्वाधीन उपदेश दाता गुरु का योग जुड़े भी जो जीव धर्म वचन को नहीं
सुने हैं, सो धीठ हैं। और उन का दुष्ट चित्त है। अथवा जिस संसार भय से तीर्थंकरादिक डरे हैं। तिस
संसार भय कर रहित हैं, सो बड़े सुभट हैं। और प्रवचनसार विषे भी मोक्षमार्ग का अधिकार किया है,

तहां प्रथम आगम ज्ञान को ही उपादेय कहा है, सो इस जीव का तो मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है। इस के होतैं तत्वन का श्रद्धान होय है। और तिस आगम तैं आत्मज्ञान की प्राप्ति होय है, तब सहज ही मोक्ष की प्राप्ति होय है। और धर्म के अनेक अङ्ग हैं, तिन विषे एक ध्यान बिना इस से और ऊंचा अङ्ग नाहीं है। इस लिये जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। और इस ग्रन्थ का तो बांचना सुनना विचारना बहुत सुगम है, किसी व्याकरणादिक का भी साधन न चाहिये। इस लिये अवश्य इस के अभ्यास विषे प्रवर्त्तौ तुम्हारा कल्याण होयगा॥

इति श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्र विषे पीठ बन्ध प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया॥ १

॥ श्री ओंनमः सिद्धेभ्यः ॥ अथ दूसरा अधिकार प्रारभ्यते ॥

दोहा—मिथ्या भाव अभाव तैं, जो प्रगटै निज भाव॥
सो जयवन्त रहो सदा, यह ही मोक्ष उपाव॥ १॥

इस शास्त्र विषे मोक्षमार्ग का प्रकाश करिये है, तहां बन्धन से छूटने का नाम मोक्ष है। सो इस आत्मा के कर्म का बन्धन अनादि से है, और तिस बन्धन कर आत्मा दुःखी होय रहा है। और इस के दुःख दूर करने का निरन्तर उपाय भी रहै है। परन्तु सांचा उपाय पाये बिना दुःख दूर होता

विषे परिभ्रमण पाइये है, एक रूप रहता नाहीं। इस लिये यह जीव व्याकुल होय रहा है, ऐसे इस जीव के समस्त
नाहीं। और दुःख सहा भी जाता नाहीं। इस लिये यह जीव व्याकुल होय रहा है, ऐसे इस जीव के समस्त
दुःख का मूल कारण कर्म्म बन्धन है। और तिस का अभाव रूप मोक्ष है, सो ही परम हित है, और इस
का साचा उपाय करना सोही कर्त्तव्य है। इस लिये इस ही का इस जीव को उपदेश दीजिये है। तहां जैसे
वैद्य है, सो रोग सहित मनुष्य को प्रथम तो रोग का निदान बतावै कि ऐसे यह रोग भया है, और उस रोग
के निमित्त से इस के जो जो अवस्था होती होय सो बतावै, जिस कर उस के निश्चय होय कि मेरे ऐसा
ही रोग है, और तिस रोग के दूर करने का उपाय अनेक प्रकार कर बतावै, और तिस उपाय की तिस
को प्रतीति जनावै। इतना तो वैद्य का बतावना है। और जो वह रोगी तिस का साधन करै तो रोग
से मुक्त होय, अपने स्वभाव रूप प्रवर्त्तै। सो यह रोगी का कर्त्तव्य है, तैसे ही यहां कर्म्म बन्धन युक्त
जीव को प्रथम तो कर्म्म बन्धन का निदान बताइये है, कि ऐसे तेरे यह कर्म्म बन्धन भया है। फिर उस
कर्म्म बन्धन के निमित्त से इस के जो जो अवस्था होती है, सो बताइये है। ताकि इस जीव के निश्चय
हो जाय कि मेरे ऐसा ही कर्म्म बन्धन है॥ और तिस कर्म बन्धन के दूर करने का उपाय अनेक प्रकार
बताइये है। और तिस उपाय की इस को प्रतीति जनाइये है। इतना तो शास्त्र का उपदेश है, और यह
जीव तिस का साधन करै तो कर्म बन्धन से मुक्त होय, अपने स्वभाव रूप प्रवर्त्तै। सो यह जीव का कर्त्तव्य
है। सो यहां प्रथम ही कर्म बन्धन का निदान बताइये है, सो कर्म्म बन्धन ही से नाना उपाधिक भवन
विषे परिभ्रमण पाइये है, एक रूप रहता नाहीं। इस लिये कर्म्म बन्धन सहित अवस्था का नाम

संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्था विषे अनन्तानन्त जीव द्रव्य है, सो अनादि ही से कर्म्म बंधन सहित है, ऐसा नहीं है कि पहिले जीव न्यारा था, और कर्म्म न्यारा था, पीछे इन का संयोग भया। —:(यहां प्रश्न):— तो कैसे है। —:(ताका उत्तर):— जैसे मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धन विषे अनन्ते पुद्गल परमाणु अनादि तैं एक वन्धन रूप हैं। पीछे तिन में कई परमाणु भिन्न होय हैं, कई नये मिले हैं। ऐसे मिलना बिछुड़ना हुआ करै है, तैसे इस संसार विषे एक जीव द्रव्य और अनन्ते कर्म्म रूप पुद्गल परमाणुन का अनादि तो एक वन्धन रूप है। पीछे तिन में कई कर्म्म परमाणु भिन्न होय हैं। कई नये मिले हैं, ऐसे मिलना बिछुड़ना हुआ करै है। —:(यहां प्रश्न):— जो पुद्गल परमाणु तो रागादिक के निमित्त से कर्म्म रूप होय हैं, अनादि कर्म्म रूप कैसे हैं। —:(तिस का समाधान):— निमित्त तो जो नवीन कार्य्य होय, तिस विषे ही सम्भवै है, अनादि अवस्था विषे निमित्त का कुछ प्रयोजन नाहीं। जैसे नवीन पुद्गल परमाणुन का वन्धान तो स्निग्ध रूक्ष गुण के अंशन ही कर होय है, और मेरु-गिरि आदि स्कन्ध विषे अनादि पुद्गल परमाणुन का वन्धान है, तहां निमित्त का क्या प्रयोजन है। तैसे नवीन परमाणुन का कर्मरूप होना तो रागादिकन ही कर होय है। और अनादि पुद्गल परमाणुन की कर्म रूप ही अवस्था है। तहां निमित्त का क्या प्रयोजन है, और जो अनादि विषे भी निमित्त मानिये तो अनादिपना रहता नाहीं। इस लिये कर्म का सम्बन्ध अनादि मानना॥ सो "तत्व प्रदीपिका प्रवचनसार" के व्याख्यान विषे सामान्य ज्ञेयाधिकार है। तहां कहा है, रागादिक का कारण तो द्रव्य कर्म है, और

द्रव्य कर्म का कारण रागादिक हैं, तब वहां तर्क करी है, जो ऐसे इतरेतराश्रय दोष लागै, वह उस को आश्रय वह उस के आश्रय कहीं थंभाव नाहीं है। —:(तिस का उत्तर):— ऐसा दिया है ॥

"इतरे तराश्रयदोषः नैवं अनादि प्रसिद्ध द्रव्य कर्म्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वो नोपादानात्"

इसका अर्थ :—ऐसे इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। क्योंकि अनादि का स्वयं सिद्ध द्रव्य कर्म्म का संवन्ध है, तिस का तहां कारणपना कर ग्रहण किया है। ऐसे आगम में कहा है, और युक्ति से भी ऐसे ही संभव है। जो कर्म निमित्त विना पहिले से ही जीव के रागादिक कहें तो रागादिक जीव का निज स्वभाव हो जाय क्योंकि पर निमित्त विना होय तिस ही का नाम स्वभाव है। इस लिये कर्म का संवन्ध अनादि ही मानना। (यहां प्रश्न) जो न्यारे न्यारे द्रव्य और अनादि से तिनका संवन्ध, सो ऐसे कैसे संभवे (तिसका समाधान):— जैसे जल दूध का, वा सोनां किट्टक का, वा तुष और कण का, तैल तिल का, संवन्ध देखिये है। नवीन इनका मिलाप भया नाहीं, तैसे अनादि ही से जीव कर्म का संवन्ध जानना। नवीन इनका मिलाप भया नाहीं। और तुम कहोगे कि कैसे संभवै, जैसे अनादि से कई जुदे २ द्रव्य हैं, तैसे कोई मिले द्रव्य भी हैं इस संभवने विषे कुछ विरोध तो भासता नाही, —:(यहांप्रश्न):—संवन्ध वा संयोग कहना तो तब संभवै, जब पहिले जुदे होय पीछे मिलें यहां अनादि से मिले जीव कर्मन का संवन्ध कैसे कहा है। —:(तिस

का समाधान):— अनादि से तो मिले थे, परन्तु पीछे जुदे भये। तब जाना गया कि जुदे थे तो जुदे भये, इस लिये पहले भी भिन्न ही थे, ऐसे अनुमान कर वा केवल ज्ञान कर प्रत्यक्ष भिन्न भासे है, तिस कर तिन का बन्धान होते भी भिन्न पना पाइये है। और तिस भिन्नता की अपेक्षा, तिनका संबन्ध वा संयोग कहा है। क्योंकि नये मिले वा मिलेही होंय, भिन्न द्रव्यन को मिलाप विषे ऐसे ही कहना संभव है, ऐसे इन जीव कर्मन का अनादि संवन्ध है तहां जीव द्रव्य तो देखने जानने रूप चेतना गुण का धारक है। और इन्द्रिय गम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है, संकोच विस्तार शक्ति को लिये असंख्यात प्रदेशी एक द्रव्य है। और कर्म है, सो चेतना गुण रहित जड़ है, और मूर्त्तीक है, अनेक पुदगल परमाणुन का पिण्ड है, इस लिये एक द्रव्य नाही हैं, ऐसे यह जीव और कर्म्म हैं, सो इनका अनादि संवन्ध है। तौभी जीव का कोई प्रदेश कर्म्म रूप न होय है, और कर्म का कोई परमाणु जीव रूप न होय है। अपने २ लक्षण कोधरे जुदे २ ही रहे हैं। जैसे सोनेरूपे का एक स्कंध होय, तथापि पीतादिक गुणन को धरे सोना जुदा रहे है। और श्वेतादि गुणन को धरे रूपा जुदा रहै है। तैसे जुदे जानने॥ —:(यहां प्रश्न):— जो मूर्त्तीक मूर्त्ती का तो बंधान होना बने है, और मूर्त्तीकै अमूर्त्तीक का बंधान कैसे बने॥ —:(तिस का समाधान):— जैसे अव्यक्त इन्द्रिय गम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्म पुद्गल, और व्यक्त इन्द्रिय गम्य है, ऐसे स्थूल पुद्गल तिन का बंधान होना मानिये है तैसे इन्द्रिय गम्य होने योग्य नाहीं ऐसी अमूर्त्तीक आत्मा और इन्द्रिय गम्य होने योग्य ऐसे मूर्त्तीक कर्म इनका भी बंधान होना मानना और इस बन्धान विषे कोई किसी को

करे तो नाही यावत् बन्धान रहे तावत् साथ रहैं, बिछड़ै नाहीं, और कारण कार्य्यपनातिन को बना रहे है, इतना ही यहां बंधान जानना सो मूर्त्तीक अमूर्त्तीक के ऐसे बन्धान होने विषे कुछ विरोध है नाहीं इस प्रकार जैसे एक जीव के अनादि कर्म सम्बन्ध कहा है। तैसे ही जुदा २ अनन्त जीवन के जानना सो कर्म ज्ञाना वर्णादिक भेदन कर आठ प्रकार है। तहां चार घातिया कर्मन के निमित्त से तो जीव का स्वभाव का घात होय है, तहां ज्ञाना वर्ण दर्शना वर्ण कर तो जीव का स्वभाव दर्शन ज्ञान तिनकी व्यक्तता न होय है इन कर्मन के क्षयोपशम के अनुसार किञ्चितज्ञान दर्शन की व्यक्तता रहे है और मोहनीय कर्म कर जो जीव का स्वभाव नाहीं। ऐसे मिथ्या श्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिन की व्यक्तता होय है और अन्तराय कर्म कर जीव के स्वभाव में दीचा लेने की सामर्थता रूप वीर्यता की व्यक्तता न होय है। तिस के क्षयोपशम के अनुसार किञ्चित् शक्ति रहे है। ऐसे घातिया कर्मन के निमित्त से जीव के स्वभाव का घात अनादि ही से भया है। ऐसे नाहीं के पहिले तो स्वभाव रूप शुद्ध आत्मा था, पीछे कर्म निमित्त से स्वभाव घात होने कर अशुद्ध भया :—(यहां तर्क):— जो घात नाम तो अभाव का है सो जिस का पहिले सद्भाव होय तिस का अभाव कहिना बने। यहां स्वभाव का तो सद्भाव है ही नाहीं। घात किस का किया :(तिस का समाधान,) जीव विषे अनादि ही से ऐसी शक्ति पाइये है जो कर्मन का निमित्त न होय तो केवल ज्ञानादि अपने स्वभाव रूप प्रवर्त्तै। परन्तु अनादि ही से कर्म का सम्बन्ध पाइये है इस लिये तिस शक्ति का व्यक्तपना न भया

सो शक्ति अपेक्षा स्वभाव है, तिस को व्यक्त न होने देने की अपेक्षा घात किया कहिये है। और चार अघातिया कर्म हैं, तिन के निमित्त से इस आत्मा कै वाह्य सामग्री का सम्बन्ध बने है। तहां वेदनीय कर तो शरीर विषे वा शरीर से वाह्य नाना प्रकार सुख दुःख का कारण पर द्रव्यन का संयोग जुड़े है। और आयु कर्म कर अपनी स्थिति पर्य्यन्त पाये शरीर का सम्बन्ध नाहीं छूट सके है। और नाम कर्म कर गति जाति शरीरादिक निपजै हैं, और गोत्र कर्म्म कर ऊंच नीच कुल की प्राप्ति होय है, ऐसे अघाति कर्म्मन कर वाह्य सामग्री इकट्ठी होय है। तिस कर मोह के उदय का सहकारी होने से जीव सुखी दुःखी होय है। और शरीरादिकन के सम्बन्ध से जीव कै अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने कार्य्य को नाहीं करे हैं। जैसे कोई शरीर को पकड़े तो आत्मा भी पकड़ा जाय है, और यावत् कर्म्म का उदय रहे, तावत वाह्य सामग्री तैसे ही बनी रहै, अन्यथा न होय सके है। ऐसा इन अघाति कर्म्मन का निमित्त जानना। —:(यहां प्रश्न):— कर्म्म तो जड़ हैं। कुछ बलवान नाहीं। तिन कर जीव के स्वभाव का घात होना वा वाह्य सामग्री का मिलना कैसे सम्भवै। —:(तिस का समाधानः):— जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यम कर जीव के स्वभाव को घातै वा वाह्य सामग्री को मिलावे तो कर्म्म के चेतनपनो भी चाहिये, और बलवान्‌पना भी चाहिये, सो तो है नाहीं। सहज ही निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध है। जब उन कर्म्मन का उदयकाल होय, तिस काल विषे आप ही आत्मा स्वभावरूप न परिणमै है। विभाव रूप परिणमै है, वा अन्य द्रव्य हैं, सो तैसे ही सम्बन्ध रूप होय परिणमैं हैं। जैसे किसी पुरुष के सिर पर मोहनी धूल परी है, उस कर सो पुरुष

बाउला भया, तहां उस मोहन धूलकै ज्ञान भी न था, और बलवान्पना भी न था, और बाउलापना तिस मोहन धूल ही कर भया देखिये है, तहां मोहन धूल का तो निमित्त है, और पुरुष आपही बाउला परिणमै है, ऐसा ही निमित्त नैमित्तक बन रहा है। और जैसे सूर्य्य के उदय काल विषे चकवा चकवीन का संयोग मिले है। तहां रात्रि विषे किसी ने द्वेष बुद्धि से जोरावरी कर जुदे कीये नाहीं, दिवस विषे किसीने करुणा बुद्धि से लाय कर मिलाये नाहीं, सूर्य्य उदय का निमित्त पाय आप ही मिले हैं। और सूर्य्य अस्त का निमित्त पाय आप ही बिछड़े हैं, ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बन रहा है। तैसे ही कर्म्म का भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना। ऐसे ही कर्म्म के उदय कर अवस्था होय है। और तहां नवीन बन्ध कैसे होय है, सो कहिये है। जैसे सूर्य्य का प्रकाश है, सो मेघ पटल से जितना व्यक्त नाहीं, तितने का तो तिस काल विषे अभाव है। और तिस मेघ पटल का मन्दपना से जो जेता प्रकाश प्रगट है, सो तिस सूर्य्य के स्वभाव का अंश है। मेघ पटल का नाहीं है। तैसे जीव का ज्ञान दर्शन स्वभाव है, सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय के निमित्त से जितने व्यक्त नाहीं तितने का तो तिस काल विषे अभाव है। और तिन कर्म्मन के क्षयोपशम से जेता ज्ञानदर्शन वीर्य प्रगट है। सो तिस जीव के स्वभाव का अंश ही है। कर्म जनित औपाधिक भाव नाहीं है। सो ऐसा स्वभाव का अंश अनादि ही से लगा है। कभी भी अभाव न होय है। इस ही कर जीव का जीवत्वपना निश्चय करिये है। जो यह देखनहार, जाननहार, शक्ति को धरे वस्तु है, सोही आत्मा है। और इस स्वभाव कर नवीन कर्म का बन्ध नाहीं है। क्योंकि निज स्वभाव ही बन्ध का कारण होय तो

वन्ध का छूटना कैसे होय। और जिन कर्मन के उदय से जिनता ज्ञान दर्शन वीर्य्य अभाव रूप है, उस कर भी वन्ध नाहीं है। क्यों कि आप ही का अभाव होतैं अन्य को कारण कैसे होय। इस लिये ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय के निमित्त से निपजे जो भाव सो नवीन कर्म्म बन्ध के कारण हैं। और मोहनीय कर्म्म कर जीव के अयथार्थ श्रद्धान रूप तो मिथ्यात्व भाव होय है, वा क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषाय होय है, सो यद्यपि जीव के अस्तित्व में है। जीव से जुदे नाहीं। जीव ही इन का कर्त्ता है। जीवके परिणमनि रूप ही यह कार्य्य है। तथापि इन का होना मोह कर्म्म के निमित्त ही से है, कर्म्मन का निमित्त दूर भये इन का अभाव ही है। इस लिये यह जीव के निज स्वभाव नाहीं हैं। औपाधिक भाव हैं। और इन भावन कर नवीन बंध होय है। इस लिये मोह के उदय से निपजे भाव बंध के कारण होय हैं। और अघातिया कर्म्म के उदय से वाह्य सामग्री मिले है। तिन विषे शरीरादिक तो जीव के प्रदेशन में एक क्षेत्रावगाही होय एक बंधान रूप होय हैं। और धन कुटुम्बादिक आत्मा से भिन्न रूप हैं, सो यह सर्व बंध के कारण नाहीं हैं। क्योंकि पर द्रव्य बंध का कारण नाहीं है, इन विषे आत्मा कै ममत्वादि रूप मिथ्यात्वादि भाव होय हैं, सोई बंध का कारण जानना, इतना और विशेष जानना, जो नाम कर्म्म के उदय से शरीर वा वचन वा मन निपजै हैं, तिन की चेष्टा के निमित्त से आत्मा के प्रदेशन कै चञ्चल-पना होय है। तिस कर आत्मा कै पुद्गल वर्गणा से एक बंधान होने की शक्ति होय है। तिस का नाम योग है। तिस के निमित्त से समय समय प्रति कर्म्म रूप होने योग्य अनन्त परमाणुन का

ग्रहण होय है। तहां अल्प योग होय, तो थोड़े परमाणुन का ग्रहण होय है। बहुत योग होय तो घने परमाणुन
का ग्रहण होय है, और एक समय विषे जो पुद्गल परमाणु ग्रहे, तिनके विषे ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृति वा
तिनकी उत्तर प्रकृतिन का जैसे सिद्धान्त विषे कहा है, तैसे बटवारा होय है। तिस बटवारा माफिक
परमाणु तिन प्रकृतिन रूप आपही परिणमैं हैं। विशेष इतना जानना कि योग दोय प्रकार है॥ एक शुभो-
पयोग, और दूसरा अशुभोपयोग, तहां धर्म के अंगन विषे मन, बचन, काय, की प्रवृत्ति भये तो शुभोपयोग
होय है। और अधर्म अंगन विषे तिनकी प्रवृत्ति भये अशुभोपयोग होय है। सो शुभोपयोग होवे, वा अशुभोपयोग
होवे, सम्यक् पाए बिना घातिया कर्म्मन की तो सर्व प्रकृतिन का निरन्तर बन्ध हुआ ही करे है। कोई
समय भी किसी प्रकृति का बन्ध हुवे बिना रहता नाहीं है। इतना तो विशेष है, कि मोहनीय की हास्य,
शोक, युगल विषे रति, अरति, युगल विषे तीन वेदन विषे एक काल एक ही प्रकृति का बन्ध होय है। और
अघातियान की प्रकृतिन विषे शुभोपयोग होतैं सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतिन का बन्ध होय है। अशु-
भोपयोग होतैं असाता वेदनीय आदि पाप प्रकृतिन का बन्ध होय है। मिश्र योग होतैं कोई पुण्य प्रकृतिन
का कोई पाप प्रकृतिन का बन्ध होय है। ऐसे योग के निमित्त से कर्म का आगमन होय है। इस लिये योग
है, सो आश्रव है॥ और इस कर ग्रहे कर्म्म परमाणु का नाम प्रदेश है। तिनका बन्ध भया। और तिन
विषे मूल उत्तर प्रकृतिन का विभाग भया है। इसलिये योगन कर प्रदेशबन्ध प्रकृति बन्ध, का होना जानना।
और मोह के उदय से मिथ्यात्व क्रोधादि[illegible] होय हैं। तिन सबन का नाम सामान्यपने कषाय है। तिस

कर उन कर्म्मन की प्रकृतिन का स्थिति बंध है। सो जितनी स्थिति बंधै तिस विषे आबाधाकाल को छोड़ ताहां पीछे यावत् बन्धी स्थिति पूर्ण न होय तावत् समय समय तिस प्रकृति का उदय आया ही करै। सो देव, मनुष्य, तिर्य्यंच आयु बिना अन्य सर्व घातिया अघातिया प्रकृतिन का अल्प कषाय होतैं थोड़ा स्थिति बन्ध होय है। बहुत कषाय होतैं घना स्थिति बन्ध होय है। तिन तीन आयुन का अल्प कषाय से बहुत और बहुत कषाय से अल्प स्थिति बन्ध जानना। और तिस कषाय ही कर तिन कर्म्म प्रकृतिन विषे अनुभाग शक्ति का विशेष होय है। सो जैसा अनुभाग बन्धे तैसा ही उदय काल विषे तिन प्रकृतिन का घना वा थोड़ा फल निपजे है। तहां घातिया कर्म्मन की सर्व प्रकृतिन विषे वा अघाति कर्म्मन की पाप प्रकृतिन विषे तो अल्प कषाय होतैं थोड़ा अनुभाग बंधे है। बहुत कषाय हो तैं घना अनुभाग बंधे है। और पुण्य प्रकृतिन विषे अल्प कषाय होतैं घना अनुभाग बंधे है। बहुत कषाय हो तैं थोड़ा अनुभाग बंधे है। ऐसे कषायन कर कर्म्म प्रकृतिन के स्थिति अनुभाग का विशेष भया। इस लिये कषायन कर स्थिति बन्ध अनुभाग बन्ध का होना जानना। जैसे बहुत सी मदिरा है, और तिस विषे थोड़े काल पर्य्यन्त थोड़ा उनमत्तता उपजावने की शक्ति है। तो वह मदिरा हीनपना को प्राप्त है, और जो थोड़ी मदिरा है, तिस विषे बहुत काल पर्य्यन्त घनी उनमत्तता उपजावने की शक्ति है। तो वह मदिरा अधिकपना को पावे है। तैसे घने भी कर्म प्रकृतिन के परमाणु हैं। और तिन विषे थोड़े काल पर्य्यन्त थोड़ा फल देने की शक्ति है, तो सो कर्म्म प्रकृति हीनता को प्राप्त हैं। और थोड़े भी कर्म्म प्रकृतिन के परमाणु हैं, और तिन विषे बहुत काल पर्य्यंत बहुत फल देने की शक्ति है तो वह कर्म्म

प्रकृति अधिकपना को प्राप्त है। इस लिये योगयन कर भया प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, बलवान नाहीं। कषायन कर किया स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध ही बलवान है। इस लिये मुख्यपने कषाय ही बन्ध का कारण जानना जिन का बंधन करना होय सो कषाय मत करो। और यहां कोई प्रश्न करे कि पुद्गल परमाणु तो जड़ हैं, उनके कुछ ज्ञान नाहीं है। कैसैं यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमै हैं –:(तिस का समाधान):—जैसे भूखा होतैं मुखद्वार ग्रहा हुआ भोजनरूप पुद्गलपिण्ड, सो मांस शुक्र शोणितआदि धातुरूप परिणमै है। और तिस भोजन रूप के परमाणु तिन विषे यथायोग्य कोई धातु रूप थोड़े कोई धातुरूप घने परमाणु होय हैं। तिन विषे किसी परमाणुन का सम्बन्ध घने काल रहै है। किसी का थोड़े काल रहै है। और तिन परमाणुन विषे कोई तो अपने कार्य्य निपजावने की बहुत शक्ति को धरे हैं, कोई स्तोक शक्ति को धरे हैं। सो ऐसे होने विषे किसी भोजनरूप पुद्गलपिण्ड के ज्ञान तो नहीं है। कि मैं ऐसे परणमूं। और दूसरा भी कोई परिणमावनहारा नाहीं है। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक भाव बनरहा है। तिस कर तैसे ही प्रणमन पाइये है, तैसे ही कषाय होतैं योग्य द्वार ग्रहा हुआ कर्म्म वर्गणारूप पुद्गल पिण्ड सो ज्ञानावर्णादिक प्रकृतिरूप परिणमै है। और तिन कर्म्म परमाणुन विषे यथायोग्य कोई प्रकृतिरूप थोड़े, कोई प्रकृतिरूप घने परमाणु होय हैं। और तिन विषे कोई परमाणुन का सम्बन्ध घने काल रहै, कोईन का थोड़े काल रहै, और तिन परमाणुन विषे कोई तो अपने कार्य्य निपजावने को बहुत शक्ति धरे हैं कोई थोड़ी शक्ति धरे हैं। सो ऐसे होने विषे किसी कर्म्म वर्गणारूप पुद्गलपिण्ड के ज्ञान तो नाहीं है। जो मैं ऐसे परणमूं, ऐसे और भी

कोई परिणमावन हारा नाहीं है। ऐसा ही निमित्त नैमित्तकभाव बन रहा है। तिस कर तैसे ही परिणमन पाइये है। सो ऐसे तो लोक विषे निमित्त नैमित्तक घने हीं बन रहे हैं। जैसे मंत्र निमित्तकर जलादिक विषे रोगादि दूर करने की शक्ति होय है। वा कांकरी आदि विषे सर्पादि रोग हरने की शक्ति होय है। तैसे ही जीवभाव के निमित्त कर पुद्गल परमाणुन विषे ज्ञानावरणादिक रूप शक्ति होय है। यहां विचार कर अपने उद्यम से कार्य करे तो ज्ञान चाहिये, और जैसा निमित्त बने स्वयमेव तैसा ही परणमन होय तो तहां ज्ञान का प्रयोजन कुछ नाहीं। इस प्रकार नवीन बन्ध होने का विधान जानना। अब जे परमाणु कर्म रूप परिणमें तिन का यावत् उदय काल न आवे तावत् जीव के प्रदेशन से एक क्षेत्रावगाहरूप बन्धान रहे है, तहां जीव के भाव के निमित्त से कई प्रकृति न की अवस्था का पलटना भी होजाय है। तहां कई प्रकृति के परमाणु थे, सो संक्रमण रूप होय अन्य प्रकृति के परमाणु हो जाय हैं, और कई प्रकृतिन का स्थिति वा अनुभाग बहुत था, सो अपकर्षण होय कर थोड़ा हो जाय है। और कई प्रकृतिन का स्थिति वा अनुभाग थोड़ा था, सो उत्कर्षण होय कर बहुत हो जाय है। सो ऐसे पूर्वं बन्धे परमाणुन की भी जीव भावन का निमित्त पाय अवस्था पलटे है। और निमित्त न बने तो न पलटे है, जैसे के तैसे रहे हैं। ऐसे सत्तारूप कर्म्म रहे हैं। और जब कर्म्म प्रकृति का उदय काल आवे तब स्वयमेव ही तिन प्रकृतिन के अनुभाग के अनुसार कार्य्य बने है। कर्म्म कार्यन को निपजावता नाहीं। इस का उदयकाल आये वह कार्य बने हैं। इतना ही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जानना। और जिस समय फल निपजा तिस के अनन्तर समय विषे तिन

कर्म्मरूप पुद्गलन को अनुभाग शक्ति के अभाव होने से कर्मत्वपना का अभाव होय है। सो पुद्गल
अन्य पर्याय रूप परिणमे है। इस का नाम सविपाक निर्जरा है। ऐसे समय समय प्रति उदय होय
कर्म्म खिरें हैं। कर्मत्वपना नाश भये पीछे सो परमाणु तिस ही स्कन्ध विषे रहैं, वा जुदे होजायें। कुछ
प्रयोजन रहता नाही। यहां इतना जानना, इस जीव कै समय समय प्रति अनन्त परमाणु बन्धे हैं। तहां
एक समय विषे बन्धे परमाणु तहां आबाधा काल छोड़ अपनी स्थिति के जेते समय होय हैं। तिन विषे
क्रम से उदय आवे हैं। और बहुत समय विषे बन्धे परमाणु जो एक समय विषे उदय आवने योग्य हैं, सो
इकट्ठे होय उदय आवे हैं। उन सब परमाणुन का अनुभाग मिले जेता अनुभाग होय, उतना फल तिस
काल विषे निपजे है। और अनेकसमयन विषे बन्धे परमाणु बन्ध समय से लगाय उदय पर्यन्त कर्म्मरूप
अस्तित्व को धरे जीव से सम्बन्ध रूप रहे हैं। ऐसे कर्म्मन की बन्ध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहां
समय समय प्रति एक समय प्रवन्धमात्र परमाणु बन्धे हैं। एक समय प्रवन्ध मात्र निर्जरे हैं। ड्योढ़ गुण
हानि कर गुणित समय प्रवन्धमात्र सदाकाल सत्ता में रहे हैं। सो इन सबन का विशेष आगे कर्म्म
अधिकार विषे लिखेंगे। तहां जानना और यह कर्म्म बन्ध है, सो परमाणु रूप अनन्त पुद्गल द्रव्यन
कर निपजाया कार्य्य है इस लिये इस का नाम द्रव्य कर्म्म है। और मोह के निमित्त से मिथ्यात्व क्रोधा-
दिक रूप जीव का परिणाम है, सो अशुद्ध भाव कर निपजाया कार्य्य है। इस का नाम भाव कर्म है। इस
लिये द्रव्य कर्म के निमित्त से भाव कर्म और भाव कर्म के निमित्त से द्रव्यकर्म का बन्ध होय है।

और द्रव्य कर्म से भाव कर्म, भावकर्म से द्रव्य कर्म, ऐसे ही परस्पर कारण कार्य भाव कर संसार चक्र विषे परिभ्रमण होय है। इतना विशेष जानना। तीव्र मन्द बन्ध होने से वा संक्रमणादि होने से वा एक काल विषे बन्धा अनेक काल विषे वा अनेक काल विषे बन्धा एक काल विषे उदय आवने से किसी काल विषे तीव्र उदय आवे, तब तीव्र कषाय होय तब तीव्र ही नवीन बन्ध होय है। और किसी काल विषे मन्द उदय आवे तब मन्द कषाय होय तब मन्द ही नवीन बन्ध होय है। और तिन तीव्र मन्द कषायन ही के अनुसार पूर्व बंधे कर्मन का भी संक्रमणादिक होय तो होजाय है॥ इस प्रकार अनादि से लगाय धारा प्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्म की प्रवृत्ति जाननी। और नामकर्म के उदय से शरीर होय है। सो द्रव्यकर्मवत् किञ्चित् सुख दुःख का कारण है। इस लिये शरीर को नो कर्म कहिये है। यहां नो शब्द ईषत् वाचक जानना। सो शरीर पुद्गल परमाणुन का पिण्ड है। और द्रव्य इन्द्रिय वा द्रव्य मन और स्वासोस्वास वचन यह भी शरीर ही के अङ्ग हैं। सो यह भी पुद्गल परमाणुन के पिण्ड जानने। ऐसे शरीर के और द्रव्यकर्म सम्बन्ध सहित, जीव कै एक क्षेत्रावगाह रूप बन्धान होय है। सो शरीर के जन्म समय से लगाय जेती आयु की स्थिति होय, तितने काल पर्यन्त शरीर आत्मा का संबंध रहे है। और आयु पूर्ण भए मरण होय है। तब तिस शरीर का संबंध छूट जाय है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होजाय हैं। और तिस के अन्तर समय विषे वा दूसरे तीसरे चौथे समय जीव कर्म उदय के निमित्त से नवीन शरीर धारे है। तहां भी अपने आयु पर्यन्त तैसे ही सम्बन्ध रहे है, फिर जब मरण होय है,

तब तिस से सम्बन्ध छूटे है। ऐसे ही पूर्व शरीर का छोड़ना नवीन शरीर का ग्रहण करना अनुक्रम से हुवा करे है, और यह आत्मा यद्यपि असंख्यात प्रदेशी है, तथापि संकोच विस्तार शक्ति से शरीर प्रमाण ही रहे है। विशेष इतना समुद्घात होतैं शरीर से बाह्य भी आत्मा के प्रदेश फैले हैं। और अन्तराल समय विषे पूर्व शरीर छोड़ा था, तिस प्रमाण रहे है। और इस शरीर के अङ्गभूत द्रव्य इन्द्रिय और मन तिन के सहाय से जीव कै जानपना की प्रवृत्ति होय है, और शरीर की अवस्था के अनुसार मोह के उदय से यह जीव सुखी दुःखी होय है। और कभी तो जीव की इच्छा के अनुसार शरीर प्रवर्त्तै है, और कभी शरीर की अवस्था के अनुसार जीव प्रवर्त्तै है, कभी जीव अन्यथा इच्छा रूप प्रवर्त्तै है। पुद्गल अन्यथा अवस्था रूप प्रवर्त्तै है, ऐसे इस नो कर्म की प्रवृत्ति जाननी। तहां अनादि से लगाय प्रथम तो इस जीव कै नित्यनिगोद रूप शरीर का सम्बन्ध पाइये है। तहां नित्यनिगोद शरीर को धार आयु पूर्ण भये पीछे मर कर नित्य निगोद शरीर को धारे है। और फिर आयु पूर्ण कर मर नित्यनिगोद शरीर को ही धारे है। इस ही प्रकार अनन्तानन्त प्रमाण लिये, जीव राशि है, सो अनादि से तहां ही जन्म मरण किया करे है, और तहां से छः महीने आठ समय विषे छः सौ आठ जीव निकसे हैं। सो निकस कर अन्य पर्यायन को धारे हैं। सो पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, प्रत्येक वनस्पतिरूप एकेन्द्रिय पर्यायन विषे वा बेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रियरूप पर्यायन, विषे वा नर्क तिर्यञ्च मनुष्य देवरूप पंचेन्द्रिय पर्यायन विषे भ्रमण करे हैं। और तहां कितनेक काल भ्रमण कर फिर निगोद पर्याय को पावैं हैं। सो उन का नाम इतर निगोद है। और

तहां कितनेक काल रहै। तहां से निकस अन्य पर्याय विषे भ्रमण करै हैं। तहां परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरन विषे असंख्यात कल्प मात्र है। और द्वीन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त तिसन विषे साधिक दो हजार सागर है। और इतर निगोद विषे अढ़ाई पुद्गल परिवर्त्तनमात्र है। सो यह अनन्त काल है, और इतर निगोद से निकस स्थावर पर्याय पाय फिर निगोद जाय है। ऐसे एकेन्द्रिय पर्यायन विषे उत्कृष्ट परिभ्रमण काल असंख्यात पुद्गल परिवर्त्तन मात्र है। और जघन्य सर्वत्र एक अंतर्मुहूर्त्त कालहै। ऐसे घना तो एकेंद्रिय पर्यायन ही का धरना है। अन्य पर्याय पावना तो काकताली न्यायवत् जानना। इस प्रकार इस जीव कै अनादि ही से कर्म बन्धन रूप रोग भया है॥

॥ इति कर्म बन्धन निदान रोग वर्णन समाप्तम्॥

आगे इस कर्म्म बन्धनरूप रोग के निमित्त से जीव की कैसी अवस्था होय रही है सो कहिये है॥

इस जीव का स्वभाव है सो चैतन्य रूप है। सो सब द्रव्यन का सामान्य विशेष स्वरूप का जानन देखन प्रकाशन हारा है। जो उन का स्वरूप होय, सो आपको प्रतिभासै। तिस ही का नाम चैतन्य है। तहां सामान्य स्वरूप प्रति भासने का नाम दर्शन है। विशेष स्वरूप प्रति भासने का नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभाव कर त्रिकालवर्त्ती सर्व गुण पर्याय सहित सर्व पदार्थ को प्रत्यक्ष युगपत् बिना सहाय,

देखे जाने ऐसी आत्मा विषे शक्ति सदा काल पाइये है। परन्तु अनादि ही से ज्ञानावरण दर्शनावरण का सम्बन्ध है। तिस के निमित्त से इस शक्ति का व्यक्तपना होता नाहीं। तिन कर्मन के क्षयोपशम से किञ्चित् मतिज्ञान वा श्रुतिज्ञान पाइये है। और कदाचित् अवधिज्ञान भी पाइये है। और अचक्षु-दर्शन पाइये है। और कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइये है। सो इन की प्रवृत्ति कैसे है, सो दिखाइये है। प्रथम तो मतिज्ञान है, सो शरीर के अंगभूत जे जीभ, नासिका, नयन, कान स्पर्शन, यह द्रव्यइन्द्रिय और हृदयस्थान विषे आठ पांखुड़ी के फूला कमल के आकार द्रव्य मन तिन के सहाय ही से जाने है। जैसे जिसकी दृष्टि मन्द होय सो अपने नेत्र ही से देखे है। परन्तु चशमा दिये ही देखे, बिना चशमे देख सके नाहीं। तैसे आत्मा का ज्ञान मन्द है, सो अपने ज्ञान ही कर जाने है, परन्तु द्रव्य इन्द्रिय वा मन का संबन्ध भए ही जाने। तिन बिना जान सके नाहीं। और जैसे नेत्र तो जैसे का तैसा है परन्तु चशमें विषे कुछ दोष भया होय तो देख सके नाहीं। अथवा थोड़ा दीखै अथवा और का और दीखै, तैसे अपना क्षयोपशम तो जैसे का तैसा है। और द्रव्यइन्द्रिय वा मन के परमाणु अन्यथा परिणमे होय तो जान सकै नाहीं। अथवा थोड़ा जाने अथवा और का और जाने क्योंकि द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परिमाणुन के परिणमन कै और मतिज्ञान कै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। सो उन के परिणमन के अनुसार ज्ञान का परिणमन होय है। तिस का उदाहरण कहे हैं। जैसे मनुष्यादिक के बाल वृद्ध अवस्था विषे द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथल होय, तब जानपना भी शिथल

होय। और जैसे शीत वायु आदि के निमित्त से स्पर्शनादि इन्द्रियन के वा मन के परमाणु अन्यथा होयें, तब जानना न होय। वा थोड़ा जानना होय वा अन्यथा जानना होय। और इस ज्ञान के और वाह्य द्रव्यन के भी निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध पाइये है। तिस का उदाहरण। जैसे नेत्रइन्द्रिय कै अन्धकार के परमाणु वा फोला आदिक के परमाणु वा पाषाणादिक के परमाणु आदि साम्हने आजायें तो देख न सके है। और लाल साम्हने आवे तो सब लाल ही दीखै, हरित साम्हने आवे तो हरित ही दीखै। ऐसे अन्यथा जानना होजाय है। और दूरबीण चशमा आड़ा आवे तो बहुत दीखने लग जाय है। और प्रकाश जल काच इत्यादिक के परमाणु आड़े आवें तो जैसे का तैसा दीखै, ऐसे अन्य द्रव्य और इन्द्रिय वा मन के भी यथा सम्भव निमित्त नैमित्तक जानना। और मन्त्रादिक प्रयोग से वा मदिरा पानादिक से वा भूतादिक के निमित्त से न जानना, वा थोड़ा जानना वा अन्यथा जानना होय है। ऐसे यह ज्ञान वाह्य द्रव्यन के भी आधीन जानना। और इस ज्ञान कर जो जानना होय है, सो अस्पष्ट जानना होय है। दूर से कैसा ही जानैं समीप से कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानै, जान तैं बहुत वार हो जाय तब कैसा ही जानैं, किसी को संशय लिये जानैं, किसी को अन्यथा जानैं, किसी को किञ्चित जानैं, इत्यादि रूप कर निर्मल जानना होय सके नाहीं। ऐसे यह मतिज्ञान पराधीनता लिये इन्द्रिय मन द्वार कर प्रवर्त्तै है। तहां इन्द्रियन कर तो जितने क्षेत्र का विषय होय तितने क्षेत्र विषे जे वर्त्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गल स्कंध होंय तिनही को जानै। तिन विषे भी जुदे २ इन्द्रियन कर जुदे २ काल विषे कोई स्कन्ध के स्पर्शादिक का

जानना होय है। और जिस मन कार अपने जानने योग्य किञ्चिन्मात्र त्रिकाल सम्बन्धी दूर क्षेत्रवर्त्ती वा समीप क्षेत्रवर्त्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिन को अत्यन्त अस्पष्टपने जाने है। सो भी इन्द्रियन कार जिस का ज्ञान भया होय वा अनुमानादिक जिस का किया होय तिस ही को जान सके है। और कदाचित् अपनी कल्पना ही कार असत् को जाने है। जैसे कोई स्वपने वा जाग्रत अवस्था विषे जो कदाचित् ही न पाइये, ऐसे आकारादिक चितवै, जैसे नाहीं तैसे मानै सो ऐसे मनकार जानना होय है। सो यह इन्द्रिय वा मनद्वार कार जो ज्ञान होय है तिस का नाम मतिज्ञान है। तहां पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति रूप एकेंद्रियन कै स्पर्श ही का ज्ञान है। लट संख आदि वेंद्री जीवन कै स्पर्श रस का ज्ञान है। कीड़ी, कानखजूरा, मकौड़ा, आदि तेन्द्रिय जीवन के स्पर्श, रस, गन्ध का ज्ञान है। भ्रमर, मक्षिका पतंगादिक, चौइन्द्रिय जीवन कै स्पर्श रस गंध वर्ण का ज्ञान है। मच्छ, गऊ, कबूतर, इत्यादिक तिर्यंच और मनुष्य, देव नारकी पचेंद्रिय हैं। तिन के स्पर्श, रस, गंध वर्ण शब्द का ज्ञान है। और तिर्यंचन विषे कोई संज्ञी हैं, कोई असंज्ञी हैं। तहां संज्ञीन के मन जनित ज्ञान है। असंज्ञीन के मन नाहीं है। सो मनुष्य देव नारकी संज्ञी हैं। तिन सबन कै मन जनित ज्ञान पाइये है। ऐसे मतिज्ञान की प्रवृत्ति जाननी। और मति-ज्ञान कार जिस अर्थ को जानना होय तिस के सम्बन्ध से अन्य अर्थ को जिस से जानिये सो श्रुतिज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक, तहां जैसे घट यह दो अक्षर सुने वा देखे सो तो मतिज्ञान भया तिन के सम्बन्ध से घट पदार्थ का जानना भया सो श्रुत ज्ञान है। ऐसे अन्य भी जानना। सो यह तो

अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। और जैसे स्पर्श कर शीत का जानना भया सो तो मतिज्ञान है। तिस के सम्बन्ध से यह हितकारी नाहीं। इस से भाग जाना इत्यादि रूप ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। ऐसे अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहां एकेंद्रियादिक असंज्ञी जीवन कै तो अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है। और संज्ञी पचेंद्रिय के दोउ हैं। सो यह "श्रुतज्ञान" है सो अनेक प्रकार पराधीन जो मतिज्ञान तिसके भी आधीन है। वा अन्य अनेक कारण के आधीन है। इस लिये महापराधीन जानना। और अपनी मर्यादा के अनुसार क्षेत्रकाल का प्रमाण लिये रूपी पदार्थन को स्पष्टपने जिसकर जानिये सो अवधि ज्ञान है। सो यह देव नारकीन कै तो सर्व कै पाइये है। और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यन कै भी कोई कै पाइये है। असंज्ञी पर्यंत जीवन कै यह होता नाहीं। सो यह भी शरीरादिक पुद्गलन के आधीन है। और अवधि के तीन भेद हैं। १ देशावधि, २ परमावधि, ३ सर्वावधि, सो इन विषे थोड़ा क्षेत्रकाल की मर्यादा लिये किञ्चित्मात्र रूपी पदार्थ को जानन हारा देशावधि है, सो कोई जीव कै होय है। और परमावधि सर्वावधि और मनः पर्य्यय ज्ञान मोक्षमार्ग विषे प्रगटैं हैं। केवल ज्ञान मोक्ष स्वरूप है। इस लिये इस अनादि संसार अवस्था विषे इनका सद्भाव ही नाहीं। ऐसे तो ज्ञान की प्रवृत्ति पाइये है। और इन्द्रिय वा मन के स्पर्शादिक विषय तिन का सम्बन्ध होतैं प्रथम काल विषे मतिज्ञान के पहिले जो सत्तामात्र अवलोकने रूप प्रतिभास होय है तिस का नाम चक्षुदर्शन वा अचक्षुदर्शन है। तहां नेत्रेन्द्रिय कर दर्शन होय तिसका नाम चक्षुदर्शन है। सो तो चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवन के होय है। और स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्राणि, यह चार इन्द्रिय और मन कर

और अवधि कै दर्शन होय तिस का नाम अचक्षुदर्शन है। सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवन कै होय है। और अवधि कै
दर्शन होय तिस का नाम अचक्षुदर्शन है। सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवन कै होय है। और अवधि कै
विषयन का सम्बन्ध होतैं अवधिज्ञान के पहिले जो सत्तामात्र अवलोकने रूप प्रतिभास होय तिस का
नाम अवधिदर्शन है। सो जिन कै अवधिज्ञान संभवै तिन ही कै यह होय है। सो यह चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन
हैं, सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानने। और केवल दर्शन मोक्ष स्वरूप है, तिसका यहां सद्भाव
नाहीं। ऐसे दर्शन का सद्भाव पाइये है। इस प्रकार ज्ञान दर्शन का सद्भाव ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण के क्षयो-
पशम के अनुसार होय है॥ जब क्षयोपशम थोड़ा होय है, तब ज्ञानदर्शन की शक्ति थोड़ी होय है। जब
बहुत होय है, तब बहुत होय है॥ और क्षयोपशम से शक्ति तो ऐसी बनी रहै, और परिणमन कर एक
जीव कै एक काल विषै एक विषय ही का देखना जानना होय है। इस परिणमन ही का नाम उपयोग
है। तहां एक जीव कै एक काल विषै या तो ज्ञानोपयोग होय है, या दर्शनोपयोग होय है। और
एक उपयोग कै भी एक ही भेद की प्रवृत्ति होय है। जैसे मतिज्ञान होय, तब अन्य ज्ञान न होय।
और एक भेद विषै भी एक विषै ही की प्रवृत्ति होय है। जैसे स्पर्श को जाने तब रसादिक को न
जाने। और एक विषय विषै भी तिस के कोई अंग ही की प्रवृत्ति होय है। जैसे उष्ण स्पर्श को जाने
तब रूक्षादिक को न जाने। ऐसे एक जीव कै एक काल विषै एक ज्ञेय, वा दृश्य, विषै ज्ञान वा दर्शन का
परिणमन जानना। सो ऐसे ही देखिये है। जब सुनने विषै उपयोग लगा होय तब नेत्र के समीप
तिष्टताभी पदार्थ न दीखै है। ऐसे ही अन्य प्रवृत्ति देखिये हैं। और परिणमन विषै शीघ्रता बहुत है।

तिस कर किसी काल विषे ऐसा मानिये है, कि युगपत् भी एक अनेक विषयन का जानना वा देखना होय है। सो युगपत् होता नाहीं क्रम ही कर होय है। संस्कार बल से तिनका साधन होय है। जैसे काग के नेत्र के दोय गोलक हैं, पुतली एक है, सो फिरै शीघ्र है, तिस कर दोऊ गोलकन का साधन करैहै। तैसे ही इस जीव कै द्वार तो अनेक हैं, और उपयोग एक है, सो फिरै शीघ्र है। तिस कर सर्व द्वारन का साध न रहे है। यहां प्रश्न जो एक काल विषे एक विषय जानना वा देखना होय है। तो इतना ही क्षयोपशम भया कहो बहुत काहे को कहो हो। और तुम कहो हो क्षयोपशम से शक्ति होय है, सो शक्ति तो आत्मा विषे केवल ज्ञान केवल दर्शन की भी पाइये है। —:(तिस का समाधान):— जैसे किसी पुरुष कै बहुत ग्रामन विषे गमन करने की शक्ति है, और तिस को किसी ने रोका, और यह कहा पंच ग्रामन विषे जावो परन्तु एक दिन विषे एक ग्राम को ही जावो तहां उस पुरुष कै बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइये है। अन्य काल विषे सामर्थ होय वर्त्त-मान सामर्थ रूप नाही है। परन्तु वर्त्तमान पंच ग्रामन से अधिक ग्रामन विषे गमन कर सके नाहीं। और पंच ग्रामन विषे जाने की पर्याय अपेक्षा वर्त्तमान सामर्थ रूप शक्ति है। क्योंकि इन विषे गमन कर सके है। और व्यक्तता एक दिन विषे एक ग्रामको गमन करने ही की पाइये है। तैसे इस जीव कै सर्व को देखने जानने की शक्ति तो है, परंतु इस को कर्म ने रोका और इतना क्षयोपशम भया जो स्पर्शादिक विषयन को ही जानो, वा देखो, परन्तु एक काल विषे एक ही को जानो या देखो। तहां इस जीव कै सर्व के देखने

जानने की शक्ति तो द्रव्य अपेक्षा पाइये है। अन्यकाल विषे सामर्थ्य होय परन्तु वर्त्तमान सामर्थ्य नाहीं है।
जैसे अपने योग्य विषयन से अधिक विषयन को देख जान सके नाहीं। और अपने योग्य विषयन को
देखने जानने की पर्याय अपेक्षा वर्त्तमान सामर्थ्य रूप शक्ति है। जिस से इन को देख जान सके है। और
व्यक्तता एक काल विषे एक ही को देखने जानने की पाइयेहै, —:(यहां प्रश्न):— ऐसे तो जाना परंतु क्षयो-
पशम तो पाइये है। और बाह्य इन्द्रियादिक का अन्यथा निमित्त भये देखना जानना न होय वा थोड़ा
होय वा अन्यथा होय सो ऐसे होतैं कर्म्म का निमित्त तो न रहा। —:(तिस का समाधान):—
जैसे रोकनहारे ने यह कहा जो पांच ग्रामन विषय एक ग्राम को एक दिन विषय जावो, परन्तु इन
किंकरन को साथ लेके जावो। तहां वह किंकर अन्यथा परिणमें तो जाना न होय वा थोड़ा जाना होय
वा अन्यथा जाना होय तैसे कर्म का ऐसा ही क्षयोपशम भया है। जो इतने विषयन विषे एक विषय
को एक काल विषे देखो जानों परन्तु इतने बाह्य द्रव्यन का निमित्त भये देखो जानो। तहां वह बाह्य
द्रव्य अन्यथा परिणमैं तो देखना जानना न होय, वा थोड़ा होय, वा अन्यथा होय ऐसा यह कर्म्म के क्षयो-
पशम का विशेष है। इस लिये कर्म्म ही का निमित्त जानना। जैसे किसी कै अंधकार के परमाणु आडे
आए देखना न होय। और घूघू मांजारा के आडे आये भी देखना होय है। सो ऐसा यह क्षयोपशम का
विशेष है। जैसे जैसे क्षयोपशम होय तैसे तैसे ही देखना जानना होय है। ऐसे इस जीव कै क्षयोपशम
ज्ञान की प्रवृत्ति पाइये है। और मोक्षमार्ग विषे अवधि मनःपर्य्य होय है। सो भी क्षयोपशम ज्ञान ही है।

आधीनपना जानना। और विशेष तिनका भी ऐसे ही एक काल विषे एक को प्रतिभासना वा परद्रव्य का आधीनपना जानना। और विशेष है सो विशेष जानना। इस प्रकार ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण के उदयके निमित्त से बहुत ज्ञानदर्शन के अंशन का तो अभाव है। और तिन के क्षयोपशम से थोड़े अंशन का सद्भाव पाइये है। और इस जीव कै मोह के उदय से मिथ्यात्व वा कषाय भाव है। तहां दर्शन मोह के उदय से मिथ्यात्व भाव होय है, तिस कर यह जीव अन्यथा प्रतीतरूप अतत्वश्रद्धान करे है। जैसे है तैसे तो न माने है, और जैसे नाहीं है, तैसे माने है। अमूर्त्तीक प्रदेशनि का पुञ्ज प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणन का धारी अनादि निधन वस्तु आप है। और मूर्त्तीक पुद्गल द्रव्यन का पिण्ड प्रसिद्ध ज्ञानादिक कर रहित जिन का नवीन संयोग भया ऐसे शरीरादिक पुद्गल पर हैं, इनका संयोग रूप नाना प्रकार मनुष्य तिर्यंचादिक पर्याय होय हैं। तिस पर्य्याय विषे यह जीव अहंबुद्धि धारे है। स्व पर का भेद नाहीं करै है। जो पर्याय पावे तिस ही को आपा माने है। और तिस पर्याय विषे ज्ञानादिक हैं सो तो आप के गुण हैं। और रागादिक हैं, सो आप के कर्म्म निमित्त से उपाधिक भाव भए हैं। और वर्णादिक हैं सो आप के गुण नाहीं हैं। शरीरादिक पुद्गल के गुण हैं। और शरीरादिक विषे वर्णादिकन की वा परमाणुन की नाना प्रकार पलटना होय है। सो यह पुद्गल की अवस्था है, सो इन सबन ही को अपना स्वरूप जाने है। स्वभाव पर भाव का विवेक नाहीं होय सके है। और मनुष्यादिक पर्यायन विषे कुटुंब धनादिक का सम्बन्ध होय है, सो प्रत्यक्ष आप से भिन्न है। सो अपने आधीन नाहीं परिणमै है। तथापि तिन विषे ममकार करे है, कि यह मेरे हैं, वह किसी प्रकार भी अपने होते नाहीं। यह अपनी मानी से ही अपने माने है। और मनुष्यादिक पर्यायन

कदाचित् देवादिक वा तत्वन का अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया तिस को तो प्रतीत करै है। और यथार्थ
विषे कदाचित् देवादिक वा तत्वन का अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया तिस को तो प्रतीत करै है। और यथार्थ
रूप जैसे है तैस प्रतीति न करै है। ऐसे दर्शन मोह के उदय कर जीव कै अतत्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्व भाव होय
है। जहां तीव्र उदय होय है तहां सत्य श्रद्धान से घना विपरीत श्रद्धान होय है, जब मन्द उदय होय है तब सत्य
श्रद्धान से थोड़ा विपरीत श्रद्धान होय है, और चारित्र मोह के उदय से इस जीव कै कषाय भाव होय हैं।
तब यह देखता जानता संता पदार्थन विषे इष्ट अनिष्ट पनो मान क्रोधादिक करै है, तहां क्रोध का उदय
हो तैं पदार्थ विषे अनिष्टपना मान तिसका बुरा चाहै है, कोई मकानादिक अचेतन पदार्थ बुरा लागै। तब
फोड़ना तोड़ना इत्यादि रूप कर उस का बुरा चाहै और शत्रु आदि सचेतन पदार्थ बुरा लगे तब उसको बंध
बंधादिक कर वा मारने कर दुःख उपजाय तिसका बुरा चाहै है। और आप वा अन्य सचेतन पदार्थ वा अचेतन
पदार्थ कोई प्रकार परिणये आप को सो परिणमन बुरा लागै, तब अन्यथा परिणमावनें कर तिस परिणमन का
बुरा चाहै। इस प्रकार क्रोध कर बुरा चाहने की इच्छा तो होय, परन्तु बुरा होना भवतव्य आधीन है। और
मान का उदय होतैं पदार्थन विषे अनिष्टपनो मान तिसको नीचा किया चाहै, आप ऊंचा भया चाहै, मल धूलि
आदि अचेतन पदार्थ विषे घिण वा निरादर आदिक कर तिन की हीनता आप की उच्चता चाहै है, और पुरुषा-
दिक सचेतन पदार्थन को नमावना। अपने आधीन करना इत्यादि रूप कर तिन की हीनता आप की
उच्चता चाहै है। और आप लोक विषे जैसे ऊंचा दीखै तैसे शृंगारादिक करना वा धन खरच करना
इत्यादि रूप कर औरन को हीन दिखाय आप ऊंचा हुआ चाहै है। और अन्य कोई आप से ऊंचा कार्य

करे तिसको कोई उपाय कर नीचा दिखावै है। और आप नीचा कार्य करे तिसको ऊंचा दिखावै है। इस प्रकार मान कर अपनी महन्तता की इच्छा तो करे है। परंतु महन्तता होनी भवतव्य आधीन है। और माया का उदय होतैं कोई पदार्थ को इष्ट मान नाना प्रकार छल कर तिसकी सिद्धि किया चाहे है। रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थन की वा स्त्री दासी दासादिक चेतन पदार्थन की सिद्धि के अर्थ अनेक छल कर ठगने के अर्थ अपनी अनेक अवस्था करै है। वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थन की अवस्था पलटावे है। इत्यादि रूप छल कर अपना अभिप्राय सिद्ध किया चाहे है। इस प्रकार माया कर इष्टसिद्धि के अर्थ छल तो करे है। परंतु इष्ट सिद्धि होनी भवतव्य आधीन है। और लोभ के उदय होतैं पदार्थ को इष्ट मान तिन की प्राप्ति चाहे। वस्त्राभरण धन धान्यादि अचेतन पदार्थन की तृष्णा होय। स्त्री पुत्रादिक सचेतन पदार्थन की तृष्णा होय। आप के वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थन के कोई परणमन होना इष्ट मान तिनको तिस परिणमन रूप परिणमाया चाहे है। इस प्रकार लोभ कर इष्ट प्राप्ति की इच्छा तो करै परंतु इष्ट प्राप्ति होना भवतव्य आधीन है। ऐसे क्रोधादिक के उदय कर यह आत्मा परिणमै है, तहां कषाय चार प्रकार है। अनन्तानुबंधी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्याना वरण ३, संज्वलन ४, तहां जिन के उदय होतैं, सम्यक्त न होय सो अनन्तानुबन्धी कषाय है, और जिन के उदय होतैं, देश चारित्र न होय, और किञ्चित् त्याग भी न होय सके सो सवत्र प्रत्याख्यानावरणकषाय है, और जिस के उदय से सकल चारित्र को दोष उपजाया करै, और यथाख्यात चारित्र न हो सके सो संज्वलन कषाय है। सो

अनादि संसार अवस्था विषे इन चारों ही का निरन्तर उदय पाइये है। और जब परमकृष्ण लेश्यारूप तीव्र कषाय होय तहां भी और शुक्ल लेश्यारूप मन्द कषाय होय तहां भी, निरन्तर चारों ही का उदय रहे है। क्योंकि तीव्र मन्द की अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाहीं हैं। सम्यक्त्वादि घातने की अपेक्षा यह भेद हैं। इन की प्रकृति का तीव्र अनुभाग उदय होतैं, तीव्र क्रोधादिक होय हैं, मन्द अनुभाग उदय होतैं मन्द होय हैं। और मोक्षमार्ग भये, इन चारों विषे तीन दोय एक का उदय हुये पीछे चारों ही का अभाव होय है। और क्रोधादिक चारों कषाय विषे एक काल एक ही का उदय होय है। पीछे चारों का अभाव होय है। इन कषायन के परस्पर कारण कार्यपनो है, क्रोध कर मानादिक हो जाय हैं, मान कर क्रोधादिक हो जाय इसलिये किसी काल भिन्नता भासै। किसी काल न भासै है, ऐसे कषाय रूप परिणमन जानना। और चरित्र मोह के उदय से नो कषाय होय हैं। तहां हास्य का उदय कर कहीं इष्टपनो मान प्रफुल्लित होय है, हर्षमाने है। और रति का उदय कर किसी को इष्ट मान प्रीति करै है, तहां आसक्त होय है। और अरति का उदय कर किसी को अनिष्ट मान अप्रीति करै है। तहां उद्वेगरूप होय है। और शोक का उदय कर कहीं अनिष्ट पनो मान दलगीर होयहै, तहां विषाद माने है। और भय का उदय कर किसी ही को अनिष्टमान तिस से डर उस का संयोग न चाहै है। और जो जुगुप्सा का उदय कर किसी पदार्थ को अनिष्ट मान तिस को घृणा कर उस का वियोग चाहै है, ऐसे यह हास्यादिक छः जानने। और वेदनी के उदय से। इस जीव के काम परिणाम होय है। तहां स्त्रीवेद के उदय कर

पुरुष से रमने की इच्छा होय है। पुरुष वेद के उदय कर स्त्री से रमने की इच्छा होय है। नपुंसक वेद के उदय कर युगपत् स्त्री पुरुष दोऊन से रमने की इच्छा होय है। ऐसे यह नव तो कषाय हैं। सो क्रोधादिक सारिखे यह बलवान नाहीं। इस लिये इन को ईषत्वत् कषाय कहे हैं। यहां नो शब्द ईषत्वत् वाचक जानना। इन का उदय तिन क्रोधादिकन के साथ यथा संम्भव होय है। ऐसे मोह के उदय से मिथ्यात्व वा कषायभाव होय हैं। सोई संसार का मूल हैं॥ इन ही कर वर्त्तमान काल विषे जीव दुःखी है, और आगामी कर्म बन्धन के भी कारण यही हैं। और इन ही का नाम राग, द्वेष, मोह, है। तहां मिथ्यात्व का नाम मोह है क्योंकि तहां सावधानी का अभाव है, और माया, लोभ, कषाय, हास्य, रति, तीन वेद इन का नाम राग है। क्योंकि तहां इष्ट बुद्धि कर अनुराग पाइये है, और क्रोध, मान, कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, इन का नाम द्वेष है। क्योंकि तहां अनिष्ट बुद्धि कर द्वेष पाइये है, और सामान्यपने सब ही का नाम मोह है। इस लिये इन विषे सर्वत्र असावधानी पाइये है, और अन्तराय के उदय से जीव चाहे सो न होय है। दान दिया चाहे दे न सके है, वस्तु की प्राप्ति चाहे सो न होय है, भोग किया चाहे सो न होय है, उपभोग किया चाहे सो न होय है, अपनी ज्ञानादि शक्ति को प्रगट किया चाहे सो प्रगट न होय सकै है, ऐसे अन्तराय के उदय से चाहा हुआ होता नाहीं। और कदाचित् तिस के क्षयोपशम से चाहा हुआ भी होय है। सो यह जीव चाहे तो बहुत है, परन्तु किञ्चित्मात्र चाहा हुआ होय है। बहुत दान देना चाहे है, परन्तु थोड़ा ही दे सकै है। बहुत लाभ चाहे है, परन्तु थोड़ा ही लाभ होय है। और जब

काभी ज्ञानादिक शक्ति प्रगट होय है, तहां भी अनेक वाह्य कारण चाहिये हैं। इस प्रकार घाति कर्म्मन के उदय से जीव की अनेक अवस्था होय हैं। और अघाति कर्म्मन विषे वेदनीय के उदय से शरीर विषे आरोग्यपनो, रोग्यपनो, शक्तिवानपनो, दुर्व्वलपनो, क्षुदा, तृषा, खेद, पीड़ादि अनेक सुख दुःख के कारण निपजे हैं, और वाह्य विषे सुहावनी असुहावनी ऋतु पवनादिक और इष्ट, अनिष्ट, स्त्री, पुत्र, मित्र, धनादिक वा शत्रु, दारिद्र, वध वन्धनादिक सुख दुःख के कारण उत्पन्न होय हैं। यह जो वाह्य कारण कहे तिन में से कितने ही ऐसे हैं, जिन के निमित्त से शरीर की अवस्था सुख दुःख के कारण होय है। और कई कारण ऐसे हैं, जो आप ही सुख दुःख को कारण रूप होय हैं। ऐसे कारण का मिलना वेदनीय के उदय से होय है। तहां सातावेदनी से सुख के कारण मिले हैं, असातावेदनी से दुःख के कारण मिले हैं। सो यहां ऐसा जानना। यह कारण ही तो सुख दुःख को उपजावेते नाहीं आत्मा मोह कर्म्म के उदय से आप ही सुख दुःख माने है, तहां वेदनीय कर्म्म के उदय का ऐसा ही सम्बन्ध है। जब सातावेदनीय का निपजाया वाह्य कारण मिले तब तो सुख मानने रूप मोह कर्म्म का उदय होय है। और जब असातावेदनीय का निपजाया वाह्य कारण मिले तब दुःख मानने रूप मोह कर्म्म का उदय होय है। और एक ही कारण किसी को सुख और किसी को दुःख का कारण होय है। जैसे किसी के सातावेदनीय के उदय से मिला जैसा वस्त्र सुख का कारण होय है, तैसा ही वस्त्र किसी को असाता वेदनीय के उदय होतैं मिला हुआ दुःख का कारण होय है, इस लिये वाह्य वस्तु सुख दुःख का निमित्त मात्र ही है।

सुख दुख होय है, सो मोह के निमित्त से होय है। निर्मोही मुनिन कै अनेक सिद्धि आदि परिसहादि कारण मिलैं तौभी सुख दुःख न उपजे है। मोही जीव कै ही कारण मिले वा बिना कारण मिले अपने संकल्प ही से सुख दुःख हुआ करे है। तहां भी तीव्र मोही कै जिस कारण के मिले तीव्र सुख दुःख होय तिस ही कारण के मिले मंद मोही कै मन्द सुख दुःख होय है। इस लिये सुख दुःख का मूल बलवान कारण मोह का उदय ही हैं। अन्य वस्तु हैं, सो बलवान कारण नाहीं हैं, परंतु अन्य वस्तु कै और मोही जीव के परिणामन कै निमित्त नैमित्तक की मुख्यता पाइये है। तिस कर मोही जीव अन्य वस्तु ही को सुख दुःख का कारण माने है। ऐसे वेदनीय से सुख दुःख का कारण निपजे है। और आयु कर्म के उदय कर मनुष्यादि पर्यायन की स्थिति रहे है। यावत् आयु का उदय रहे तावत् अनेक रोगादिक कारण मिले भी शरीर से संबन्ध न छूटे है। जब आयु का उदय न होय तब अनेक उपाय कीये भी शरीर से संबन्ध रहे नाहीं। तिस ही काल आत्मा और शरीर जुदे जुदे होय जाय हैं। इस संसार विषे जन्म मरण का कारण आयु कर्म्म ही है। जब नवीन आयु का उदय होय तब नवीन पर्याय विषे जन्म होय है। और यावत् आयु का उदय रहे। तावत् तिस पर्याय रूप प्राणनि को धारणे से जीवना होय है। और आयु का क्षय होय तब तिस पर्याय रूप प्राण छूटने से मरण होय है। सहज ही ऐसा आयु कर्म्म का निमित्त है, और कोई उपजावनहारा क्षपावनहारा रक्षा करनहारा है नाहीं। ऐसा निश्चय करना और जैसे नवीन वस्त्र पहर कितनेक काल पहरे पीछे तिस को छोड़ अन्य वस्त्र पहरे तैसे ही यह जीव नवीन शरीर धार कितनेक काल धारे रहे है। पीछे

तिस को छोड़ कर अन्य शरीर धरे है । इस लिये शरीर संबन्ध अपेक्षा जन्मादिक हैं, जीव जन्मादिक रहित नित्य ही है। तथापि इस जीव के अतीत अनागत का विचार नाहीं है। इस लिये पर्याय मात्र ही को अपना अस्तित्व मान पर्याय संबन्धी कार्यन विषे ही तत्पर होय रहा है। ऐसे आयु कर पर्याय की स्थिति जाननी। और नाम कर्म्मकर यह जीव मनुष्यादिक गतिन विषे प्राप्त होयहै। तिस पर्याय रूप अपनी अवस्था होय है। और तहां त्रस स्थावरादि विशेष निपजे हैं। और तहां एकेंद्रियादि जाति को धारे हैं। इस जाति कर्म्म के उदय के और मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम के निमित्त नैमित्तक पना जानना। जैसा क्षयोपशम होय तैसी ही जाति पावै है। और शरीरों का संबंध होयहै। तहां शरीरन के परमाणु और आत्मा के प्रदेशन का एक बंधान होय है। और संकोच विस्तार रूप होय शरीर प्रमाण आत्मा रहे है। और नो कर्म्म रूप शरीर विषे अंगोपांगादिक का योग्य स्थान प्रमाण लीये होयहै। इस ही कर स्पर्शन रसन आदि द्रव्य इन्द्रिय निपजै हैं। वा हृदय स्थान विषे आठ पांखुड़ी के फूला कमल के आकार द्रव्यमन होय है। और तिस शरीर ही विषे आकारादिक का विशेष होना और वर्णादिक का विशेष होना और स्थूल सूक्ष्मत्वादिक का होना इत्यादि कार्य्य निपजै हैं। सो यह शरीर रूप परणये परमाणु ऐसे परणमें हैं। और श्वासो श्वास वा स्वर निपजै है, सो यह भी पुद्गल के पिंड हैं। और शरीर से एक बंधान रूप हैं, इन विषे भी आत्मा के प्रदेश व्याप्त हैं। तहां श्वासोश्वास पवन है, सो जैसे अहार को ग्रहै नीहार को निकासे तब ही जीवना होय है। तैसे बाह्य पवन को ग्रहै और आभ्यन्तर पवन को निकासे तब ही जीवतव्य रहे है। इस लिये

श्वासोश्वास जीवतव्य का कारण है। इस शरीर विषे जैसे हाड, मांसादिक हैं, तैसे ही पवन भी जानना। और जैसे हस्तादिक से कार्य्य करिये है, तैसे ही पवन से भी कार्य्य करिये है। मुख में ग्रास धरा तिस को पवन से निगले हैं। मलादिक पवन ही से बाहर काढिये हैं। तैसे ही अन्य भी जानना। और नाड़ी वा वायुरोग वा वायुगोला इत्यादि यह पवन रूप शरीर के अंग जानने। और स्वर है सो शब्द है, जैसे वीणा की तांत को हिलाये भाषारूप होने योग्य पुद्गल स्कन्ध हैं। सो अक्षर वा अनक्षर शब्द रूप परिणमैं हैं। तैसे तालवा होठ इत्यादि अंगों को हिलाये भाषा पर्याप्ति को ग्रहैं। जे पुद्गल स्कन्ध सो अक्षर अनक्षर शब्द रूप परिणमैं हैं। और शुभ अशुभ गमनादिक होय है, तहां ऐसा जानना। जैसे दोय पुरुष कै एक दण्डी बेड़ी है, तहां एक पुरुष गमनादि क्रिया चाहै तो गमनादिक न होय सकै है। और जो दूसरा भी गमनादि करे तो गमनादि होय सकै है। दोऊन विषे एक बैठा रहै तो गमनादि होय सकै नाहीं। और दोऊन विषे एक बलवान् होय तो दूसरे को भी घसीट लेजाय है। तैसे ही आत्मा कै और शरीरादिक पुद्गल कै एक क्षेत्र अवगाह रूप बंधान है। तहां आत्मा हलन चलनादि किया चाहै। और पुद्गल शक्ति कर रहित हुआ होय वा पुद्गल विषे शक्ति पाइये है। आत्मा की इच्छा न होय तो हलन चलनादि न होय सकै है। और इन विषे पुद्गल बलवान् होय हालै चालै तो तिस के साथ विना इच्छा भी आत्मा हालै चालै है। ऐसे हलन चलनादि क्रिया होय है। ऐसे यह कार्य्य निपजै हैं, तिन कर मोह के अनुसार आत्मा सुखी दुःखी

होय है। और नाम कर्म्म के उदय से स्वयमेव ही ऐसी नाना प्रकार की रचना होय है। और कोई कर्त्ता नाहीं है। गोत्र कर्म्म कर ऊंचे नीचे कुल विषे उपजना होय है। तहां अपना अधिक हीनपना प्राप्ति होय है। मोह के निमित्त से तिन कर आत्मा सुखी दुःखी भी होय है। ऐसे घाति कर्म्मों के निमित्त से अवस्था होय है। इस प्रकार इस अनादि संसार विषे घाति अघाति कर्मन के उदय के अनुसार आत्मा के अवस्था होय है। सो हे भव्य! तू अपने अंतरंग विषे विचार देख ऐसे ही है कि नाहीं। विचार कीये ऐसे ही प्रति भासे है। जो ऐसे ही है तो तू यह मान कि मेरे अनादि से ही यह संसार रोग पाइये है, तिस के नाश का मुझ को उपाय करना उचित है। इस विचार से तेरा कल्याण होयगा॥

इति श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्र विषे संसार अवस्था का निरूपण द्वितीय अधिकार संपूर्ण भया॥२॥

दोहा—सो निज भाव सदा सुखद, अपनो करो प्रकाश
जो बहु भव विघ दुखिन को, करै है सत्यानाश॥

आगे इस संसार अवस्था विषे नाना प्रकार के दुःख हैं तिन का वर्णन करिये है। क्योंकि जो संसार विषे भी सुख होय तो संसार से मुक्त होने का उपाय किस लिये करिये। इस संसार विषे अनेक दुःख हैं। इस ही लिये संसार से मुक्त होने का उपाय कीजिये है, और जैसे वैद्य है, सो रोग का निदान और तिस की अवस्था का वर्णन कर रोगी को रोग का निश्चय कराय पीछे तिस के इस के इलाज

करने की रुचि करावै है । इस लिये यहां संसार का निदान बताया तिस की अवस्था का वर्णन कर इस संसार रोगका निश्चय कराय अब तिनका उपाय करने की रुचि कराइये है। जैसे रोगी रोग से दुःखी होय रहा है, परन्तु तिस का मूल कारण जाने नाहीं, सांचा उपाय जाने नाहीं और दुःख सहा जाय नाहीं; तब आप को भ्यासे सो ही उपाय करै । इस लिये दुःख दूर होय नाहीं, तब तड़फ तड़फ परवश हुआ तिन दुःखन को सहै है। परन्तु तिस का मूल कारण जाने नाहीं, इस को वैद्य दुःख का मूल कारण बतावै। दुःख का स्वरूप बतावै, इसके किये उपायन को झूठा दिखावै, तब सांचे उपाय करने की रुचि होय, तैसे ही यह संसारी संसार में दुःखी होय रहा है। परन्तु तिसका मूल कारण जाने नाहीं, और सांचा उपाय जाने नाहीं, और दुःख भी सहा जाय नाहीं। तब आप को भ्यासे सो ही उपाय करै है। इस लिये दुःख दूर होय नाहीं, तब तड़फ तड़फ परवश हुवा दुःखन को सहै है, तिस को यहां दुःखका मूल कारण बताइये है। और दुःख का स्वरूप बताइये है। और तिन उपायन को झूठा दिखाइये है, ताके सांचे उपाय करने की इच्छा होय इसलिये यह वर्णन यहां करिये है। तहां सर्व दुःखन का मूल कारण मिथ्यादर्शन अज्ञान असंयम है। जो दर्शन मोह के उदय से भया अतत्वश्रद्धान सो मिथ्यादर्शन है। तिस कर वस्तु के स्वरूप की यथार्थ प्रतीति न होय सके है, अन्यथा प्रतीति होय है। और तिस मिथ्यादर्शन ही के निमित्त से क्षयोपशम रूप ज्ञान है। सो अज्ञान होय रहा है, तिस कर यथार्थ वस्तु स्वरूप का जानना न होय है, अन्यथा जानना होय है। और चारित्र मोह के उदय से भया कषायभाव तिस का नाम असं-

यम है। तिस कर जैसे वस्तु स्वरूप है तैसे नाहीं प्रवर्त्तै। अन्यथा प्रवृत्ति होय है। ऐसे यह मिथ्यादर्शना-
दिक हैं, सोई सर्व दुःखन के मूल कारण हैं, कैसे सो दिखाईये हैं।मिथ्या दर्शनादिक कर जीव कौ स्व पर
विवेक नाहीं होय सके है। एक आप आत्मा और अनन्त पुद्गल परमाणुमय शरीर इनका संयोग रूप
मनुष्यादि पर्याय निपजे है।तिस पर्याय ही को आपा माने है। और आत्मा का ज्ञान दर्शनादिक स्वभाव
है, तिस कर किञ्चित् जानना देखना होय है। और कर्म्म उपाधि से भये क्रोधादिक भाव तिन रूप
परिणाम पाईये हैं। और शरीर का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, स्वभाव है सो प्रगट है। और स्थूल कृषादिक
होना वा स्पर्शादिक का पलटना इत्यादिक अनेक अवस्था होय हैं। इन सबन को अपना स्वरूप जाने
है, तहां ज्ञान दर्शन की प्रवृत्ति इन्द्रिय मन के द्वारा होय है, इस लिये यह जीव ऐसा माने है,कि त्वचा,
जीभ, नासिका, नेत्र, कान, मन, यह मेरे अङ्ग हैं।इन कर ही मैं देखूं जानूं हूं,ऐसा मानते हुए इन्द्रियन विषे
प्रीति पाईये है।और मोह के आवेश सें तिन इन्द्रियन के द्वार विषय ग्रहण करने की इच्छा होय है। और
तिन विषयन का ग्रहण भये तिस इच्छा के मिटने से निराकुल होय है। तब आनन्द माने है, जैसे कूकरा
हाड चावे तिस कर अपना रुधिर ही निकसे तिस का स्वाद लेकर ऐसे माने यह हाड का स्वाद है। तैसे
ही यह जीव विषयन को जाने, जिस कर अपना ज्ञान प्रवर्त्तै तिसका स्वाद ले ऐसे माने है,यह विषयन का
ही स्वाद है। सो विषयन में तो स्वाद है नाहीं,आप ही इच्छा करी थी,आप ही जान आप ही आनन्द माना।
परन्तु मैं अनादि अनन्त ज्ञान स्वरूप आत्मा हूं, ऐसा निःकेवल ज्ञान का तो अनुभव सूझै नाहीं। और

और मैं नृत्य देखा राग सुना, फूल सूंघे स्पर्शादिक का स्वाद जाना। मुझ को यह ज्ञान जामना, इस प्रकार ज्ञेय मिश्रित ज्ञान का अनुभव होय है। तिस से विषयन कर ही प्रधानता भासे है, ऐसे इस जीव कै मोह के निमित्त से विषयन की इच्छा पाइये है। सो इच्छा तो त्रिकाल वर्त्ती सर्व विषयन के ग्रहण करने की है, कि मैं सर्व को स्पर्शूं सर्व को स्वादूं सर्व को सूंघूं, सर्व को देखूं, सर्व को सुनूं सर्व को जानूं, इत्यादि इच्छा तो इतनी है परन्तु शक्ति इतनी नाहीं है। सो जितना इन्द्रिय के सन्मुख भया वर्त्तमान स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द, तिन विषै किसी को किंचित् मात्र ग्रहै है। वा स्मरणादिक कर मन से कुछ जाने है, सो भी वाह्य अनेक कारण मिले सिद्ध होय है। इस लिये इच्छा तो कभी भी पूर्ण होय नाहीं, क्योंकि इच्छा तो केवल ज्ञान भये ही पूर्ण होय है। क्षयोपशम रूप इन्द्रियन कर तो इच्छा पूर्ण होय नाहीं। और इस जीव कै मोह के निमित्त से इन्द्रियन के द्वार अपने विषय ग्रहण की निरन्तर इच्छा रहा ही करै है, तिस कर आकुलित हूआ दुःखी होय रहा है। सो इतना दुःखी होय रहा है, कि एक विषय के ग्रहण के अर्थ अपने मरन को भी नाहीं गिने है। जैसे हाथी कै कपट की हथनी का शरीर स्पर्शने की और मच्छ कै कांटे कै लगे मास के स्वाद लेने की, और भ्रमर कै कमल सूंघने की, और पतङ्ग कै दीपक का वर्ण देखने की, और हिरण कै राग सुनने की, इच्छा ऐसी होय है। जो तत्काल मरन भासे तौभी मरन को गिने नाहीं। विषयन को ग्रहण ही करै है। इस लिये मरण होने से भी इन्द्रिय कर विषै सेवन की पीड़ा अधिक भासे है। इन्द्रियन की पीड़ा कर सर्व जीव पीड़ित होने से निर्विचार होय रहे

हैं। जैसे कोई जीव दुःखी भया प्रर्वत से गिरे है। तैसे ही विषयन विषे यह संसारी जीव झंपा पातले हैं। और
नाना कष्ट कर धन को उपजावै हैं। फिर तिस को विषयन के अर्थ खोवै हैं। और विषयन के अर्थ जहां
मरन होता जानै तहां भी जाय हैं। नरकादिक के कारण जे हिंसादिक कार्य तिन को करै हैं। वा क्रोधादि
कषायन को उपजावै हैं। सो क्या करै इन्द्रियन की पीड़ा सही जाय नाहीं, इस लिये अन्य विचार कुछ
आवता नाहीं। इस पीड़ा ही कर पीड़ित भए इन्द्रादिक हैं, सो भी विषयन के विषे अति आसक्त होय रहे हैं।
जैसे खाज रोग कर पीड़ित हुआ पुरुष आसक्त होय खुजावै है, पीड़ा न होय तो काहे को खुजावै। तैसे
इन्द्रिय रोग कर पीड़ित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करैं हैं। पीड़ा न होय तो काहे को
विषय सेवन करैं। ऐसे ज्ञानावरण दर्शनावरण का क्षयोपशम से भया इन्द्रिय जनित ज्ञान है, सो मिथ्या
दर्शनादिक के निमित्त से इच्छा सहित होय दुःख का कारण भया है। अब इस दुःख दूर करने का उपाय
यह जीव क्या करै है, सो कहिए है। इन्द्रियन कर विषन का ग्रहण भये मेरी इच्छा पूर्ण होय, ऐसा जान
प्रथम तो नाना प्रकार भोजनादिक कर इन्द्रियन को प्रबल करै हैं, और ऐसे ही जानै है, कि इन्द्रिय प्रबल
रहे मेरे विषय ग्रहण की शक्ति विशेष होय है। और तहां अनेक बाह्य कारण चाहिये हैं। तिन का
निमित्त मिलावै है, और इन्द्रिय हैं, सो विषयन को सन्मुख भये ही ग्रहण करै हैं। इस लिये अनेक
उपाय कर विषयन का और इन्द्रियन का संयोग मिलावै है, नाना प्रकार वस्त्रादिक का वा भोज-
नादिक का वा पुष्पादिक का वा मन्दिर आभूषणादिक का वा गावने का वा चित्रादिक का संयोग

मिलावने के अर्थ बहुत ही खेद खिन्न होय है । और जब तक इन्द्रियन के सन्मुख विषय रहैं, तब तक तिन विषयन का किञ्चित् मात्र स्पष्ट जानना रहै है। पीछे मन द्वार मात्र ही स्मरण रह जाय है। काल व्यतीत होतैं स्मरण भी मन्द होता जाय है। इसलिये तिन विषयन को यह जीव तो अपने आधीन राखने का उपाय करे है। और तिन को शीघ्र शीघ्र ग्रहण किया करे है । सो इन्द्रियन के तो एक काल विषे एक ही विषय का ग्रहण होय है। और यह बहुत ग्रहण किया चाहे है । इस लिये आखता होय शीघ्र एक एक विषयन को छोड़ और ग्रहण करे है, और उसको छोड़ अन्य को ग्रहण करे है । ऐसे हापटा मारे है, और जो उपाय भासे है, सो करै है। सो यह उपाय झूठा है, इस लिये प्रथम तो इन सबन का ऐसे ही होना अपने आधीन नाहीं महा कठिन है। और कदाचित् उदय अनुसार ऐसे ही विधि मिलै तो इन्द्रियन का प्रबल किये कुछ विषय ग्रहण शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तो ज्ञानदर्शन बधे ही बधै है। सो यह शक्ति तो कर्म के क्षयोपशम के आधीन है। किसी का शरीर पुष्ट है। तिस के ऐसी शक्ति थोड़ी देखिए है। किसी का शरीर दुर्बल है। तिस कै शक्ति अधिक देखिए है। इस लिये भोजनादिक कर इन्द्रिय पुष्ट कीए कुछ सिद्धि है नाहीं । कषायादि घटने से कर्म का क्षयोपशम भए ज्ञान दर्शन बधै, तब विषय ग्रहण की शक्ति बधै है । और विषयन का संयोग मिलावे सो बहुत काल ताईं रहता नाहीं। अथवा सर्व विषयन का संयोग मिलता नाहीं, इस लिये यह आकुलता रहा ही करे है। और तिन विषयन को अपने आधीन राख शीघ्र ग्रहण किया चाहे है। सो वह अपने आधीन रहते नाहीं। यह तो

जुदे जुदे द्रव्य अपने अपने आधीन परिणमे हैं। अथवा कर्म्मोदय के आधीन हैं। सो ऐसा कर्म का बन्ध यथायोग्य शुभभाव भये ही होय है, फिर पीछे उदय आवै है, सो प्रत्यक्ष देखिये है। अनेक उपाय करते भी कर्म के निमित्त बिना सामग्री मिले नाहीं, और यह जीव अति व्याकुल होय सर्व विषयन को युगपत् ग्रहण करने के लिये झापटा मारे है। सो इस से कुछ सिद्धि है नाहीं। जैसे मण की भूख वाले को एक कण मिले तो भूख कहां मिटै, तैसे जिस कै सर्व के ग्रहण की इच्छा होय और उस को एक विषय का ग्रहण मिले तो इच्छा कैसे मिटै, और इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। इस लिये यह उपाय झूठा है, कोई पूछे कि इस उपाय से कोई जीव सुखी होते देखिये हैं, सर्वथा झूठे कैसे कहो हो।

—:(तिस का समाधान):— सुखी तो न होय हैं, भ्रम से सुख माने हैं। जो सुख भया तो अन्य विषयन की इच्छा कैसे रही। जैसे रोग मिटे अन्य औषधि को किस लिये चाहे है। तैसे दुःख मिटे अन्य विषयन को किस लिये चाहे है। क्योंकि विषय का ग्रहण कर इच्छा थंभ जाय तो हम भी सुख माने सो तो यावत् जो विषय ग्रहण न होय। तावत् तो तिस की इच्छा रहे। और जिस समय उस का ग्रहण किया तिस ही समय अन्य विषय ग्रहण की इच्छा होती देखिये है। तो यह सुख मानना कैसे है, जैसे कोई महा क्षुधावान् रंक तिस को एक अन्न का कण मिले तिस को भक्षण कर चैन माने है। तैसे यह महा तृष्णावान् इसको एक विषय का निमित्त मिला तिसका ग्रहण कर सुख माने है। परमार्थ से सुख है नाहीं। —:(कोई कहे):— जैसे कण कण कर अपनी भूख मिटे, तैसे एक एक विषय का ग्रहण कर अपनी

इच्छा पूर्ण करे तो दोष कहा। —:(तिसका उत्तर):— जो कण भेले होयें तो ऐसे ही माने ॥ परन्तु दूसरा कण सिले तब पहिले कण का निर्गमन हो जाय तो भूख कैसे मिटे। तैसे ही विषयन के ग्रहण भेले होते जायें तो इच्छा पूर्ण हो जाय। परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करे तब पूर्व विषय ग्रहण किया था, तिस का जानना रहै नाहीं। तब कैसे इच्छा पूर्ण भई मानियें, और इच्छा पूर्ण भये विना आकुलता मिटै नाहीं। आकुलता मिटे बिना सुख कैसे कहा जाय, और एक विषय का ग्रहण भी मिथ्यादर्शन का सद्भाव पूर्व्वक करै है। क्योंकि आगामी अनेक दुःख का कारण कर्म्म बन्ध ही है, और यह वर्त्तमान विषै है, सो सुख रूप नाहीं। और आगामि सुख का कारण भी नाहीं। इस लिये दुःख रूप ही है। सोई "प्रवचनसार" विषै ऐसा कहा है :—

सपरं बाधासहीदं वुच्छिणं बन्धकारणं विसमं॥
जं इन्दिएहि लद्धं तं सुक्खं दुःक्खमेव तहा॥ १ ॥

इस का अर्थः—जो इन्द्रियन कर पाया सुख सो पराधीन है बाधा सहित है, विनाशीक है बन्ध का कारण है, कठिन है सो ऐसा सुख तो दुःख ही है। ऐसे इस संसार कर किया उपाय सो झूठा जानना। सो सांचा उपाय क्या है, सो कहिये है। जब इच्छा तो दूर होय और सर्व विषयनका युगपत् ग्रहण रहा करे, तब यह दुःख मिटे। सो यह इच्छा तो मोह गए ही मिटे है, और सर्व का युगपत् ग्रहण केवल ज्ञान भए

ही होय है, और इन का उपाय सम्यक् दर्शनादिक हैं। सोई सांचा उपाय जानना। ऐसे मोह के निमित्त से ज्ञानावरण दर्शनावरण का चयोपशम भी दुःखदायक है। तिस का वर्णन किया —:(यहां कोई कहे):— ज्ञानावरण,दर्शनावरण, के उदय से जानना न भया। तिस को दुःख का कारण कहो चयोपशम को काहे को कहो। —:(तिस का समाधान):— जो न जानना ही दुःख का कारण होय तो पुद्गल के भी दुःख ठहरे, दुःख का मूल कारण तो इच्छा है, सो इच्छा चयोपशम ही से होय है। इस लिये चयोपशम को भी दुःख का कारण कहा है, परमार्थ से चयोपशम भी दुःख का कारण नाहीं, जो मोह से विषय ग्रहण किया है, सो ही दुःख का कारण जानना। और मोह का उदय है, सो दुःख रूप है, सो कहिये है। प्रथम तो दर्शन मोह के उदय से मिथ्या दर्शन होय है, तिस कर जैसा इस के श्रद्धान, तैसे तो पदार्थ है नाहीं। जैसे पदार्थ है, तैसे यह माने नाहीं, इस लिये इस के आकुलता ही रहे है। जैसे बावले को किसी ने वस्त्र पहराया, वह बावला तिस वस्त्र को अपना अंग जान, आप को और शरीर को एक माने है, वह वस्त्र पहरावने वाले के आधीन है। कभी फाड़े कभी तोड़े कभी खोसै, कभी नया पहिरावै, इत्यादिक चरित्र करे यह बावला तिस को अपने आधीन माने है उस की पराधीन क्रिया होय तिस से महा खेद खिन्न होय है, तैसे ही इस जीव के कर्म्म उदय से शरीर सम्बन्ध भया है,यह जीव तिस शरीर को अपना अंग जान आप को और शरीर को एक माने है। वह शरीर कर्म्म के आधीन कभी कृष होय कभी स्थूल होय, कभी नष्ट होय, कभी नवीन निपजे इत्यादि चरित्र होय है। और यह जीव तिस को अपने आधीन माने है, और जब उसकी पराधीन क्रिया

होय तब महा खेद खिन्न होय है। और जैसे जहां बावला तिष्टै था, तहां मनुष्य घोटक धनादिक कहीं से आन उतरें, यह बावला तिन को अपने जाने, वह तो उन के आधीन हैं। कोई आवे, कोई जावे कोई अनेक अवस्था रूप परिणमें, यह बावला तिन को अपने आधीन माने है, उन की पराधीन क्रिया होय तब खेद खिन्न होय है। तैसे यह जीव जहां पर्याय धरै तहां स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहीं से आन प्राप्त होय है, यह जीव उन को अपने जाने है, और वह उन ही के आधीन होय हैं। कोई आवे, कोई जावे, कोई अनेक अवस्थारूप परिणमें है। यह जीव तिन को अपने आधीन माने है, उन की पराधीन क्रिया होय तब खेद खिन्न होय है।—:(यहां कोई कहे):—कि किसी काल विषे शरीर और पुत्रादिक की इस जीव के आधीन भी क्रिया होती देखिये है, तब तो सुखी होय है,—:(तिस का समाधान):—शरीरादिक और भवतव्य की इस जीव की इच्छा के अनुसार किसी काल विषे विधि मिले, और कोई एक प्रकार कोई शरीरादिक जैसे यह चाहे तैसे ही परिणमें तो तिस काल विषे इस जीव कै उस ही प्रकार विचार होतें सुख कैसी आभास होय है। परंतु सर्व ही कै तो सर्व प्रकार कर जैसे वह चाहें तैसे न परिणमें है, इस लिये अभिप्राय विषे तो अनेक आकुलता सदा काल रहा ही करे है, और कोई काल विषे कोई प्रकार यह जीव अपनी इच्छा अनुसार परिणमता देख कर यह जीव शरीर पुत्रादिक विषे अहंकार ममकार करे है। सो इस बुद्धि कर तिन के उपजावने की वा बधावने की वा रक्षा करने की चिंता कर निरंतर व्याकुल रहे है। नाना प्रकार कष्ट सह कर भी तिनका भला चाहे है। और जो विषयन की इच्छा होय है, सो कषाय भाव है। वाह्य सामग्री विषे इष्ट अनिष्टपनो माने है, अन्यथा

उपाय करै है, सांचे उपाय को न श्रद्धै है। अन्यथा ही कल्पना करै है, सो इन सबन का मूल कारण एक मिथ्या दर्शन है, इस का नाश भये सबन का नाश होय जाय है। इस लिये सब दुःखन का मूल कारण यह मिथ्या दर्शन है। सो इस मिथ्या दर्शन के नाश का उपाय यह जीव नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धान को सत्य श्रद्धा न माने है। और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कदाचित् तत्व निश्चय करने का उपाय विचारै है। सो तहां अभाग्य से कुदेव कुगुरु कुशास्त्र का निमित्त बने तो अतत्वश्रद्धान पुष्ट हो जाय है, और यह जाने इन से मेरा भला हो जायगा, यह तो वस्तु स्वरूप विचारने को उद्यमी भया था, परन्तु अभाग्य के उदय से ऐसा उपाय करै है, जिस कर यह जीव उलटा अचेत हो जाय है। और विपरीत विचार विषे दृढ़ हो जाय है। तब विषय कषाय की वासना बधने से अधिक दुःखी हो जाय है। और कदाचित् सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र, का भी निमित्त बन जाय तो तहां तिन के निश्चय उपदेश को तो श्रद्धै है नाहीं व्यवहार श्रद्धान कर अतत्वश्रद्धानी ही रहे है, तहां मन्द कषाय होय वा विषयन की इच्छा घटै तो थोड़ा दुःखी होय है। पीछे फिर जैसे का तैसा होय जाय है। इस लिये यह संसारी जो उपाय करै है सो झूठा ही है। और इस संसारी के एक यह उपाय है, जो आप के जैसा श्रद्धान है, तैसा पदार्थन को परिणमाया चाहे है, सो वह परिणमैं तो उन का सांचा श्रद्धान होय जाय। परन्तु अनादिनिधन वस्तु जुदी २ अपनी मर्यादा लिये परिणमैं हैं। कोई किसी के आधीन नाहीं है, कोई किसी का परिणमाया परिणमैं नाहीं। तिन के परिणमन की इच्छा कर उन को अपने भाव रूप परिणमाने का उपाय करना सोई झूठा उपाय है। इसी का नाम मिथ्या दर्शन है। सो सांचा

उपाय क्या है। सो कहिये है। जैसे पदार्थन का स्वरूप है, तैसे श्रद्धान होय तो सर्व दुःख दूर होजायें।
जैसे कोई मोहित होय मुरदा को जीवता बतावे वा माने वा जिवाया चाहे, तो आप ही दुःखी होय है।
और उस को मुरदा मानना, और यह जिवाया जीवेगा नाहीं, ऐसा मानना सो ही तिस दुःख दूर होने का
उपाय है। तैसे मिथ्या दृष्टि पदार्थन को अन्यथा माने अन्यथा परिणमाया चाहै है, सो आप ही दुःखी
होय है। उन को यथार्थ मानना, और यह परिणमाया अन्यथा परिणमैंगे नाहीं, ऐसा मानना सो ही
तिस दुःख दूर होने का उपाय है। भ्रम जनित दुःख के दूर करने का उपाय भ्रम का दूर करना ही है।
और भ्रम दूर होने से ही सम्यक् श्रद्धान होय है, सोही सत्य उपाय जानना। और चारित्र मोह के उदय
से क्रोधादिक कषायरूप, वा हास्यादिक नो कषायरूप जीव के भाव होय हैं। तब यह जीव क्लेशवान होय
दुःखी होय है, और विह्वल होय नाना कुकार्यन विषे प्रवर्त्तै है, सोई दिखाइये है, जब इस कै क्रोध कषाय
उपजे है, तब अन्य का बुरा करने की इच्छा होय है, और तिस के अर्थ अनेक उपाय विचारै है, मर्म्म छेद
गाली प्रदानादि रूप वचन बोले है, अपने अंगन कर शस्त्र पाषाणादिक कर घात करै है, अनेक कष्ट सहने
कर वा धनादिक खरचने कर वा मरनादिक कर अपना भी बुरा कर अन्य के बुरा करने का उद्यम करै है।
अथवा औरन कर बुरा होता जान तिस का उद्यम करै है। अथवा औरन कर बुरा होता जाने तो औरन कर
बुरा करावै है। उस का स्वयमेव बुरा होय तो अनुमोदना करै है। उस का बुरा होतैं अपना कुछ भी
प्रयोजन सिद्ध न होय तौभी उस का बुरा ही करै है। और क्रोध होतैं कोई पूज्य वा इष्ट भी बीच में

आजावे तो उन को भी बुरा कहै है। मारने लग जाय है, कुछ विचार रहता नाही, और अन्य का बुरा न होय तो अपने अन्तरङ्ग विषे आप ही बहुत सन्तापवान होय है। वा अपने ही अङ्गन का घात करै वा विषाद कर मर जाय है। ऐसी अवस्था क्रोध होतैं होय है। और जब इस कै मान कषाय उपजै तब औरन को नीचा आप को ऊंचा दिखावने की इच्छा होय है। और तिस के अर्थं अनेक उपाय विचारै है। अन्य की निन्दा करै है। वा आप की प्रशंसा करै है, वा अनेक प्रकार कर औरन की महिमा मिटावै है, आप की महिमा करै है। महा कष्ट कर धनादिक का संग्रह किया तिस को विवाहादिक कार्यंन विषे खरचै है। वा देने कर भी खरचे ताके मरे पीछे भी हमारा यश रहै। ऐसा विचार अपनी महिमा वधावै है। और जो कोई अपना सन्माजादिक न करै तो तिस को भयादिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सन्मान करावै है। और मान होतैं कोई पूज्य बड़े होवें तिन का भी सन्मान न करै है। कुछ विचार रहता नाहीं, और अन्य को नीचा आप को ऊंचा न दीखे तो अपने अन्तरङ्ग विषे आप बहुत सन्तापवान होय है। वा अपने अङ्गन का घात करै है, वा विषाद कर मर जाय है, ऐसी अवस्था मान होतैं होय है। और जब इस के माया कषाय उपजे है। तब छल कर कार्यं सिद्ध करने की इच्छा करै है। और तिस के अर्थं अनेक उपाय विचारै है। नाना प्रकार कपट के वचन कहै है, कपट रूप शरीर की अवस्था करै है। बाह्य वस्तु को अन्यथा दिखावै है। और जिन विषे अपना मरन जाने ऐसे भी छल करै है। और कपट प्रगट भये, अपना बहुत बुरा होय, मरनादिक होय, तिन को भी न गिनै है। और, माया होतैं कोई

पूज्य वा इष्ट का भी सम्बन्ध बने तो उन से भी छल करै है। कुछ विचार रहता नाहीं। और छल कर कार्य सिद्ध न होय तो आप बहुत सन्तापवान् होय है। अपने अङ्गन को घात करै है। वा विषाद कर मर जाय है, ऐसी अवस्था माया होतैं होय है। और जब इस कै लोभ कषाय उपजै है, तब इष्ट पदार्थ के लाभ की इच्छा होय है। तिस के अर्थ अनेक उपाय विचारै है। तिस को साधन रूप वचन बोलै है, शरीर की अनेक चेष्टा करै है, और तहां कष्ट सहै है। सेवा करै है, विदेश गमन करै है, जिस कर मरन होता जाने सो भी कार्य करै है। घना दुःख जिन विषे उपजै, ऐसे प्रारम्भ भी करै है। और लोभ होतैं पूज्य वा इष्ट का भी कार्य होय, तहां भी अपना प्रयोजन साधै है। कुछ विचार रहता नाहीं। और जिस इष्ट वस्तु की प्राप्ति भई है। तिस की अनेक प्रकार रक्षा करै है, और जिस इष्ट वस्तु की प्राप्ति न होय, वा इष्ट का वियोग होय तो आप बहुत सन्तापवान होय है। अपने अङ्गन का घात करै है, वा विषाद कर मर जाय है। ऐसी अवस्था लोभ होतैं होय है, ऐसे कषायन कर पीड़ित हुवा यह जीव इन विषे प्रवर्त्तै है, और इन कषायन के साथ नो कषाय होय हैं। तहां जब हास्य कषाय होय तब आप विकसित होय प्रफुल्लित होय है, सो यह ऐसा जानना, जैसा बावले का हसना नाना रोग कर आप ही पीड़ित है, कोई कल्पना कर हसने लग जाय है। ऐसे ही यह जीव अनेक पीड़ा सहित है। कोई झूठी कल्पना कर आप को सुहावता कार्य मान हर्ष माने है, परमार्थ से दुःखी ही है, सुखी नाहीं है। सुखी तो कषाय रोग मिटे तब होयगा। फिर जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तु विषय अति आसक्त होय है।

जैसे बिल्ली मूसा को पकड़ आसक्त होय है। कोई मारे तौभी न छोड़े है, सो यहां दुष्टपना है। और वियोग होने का अभिप्राय लीये आसक्तता है। और जब अरति उपजै है, तब अनिष्ट वस्तु का संयोग पाय महा व्याकुल होय है, अनिष्ट का संयोग भया सो आप को सुहावता नाहीं। सो यह पीड़ा सही न जाय इस लिये तिस का वियोग करने को तड़फै है, सो यह दुःखही है। और जब शोक उपजै है, तब इष्ट का वियोग वा अनिष्ट का संयोग होतैं अति व्याकुल होय है। संताप उपजावै है, रोवै है, पुकारै है, असावधान हो जाय है, अपना अङ्ग घात कर मर जाय है, कुछ भी सिद्धि नाहीं। तौभी आप ही महा दुःखी होय है। और जब भय उपजै है, तब किसी को इष्ट वियोग वा अनिष्ट संयोग का कारण जान डरै है, अति विह्वल होय भागै है, वा छिप जाय है, वा शिथिल हो जाय है, कष्ट होने के ठिकाने प्राप्त होय है वा मरजाय है। सो यह दुःख रूप ही है। और जुगुप्सा उपजै है, तब अनिष्ट वस्तु से घृणा करै है। जिस का तो संयोग भया तिस से आप घृणा कर भागा चाहै है। उस को दूर किया चाहै है, खेद खिन्न होय है, महा दुःख को पावै है, और तीनों वेदन कर जब काम उपजै है, तब पुरुष वेद कर स्त्री सहित रमने की, और स्त्री वेद कर पुरुष सहित रमने की, और नपुंसक वेद कर दोउन से रमने की इच्छा होय है, तिस कर अति व्याकुल होय है, आताप उपजै है, निर्लज्ज होय है, धन खरचै है, अपयश को न गिनै है, परम्परा दुःख होय वा दण्डादिक होय तिस को भी न गिनै है, काम पीड़ा से बावला हो जाय है, मर जाय है, सो रस ग्रंथन में काम की दश दिशा कही हैं, तहां बावला होना, मरन होना,

लिखा है, वैद्यक शास्त्र विषे, ज्वर भेदन में काम ज्वर मरन का कारण लिखा है, प्रत्यक्ष काम कर मरन पर्यन्त होते देखिये हैं, कामांध को कुछ विचार होता नाहीं, पिता पुत्री वा मनुष्य तिर्यञ्चणी इत्यादिक से रमने लगजाय है, ऐसी काम की पीड़ा है। सो महा दुःख रूप है। इस प्रकार कषाय वा नो कषायन कर अवस्था होय है यहां ऐसा विचार आवे है, जो इन अवस्थान विषे न प्रवर्त्तें तो क्रोधादिक न पीडैं। और जो इन अवस्थान विषे प्रवर्त्तें तो मरन पर्यन्त कष्ट होय तिस को कबूल करे है। और क्रोधादिक की पीड़ा सहनी न कबूल करे है। इस लिये निश्चय भया कि मरनादिक से भी कषायन की पीड़ा अधिक है, और जब इस के कषाय का उदय होय है। तब कषाय किये विना रहा जाता नाहीं। वाह्य कषायन के कारण मिलें तो उन के आश्रय कषाय करे है। न मिलें तो आप कारण बनावे है, जैसे व्योपारादिक कषायन का कारण न होय तो जूवा खेलना और अनेक क्रोधादिक के कारण चौपड़, सतरंज, गंजफा, आदि अनेक ख्याल खेलना वा दुष्ट कथा कहनी सुननी इत्यादि कारण बनावे है। और जब कामादिक पीडैं और शरीर विषे तिन रूप कार्य करने की शक्ति न होय तो औषधि बनावे है, अनेक उपाय करे है, और कोई कारण बने नहीं, तो अनेक उपयोग विषे कषायन को कारण भूत पदार्थन का चितवन कर आप ही कषाय रूप परिणमैं है, ऐसे यह जीव कषाय भावन कर पीड़ित हुआ महा दुःखी होय है। और ऐसे विचारे है, कि जिस प्रयोजन को लिये कषाय भाव भया है, तिस प्रयोजन की सिद्धि होय तो यह मेरा दुःख दूर होय। और मुझ को सुख होय, ऐसे विचार तिस प्रयोजन की सिद्धि होने के अर्थ अनेक

उपाय करे है, सो तिस दुःख दूर करने के उपाय माने है, सो इस कषाय भावन से जो दुःख होय है, सो तो सांचा ही होय है। सोई सांचा दुःख है। सो प्रत्यक्ष आप ही दुःखी होता देखिये है, और यह उपाय करे है, सो झूठा है, सो कहिये है, क्रोध विषे तो अन्य का बुरा करना, मान विषे औरन को नीचा कर आप ऊंचा होना, माया विषे छल कर कार्य सिद्धि करना लोभ विषे इष्ट का पावना, हास्य विषे विकसित होने का कारण बना रहना, रति विषे इष्ट संयोग का बना रहना, अरति विषे अनिष्ट का संयोग दूर होना, शोक विषे शोक का कारण मिटना, भय विषे भय का कारण मिटना, जुगुप्सा विषे जुगुप्सा का कारण दूर होना, पुरुष वेद विषे स्त्री से रमना, स्त्री वेद विषे पुरुष से रमना, नपुंसक वेद विषे दोऊन से रमना, ऐसे यह प्रयोजन पाइये है, सो इन की सिद्धि होय, तो कषाय उपशमने से दुःख दूर होय जाय, परन्तु इन की सिद्धि इस के किये उपायन के आधीन नाहीं है, भवतव्य के आधीन है, क्योंकि अनेक उपाय करते देखिये है, और एक भी सिद्ध न होय है, और उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं है। भवतव्य के आधीन है। क्यों कि अनेक उपाय करते हुये देखिये हैं। और एक की भी सिद्धि होती न देखिये है, और उपाय बनना भी अपने अधीन नाहीं है। भवतव्य के आधीन है। और जो कदाचित् काकतालीय न्याय कर भवतव्य वैसा ही हो जाय। जैसा अपना प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय और तिस से कार्य की सिद्धि भी हो जाय तो तब तिस कार्य सम्बन्धी किसीयक कषाय का उपशमभी होय परन्तु तहां थंभाव होता नाहीं। यावत् कार्य सिद्धि न भया तावत् तो तिस कार्य संबंधी

कषाय था, और जिस समय कार्य सिद्धि भया तिस ही समय अन्य कार्य्य सम्बन्धी कषाय हो जाय है, एक समय मात्र भी निराकुल रहै नाहीं। जैसे कोई क्रोध कर किसी का बुरा विचारै था, सो उस का बुरा हो चुका, तब अन्य से क्रोध कर उस का बुरा चाहने लगा, ऐसे ही मान माया लोभादिक कर जो कार्य विचारे था, सो सिद्ध हो चुका। अथवा थोड़ी शक्ति थी, तब छोटेन का बुरा चाहे था, घनी शक्ति भई तब बड़ेन का बुरा चाहने लगा, तब अन्य विषे मानादिक उपजाये तिस की सिद्धि किया चाहे, थोड़ी शक्ति थी, तब छोटे छोटे कार्य की सिद्धि कीया चाहे था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करने की अभिलाषा भई, कषायन विषे कार्य का प्रमाण होय तो तिस कार्य की सिद्धि भये सुखी होय। सो प्रमाण तो है नाहीं। इच्छा वधती जाय है, सोई "आत्मानुशासन" विषे कहा है:-

आशागर्त्तः प्रतिप्राणि यस्मिन्विश्व मणूपमं।
कस्मिं किं किं यदायाति वृथावोविषयैषिता॥ १॥

इस का अर्थ—आशा रूपी गढ़ा प्राणी प्राणी प्रति पाइये है। अनन्तानन्त जीव हैं। तिन सबन कै आशा पाइये है। और वह आशा रूपी गढ़ा कैसा है, जिस एक गढ़ा विषे समस्त लोक अणु समान है। और लोक एक ही है, सो अब यहां कौन २ कै कितना कितना बटवारा आवै, सो तुम्हारे इन विषयन की इच्छा है, सो वृथा ही है। इच्छा पूर्ण तो होती नाहीं, इस लिये कोई कार्य सिद्धि भये भी

दुःख दूर न होय है। अथवा कोई कषाय मिटे तो तिस ही समय अन्य कषाय हो जाय है। जैसे किसी को मारने वाले वहुत होयें, जब कोई उस को न मारे। तब अन्य मारनेल ग जाय है। तैसे ही इस जीव को दुःख देने वाली अनेक कषाय हैं। जब क्रोध न होय तब मानादिक होय जाय हैं। मान न होय तब क्रोधादिक होय जाय है, ऐसे कषाय का सद्भाव रहा ही करे है, कोई एक समय भी कषाय रहित होता नाहीं। इस लिये कोई कषाय का कोई कार्य सिद्धि भये भी दुःख दूर होय नाहीं, और इस के अभिप्राय तो सर्व्व कषायन सर्व्व प्रयोजन सिद्धि करने का है, सोई होय तो यह सुखी होय। सो तो कदाचित् होय-सकै नाहीं। इस लिये अभिप्राय विषे शाश्वता दुःखी ही रहे है। और यह कषायन के प्रयोजन को साध दुःख दूर कर सुखी भया चाहे है। सो यह उपाय झूठा है, तो सांचा उपाय क्या है, सो कहिये है। इस जीव कै सम्यक्दर्शन ज्ञान से यथावत् श्रद्धान वा जानना होय है। तब इष्ट अनिष्ट बुद्धि मिटे है। और तिन ही के बल कर चारित्र मोह का अनुभाग हीन होय है, ऐसे होतैं कषायन का अभाव होय है। तब तिन की पीड़ा दूर होय है। और प्रयोजन भी कुछ रहता नाहीं, निराकुल होने से महा सुखी होय है, इस लिये सम्यक्दर्शनादिक इस दुःख मेटने का सांचा उपाय है। और इस जीव के मोह कर दान, लाभ, भोगोपभोग वीर्य शक्ति का उत्साह उपजै है, परन्तु अन्तराय कर्म्म के उदय से होय सकै नाहीं। तब परम आकुलता होय है। सो यह दुःख रूप ही है, उस का उपाय करे है, जो विघ्न के वाह्य कारण सूझैं हैं, तिन के दूर करने का उद्यम करे है, सो यह उपाय झूठा है। उपाय किये भी अन्तराय के उदय होतैं

विघ्न होते देखिये हैं। और अन्तराय का क्षयोपशम भए,विनाउपाय किये भी विघ्न होते न देखिये हैं। इस लिये विघ्न का मूल कारण अन्तराय ही है। और जैसे स्वान कै पुरुष कर वाही हुई लाठी लागे वह स्वान लाठी से वृथा ही द्वेष करे है। तैसे जीव कै अन्तराय कर निमित्त भूत किया हुआ वाह्य चेतन अचेतन द्रव्य कर विघ्न भया, यह जीव तिन वाह्य द्रव्यन से वृथा द्वेष करे है। अन्य द्रव्य इस कै विघ्न किया चाहे हैं, और इस कै विघ्न न होय, और अन्य द्रव्य विघ्न किया न चाहें, परन्तु इस के होय है। इस लिये जानिये है कि अन्य द्रव्य का कुछ वश नाहीं है। जिन का वश नाहीं, तिन से काहे को लड़िये। इस लिये यह उपाय झूठा है, तो सांचा उपाय क्या है, सो कहिये है:— मिथ्यादर्शनादिक कर इच्छा कर उत्साह उपजै था, सो सम्यग्दर्शनादिक कर दूर होय है, और सम्यग्दर्शनादिक ही कर अंतराय का अनुभाग घटे है। तब इच्छा तो मिट जाय है, शक्ति बधजाय है, तब वह दुःख दूर होय निराकुल सुख उपजै है, इस लिये सम्यग्दर्शनादिक ही सांचा उपाय है, और वेदनीय के उदय से दुःख सुख के कारण का संयोग होय है। तहां काई तो शरीर विषे ही अवस्था होय हैं, काई शरीर की अवस्था को निमित्त भूत वाह्य संयोग होय हैं। काई वाह्य ही वस्तुन का संयोग होय है, तहां असाता का उदय कर शरीर विषे तो क्षुधा, तृषा, उश्वास, पीड़ा, रोग इत्यादि होय हैं, और शरीर की अनिष्ट अवस्था को निमित्त भूत वाह्य अति शीत उष्ण पवन बन्धनादिक का संयोग होय है। और वाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कन्धन का संयोग होय है। सो मोह कर इन विषे अनिष्ट बुद्धि होय हैं, जब इनका

उदय होय तब मोह का उदय ऐसा ही आवै है, जिस कर परिणामन मैं महा व्याकुलता होय है इन को दूर किया चाहे है, यावत् यह दूर न होयें, तावत् दुःखी ही रहे है, सो इन के होतैं सर्व्व ही दुःख माने हैं। और साता के उदय कर शरीर विषे आरोग्य पनो वा बलवान् पनो इत्यादि होय हैं। और शरीर की इष्ट अवस्था के निमित्त भूत बाह्य खान पानादिक वा सुहावने पवनादिक का संयोग होय है, और बाह्य मित्र, सुपुत्र, स्त्री, किंकर, हस्ती, घोटक, धन, धान्य, मन्दिर, वस्त्रादिक का संयोग होय है, सो मोह कर इन विषे इष्ट बुद्धि होय है। जब इन का उदय होय तब मोह का उदय ऐसा ही आवे। जिस कर परिणामन विषे चैन मानै। इन की रक्षा चाहे। यावत् रहें तावत् सुख माने है तो यह सुख मानना ऐसा है जैसे कोई घने रोगन कर बहुत पीड़ित होय रहा था, तिस कै कोई इलाज कर, कोई एक रोग की कितेक काल कुछ उपशांतता भई, तब वह पूर्व्व अवस्था की अपेक्षा आप को सुखी माने है, परमार्थ से सुख है नाहीं, तैसे यह जीव घने दुःखन कर बहुत पीडित होय रहा था, तिस के कोई प्रकार कर कोई एक दुःख की कितनेक काल कुछ उपशांतता भई, तब यह पूर्व अवस्था की अपेक्षा आप ही को सुखी कहे है। परमार्थ से सुख है नाहीं। और इस कै असाता के उदय होतैं जो होय तिस कर तो दुःख भासै है, सो तिस के दूर करने का उपाय करे है। और साता के उदय होतैं जो होय तिस कर सुख भासै है, सो तिस के राखने का उपाय करे है, सो यह उपाय झूठा है, क्योंकि प्रथम तो इस का उपाय इस के आधीन नाहीं है, वेदनीय कर्म के उदय के आधीन है। असाता के मेटने के अर्थ साता की प्राप्ति के अर्थ तो सर्व ही

यत्न करे हैं, परन्तु किसी के थोड़ा यत्न किये भी वा न किये भी सिद्धि होय जाय है, किसी के बहुत यत्न किये भी सिद्धि न होय है, इस लिये जानिये है, इस का उपाय इस के आधीन नाहीं है। और कदाचित् उपाय भी करै, और तैसा ही उदय आवै तो थोड़े काल किञ्चित किसी प्रकार की असाता का कारण मिटै, और साता का कारण होय है, तहां भी मोह के सद्भाव से तिनको भोगने की इच्छा करे है। और आकुलित होय एक भोग वस्तु को भोगने की इच्छा होय है, और वह यावत् मिले तावत् तो उस की इच्छा कर आकुलता होय है, और जब वह मिल जाय है, तो उस ही समय अन्य को भोगने की इच्छा होय जाय है, तब तिस कर आकुलित होय है, जैसे किसी के स्वाद लेने की इच्छा भई थी, उस का स्वाद जिस समय भया, तिस ही समय अन्य वस्तु का स्वाद लेने की वा स्पर्शनादिक की इच्छा उपजे है, अथवा एक ही वस्तु को पहिले अन्य प्रकार भोगने की इच्छा होय वह यावत् न मिलै तावत् उस की आकुलता रहे है। और वह भोग भया और उस ही समय अन्य प्रकार भोगने की इच्छा होय है। जैसे स्त्री को देखा चाहे था, जिस समय अवलोकन भया उस ही समय रमने की इच्छा होय है। और ऐसे भोग भोगते भी तिनके अन्य उपाय करने की इच्छा होय है। और तिन को छोड़ अन्य उपाय करने लग जाय है, ऐसे अनेक प्रकार आकुलता रहे है। देखो एक धन के उपाय करने में व्यापारादिक करतें और उसकी रक्षा करने में सावधानी करतें कितनी आकुलता होय है। और क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, मल श्लेष्मादि असाता का उदय आया ही करे है। तिस का निराकरण कर सुख माने सो काहे का सुख

है, यह तो रोग का प्रतिकार है,यावत् क्षुधादिक रहे,तावत् तिन के मिटावने की इच्छा कर आकुलता होय
है। वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै है तिसकी आकुलता होय है। तब फिर क्षुधादिक उत्पन्न होय
आवै है। तब उनकी आकुलता होय जाय है, ऐसे इसकै उपाय करने से कदाचित् असाता मिट साता
होय जाय तो तहां भी आकुलता ही रहा करै है। इस लिये दुःख ही रहे है। और ऐसे भी रहना तो होता
नाहीं। क्योंकि उपाय करतैं करतैं भी कोई असाता का उदय ऐसा आवै है, तिसका कुछ भी उपाय बन सकै
नाहीं, और तिस की पीड़ा बहुत होय है, सो सही भी जाय नाहीं। तब उसकी आकुलता कर विह्वल
होय जाय है, तहां महा दुःखी होय है। सो इस संसार विषै साताका उदय तो कोई पुण्य का उदय कर
किसी कै कदाचित् ही पाईये है। घने जीवन कै बहुत काल असाता ही का उदय रहै है, इस लिये
उपाय करै है सो झूठा है। अथवा वाह्य सामग्री से सुख दुःख मानिये है सो भी भ्रम है। सुख दुःख तो
साता असाता के उदय होतैं मोह के उदय से होय है। सो प्रत्यक्ष देखिये है, लक्ष धन के धनी कै सहस्र
धन का घाटा भया तब वह दुःख मानै है। और शत धन के धनी कै सहस्र धन भया, तब वह सुख मानै
है। सो वाह्य सामग्री तो उसकै इस से निन्यांणवें गुणी है, अथवा लक्ष धन के धनी कै अधिक धन की
इच्छा है तो वह दुःखी है। शत धन के धनी कै सन्तोष है तो वह सुखी है। और समान वस्तु मिले भी
कोई सुख मानै है,कोई दुख मानै है।जैसे किसी को मोटा वस्त्र का मिलना दुःखकारी होय है, किसी को
सुख कारी होय है, और शरीर विषै क्षुधा आदि पीड़ा वा वाह्य इष्ट का वियोग अनिष्ट का संयोग भये

किसी कै बहुत दुःख होय है किसी कै थोड़ा दुःख होय है, किसी कै न होय है। इसलिये सामग्री के आधीन सुख दुःख नाहीं है। साता असाता के उदय होतैं मोहरूप परिणामन के निमित्त से ही सुख दुःख मानिये हैं। —:(यहां प्रश्न):— जो बाह्य सामग्री तो तुम कहो हौ तैसे ही है। परन्तु शरीर विषे तो पीड़ा भये दुःख ही होय है। और पीड़ा न भये सुख होय है। यह तो शरीर अवस्था ही के आधीन सुख दुःख भासे है। —:(तिस का समाधान):— संसारी जीवन का तो ज्ञान इन्द्रियाधीन ही है, और इन्द्रिय शरीर का अङ्ग हैं, सो जो अवस्था इन में बीतै तिन ही के जानने रूप ज्ञान परिणमै है। तिस के साथ ही मोह भाव उत्पन्न होय है। तिस कर शरीर अवस्था का सुख दुःख विशेष जानिये है। और पुत्र धनादिक से अधिक मोह होय तो अपने शरीर का कष्ट सहे तिस का भी थोड़ा दुःख माने है। उनको दुःख भये वा उनका संयोग मिटे बहुत दुःख माने है। और मुनि हैं, सो शरीर को पीड़ा होतैं भी कुछ दुःख मानते नाहीं। इसलिये सुख दुःख मानना मोह ही के आधीन है। मोह कै और वेदनीय कै निमित्त नैमित्तक संबन्ध है, इस लिये साता असाता के उदय से सुख दुःख का होना भासे है। और मनुष्यपने में कितनीक सामग्री साता के उदय से होय हैं। कितनीक असाता के उदय से होय हैं। इस लिये सामग्रीन कर सुख दुःख भासे है। परन्तु निश्चय कीये मोह ही से सुख दुःख का होना पाइये है, औरन कर सुख दुःख होने का नियम नाहीं है। केवली कै साता असाता का उदय भी है। और सुख दुःख के कारण सामग्री का भी संयोग है। परंतु मोह के अभाव से किंचित्मात्र भी सुख दुःख होता नाहीं। इसलिये सुख दुःख मोह ही जनित मानना,

और जो तू सामग्री के दूर करने का वा होने का उपाय कर दुःख मेटया चाहे, सुखी भया चाहे, सो यह उपाय झूठा है। तो सांचा उपाय क्या है, सो कहिये है। सम्यग्दर्शन से भ्रम दूर होय तब सामग्री से दुःख सुख भासे नाहीं। अपने परणाम ही से भासे और यथार्थ विचार का अभ्यास कर अपने परिणाम जैसी सामग्री के निमित्त से सुखी दुःखी न होयें, तैसे साधन करै। और जब सम्यग्दर्शनादि भाव से मोह मंद होय जाय तब ऐसी दशा होय जाय है, कि अनेक कारण मिलै भी आप को सुख दुःख होय नाहीं। तब एक शान्त दशा रूप निराकुल होय सांचे सुख को अनुभवै है। तब सर्व दुःख मिटै सुखी होय। यह ही सांचा उपाय है। और आयु कर्म के निमित्त से पर्याय का धारना सो जीवतव्य है। पर्याय छूटना सो मरण है। और यह जीव मिथ्या दर्शनादिक से पर्याय ही को आपा अनुभवै है। इस लिये जीवतव्य रहे अपना अस्तित्व माने है। मरण भए अपना अभाव होना माने है, इस कारण से ही सदा काल इस को मरण का भय रहे है, तिस भय कर सदा आकुलता रहे है। जिन को मरण का कारण जाने तिन से बहुत डरै है। कदाचित् उन का संयोग बने तो महा व्याकुल होय जाय है। ऐसे महा दुःखी होय है, तिस का उपाय यह करै है, कि मरण के कारणों को दूर राखै है। वा उन से आप भागै है। और औषधि आदिक का समागम करै है। गढ़कोटादिक बनावै है, इत्यादि उपाय करै है, सो यह उपाय झूठा है। क्योंकि आयु पूर्ण भये तो अनेक उपाय करें, और अनेक सहाय होय तौभी मरण होय ही होय, एक समय मात्र भी न जीवे। और यावत् आयु पूर्ण न होय तावत् अनेक कारण मिलें तौभी मरण न होय,

इस लिये उपाय किये भी मरण मिटता नाहीं। क्योंकि आयु की स्थिति पूर्ण होय ही होय। इस लिये मरण भी होय ही होय, इस का उपाय करना झूठा ही है। तो सांचा उपाय क्या है सो कहिये है। सम्यग्दर्शनादिक से पर्याय विषे अहं छूटै अनादिनिधन आप चैतन्य द्रव्य है, तिस विषे अहं बुद्धि आवै पर्याय को स्वांग समान जानै। तब मरण का भय रहै नाहीं। और सम्यग्दर्शनादिक ही से सिद्ध पद पावै, तब मरण का अभाव होय। इस लिये सम्यग्दर्शनादिक ही सांचा उपाय है। और नाम कर्म के उदय से गति जाति शरीरादिक निपजै हैं, तिन विषे पुण्य के उदय से जो होय है। सो सुख के कारण होय है, पाप के उदय से जो होय है सो दुःख के कारण होय हैं। सो यहां सुख मानना भ्रम है। और यह जीव जो दुःख के कारण मिटावने का और सुख के कारण होने का उपाय करे है, सो झूठा है। सांचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक हैं। सो जैसे वेदनीय का कथन करतैं निरूपण किया है, तैसे यहां भी जानना। वेदनीय और नाम कर्म्म के सुख दुःख के कारणपना की समानता है, इस लिये निरूपण की भी समानता जाननी। और गोत्र कर्म्म के उदय से नीचे ऊंचे कुल विषे उपजे है, तहां ऊंची कुल विषे उपजे आप को ऊंचा माने है। नीचे कुल विषे उपजे आप को नीचा माने है, सो कुल पलटने का उपाय तो इस को भासे नाहीं। इसलिये जैसा कुल पाया तिस ही विषे आपा माने है। सो कुल अपेक्षा आपको नीचा ऊंचा मानना भ्रम है। क्योंकि ऊंचे कुलका कोई पुरुष निन्द्य कार्य करे तो वह नीचा होय जाय है। और नीचे कुल विषे उपजा कोई पुरुष श्लाघ्य कार्य करे तो वह ऊंचा होय जाय है, और लोभादिक से नीचे कुलवाले की

ऊंचे कुल वाले सेवा करने लग जाय हैं। और कुल भी कितनेक काल रहे है, जब पर्य्याय छूटे है, कुल की पलटना होजाय है। इस लिये ऊंचे नीचे कुल अपेक्षा आपको ऊंचा नीचा मानने से, ऊंचे कुल वाले को नीचा होने का भय रहे है, और नीचे कुलवाले को अपने नीचपने का दुःख रहे है। सो इस दुःख दूर करने का सांचा उपाय क्या है, सो कहिये है। सम्यग्दर्शनादिक से ऊंचे नीचे कुल विषे हर्ष विषाद न माने। और इस ही से जिसकी पलटना न होय ऐसा सर्व तैं ऊंचा सिद्ध पद पावे, तब सर्व दुःख मिटें परम सुखी होय। इसलिये सम्यग्दर्शनादिक ही इस जीव के दुःख मेटने का सुख करने का सांचा उपाय है। इस प्रकार कर्म्म के उदय की अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिक के निमित्तसे इस संसार विषे दुःख ही दुःख पाइये है। तिस का वर्णन कीया। अब इस ही दुःख को पर्याय अपेक्षा कर वर्णन करिये है। इस संसार विषे बहुत काल तो एकेंद्रिय पर्याय विषे ही बीतै है। सो अनादि ही से तो नित्य निगोद विषे ही रहना है। और तहां से निकसना ऐसे है, जैसे भाड़ भून तैं चना उछल बाहिर निकसे ऐसे यह जीव नित्य निगोद से निकस कर अन्य पर्य्याय धरै है। सो वहां तिस पर्य्याय विषे तो थोड़ा ही काल रहे है, बहुत काल तो एकेन्द्रिय विषे ही व्यतीत करै है। तहां इतर निगोद विषे तो बहुत रहना होय है। और कितनेक काल पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति विषे रहना होय है। नित्य निगोद से निकसे पीछे तृस विषे तो उत्कृष्ट रहने का काल साधिक दोय हजार सागर ही है। और एकेंद्रिय विषे तो उत्कृष्ट रहने का काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। और पुद्गल परिवर्तन काल ऐसा है जिस के अनन्तवें भाग

विषे भी अनन्ते सागर होय हैं। इस लिये इस संसारी के मुख्य पने तो एकेंद्रिय पर्य्याय विषे ही काल व्यतीत होय है। तहां एकेंद्रिय कै ज्ञान दर्शन की शक्ति तो किंचित् मात्र ही रहे है। एक स्पर्शन इंद्रिय निमित्त से भया मतिज्ञान, और तिस के निमित्त से भया, श्रुतज्ञान, और स्पर्शन इन्द्रिय जनित अचक्षु-दर्शन जिन कर शीत उष्णादिक को किंचत जाने देखे है। ज्ञानावर्ण दर्शना वर्ण के तीव्र उदय कर इससे अधिक दर्शन ज्ञान न पाइयेहैं। और विषयन की इच्छा पाइये है। इसलिये महा दुःखी है और दर्शन मोह के उदय से मिथ्या दर्शन होय है, इस लिये पर्याय ही को आपा श्रद्दै है अन्य विचार करने की शक्ति नाहीं है। और चारित्र मोह के उदय से तीव्र क्रोधादिक कषायरूप परिणमैं हैं, क्योंकि उनके केवली भगवान ने कृष्ण, नील, कापोत यह तीन अशुभलेश्या ही कही हैं, सो तीव्र कषाय हो तैं ही होय हैं। सो कषाय तो बहुत हैं और शक्ति सर्व प्रकार कर महा हीन है, इसलिये बहुत दुःखी होय रहे हैं, कुछ उपाय कर सकते नाहीं, यहां कोई कहे ज्ञान तो किंचितमात्र ही है, वे क्या कषाय करे हैं —:(तिस का समाधान):— सो ऐसा तो नियम है नाहीं। जेता ज्ञान होय तेताही कषाय होय, ज्ञान तो जितना क्षयोपशम होय तितनाही होय है। जैसे कोई अंधे, बहरे, पुरुष के ज्ञान थोड़ा होतैं भी बहुत कषाय होती देखिये है, तैसे एकेन्द्रिय के ज्ञान थोड़ा होतैं भी बहुत कषाय होना मानिये है। और वाह्य कषाय प्रगट तब होय है, जब कषाय के अनुसार कुछ उपाय करे, सो वह सामर्थ्य रहित हैं, एकेंद्रिय तो उपाय कर सकते नाहीं। इस लिये उन की कषाय प्रगट नाहीं होय है। जैसे कोई पुरुष शक्ति हीन है, इस लिये तिस के कषाय प्रगट होते नाहीं, वह ही

अतिदुःखी होय है। तैसे एकेन्द्रिय जीव शक्ति हीन हैं, उनके कोई कारण से कषाय होय है, परंतु कुछ कर सकते नाहीं। इसलिये उनकी कषाय वाह्य प्रगट नाहीं है, वह आप ही दुःखी होय हैं, और इतना और जानना जहां कषाय बहुत होय और शक्ति हीन होय तहां घना दुःख होय है, और जैसे कषाय घटती जाय और शक्ति बधती जाय, तैसे दुःख घटता जाय है। सो एकेन्द्रियन के कषाय तो बहुत है। और शक्ति हीन है। इस लिये एकेन्द्रिय जीव महा दुःखी हैं, और उनके दुःख वही भोगवे हैं, और केवली जाने हैं, जैसे संन्नि-पाती का ज्ञान घट जाय है, और वाह्य शक्ति हीनपने से अपना दुःख प्रगट न कर सके है, परन्तु वह महा दुःखी है, तैसे एकेन्द्रिय के ज्ञान थोड़ा है, और वाह्य शक्ति हीनपने से अपने दुःख को प्रगट भी न कर सके है। और अंतराय के तीव्र उदयकर बहुत चाहा भी होता नाहीं, इसलिये यह महा दुःखी ही हैं। और अघाति कर्मन के विषे विशेषपने पाप प्रकृतिन का ही उदय है, तहां असाता वेदनी के उदय होतें तिस के निमित्त से महा दुःखी होय हैं, पवन से टूटे हैं, और वनस्पति हैं, सो शीत उष्ण कर सूख जाय हैं। जल न मिले तो सूख जाय हैं अग्नि कर बल जाय हैं, कोई छेदे है, भेदे हे मसले है, खाय है, तोड़े है, इत्यादि अवस्था होय है। ऐसे ही यथासंभव पृथ्वी आदि विषे अवस्था होय हैं, तिन अवस्था के होते वे महादुःखी होय हैं, जैसे मनुष्य के शरीर विषे ऐसी अवस्था भये दुःख होय है, तैसे ही उन के भी होय है, क्योंकि इन का जानपना स्पर्शन इन्द्रिय से होयहै, सो उन के स्पर्शन इन्द्रिय ही है। इस लिये उन को जान मोह के वश से महा व्याकुल होय हैं। परन्तु भागने की, वा लड़ने की, वा पुकारने की, शक्ति नाहीं है। इस लिये

अज्ञानी लोग उन के दुःख को गिनते नाहीं। और कदाचित् किञ्चित् साता का उदय होय तो सो वह बलवान होता नाहीं। और आयु कर्म्म से इन एकेन्द्रिय जीवन विषे अपर्याप्त की आयु स्वास के अठारवें भाग मात्र ही है। और पर्याप्त की अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितनेक वर्ष पर्यन्त है, सो आयु थोड़ा है। इस लिये जन्म मरण हुआ ही करै है। तिस कर दुःखी है, और नाम कर्म विषे तिर्यञ्च गति आदि पाप प्रकृतिन का ही उदय विशेष पने पाइये है। और जो कभी किसी हीन पुण्यप्रकृति का भी उदय होय तो तिस का बलवानपना होता नाहीं। इस लिये तिन कर भी वह मोह के वश से दुःखी ही है। और गोत्र कर्म्म विषे नीच गोत्र ही का उदय है, तिस कर महंतता तो होय नाहीं। इस लिये भी दुःखी ही है॥ ऐसे एक इन्द्रिय जीव महा दुःखी है। और संसार विषे जैसे पाषाण आधार विषे तो बहुत काल रहे है, निराधार आकाश विषे तो कदाचित् किञ्चित मात्र काल ही रहे है। तैसे ही जीव एकेन्द्रिय पर्याय विषे बहुत काल रहै है, अन्य पर्याय विषे तो कदाचित् किञ्चित् मात्र काल ही रहे है। इस लिये यह जीव संसार विषे महादुःखी है। और वेन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरेंद्रिय असैंनी पंचेन्द्रिय पर्यायन को जीव धारे है, तहां भी एकेन्द्रियवत् ही दुःख जानना। विशेष इतना है, कि यहां क्रम से एक एक इन्द्रिय जनित ज्ञान दर्शन की कुछ शक्ति अधिक भई है, और बोलने चालने की शक्ति भी भई है, परन्तु तहां भी अपर्याप्त अथवा पर्याप्त हीन शक्ति के धारक छोटे जीव हैं, तिन की शक्ति प्रगट होती नाहीं। और जो बहुत शक्ति के धारक बड़े जीव हैं, तिन की शक्ति प्रगट होय है। और वैं विषयन का

उपाय करै हैं, और दुःख दूर होने का उपाय करै हैं। और क्रोधादिक कर काटना मारना लड़ना छल करना, अन्नादिक का संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै हैं। और दुःख कर तड़फड़ाट करना पुकारना इत्यादि क्रिया करैं हैं। इस लिये तिन का दुःख तो प्रगट ही भासै है। सो लट कीड़ी आदि जीवन कै शीत उष्ण छेदन भेदनादिक से वा भूख तृषा आदि से परम दुःख देखिये है सो प्रत्यक्ष दीखै है। तिस का विचार कर लेना यहां विशेष क्या लिखें। ऐसे बेइन्द्रियादिक जीव भी महादुःखी ही जानने। और संज्ञी पञ्चेन्द्रियन विषे नारकी जीव हैं, सो तो सर्व्व प्रकार महादुःखी ही हैं। ज्ञानादिक की कुछ शक्ति है, परन्तु विषयन की इच्छा बहुत है। और इष्ट विषयन की सामग्री किञ्चित भी न मिले है। इस लिये वे तिस शक्ति होतें भी महादुःखी ही हैं। और क्रोधादिक कषाय का अति तीव्रपना पाइये है, क्योंकि इन कै कृष्णादि अशुभ लेश्या ही हैं, तहां क्रोध मान कर परस्पर दुःख देने का निरन्तर कार्य पाइये है। जो परस्पर मित्रता करैं तो यह दुःख मिट जाय और अन्य को दुःख दीये कुछ उन का कार्य भी होता नाहीं। परन्तु क्रोध मान का अति तीव्रपना पाइये है, तिस कर परस्पर दुःख देने ही की बुद्धि रहै है। विक्रिया कर अन्य को दुःखदायक शरीरके अंग बनावैं हैं, वा शस्त्रादि बनावैं हैं, तिन कर अन्य को आप पीड़ै हैं। और आप को कोई अन्य पीड़ै हैं, कदाचित् कषाय उपशान्ति होय नाहीं। और माया लोभ की अति तीव्रता है। परन्तु कोई इष्ट सामग्री तहां दीखै नाहीं। इस लिये तिन कषायन का कार्य प्रगट कर सकते नाहीं। तिन कर अन्तरङ्ग

विषे महादुःखी हैं। और कदाचित् किञ्चित कोई प्रयोजन पाय तिन का भी कार्य होय है, और हास्य, रति, कषाय है, परन्तु वाह्य निमित्त नाहीं। इस लिये प्रगट होते नाहीं। कदाचित् किञ्चित् किसी कारण से होय हैं। और अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन के वाह्य कारण बन रहे हैं, इस लिये यह कषाय प्रगट तीव्र होय हैं। और वेदनीय विषे नपुंसक वेद है। सो इच्छा तो वहुत और स्त्री पुरुष से रमने का निमित्त नाहीं। इस लिये महा पीड़ित हैं, ऐसे कषायन कर अति दुःखी हैं। और वेदनीय विषे असाता ही का उदय है, तिस कर तहां अनेक वेदनीय का निमित्त है। शरीर विषे कोढ़, खाज, श्वासादिक अनेक रोग युगपत् पाइये हैं। और क्षुधा तृषा ऐसी है, सर्व का भक्षण पान किया चाहे हैं। और तहां माटी का भोजन मिले है, सो माटी भी ऐसी है जो यहां आजाय तो तिस की दुर्गंधि से कई कोशन के मनुष्य मर जायें। और शीत उष्ण तहां ऐसा है, लक्ष योजन का लोह का गोला होय सो भी तिन कर भस्म हो जाय। कहीं शीत है, कहीं उष्ण है, और पृथ्वी तहां शस्त्रन से भी महा तीक्ष्ण कण्टकन कर सहित है। और तिस पृथ्वी विषे वन है। सो शस्त्रधारा समान पत्रादि सहित है। और नदी है, सो तिस के स्पर्शन भये शरीर खण्ड खण्ड हो जाय है, ऐसे जल सहित है। पवन ऐसा प्रचण्ड है, तिस कर दग्ध हुआ जाय है। और नारकी को अनेक प्रकार पकड़ कर घाणी में पेलै हैं। खण्ड खण्ड करै हैं। हांडी में राधैं हैं, कोड़े मारैं हैं। तप्त लोहादिक का स्पर्श करावैं हैं, इत्यादि वेदना उपजावैं हैं। तीसरी पृथ्वी पर्यन्त तो असुर कुमार देव जाय हैं। सो तो आप पीड़ा दें हैं। वा परस्पर लड़ावें हैं। ऐसी

वेदना होतैं शरीर छूटै नाहीं। पारावत् खण्ड खण्ड हो जाय तौभी मिल जाय है। ऐसी महा पीड़ा है, और साता का निमित्त तो कुछ है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोई कै अपनी मान से कोई कारण अपेक्षा साता का उदय है, सो बलवान नाहीं। और आयु तहां बहुत जघन्य दश हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागर इतने काल ऐसे दुःख तहां सहने होय हैं। और नाम कर्म्म की सर्व पापप्रकृति ही का उदय है। एक भी पुण्यप्रकृति का उदय नाहीं है, तिन कर महादुःखी हैं। और गोत्र कर्म्म विषै नीच गोत्र ही का उदय है, तिस कर महंतता न होय है। इस लिये महादुःखी ही हैं। ऐसे नरक गति विषै महादुःख जानने, और तिर्यंच गति विषै बहुत अलब्ध अपर्याप्त जीव हैं तिन का तो उश्वास के अठारवें भागमात्र आयु है, और कोई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं, सो इन की शक्ति प्रगट भासै नाहीं। तिन के दुःख एकेन्द्रियवत् जानने। ज्ञानादिक का विशेष है, सो विशेष जानना, और जो बड़े पर्याप्तजीव कोई सन्मूर्छन हैं, कोई गर्भज हैं, तिन विषै ज्ञानादिक प्रगट होय है सो विषयन की इच्छा कर आकुलित है। बहुतन को तो इष्ट विषय की प्राप्ति नाहीं है, किसी को कदाचित् किंचित् होय है। और मिथ्याभाव कर असत्य अज्ञानी होय रहे हैं। और कषाय मुख्यपने तीव्र ही पाइये है। क्रोध, मान कर परस्पर लड़े हैं, भक्षण करैं हैं, दुःख दे हैं। माया, लोभ कर छल करैं हैं। वस्तुन को चुरावै हैं, हास्यादिक कर तिन कषायन कर कार्यन विषै प्रवर्त्तैं हैं। और किसी कै कदाचित् मन्द कषाय भी होय है। परन्तु थोड़े जीवन कै होय है। इस लिये मुख्यता नाहीं। और वेदनीय विषै मुख्य असाता का उदय है। तिस कर रोग पीड़ित क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुत भारवहन शीतल उष्ण अंग

भंगादि अवस्था होय है। तिस कर दुःखी होते प्रत्यक्ष देखिये हैं। इसलिये बहुत नहीं कहा है। किसी कै कदाचित् किंचित् साता का भी उदय होय है। परन्तु थोड़े जीवन कै होय है, मुख्यता नाहीं है। और आयु अन्तर्मुहूर्त आदि कोटि पूर्व पर्य्यन्त है। सो घने जीव स्तोक आयु के ही धारक होय हैं। इस लिये जन्म मरण का दुःख पावे हैं। और भोग भूमिया की बड़ी आयु है, और उन कै साता का भी उदय है, सो वे जीव थोड़े हैं और नाम कर्म की मुख्यपने तो तिर्यञ्च गति आदि पाप प्रकृतिन का ही उदय है। किसी कै कदाचित् कोई पुण्यप्रकृति का भी उदय होय है, परन्तु थोड़े जीवन कै थोड़ा होय है। मुख्यता नाहीं। और गोत्र विषे नीच गोत्र ही का उदय है, इस लिये हीन होय रहे हैं। ऐसे तिर्यञ्च गति में महा दुःख जानने। और मनुष्य गति में असंख्याते जीव तो लब्ध अपर्याप्त हैं, सो सन्मूर्छन ही हैं, तिन की तो आयु उश्वास के अठारवें भाग मात्र है। और कोई जीव गर्भ में आय थोड़े ही काल में मरण पावे हैं, तिन की तो शक्ति प्रगट भासे नाहीं, तिन के दुःख एकेन्द्रियवत् जानने। विशेष है, सो विशेष जानना। और गर्भज कै कितनेक काल गर्भ में रहना होय है, पीछे बाह्य निकसना होय है, सो तिन के दुःख का कर्म अपेक्षा पूर्वें वर्णन कीया है, तैसे जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यन के संभवे है। अथवा तिर्यञ्चन का वर्णन कीया है, तिस में जानना विशेष यह है। यहां कोई शक्ति विशेष पाइये है। वा राजादिकन के विशेष साता का उदय होय है, वा क्षत्रियादिकन के उच्च गोत्र का भी उदय होय है, और धन कुटुम्बादिक का निमित्त विशेष पाइये है, इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्था

को दुःख प्रत्यक्ष भासै हैं, जैसे विष्टा विषे लट उपजैं हैं, तैसे गर्भ में शुक्र शोणित का बिन्दु को अपना शरीर रूप कर जीव उपजै है। पीछे तहां क्रम से ज्ञानादिक की वा शरीर की वृद्धि होय है। गर्भ का दुःख बहुत है, तहां संकोच रूप अधोमुख क्षुधा तृषादि सहित काल पूर्ण करै है, फिर बाहर निकसै है। तब बाल्य अवस्था में महा दुःखी होय है। कोई कहै बाल्य अवस्था में दुःख थोड़ा है सो नाहीं है। शक्ति थोड़ी है। इस लिये व्यक्त न होय सके है, पीछे व्योपारादिक विषे इच्छा आदि दुःखन की प्रगटता होय है, इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहै है। पीछे वृद्ध होय तब शक्ति हीन होजाय, तब परम दुःखी होय है। सो दुःख प्रत्यक्ष होते देखिये हैं। हम बहुत क्या कहैं। प्रत्यक्ष जिन को न भासै सो कहा कैसे सुने, किसी कै कदाचित् किञ्चित साता का उदय होय है। सो आकुलतामय है, और तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाये बिना होय नाहीं, ऐसे मनुष्यादि पर्याय विषे दुःख ही है, एक मनुष्य पर्याय विषे कोई अपना भला होने का उपाय करै तो होय सके है, जैसे काने सांठे की जड़ वा गौला चूसने योग्य नाहीं। और बीच की पेली पोरिया सो भी चूसी जायें नाहीं, कोई स्वाद का लोभी उस को विगाड़ो तो विगाड़े और जो उसको वोय दे, तो उस के बहुत सांठे होजायें। तिन का स्वाद बहुत मीठा आवै, तैसे मनुष्य पर्याय का बाल वृद्धपना तो सुख योग्य नाहीं, और बीच की अवस्था सो रोग क्लेशादिक कर युक्त तहां सुख होय नाहीं। कोई विषय सुख का लोभी इसको विगाड़ो तो विगाड़े। और जो इस को धर्म साधन विषे लगावै तो बहुत ऊंचा पद पावै। तहां सुख बहुत निराकुल पावै। इस लिये अपना हित

साधना इस मनुष्य जन्म को सुख होने का भ्रमकर वृथा न खोवना। और देव पर्याय विषे ज्ञानादिक की शक्ति कुछ औरन से विशेष है, सो उन में बहुत से तो मिथ्यात्व कर अतत्व श्रद्धानी ही होय रहे हैं। सो तिनकै कषाय कुछ मन्द है, परन्तु भवन वासी व्यन्तर ज्योतिषीन कै तो कषाय बहुत मन्द नाहीं है। और उपयोग तिनका बहुत चंचल है, और कुछ शक्ति भी है, सो कषायन के कार्यन विषे ही प्रवर्त्तै है। कौतुहलादि विषयादि कार्यन विषे ही लग रहे हैं। सो तिस आकुलता कर दुःखी ही हैं। और वैमानिकन कै ऊपर ऊपर विशेष मन्द कषाय है। और शक्ति भी विशेष है, सो आकुलता घटने से दुःख भी घटता है, यहां देवन कै क्रोध, मान, कषाय है, परन्तु कारण थोड़ा है, इस लिये तिन कै कार्यन की गौणता है, किसी का बुरा करना किसी को हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवन कै तो कौतुहलादिक कर होय है, और उत्कृष्ट देवन कै थोड़ा होय है मुख्यता नाहीं है। और माया लोभ कषायन के कारण पाइये है, इस लिये तिन कै कार्य की मुख्यता है। छल करना विषय सामग्री की चाह करनी इत्यादि कार्य विशेष होय हैं सो भी ऊंचे २ देवन कै थोड़े हैं। और हास्य रति कषाय के कारण घने पाइये हैं, इस लिये इन कार्यन की मुख्यता है। और रति, शोक, भय, जुगुप्सा, इन के कारण थोड़े हैं। इस लिये इन के कार्यन की गौणता है। और स्त्रीवेद पुरुषवेद का उदय है, और रमने का भी निमित्त है, सो काम सेवन करै है, यह भी कषाय ऊपर २ मन्द है। अहमिन्द्रन कै वेदन की मन्दता कर काम सेवन का अभाव है, इस प्रकार कर देवन कै कषाय भाव है, सो कषाय ही से दुःख है। और जिन के कषाय जितना

थोड़ा है, उतना ही दुःख भी थोड़ा है, इस लिये औरन की अपेक्षा इन को सुखी कहिये है, परन्तु
परमार्थ से कषायभाव दुःख ही है, और वेदनीय विषे साता का उदय है । तहां भवनत्रिक के थोड़ा है,
वैमानिकन के ऊपर २ विशेष है, इष्ट विषयन की अवस्था रची मकानादिक सामग्री का संयोग पाइये
है । और कदाचित् किञ्चित् असाता का भी उदय कोई कारण कर होय है, तहां निकृष्ट देवन के कुछ
प्रगट भी है, परन्तु उत्कृष्ट देवन के विशेष प्रगट नाहीं है और आयु बड़ी है । जघन्य दश हजार वर्ष
उत्कृष्ट तेतीस सागर है, इस से अधिक आयु का धारी मोक्षमार्ग पाये बिना होता नाहीं, सो इतने काल
विषय सुख में मग्न रहे हैं, और नाम कर्म की देवगति आदि सर्व पुण्यप्रकृति ही का उदय है, इस लिये
सुखका कारण है,और गोत्र विषे उच्चगोत्र ही का उदय है। इस लिये महंतपद को प्राप्त हैं। ऐसे इनकै पुण्य
उदय की विशेषता कर इष्ट सामग्री मिली है और कषायन कर इच्छा पाइये है । इस लिये सो भोगने
विषे आसक्त होय रहे हैं, परन्तु इच्छा अधिक ही रहे है, इस लिये सुखी होते नाहीं, ऊंचे देवन के
उत्कृष्ट पुण्य का उदय है, कषाय बहुत मन्द है । तथापि तिन के भी इच्छा का अभाव होता नाहीं । इस
लिये परमार्थ से दुःख ही है, ऐसे सर्वत्र संसार विषे दुःख ही दुःख पाइये है, ऐसे पर्याय अपेक्षा दुःख
वर्णन किया । अब इस सर्व दुःख का सामान्य रूप कहिये है, दुःख का लक्षण आकुलता है, सो आकु-
लता इच्छा होते होय है, सो इस संसारी के इच्छा अनेक प्रकार पाइये है । एक तो इच्छा विषय ग्रहण
की है । सो देखना जानना चाहै है । जैसे वर्ण देखने की राग सुनने की अव्यक्त को जानने की इत्यादि

इच्छा होय है, सो यहां अन्य कुछ पीड़ा नाहीं, परन्तु यावत् देखे जाने नाहीं, तावत् महा व्याकुल होय है, इस इच्छा का नाम विषय है। और एक इच्छा कषाय भावन के अनुसार कार्य करने की है, सो कार्य किया चाहे है, जैसे बुरा करने की हीन करने की इत्यादि इच्छा होय है, सो यहां भी अन्य कोई पीड़ा नाहीं है। परंतु यावत् वह कार्य न होय तावत् महा व्याकुल होय है। इस इच्छा का नाम कषाय है। और एक इच्छा पाप के उदय से शरीर विषे वा बाह्य अनिष्ट कारण मिलैं तब उन के दूर करने की होय है। जैसे रोग पीड़ा क्षुधा आदि का संयोग भये उन के दूर करने की इच्छा होय है। सो यहां वह पीड़ा माने है। यावत् वह दूर न होय तावत् महा व्याकुल रहे है । इस इच्छा का नाम पाप का उदय है। ऐसे यह तीन प्रकार की इच्छा होतैं सर्व ही दुःख माने हैं। सो दुःख ही है। और एक इच्छा बाह्य निमित्त बनने से होय है, इन तीन प्रकार इच्छान के अनुसार प्रवर्त्तने की इच्छा होय है । सो तीन प्रकार इच्छान विषे एक एक प्रकार की इच्छा अनेक प्रकार है। तहां कोई प्रकार इच्छा पूर्ण करने के कारण पुण्य के उदय से मिलैं और तिनका साधन युगपत् होय सके नाहीं । इस लिये एक को छोड़ अन्य को लागै फिर उसको छोड़ अन्य को लागै जैसे किसी को अनेक सामग्री मिली हैं। वह किसी को देखे है उसको छोड़ राग सुने है। उसको छोड़ किसी का बुरा करने लग जाय है। उसको छोड़ भोजन करे है। अथवा देखने विषे ही एक को देख अन्य को देखै है । ऐसे ही अनेक कार्यन की प्रवृत्ति विषे इच्छा होय है। सो इस इच्छा का नाम पुण्य का उदय है। इसको जगत् सुख माने है, सो सुख है नाहीं,

दुःख ही है। क्योंकि प्रथम तो सर्व प्रकार इच्छा पूर्ण होने के कारण किसी कै भी बनें नाहीं, और जो कदाचित् कोई प्रकार इच्छा पूर्ण होने के कारण बने भी तो युगपत् तिनका साधन होय सके नाहीं, इस लिये जब तक एक साधन न होय तब तक उसकी आकुलता रहे है। और उसका साधन भये उस ही समय अन्य के साधन की इच्छा होय है। तब उसकी आकुलता होय है। इस लिये एक समय भी निराकुल न रहे है, महा दुःखी ही रहे है। और जब इन तीन प्रकार इच्छा रोग मिटावनें का किंचित् उपाय करे है। तब किंचित् दुःख घटे है, परन्तु सर्व दुःख का तो नाश होता नाहीं, इस लिये दुःख ही है। ऐसे संसारी जीवन कै सर्व प्रकार दुःख ही है, यहां इतना और जानना। तीन प्रकार इच्छा कर सर्व जगत् पीड़ित ही है। और चौथी इच्छा तो पुण्य का उदय आये ही होय है। सो पुण्य का बन्ध धर्म्मानुराग से होय है। सो धर्म्मानुराग विषे जीव थोड़ा लागे है। जीव तो बहुत पाप क्रिया ही विषे प्रवर्त्ते है, इस लिये चौथी इच्छा कोई जीव कै कदाचित् काल विषे ही होय है। यहां इतना और जानना। जो सामान्य इच्छावान जीवन की अपेक्षा तो चौथी इच्छा वालों कै कुछ तीन प्रकार घटने से सुख कहिये है। और चौथी इच्छा वाले की अपेक्षा महान् इच्छा वाला चौथी इच्छा होतें भी दुःखी होय है, जैसे किसी कै बहुत विभूति है। और उसके इच्छा बहुत है, तो वह बहुत आकुलतावान है, और जिसके थोड़ी विभूति है, और इच्छा थोड़ी है। तो वह थोड़ा आकुलतावान है। अथवा किसी को अनिष्ट सामग्री मिले है, और उसके उसके दूर करने की इच्छा बहुत थोड़ी है। तो वह थोड़ा आकुलतावान है। और किसी कै इष्ट

सामग्री मिले है परन्तु तिसके उनके भोगने की वा अन्य सामग्री की इच्छा बहुत है, तो वह जीव घना आकुलतावान है। इस लिये सुखी दुःखी होना इच्छा के अनुसार जानना बाह्य कारण के आधीन नाहीं हैं। नारकी दुःखी और देव सुखी कहिये हैं। सो भी इच्छा की अपेक्षा कहिये हैं। क्योंकि नारकीन के तीव्र कषाय से इच्छा बहुत है। देवन के मन्द कषाय से इच्छा थोड़ी है, और मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दुःखी इच्छा ही की अपेक्षा जानने। तीव्र कषाय से जिस कै इच्छा बहुत है, तिस को दुःखी कहिये है। मन्द कषाय से जिस के इच्छा थोड़ी है, तिस को सुखी कहिये है। परमार्थ से दुःख ही घना थोड़ा है, सुख नाहीं है। देवादिक को भी सुखी मानिये है, सो भी भ्रम है, उन के चौथी इच्छा की मुख्यता है। इस लिय आकुलता है, इस प्रकार इच्छा होय है, सो मिथ्यात्व अज्ञान असंयम से होय है। और इच्छा है। सो आकुलतामय है, आकुलता है, सो दुःख ही है, ऐसे सर्व जीव संसारी नाना प्रकार दुःखन कर पीड़ित ही होय रहे हैं, अब जिन जीवन को दुःखन से छूटना होय सो इच्छा दूर करने का उपाय करो और इच्छा दूर तब ही होय है, जब मिथ्यात्व अज्ञान असंयम का अभाव होय। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र की प्राप्ति होय, इसलिये इस ही कार्य का उद्यम करना योग्य है। ऐसा कार्य करना कि जितनी २ इच्छा मिटै उतना २ ही दुःख दूर होता जाय, और जब मोह के सर्वथा अभाव से सर्व इच्छा का अभाव होय तब सर्व दुःख मिटै, सांचा सुख प्रगटे। और ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण, अंतराय का अभाव होय। तब इच्छा के कारण क्षयोपशम ज्ञान दर्शन की शक्ति का हीनपना तिस का भी अभाव होय, अनन्त

ज्ञान दर्शन वीर्य की प्राप्ति होय, और कितनेक काल पीछे अघाति कर्मन का भी अभाव होय तब इच्छा
के वाह्य कारण तिनका भी अभाव होय क्योंकि मोह गये पीछे कारणन विषे कुछ इच्छा उपजने को
सामर्थ्य रहती नाहीं। मोह होतैं कारण थे, इसलिये कारण कहे हैं। सो इनका भी अभाव भया तब सिद्ध
पद को प्राप्त होय है। तहां दुःख के कारण का सर्वथा अभाव होने से सदा काल अनोपम्य अखण्डित
सर्वोत्कृष्ट आनन्द सहित अनन्त काल विराजमान रहे है, सोई दिखाइये है, ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण
का क्षयोपशम होतैं, वा उदय होतैं, मोह कर एक २ विषय देखने जानने की इच्छा कर महा व्याकुल
होता था। सो अब मोह के अभाव से इच्छा का अभाव भया, इस लिये दुःख का भी अभाव भया
और ज्ञानावर्ण, दर्शनावर्ण का क्षय होने से सर्व इन्द्रियन को सर्व विषयन का युगपत् ग्रहण भया। इस
लिये दुःख का कारण भी दूर भया है। सो ही दिखाइये है। जैसे नेत्र कर एक विषय को देखा चाहे था,
अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक के सर्व वर्णन के विषै को युगपत् देखे है। कोई विना देखे रहा नाहीं, जिस के
देखने की इच्छा उपजे। ऐसे ही स्पर्शनादिक कर एक२ विषय को ग्रहा चाहे था। अब त्रिकालवर्ती त्रिलोक
के सर्व स्पर्श, रस, गन्ध, शब्दन को युगपत् ग्रहे है। कोई विना ग्रहा रहा नहीं। जिस को ग्रहण करने
की इच्छा उपजै –(यहां कोई कहै)– कि शरीरादिक विना ग्रहण कैसे होय –:(तिस का समाधान):–
इन्द्रियज्ञान होतैं तो द्रव्य इन्द्रियादिक विना ग्रहण न होता था। अब ऐसा स्वभाव प्रगट भया विना
इन्द्रिय ग्रहण होय है। यहां कोई ऐसा समझे कि जैसे मन कर स्पर्शादिक को जानिये है, तैसे जानना

होता होगा । और जैसे त्वचा जीभ आदिक कर ग्रहण होय है तैसे न होता होगा । तिस को कहिये
है। ऐसे नाहीं है । मन कर तो स्मरणादिक होतैं । कुछ अस्पष्ट जानना होय है, यहां तो स्पर्श रसादिक
को जैसे त्वचा जीभ इत्यादिक कर स्पर्शैं, स्वादै, सूंघै, देखै, सुनै, जैसा स्पष्ट जानना होय है। तिस से
भी अनन्त गुणा स्पष्ट जानना तिन कै होय है । विशेष इतना भया है । वहां इन्द्रिय विषय का
संयोग होतैं ही जानना होता था। यहां दूर रहे भी ऐसा ही जानना होय है, सो यह शक्ति की महिमा है,
और मन कर कुछ अतीत अनागत को वा अव्यक्त को जानना चाहे था। अब सर्व ही अनादि से अनन्त काल
पर्यंत जे सर्व पदार्थन के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तिन को युगपत् जाने है। कोई बिना जाने रहा नाहीं।
जिसके जानने की इच्छा उपजै ऐसे इन दुःख और सुख के कारण का तिन कै अभाव जानना। और मोह
के उदय से मिथ्यात्व कषाय भाव होते थे, तिन का सर्वथा अभाव भया, इस लिये दुःख का अभाव भया।
और इन के कारण का अभाव भया। इस लिये दुःख के कारण का भी अभाव भया है। सो कारण का
अभाव दिखाइये है, सर्व तत्त्व यथार्थ प्रतिभासै हैं, तब अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्व श्रद्धा कैसे होय, कोई
अनिष्ट रहा नाहीं। निन्दक स्वयमेव अनिष्ट पावैं ही हैं। आप क्रोध किस से करैं, सिद्धन से ऊंचा कोई
है नाहीं, इन्द्रादिक आप ही से नमैं हैं। इष्ट पावे हैं किस से मान करैं, सर्व भवितव्य भास गया, कोई
कार्य करना रहा नाहीं। किसी से प्रयोजन रहा नाहीं, काहे का लोभ करैं कोई अन्य इष्ट रहा नाहीं, किस
के अर्थ छल करैं। कोई आश्चर्यकारी वस्तु आप से छानी नाहीं, किस कारण से हास्य होय। कोई अन्य

इष्ट प्रीति करने योग्य नाहीं। किस से रति होय। कोई दुःख दायक संयोग रहा नाहीं किस से अरति करैं। कोई इष्ट अनिष्ट संयोग वियोग होता नाहीं, किस का शोक करैं। कोई अनिष्ट करने वाला कारण रहा नाहीं, किस का भय करैं, सर्व वस्तु अपना स्वभाव लिये भासे हैं, आप को अनिष्ट नाहीं किस से जुगुप्सा करैं। काम पीड़ा दूर होने से स्त्री पुरुष से रमने का कुछ प्रयोजन रहा नाहीं, क्योंकर पुरुष, स्त्री, नपुंसक, वेद रूप भाव होय। ऐसे मोह उपजने के कारणन का अभाव जानना। और अन्तराय के उदय से वा क्षयोपशम के हीनपने से शक्ति पूर्ण न होती थी। अब तिन का अभाव भया, सो दुःख का भी अभाव भया। और अनन्त शक्ति प्रगट भई। इस लिये दुःख के कारण का भी अभाव भया। —:(यहां कोई कहै):— दान, लाभ, भोग, उपभोग, यह कार्य तो करते नाहीं, इनकै शक्ति कैसे प्रगट भई॥ —:(तिस का समाधान):— यह कार्य तो रोग के इलाज थे, सो रोग ही रहा नाहीं, तब इलाज किसका करैं। इन कार्यन का सद्भाव तो है नाहीं। और इनको रोकनहारे कर्मन का अभाव भया। इस लिये शक्ति प्रगट कहिये है। जैसे कोई गमन किया चाहे था। उस को किसी ने रोका तब दुःखी भया, जब उसकै रोकना दूर भया और जिस कार्य के अर्थ गया चाहे था, सो कार्य रहा नाहीं। तब गमन भी न किया। और तब तिसकै गमन न करते भी शक्ति प्रगट कहिये है। तैसे ही यहां जानना, और ज्ञानादिक का शक्ति रूप अनन्तवीर्य प्रगट उन के पाइये है। और अघाति कर्मन विषे मोह से पाप प्रकृतिन के उदय होतैं दुःख माने था। पुण्यप्रकृति के उदय से सुख

माने था। परमार्थ से आकुलता कर सर्व दुःख ही था। अब मोह के नाश से सर्व आकुलता दूर होय गई
दुःख का नाश भया। और जिन कारणान कर दुःख माने था। सो कारण तो सर्व नष्ट भये और जिनकर
किंचित् दुःख दूर होने से सुख माने था। सो अब मूल ही मैं दुःख रहा नाहीं। इस लिये तिन दुःखन के
इलाज करने का भी कुछ प्रयोजन रहा नाहीं। जो तिन कर कार्य सिद्धि करिये। और तिसकी स्वयमेव
ही सिद्धि होय रही है। इस ही को विशेष दिखाइये है। वेदनीय विषे असाता के उदय से दुःख के कारण
शरीर विषे रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही रहा नाहीं तब क्या होय। और शरीर को अनिष्ट
अवस्था के कारण आतापादिक थे। सो अब शरीर बिना किस को कारण होयें। और बाह्य अनिष्ट
निमित्त बने था। सो अब इन के अनिष्ट रहा ही नाहीं, ऐसे दुःख के कारण का तो अभाव भया। और
साता के उदय से किंचित् दुःख मेटने के कारण औषधि भोजनादिक थे। तिनका प्रयोजन रहा नाहीं।
और इष्ट कार्य पराधीन रहा नाहीं। इस लिये बाह्य भी मित्रादिक को इष्ट मानने का प्रयोजन रहा
नाहीं। इन कर दुःख मेटा चाहे था, इष्ट किया चाहे था, सो अब सम्पूर्ण दुःख नष्ट भया
और सम्पूर्ण इष्ट पाया। और आयु के निमित्त से मरण जीवन था। तहां मरण का दुःख माने था,
सो अविनाशी पद पाया इस लिये दुःख का कारण रहा नाहीं। और द्रव्य प्राणन को धरे कितनेक काल
जीवने से सुख माने था। तहां भी नरक पर्याय विषे दुःख की विशेषता कर तहां जीवना न चाहे था।
सो अब सिद्ध पर्याय विषे द्रव्य प्राण बिना ही। अपने चैतन्य प्राण कर सदा काल जीवै है। और तहां

दुःख का लवलेश भी रहा नाहीं, और नाम कर्म से अशुभ गति जाति आदि होते दुःख माने था, सो अब तिन सबन का अभाव भया दुःख काहे से होय। और शुभ गति जाति आदि होतैं किञ्चित् दुःख दूर होने से सुख माने था। सो अब तिन विना ही सर्व्व दुःख का नाश और सर्व्व सुख का प्रकाश पाइये है। इस लिये तिन का भी कुछ प्रयोजन रहा नाहीं। और गोत्र के निमित्त से नीच कुल पाये दुःख माने था, सो तिस का अभाव होने से दुःख का कारण रहा नाहीं। और उच्च कुल पाने से सुख माने था, सो अब उच्च कुल विना ही त्रिलोक पूज्य उच्च पद को प्राप्त है, इस प्रकार सिद्धन कै सर्व्व कर्म के नाश होने से सर्व दुःख का नाश भया है, दुःख का तो लक्षण आकुलता है, सो आकुलता तब ही होय है, जब इच्छा होय है। सो इच्छा का वा इच्छा के कारणन का सर्व्वथा अभाव भया। इस लिये निराकुल होय, सर्व दुःख रहित अनन्त सुख को अनुभवै है, क्योंकि निराकुल पना ही सुख का लक्षण है। संसार विषे कोई प्रकार निराकुल होय तब ही सुख मानिये है। जहां सर्वथा निराकुल भया तहां सुख सम्पूर्ण कैसे मानिये। इस प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधन से सिद्ध पद पाये सर्व दुःख का भाव होय है। सर्व सुख प्रगट होय है। अब यहां उपदेश दीजिये है, हे भव्य! हे भाई तुझ को संसार के दुःख दिखाये सो तुझ विषे बीते हैं कि नाहीं। सो विचार और जो तू उपाय करे है, सो झूठे दिखाये सो

ऐसे ही है, कि नाहीं। और सिद्ध पद पाये सुख होय है, कि नाहीं, सो विचार देख जो तेरे जैसे कहिये है, तैसे ही प्रतीति आवै है तो तू संसार से छूट सिद्ध पद पावने का हम उपाय कहैं हैं। सो कर विलम्ब मत करै, यह उपाय कीये तेरा कल्याण होगा॥

इति श्री मोक्षमार्गप्रकाश नाम ग्रन्थ विषे संसार दुःख का वा मोक्ष सुख का निरूपक तृतीयोऽधिकार सम्पूर्ण भया ॥ ३ ॥

दोहा—इस भव के सब दुःखन को, कारण मिथ्या भाव। तिन को सत्यानाश कर प्रगटै मोक्ष उपाव ॥ १ ॥

अब यहां संसारी दुःखन के बीज भूत मिथ्या दर्शन मिथ्या ज्ञान मिथ्या चारित्र हैं, तिन का स्वरूप विशेष निरूपण कीजिये है। जैसे वैद्य है सो रोग के कारणन का विशेष कहै, और कुपत्थ सेवन का निषेध करै, तो रोगी कुपत्थ सेवन न करै, तब रोग रहित होय, तैसे ही यहां संसार के कारणन का विशेष निरूपण कीजिये है। जब यह संसारी मिथ्यात्वादिक का सेवन न करै, तब ही संसार रहित होय है। इस लिये मिथ्या दर्शनादिकन का विशेष कहिये है। यह जीव अनादि से कर्म्म सम्बन्ध सहित है, इस कै दर्शनमोह के उदय से भया जो अतत्वश्रद्धान तिस का नाम मिथ्या दर्शन है। क्योंकि तद्भाव तत्व

तिस का नाम तत्व है। मिथ्या दर्शन तत्व
जो श्रद्धान करने योग्य अर्थ है, तिस का जो भाव स्वरूप तिस का नाम तत्व है। इस लिये इस ही का नाम मिथ्यात्व
नाहीं, तिस का नाम अतत्व है, सो अतत्व है, सो असत्य है, इस लिये इस ही का नाम दर्शन है,
है, और ऐसे ही यह है ऐसा प्रतीति भाव तिस का नाम श्रद्धान है। यहां श्रद्धान ही का नाम दर्शन है,
यद्यपि दर्शन का नाम अर्थ सामान्य अवलोकन है, तथापि यहां प्रकर्ण के वश से इस ही धातु का अर्थ
श्रद्धान जानना। सो ऐसे ही सर्वार्थ सिद्ध नाम सूत्र की टीका विषे कहा है, क्योंकि सामान्य अवलोकन
से संसार मोक्ष का कारण होय नाहीं, श्रद्धान ही संसार मोक्ष का कारण है, इस लिये संसार मोक्ष का
कारण विषे दर्शन का अर्थ श्रद्धान ही जानना, और मिथ्या रूप जो दर्शन कहिये श्रद्धान तिस का नाम
मिथ्या दर्शन है, जैसे वस्तु का स्वभाव रूप नाहीं तैसे मानना, जैसे है तैसे न मानना, ऐसा विपरीताभि-
निवेश कहिये विपरीत अभिप्राय तिस को लिये मिथ्या दर्शन होय है। —:(यहां प्रश्न):— जो केवल ज्ञान
बिना सर्व पदार्थ यथार्थ भासे नाहीं। यथार्थ भासे बिना यथार्थ श्रद्धान होय नाहीं, इस लिये मिथ्या दर्शन
का त्याग कैसे बने। —:(तिस का समाधान):— पदार्थन का जानना न जानना अन्यथा जानना तो ज्ञाना-
वर्ण के अनुसार है, और प्रतीति होय है, सो जाने ही होय है, बिना जाने प्रतीति कैसे आवै। यह तो सत्य
है, परन्तु जैसे पुरुष है, सो जिन से प्रयोजन नाहीं, तिन को अन्यथा जाने वा यथार्थ जाने और जैसे जाने
तैसे ही माने कुछ उस का बिगाड़ सुधार नाही है। इस लिये बावला स्याना नाम पावे नाहीं, और जिन
से प्रयोजन पाइये है, तिन को जो अन्यथा जाने, और तैसा ही माने तो बिगाड़ होय, इस लिये उसको

वावला कहिये है, और जिन को जो यथार्थ जाने, और तैसो ही माने, तो सुधार होय, इस लिये उस को स्याना कहिये है। तैसे ही यह जीव है, सो जिन से प्रयोजन नाहीं, तिन को अन्यथा जाने और जैसे जाने तैसे श्रद्धान करे, कुछ इस का विगाड़ सुधार नाहीं है। इसलिये मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि नाम पावै नाहीं, और जिन से प्रयोजन पाइये है, तिन को जो अन्यथा जाने, और तैसे ही श्रद्धा न करे तो विगाड़ होय है। इस लिये इस को मिथ्या दृष्टि कहिये है। और तिन को जो यथार्थ जाने, और तैसे ही श्रद्धान करे तो सुधार होय। इस लिये इस को सम्यग्दृष्टि कहिये है, यहां इतना और जानना, अप्रयोजन भूत वा प्रयोजन भूत पदार्थन का जानना, वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होय। तिस में ज्ञान का अधिक होना हीन होना इतना तो जीव का विगाड़ सुधार है, तिस का निमित्त तो ज्ञानावर्ण कर्म है। और जहां प्रयोजन भूत पदार्थन को अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किये जीव का कुछ और भी विगाड़ सुधार होय है। इस लिये इस का निमित्त दर्शन मोह नाम कर्म है, यहां कोई कहे जैसा जाने तैसा श्रद्धान करे। इस लिये ज्ञानावर्ण ही के अनुसार श्रद्धान भासै है। यहां दर्शन मोह का विशेष निमित्त कैसे भासै

—:(तिस का समाधान):—

प्रयोजन भूत जीवादिक तत्त्वन का श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावर्ण का क्षयोपशम तो सर्व संज्ञी पञ्चेन्द्रियन के भया है, परन्तु द्रव्य लिंगी मुनि ग्यारह अंग पर्यन्त पढ़ैं। वा ग्रीवक के देव अवधिज्ञान संयुक्त हैं। तिन के ज्ञानावर्ण का क्षयोपशम बहुत होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिक का श्रद्धान न होय है। और तिर्यंचादिक के ज्ञानावर्ण का क्षयोपशम

थोड़ा होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिक का श्रद्धान होय है, इस लिये जानिये है कि ज्ञाना वर्ण ही के अनुसार श्रद्धान नाहीं। कोई जुदा कर्म्म है, सो दर्शन मोह है, इस के उदय से जीव के मिथ्यादर्शन होय है, तब प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वन का अन्यथा श्रद्धान होय है। —:(यहां कोई पूछे):— कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन हैं। —:(तिस का समाधान):— इस जीव के प्रयोजन तो एक यह ही है। दुःख न होय सुख होय। अन्यथा कुछ कोई भी इस जीव के प्रयोजन है नाहीं और दुःख का न होना सुख का होना एक ही है। क्योंकि दुःख का अभाव सोही सुख है। सो इस प्रयोजन की सिद्धि जीवादिक का सत्य श्रद्धान किये होय है। कैसे है, सो कहिये है। प्रथम तो दुःख दूर करने विषे आपा पर का ज्ञान अवश्य चाहिये। जो आपा पर का ज्ञान न होय, तो आप को पहिचाने बिना आप का दुःख दूर कैसे करे। अथवा आपा पर को एक जान अपना दुःख दूर करने के अर्थ पर का इलाज करे, तो अपना दुःख दूर कैसे होय। अथवा आपा पर भिन्न और यह पर विषे अहंकार ममकार करे तो दुःख ही होय इस लिये आपा पर का ज्ञान भए ही दुःख दूर होय है, और आपा पर का ज्ञान जीव अजीव का ज्ञान भये ही होय है। क्योंकि आप जीव है, शरीरादिक अजीव है, जो लक्षणादिक कर जीव अजीव की पहिचान होय, तो आपा पर का भिन्नपना भासे। इस लिये जीव अजीव को जानना। अथवा जीव अजीव का ज्ञान भये जिन पदार्थन का अन्यथा श्रद्धान होतैं दुःख होता था, तिन का यथार्थ ज्ञान होने से दुःख दूर होय है। इस लिये जीव अजीव को जानना। और दुःख का

कारण तो कर्म बन्धन है। और तिस का कारण मिथ्यात्वादिक आश्रव है। सो इन को न पहिचाने। इन को दुःख का मूल कारण न जाने, तो इन का अभाव कैसे करै। और इन का अभाव न करै, तब कर्म्म बन्ध कैसे न होय। इस लिये तब दुःख ही होय। अथवा मिथ्यात्वादिक भाव हैं, सो दुःखमयी हैं। सो इन को जैसे के तैसे न जाने तो इन का अभाव न करै। तब दुःखी ही रहै, इस लिये आश्रव को जानना। और समस्त दुःख का कारण कर्म्म बन्धन है, सो इस को न जानै तब इस से मुक्त होने का उपाय न करै, तब उस के निमित्त से दुःखी होय। इस लिये बन्ध को जानना, और आश्रव का अभाव करना सो सम्वर है। इस का स्वरूप न जाने तो इस विषे न प्रवर्त्तैं। तब आश्रव ही रहै। सो वर्त्तमान वा आगामि दुःख ही होय, इस लिये सम्वर को जानना, और कथंचित् किञ्चित् कर्म्म बन्ध का अभाव करना तिस का नाम निर्ज्जरा है। सो इस को न जाने तब इस की प्रवर्त्ति का उद्यमी न होय। तब सर्वथा बन्ध ही रहै। तब दुःख ही होय। इस लिये निर्ज्जरा को जानना, और सर्वथा सर्व्व कर्म्म बन्ध का अभाव होना, तिस का नाम मोक्ष है। सो इस को न पहिचाने तो इस का उपाय न करै तब संसार विषे कर्म्म बन्ध से निपजे दुःखन ही को सहे। इस लिये मोक्ष को जानना। ऐसे जीवादि सप्त तत्व प्रयोजनभूत जानने। और शास्त्रादिक कर कदाचित् तिन को जाने और ऐसे ही है। ऐसी प्रतीति न आवे तो जाने क्या होय। इस लिये तिन का श्रद्धान करना कार्यकारी है। ऐसे जीवादि तत्व का सत्य श्रद्धान किये ही दुःख होने का अभाव रूप प्रयोजन की सिद्धि होय है। इस लिये जीवादि पदार्थ हैं, सो ही प्रयोजन भूत जानने

और इन के विशेष भेद पुण्य पापादिक रूप तिन का भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है। क्योंकि सामान्य से विशेष बलवान् है। ऐसे यह पदार्थ तो प्रयोजन भूत है। इस लिये इन को यथार्थ श्रद्धान किये तो दुःख न होय सुख ही होय। और इन के यथार्थ श्रद्धान किये विना दुःख होय है। सुख न होय है, और इन विना अन्य पदार्थ हैं, सो अप्रयोजन भूत हैं। क्योंकि तिन को यथार्थ श्रद्धान करो वा मत करो उन का श्रद्धान कुछ सुख दुःख का कारण है नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो पूर्वे जीव अजीव पदार्थ कहे तिन विषे तो सर्व्व पदार्थ आगये, तिन विना अन्य पदार्थ कौन से रहे। जिन को अप्रयोजन भूत कहे। —:(तिस का समाधान):— पदार्थ तो सर्व जीव, अजीव विषे गर्भित हैं। परन्तु तिन जीव अजीव के विशेष बहुत हैं। तिन विषे जिन २ विशेषण कर सहित जीव अजीव का यथार्थ श्रद्धान किये स्वपर का श्रद्धान होय। रागादिक दूर करने का श्रद्धान होय, तिस से सुख उपजे। और अयथार्थ श्रद्धान किये स्वपर का श्रद्धान न होय रागादिक दूर करने का श्रद्धान न होय, तिस से दुःख उपजे। इस लिये तिन का विशेषण कर सहित तो जीव अजीव पदार्थ प्रयोजन भूत जानने। और जिन विशेषण कर सहित जीव अजीव को यथार्थ श्रद्धान किये स्व पर का श्रद्धान होय वा न होय। और रागादिक दूर करने का श्रद्धान होय वा न होय कुछ नियम नाहीं। तिन विशेषन कर सहित जीव अजीव पदार्थ अप्रयोजनभूत जानने। जैसे जीव और शरीर का चैतन्य मूर्त्तत्वादि विशेषण कर श्रद्धान करना तो प्रयोजनभूत है। और मनुष्यादि पर्यायन का वा घट पटादिक की अवस्था आकारादि विशेषण कर श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है।

ऐसे ही अन्य जानने। इस प्रकार प्रयोजनभूत। जीवादि तत्वन का अयथार्थ श्रद्धान तिस का नाम मिथ्या दर्शन जानना।

अब संसारी जीवन कै मिथ्यादर्शन की प्रवृत्ति कैसे पाइये है सो कहिये है। यहां वर्णन तो श्रद्धान करावने के अर्थ है, परन्तु जाने तब श्रद्धान करै, इस लिये जानने की मुख्यता कर वर्णन करिये है। अनादि से जीव है, सो कर्म के निमित्त से अनेक पर्याय धरे है, तहां पूर्व पर्याय को छोड़ नवीन पर्याय धरे और वह पर्याय है, सो एक तो आप आत्मा और अनन्त पुद्गल परमाणुमय शरीर तिन का एक पिण्ड बंधानरूप है, और जीव कै तिस पर्याय विषे यह मैं हूं, ऐसी अहं बुद्धि होय है। और आप जीव है, तिस का स्वभाव तो ज्ञानादिक है। और विभाव क्रोधादिक हैं, और पुद्गल परमाणुन के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि स्वभाव हैं। तिन सबन को अपना स्वरूप माने है, कि यह मेरे है, ऐसे मम बुद्धि होय है, और आप जीव है तिस को ज्ञानादिक की वा क्रोधादिक की अधिक हीनतारूप अवस्था होय है, और पुद्गल परमाणुन की वर्णादिक पलटने रूप अवस्था होय है। तिन सबन को अपनी अवस्थारूप माने है, कि यह मेरी अवस्था है। ऐसे मम बुद्धि करै है, और जीव कै और शरीर कै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। इस लिये जो क्रिया होय है। तिस को अपनी माने है। अपनादर्शन ज्ञान स्वभाव है, तिस की प्रवृत्ति को निमित्तमात्र शरीर का अंगरूप स्पर्शादि द्रव्य इन्द्रिय हैं। यह तिन को एक मान ऐसे माने है, कि हस्तादि स्पर्श कर मैं स्पर्शा, जीभ कर चाखा, नासिका कर सूंघा, नेत्रन कर देखा, कानन कर सुना,

ऐसे माने है। मनोवर्गणा रूप आठ पांखड़ी का फूला कमल के आकार हृदय स्थान विषे द्रव्य मन है, दृष्टि गम्य नाहीं। ऐसा है सो शरीर का अंग है, तिस का निमित्त भये स्मरणादि रूप ज्ञान की प्रवृत्ति होय है, यह द्रव्य मन को और ज्ञान को एक मान ऐसे माने है, कि मैं मन कर जाना, और अपने बोलने की इच्छा होय है। तब अपने प्रदेशन को जैसे बोलना बने तैसे ही हिलावै। तब एक क्षेत्रावगाह संबन्ध से शरीर के अङ्ग भी हालैं तिस के निमित्त से भाषा वर्गणा रूप पुद्गल वचन रूप परिणमैं, यह सब को एक मान ऐसे माने कि मैं बोलूं हूं, और अपने गमनादिक क्रिया की वा वस्तु ग्रहणादिक की इच्छा होय तब अपने प्रदेशन को जैसे कार्य बने तैसे हिलावै, तब एक क्षेत्रावगाह से शरीर के अङ्ग हिलैं, तब वह कार्य्य बनै अथवा अपनी इच्छा बिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालैं, यह सब को एक मान ऐसे माने है, कि मैं गमनादि कार्य करूं हूं, वा वस्तु ग्रहण करूं हूं, वा मैं क्रिया इत्यादि रूप माने है। और जब जीव कै कषाय भाव होय है, तब शरीर की तिस के अनुसार चेष्टा हो जाय है, जैसे क्रोधादिक भये रक्त नेत्रादिक हो जाय हैं। हास्यादि भये प्रफुल्लित वदनादि हो जाय है, पुरुष वेदादि भये लिंग विकारादि हो जाय है। यह सब को एक मान ऐसे माने है, कि यह कार्य सब मैं करूं हूं, और शरीर विषे शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा, रोग आदि अवस्था होय है, तिस के निमित्त से मोह भाव कर आप सुख दुःख माने है इन सबन को एक जान, शीतादिक को वा सुख दुःख को अपने ही भये माने है, और शरीर के परमाणु तिन का मिलना विछुड़नादि होने कर, वा तिन की अवस्था पलटने कर, वा शरीर स्कंध का खण्डादि होने कर, स्थूल

कषायादिक वा बाल वृद्धादि कर वा हीन अंगादिक होय हैं, और तिसके अनुसार अपने प्रदेशन का संकोच विस्तार होय है। इन सबन को एक मान ऐसा माने है, कि मैं स्थूल हूं, मैं कृष हूं, मैं बालक हूं, मैं वृद्ध हूं, मेरे इन अंगन का भंग भया है, इत्यादि रूप माने है। और शरीर अपेक्षा गति कुलादि होय हैं, तिन को अपने माने है, कि मैं मनुष्य हूं, मैं तिर्य्यंच हूं, मैं वैश्य हूं, मैं क्षत्रिय हूं, इत्यादि रूप माने हैं। और शरीर संयोग होने, छूटने की अपेक्षा जन्म मरण होय है, तिन को अपना जन्म मरण मान है, मैं उपजा, मैं मरूंगा ऐसा माने है। और शरीर ही की अपेक्षा अन्य वस्तुन से नाता माने है। जिन कर शरीर निपजा तिन को आप के माता पिता माने है, जो शरीर को रमावे तिस को अपनी रमणी जाने है। जो शरीर कर निपजा तिस को पुत्र माने है, जो शरीर का उपकारी तिसको अपना मित्र माने है। जो शरीर का बुरा करे है, तिस को शत्रु माने है, इत्यादि रूप मान होय है। बहुत क्या कहिये, जिस तिस प्रकार कर आप और शरीर को एक ही माने है। इत्यादिक का नाम तो यहां कहा है। इस को तो कुछ गम्य नाहीं। अचेत हुवा पर्याय विषे अहं बुद्धि धारे है, सो कारण क्या है, सो कहिये है। इस आत्मा के अनादि से इन्द्रिय ज्ञान है, तिस कर आप अमूर्त्तीक है, सो तो भासे नाहीं। और शरीर मूर्त्तीक है, सोही भासे है। और आत्मा किसी को आप जान अहं बुद्धि धारे है, सो आप जुदा न भासा तब तिन का समुदाय रूप पर्याय विषे ही अहं बुद्धि धारे है। और आपके और शरीर के निमित्त नैमित्तक संबन्ध घना है, तिस कर भिन्नता भासे नाहीं। और जिस विचार

कार भिन्नता भासे सो मिथ्या दर्शन के बल से होय सके नाहीं। इस लिये पर्याय ही विषे अहं बुद्धि पाइये है, और मिथ्या दर्शन कर यह जीव कदाचित् बाह्य सामग्री का संयोग होतैं तिन को भी अपने माने है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी, घोड़े, मन्दिर, किंकरादिक प्रत्यक्ष आप से भिन्न और सदा काल अपने आधीन नाहीं। ऐसे आप को भासे तौभी तिन विषे ममकार करै है। पुत्रादिक विषे यह हैं सो मैं ही हूं, ऐसे भी कदाचित् भ्रम बुद्धि करै है, और मिथ्यादर्शन से शरीरादिक का स्वरूप अन्यथा ही भासे है। अनित्य को नित्य माने है, भिन्न को अभिन्न माने है, दुःख के कारण को सुख का कारण कहै है। दुःख को सुख माने है। इत्यादि विपरीत भासे है। ऐसे जीव अजीव तत्वन का अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान होय है, और इस जीव के मोह के उदय से मिथ्यात्व कषायादिक भाव होय हैं। तिन को अपना स्वभाव माने है। कर्म्म उपाधि से भये न जाने है। दर्शन ज्ञानोपयोग और यह आश्रव भाव तिन को एक माने है, क्योंकि इन का आधारभूत तो एक आत्मा है। और इन का परिणमन एकै काल होय है, इसलिये इनका भिन्नपना न भासे है। और भिन्नपना भासने का कारण जो विचार है, सो मिथ्यादर्शन के बल से होय सके नाहीं। और यह मिथ्यात्व कषाय भाव आकुलता लिये हैं, इसलिये वर्त्तमान दुःखमय हैं। और कर्म्म बन्ध के कारण हैं। इस लिये आगामि दुःख उपजावेंगे तिन को ऐसे न माने है, आप भला जान इन भावन रूप होय प्रवर्त्तै है, और यह दुःखी तो अपने इन मिथ्यात्व कषाय भावन से होय है, और वृथा ही औरन को दुःख उपजावन हारे माने है, जैसे दुःखी तो मिथ्या

श्रद्धान से होय है, और अपने श्रद्धान के अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्त्तै तिस को दुःखकदायक माने है, और दुःखी तो क्रोध से होय है, और जिस से क्रोध किया होय तिस को दुःखदायक माने है, दुखी तो लोभ से होय है, और इष्ट वस्तु की अप्राप्ति को दुःखदायक माने है। ऐसे ही अन्यत्र जानना। और इन भावन का जैसा फल लगेगा तैसा न भासे है। इन की तीव्रता कर नरकादिक होय है, मंदता कर स्वर्गादिक होय है, तहां घनी थोड़ी आकुलता होय है, सो भासे नाहीं। इस लिये बुरा न लागे हैं, कारण क्या है, यह आप के किये भासे तिन को बुरे कैसे मानै, और जैसे आश्रव तत्व का अयथार्थ ज्ञान होने से अयथार्थ श्रद्धान होय है, और इन आश्रव भावन कर ज्ञानावर्णादिक कर्मन का बंध होय है। तिन का उदय होतें ज्ञान दर्शन का हीनपना होना मिथ्यात्व कषाय रूप परिणमन चाहा न होना, दुःख का कारण मिलना शरीर संयोग रहना। गति जाति शरीरादिक का निपजना। नीचा ऊंचा कुल पावना है। सो इन के होने विषे मूल कारण कर्म है, तिस को तो पहिचाने नाहीं। क्योंकि वह सूक्ष्म है इस को सूझता नाहीं। और आप को इन कार्यन का कर्त्ता दीखै नाहीं, इस लिये इन के होने विषे कै तो आप को कर्त्ता माने के किसी और को कर्त्ता माने, और आप का वा अन्य का कर्त्तापना न भासे, तो गहल रूप होय, भवितव्य माने है, ऐसे बंध तत्व का अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान होय है। और आश्रव का अभाव होना सो संवर है। जो आश्रव को यथार्थ न पहिचाने तो संवर का यथार्थ श्रद्धान कैसे होय। जैसे किसी के अहित आचरण है उस को वह अहित न भासे, तो तिस के अभाव को हित रूप कैसे माने। जैसे

जीव के आश्रव की प्रवृत्ति है, उस को यह अहित न भासे, तो तिस के अभावरूप सम्बर को कैसे हित माने, और अनादि से इस जीव के अश्राव भाव ही भया संबर कभी भी न भया। इस लिये संवर का होना भासै नाहीं, संबर होतैं सुख होय है, सो भासै नाहीं, संबर से आगामि दुःख न होसी, सो भासै नाहीं। इस लिये आश्रव का तो संवर करै नाहीं, और तिन अन्य पदार्थन को दुःखदायक माने है। तिन ही के न होने का उपाय करै है। सो अपने आधीन नाहीं। वृथा ही खेद खिन्न होय है, ऐसे संबर तत्व का अयथार्थ ज्ञान होतैं यथार्थ अश्रद्धान होय है, और बंध का एक देश अभाव होना सो निर्जरा है। जो वंध को यथार्थ न पहिचाने तिस के निर्जरा का यथार्थ श्रद्धान कैसे होय। जैसे भक्षण किया हुआ विषपानादिक से दुःख होता न जाने, तो तिसके उगाल के उपाय को कैसे भला जाने। तैसे बंधन रूप किये कर्म्मन से दुःख होता न जाने, तो तिस निर्जरा के उपाय को कैसे भला जाने। और इस जीव के इंद्रियन से सूक्ष्म रूप जे कर्म्म तिन का तो ज्ञान होता नाहीं, और तिन विषे दुःख के कारणभूत शक्ति है, तिसका ज्ञान नाहीं, इस लिये अन्य पदार्थन ही के निमित्त को दुःख दायक जान तिन के अभाव करने का उपाय करै है। सो अपने आधीन नाहीं। और कदाचित् दुःख दूर करने के निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्म्म के अनुसार बनै है, इस लिये तिनका उपाय कर वृथा ही खेद करै है। ऐसे निर्जरातत्व का अयथार्थ ज्ञान होतैं, अयथार्थ श्रद्धान होय है, और सर्व कर्म्म बन्धका अभाव तिसका नाम मोक्ष है। जो बन्ध को बन्ध जनित सर्व दुःख को नहीं पहिचाने तो तिसके मोक्ष का यथार्थ श्रद्धान

कैसे होय, जैसे किसीकै रोग है, वह तिस रोगको रोगजनित दुःखन को न जाने तो सर्वथा रोगके अभाव को कैसे भला जाने, और इस जीव कै कर्म्म का वा तिनकी शक्ति का तो ज्ञान नाहीं। इस लिये वाह्य कारण को दुःख का कारण जान तिन के सर्वथा अभाव करने का उपाय करै है। और यह जाने है, कि सर्वथा दुःख दूर होने का कारण इष्ट सामग्री है, तिस के मिलाप से सर्वथा सुख होवेगा, सो कदाचित् होय सके नाहीं। यह वृथा ही खेद करै है। ऐसे मिथ्यादर्शन से मोक्ष तत्व का अयथार्थ ज्ञान होने से अयथार्थ श्रद्धान होय है। इस प्रकार मिथ्यादर्शन से यह जीव जो सप्ततत्व जीवादिक प्रयोजनभूत हैं, तिन को अयथार्थ श्रद्धान करै है। और पुण्य पाप हैं, सो इनके विशेष हैं। यद्यपि पुण्य पापन की एक जाति है, तथापि यह संसारी मिथ्यादर्शन के निमित्त से पुण्यको भला जाने है। पाप को बुरा जाने है। पुण्य कर अपनी इच्छा के अनुसार किंचित् कार्य बने है, तिस को भला जाने है। पाप कर इच्छा के अनुसार कार्य न बने तिस को बुरा जाने है। सो दोनों ही आकुलता के कारण हैं। इस लिये बुरे ही हैं। और यह अपनी मान से तहां सुख दुःख माने है। परमार्थ से जहां आकुलता है तहां दुःख ही है। इसलिये पुण्य पाप के उदय को भला बुरा जानना भ्रम ही है। और कोई जीव कदाचित् पुण्य पाप के कारण जे शुभ अशुभ भाव तिन को भले बुरे जाने है, सो भी भ्रम है। क्योंकि दोनों ही कर्म्म बन्धन के कारण हैं। ऐसे पुण्य पाप का अयथार्थ ज्ञान होतैं, अयथार्थ श्रद्धान होय है। इस प्रकार अतत्व श्रद्धानरूप

मिथ्यादर्शन का स्वरूप कहा यह असत्यरूप है, इस लिये इस ही का नाम मिथ्यात्व है। और यह सत्य श्रद्धान से रहित है। इसलिये इस ही का नाम अदर्शन है॥

॥ अब मिथ्याज्ञान का स्वरूप कहिये है ॥

प्रयोजनभूत जीवादि तत्वन का अयथार्थ जानना तिसका नाम मिथ्या ज्ञान है। तिस कर तिन के जानने विषे संशय विपर्य्यय अनध्यवसाय होय है। तहां ऐसे है, कि ऐसे है, ऐसा जो परस्पर विरुद्धता लिये दोनों रूप ज्ञान तिसका नाम संशय है। जैसे मैं आत्मा हूं, कि शरीर हूं, ऐसा जानना और ऐसे ही है ऐसा वस्तु स्वरूप से विरुद्धता लिये, एक रूप ज्ञान तिस का नाम विपर्य्यय है। जैसे मैं शरीर हूं, ऐसा जानना। और कुछ है ऐसा निर्द्धार रहित विचार तिसका नाम अनध्यवसाय है। जैसे मैं कोई हूं, ऐसा जानना, इस प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्वन विषे संशय विपर्य्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय तिस का नाम मिथ्याज्ञान है। और अप्रयोजनभूत पदार्थन को यथार्थ जाने तिस की अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाहीं है। जैसे मिथ्यादृष्टि जेवरी को जेवरी जाने तो सम्यग्ज्ञान नाम नाहीं होय है। और सम्यग्दृष्टि जेवरी को सांप जाने तो मिथ्याज्ञान नाम न होय है। —:(यहां प्रश्न):— प्रत्यक्ष सांचे झूठे ज्ञान को मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कैसे न कहिये। —:(तिस का समाधान):— जहां जानने ही का सांच झूठ निर्द्धार करने का प्रयोजन होय, तहां तो कोई ही पदार्थ होय तिस ही को

सांचा झूठा जानने की अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावै है। जैसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के वर्णन विषे कोई पदार्थ होय तिस को सांचा जानने का रूप सम्यग्ज्ञान ग्रहण किया है। संशयादिक रूप जानने को अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कहिये है। और यहां संसार मोक्ष के कारणभूत सांचा झूठा जानने का निर्द्धार करना है, सो जेवरी सर्प्पादिक का यथार्थ वा अन्यथा ज्ञान संसार मोक्ष का कारण नाहीं। इस लिये तिन की अपेक्षा यहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कहिये है। यहां तो प्रयोजनभूत जीवादिक तत्वन ही के जानने की अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कहा है। इस ही अभिप्राय कर सिद्धान्त विषे मिथ्या दृष्टि का तो सर्व जानना मिथ्याज्ञान ही कहा। सम्यग्दृष्टि का सर्व जानना सम्यग्ज्ञान कहा है। —:(यहां प्रश्न):— जो मिथ्या दृष्टि कै जीवादि तत्व का अयथार्थ जानना है तिस को मिथ्याज्ञान कहो। जेवरी सर्प्पादिक के यथार्थ जानने को तो सम्यग्ज्ञान कहो। —:(तिसका समाधान):— मिथ्यादृष्टि जानै है, तहां उसके सत्त असत्त का विशेष नाहीं, इस लिये कारण विपर्यय वा स्वरूप विपर्यय वा भेदाभेद विपर्यय को उपजावै है। तहां तिस को जानै है, तिस के मूल कारण को नहीं पहिचानै है। अन्यथा कारण मानै सो कारण विपर्यय है, और तिस को जानै तिसका मूल वस्तु तत्वस्वरूप तिस को नहीं पहिचानै अन्यथा स्वरूप मानै सो स्वरूप विपर्यय है। और जिसको जानै तिस को यह इन से भिन्न है ऐसा नहीं पहिचानै, अन्यथा भिन्न अभिन्नपना मानै, सो भेदाभेद विपर्यय है। ऐसे मिथ्यादृष्टि के जानने विषे विपरीतता पाइये है, जैसे मतवाला माता

को स्त्री माने, स्त्री को माता माने, तैसे मिथ्यादृष्टि कै अन्यथा जानना है । और जैसे किसी काल
विषै मतवाला माता को माता स्त्री को स्त्री जाने, तौभी उसकै निश्चयरूप निर्द्धार कर श्रद्धान लिये
जानना न होय है । इसलिये उस कै यथार्थ ज्ञान न कहिये है। तैसे ही मिथ्यादृष्टि किसी काल
विषै पदार्थ को सत्य भी जाने । तौभी उस के निश्चयरूप निर्द्धार कर श्रद्धान लिये जानना न
होय है। अथवा सत्य भी जाने परन्तु तिन कर अपना प्रयोजन जो अयथार्थ ही साधै। इस लिये उस
के सम्यग्ज्ञान न कहिये है। ऐसे मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहिये है, —:(यहां प्रश्न):—
मिथ्याज्ञान का कारण कौन है ? —:*(तिसका समाधान)*:— मोह कै उदय से जो
मिथ्यात्व भाव होय, सम्यक्त न होय, सो इस मिथ्यात्व ज्ञान का कारण है, जैसे विष के संयोग
से भोजन भी विषरूप कहिये है। तैसे मिथ्यात्व के संवन्ध से ज्ञान है, सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।
यहां कोई कहे ज्ञानावरण का निमित्त क्यों न कहो —:(तिसका समाधान):— ज्ञानावरण
के उदय से तो ज्ञान का अभावरूप अज्ञानभाव होय है। और क्षयोपशम से किञ्चित् ज्ञानरूप मति
श्रुति, अवधि, ज्ञान होय है। जो इन विषै किसी को मिथ्याज्ञान किसी को सम्यग्ज्ञान कहिये तो
यह दोनों ही भाव मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टी कै पाइये हैं । सो तिन दोनों कै मिथ्याज्ञान वा
सम्यग्ज्ञान का सद्भाव हो जाय, तो सिद्धान्त विरुद्ध होय। इस लिये ज्ञानावरण का निमित्त बने नाहीं।
और यहां पूछे, कि जेवरी सर्पादिक का अयथार्थज्ञान होने का क्या कारण है। तिस ही को जीवादिक

तत्वन का अयथार्थ यथार्थ ज्ञान का कारण कहो। —:(तिसका उत्तर):— जो जानने विषे जितना अयथार्थपना होय है तितना तो ज्ञानावरण के उदय से होय है। और जितना यथार्थपना होय है, तितना ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होय है। जैसे जेवरी को सर्प जाना सो अयथार्थ जानने की शक्ति का स्थानक उदय है। इस लिये अयथार्थ जाने है, और जेवरी को जेवरी जानी, यथार्थ जानने की शक्ति का कारण क्षयोपशम है। इस लिये यथार्थ जाने है, तैसे ही जीवादिक तत्वन का यथार्थ जानने की शक्ति न होने वा होने विषे ज्ञानावरण ही का निमित्त है। परन्तु जैसे किसी पुरुष कै क्षयोपशम से दुःख को वा सुख को कारणभूत पदार्थन को यथार्थ जानने की शक्ति न होय, तहां तिसकै असाता वेदनीय का उदय होय, सो दुःख का कारणभूत पदार्थ जो होय तिस ही को वेदै। सुख के कारणभूत पदार्थन को न वेदै और जो वेदै तो सुख होजाय सो असाता का उदय होतैं होय सकै नाहीं। इस लिये यहां दुःख का कारणभूत और सुख का कारणभूत पदार्थ वेदने विषे ज्ञानावरण का निमित्त नाहीं। असाता साता का उदय ही कारणभूत है। तैसे ही जीव कै प्रयोजनभूत जीवादिक तत्व अप्रयोजनभूत अन्य तिन कै यथार्थ जनाने की शक्ति होय है। तहां जिस कै मिथ्यात्व का उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होयें तिन ही को वेदै जाने है, प्रयोजनभूत को न जाने है, जो प्रयोजनभूत को जाने तो सम्यग्ज्ञान हो जाय सो मिथ्यात्व के उदय होतैं होय सकै नाहीं, इस लिये यहां प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जानने विषे ज्ञानावरण का निमित्त नाहीं, मिथ्यात्व का उदय अनुदय ही कारण भूत है। यहां ऐसा जानना, जहां एकेन्द्रियादिक

कै जीवादि तत्वन का यथार्थ जानने की शक्ति ही न होय, तहां तो ज्ञानावरण ही का उदय है। और मिथ्यात्व के उदय से भया मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान इन दोनों का निमित्त है। और जहां संज्ञी मनुष्यादिक कै क्षयोपशमादि लब्धि होने से शक्ति होय, और न जाने तहां मिथ्यात्व के उदय ही का निमित्त जानना। इस ही से मिथ्याज्ञान का मुख्य कारण ज्ञानावरण न कहा। मोह के उदय से भया भाव सो ही कारण कहा है। —:(यहां प्रश्न):— जो ज्ञान भये श्रद्धान होय है, तो पहिले मिथ्याज्ञान कहो पीछे मिथ्यादर्शन कहो। —:(तिस का समाधान):— है तो ऐसे ही, जाने बिना श्रद्धान कैसे होय, परन्तु मिथ्या और सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञान कै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन के निमित्त से होय है, जैसे मिथ्यादृष्टि वा समग्दृष्टि सुवर्णादि पदार्थ को जाने तो समान है, परन्तु सो ही जानना मिथ्यादृष्टि कै मिथ्याज्ञान नाम पावै है। सम्यग्दृष्टि कै सम्यग्ज्ञान नाम पावे है, ऐसे ही सर्व मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान का कारण मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। इस लिये जहां सामान्यपने ज्ञान श्रद्धान का निरूपण होय। तहां तो ज्ञान कारणभूत है, तिस को पहिले कहना। और श्रद्धान कार्य्यभूत है तिस को पीछे कहना। और जहां मिथ्या सम्यग्ज्ञान श्रद्धान का निरूपण होय तहां श्रद्धान कारणभूत है। तिस को पहिले कहना ज्ञान कार्यभूत है। तिस को पीछे कहना। —:(यहां प्रश्न):— जो ज्ञान श्रद्धान तो युगपत् होय है, इन विषे कारण कार्यपना कैसे कहो हो। —:(तिस का समाधान):— वह होय तो वह होय इस अपेक्षा कारण कार्यपना है। जैसे दीपक और प्रकाश युगपत् होय हैं, तथापि दीपक होय तो प्रकाश होय है,

इस लिये दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है। तैसे ही ज्ञान श्रद्धान है, वा मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान कै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान कै कारण कार्यपना जानना। —:(यहां प्रश्न):— जो मिथ्यादर्शन के संयोग से ही मिथ्याज्ञान नाम पावे है तो एक मिथ्यादर्शन ही संसार का कारण कहो। मिथ्याज्ञान जुदा काहे को कहो हो। —:(तिस का समाधान):— ज्ञान की अपेक्षा तो मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कै क्षयोपशम से भया यथार्थ ज्ञान तिस में कुछ विशेष नाहीं। और यह ज्ञान केवल ज्ञान विषे भी जाय मिले है, जैसे नदी समुद्र में मिलै है, इस में कुछ दोष नाहीं। परन्तु क्षयोपशमज्ञान जहां लगै तहां एक ज्ञेय विषे लगै, सो यह मिथ्यादर्शन के निमित्त से अन्य ज्ञेय विषे तो ज्ञान लगै, और प्रयोजनभूत जीवादिक तत्वन का यथार्थ निर्णय करने विषे न लगै, सो यह ज्ञान विषे दोष भया। इस लिये इस को मिथ्याज्ञान कहा। और जीवादि तत्वन का यथार्थ श्रद्धान न होय है, सो यह श्रद्धान विषे दोष भया, इस को मिथ्यादर्शन कहा। ऐसे लक्षण भेद से मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कहा है। ऐसे मिथ्याज्ञान का स्वरूप कहा, इस ही को तत्त्व ज्ञान के अभाव से अज्ञान कहिये है। अपना प्रयोजन न साधे इस लिये इस ही को कुज्ञान कहिये है।

अब मिथ्या चारित्र का स्वरूप कहिये है।

चारित्र मोह के उदय से कषाय भाव होयें तिस का नाम मिथ्याचारित्र है। यहां अपनी स्वभावरूप प्रवृत्ति नाहीं है। यह सुखी है, ऐसी झूठी पर स्वभावरूप प्रवृत्ति किया

चाहे सो बने नाहीं। इसलिये इस का नाम मिथ्याचारित्र है। सो दिखाइये है, अपना स्वभाव तो दृष्टा ज्ञाता है। सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तो रहे नाहीं। जिन पदार्थन को देखे जानैं तिन विषे इष्ट अनिष्टपनो माने। इस लिये रागी द्वेषी होय किसी के सद्भाव को चाहे। किसी के अभाव को चाहे। सो उन का सद्भाव अभाव इस का किया होता नाहीं। क्योंकि कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्त्ता हर्त्ता है नाहीं, सर्व द्रव्य अपने २ स्वभाव रूप परिणमै हैं, यह वृथा ही कषायभाव कर आकुलित होय है। और कदाचित् जैसे आप चाहे तैसे ही पदार्थ परिणमैं तो अपना परिणमाया तो परणमै नाहीं, जैसे गड्डी चले है, और उस को बालक धकाय कर ऐसे माने इस को मैं चलाऊं हूं। सो वह असत्य माने है। जो उस की चलाई चले है तो जब वह न चले, तब क्यों न चलावे, तैसे पदार्थ परिणमैं हैं। और कभी जीव के अनुसार होकर परिणमैं तब ऐसे माने इस को मैं ऐसे परिणमाऊं हूं, सो यह असत्य माने है, जो इस का परिणमाया परिणमैं तो वह तैसे न परिणमैं, तब क्यों न परिणमावे, सो जैसे आप चाहे तैसे तो पदार्थ का परिणमन कदाचित् न होय। बहुत परिणमन तो आप न चाहे, तैसे ही होता देखिये है। इस लिये यह निश्चय है, कि अपना किया किसी का सद्भाव अभाव होता नाहीं, कषायभाव करने से क्या होय, केवल आप ही दुःखी होय है। जैसे कोई विवाहादि कार्य विषे जिस का कुछ कहा न होय, और वह आप कर्त्ता होय कषाय करे तो आप ही दुःखी होय, तैसे जानना, कषायभाव करना ऐसा है, जैसा जल का विलोवना. कछु

कार्य्यकारी नाहीं। इस लिये इन कषायन की प्रवृत्ति को मिथ्या चारित्र कहिये है, और कषाय भाव होय हैं, सो पदार्थन को इष्ट अनिष्ट मामने से होय हैं, सो इष्ट अनिष्ट मानना मिथ्या है। इस लिये कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाहीं, कैसे सो कहिये है। जो आप को सुखदायक उपकारी होय, तिस को इष्ट कहिये, जो आप को दुःखदायक अनुपकारी होय तिस को अनिष्ट कहिये है। सो लोक में सर्व पदार्थ अपने अपने स्वभाव के कर्त्ता हैं। कोई किसी को सुखदायक दुःखदायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यह जीव ही अपने परिणामन विषे तिन को सुखदायक उपकारी जान इष्ट जाने है, अथवा दुःखदायक आनुपकारी जान अनिष्ट माने है। सो एक ही पदार्थ किसी को इष्ट लगे है, किसी को अनिष्ट लगे है, जैसे जिस को वस्त्र न मिले तिस को तो मोटा वस्त्र इष्ट लगे है, और जिस को महीन वस्त्र मिले तिस को अनिष्ट लगे है, सूवर आदि को विष्टा इष्ट लगे है, देवादिक को, अनिष्ट लगे है, किसी को मेघ वर्षा इष्ट लगे है, किसी को अनिष्ट लगे है, ऐसे ही अन्यत्र भी जानना। और इस ही प्रकार एक जीव को भी एक ही पदार्थ किसी काल विषे इष्ट लगे है, किसी काल विषे अनिष्ट लगे है, और यह जीव किसी को जिस को मुख्यपने इष्ट माने सो भी अनिष्ट होता देखिये है। इत्यादि जानना। जैसे शरीर इष्ट है, सो रोगादि सहित होय, तब अनिष्ट होजाय, पुत्रादिक इष्ट हैं, सो कारण पाये अनिष्ट होते देखिये हैं, इत्यादि जानना। और यह जीव जिस को मुख्यपने अनिष्ट माने सो भी इष्ट होता देखिये हैं। जैसे गाली अनिष्ट है, सो स्वसुराड़ में इष्ट लगे है, इत्यादि जानना। ऐसे

पदार्थन विषे इष्ट अनिष्टपना है नाहीं, जो पदार्थ विषे अनिष्टपना इष्टपना होता तो जो पदार्थ इष्ट होता सो सर्व को इष्ट ही होता। अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सो ऐसे तो है नाहीं। यह जीव कल्पना कर तिज को इष्ट अनिष्ट माने है, सो यह कल्पना झूठी है, और पदार्थ हैं सो सुखदायक उपकारी वा दुःख-दायक अनुपकारी होय हैं, सो आप ही नाहीं होय है, पुण्य पाप के उदय के अनुसार होय है। जिस कै पुण्य का उदय होय है, तिस के पदार्थन का संयोग सुखदायक उपकारी होय है, जिस कै पाप का उदय होय है, तिस कै पदार्थन का संयोग दुःखदायक अनुपकारी होय है, सो प्रत्यक्ष देखिये है, किसी कै स्त्री पुत्रादिक सुखदायक हैं, किसी कै दुःखदायक हैं, व्यापार आदिक किये किसी कै नफा होय है, किसी कै टोटा होय है, किसी कै स्त्री भी हितकारी होय है, किसी कै शत्रु भी किंकर होय हैं, किसी कै पुत्र भी अहितकारी होय है, इस लिये जानिये है, कि यह पदार्थ आप ही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं, कर्म्म उदय के अनुसार प्रवर्त्ते हैं, जैसे किसी कै किंकर अपने स्वामी के अनुसार किसी पुरुष को इष्ट अनिष्ट उपजावें तो कुछ किंकरन का कर्त्तव्य नाहीं, उन के स्वामी का कर्त्तव्य है, जो किंकरन ही को इष्ट अनिष्टपनो माने सो झूठा है। तैसे कर्म्म के उदय से प्राप्त भये पदार्थ कर्म्म के अनुसार जीव को इष्ट अनिष्ट उपजावै तो कुछ पदार्थन का कर्त्तव्य नाहीं, कर्म्म का कर्त्तव्य है। जो पदार्थन ही को इष्ट अनिष्ट माने सो झूठ है। इस लिये यह बात सिद्ध भई कि पदार्थन को इष्ट अनिष्ट मान तिन विषे राग द्वेष करना मिथ्या है। यहां कोई कहै, कि बाह्य वस्तुन का संयोग कर्म्म निमित्त से बने है

तो कर्म्मन विषे तो राग द्वेष करना। —:(तिस का समाधान):— कर्म्म तो जड़ हैं, उन को कुछ सुख देने की दुःख देने की इच्छा नाहीं है। और वह स्वयमेव कर्म्मरूप परिणमते नाहीं हैं। इस के भावन के निमित्त से कर्म्मरूप होय हैं। जैसे कोई अपने हाथ में डला ले अपना सिर फोड़े तो डले का क्या दोष है। तैसे ही जीव अपने रागादिक भावन कर पुद्गल को कर्म्मरूप परिणमाय अपना बुरा करे तो कर्म्म का क्या दोष है। इस लिये कर्म्म से भी राग द्वेष करना मिथ्या है। इस प्रकार परद्रव्यन को इष्ट अनिष्ट मान राग द्वेष करना मिथ्या है, जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता तो। और तहां राग द्वेष करता तो मिथ्या नाम न पावता। वह तो इष्ट अनिष्ट नाहीं। और यह इष्ट अनिष्ट मान राग द्वेष करै। इस लिये इस परिणमन को मिथ्या कहा है, मिथ्या रूप जो परिणमन तिस का नाम मिथ्याचारित्र है॥

॥ इस जीव कै राग द्वेष होय है। तिस का वर्णन करिये है॥

प्रथम तो इस जीव कै पर्याय विषे अहं बुद्धि है, सो आप को वा शरीर को एक जान प्रवर्त्तै है। और इस शरीर विषे आप को सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था होय है, तिस विषे राग करे है। आप को न सुहावै, ऐसी यह अनिष्ट अवस्था होय है। तिस विषे द्वेष करै है। और शरीर की इष्ट अवस्था के कारण-भूत बाह्य पदार्थन विषे तो राग करै है, और तिस के घातकन विषे द्वेष करै है। और शरीर की अनिष्ट

अवस्था के कारणभूत वाह्य पदार्थन विषे तो द्वेष करै है, और तिस के घातकन विषे राग करै है। और इन विषे जिन वाह्य पदार्थन से राग करै है, तिन के कारणभूत अन्य पदार्थन विषे राग करै है। तिन के घातकन विषे द्वेष करै है। और जिन वाह्य पदार्थन से द्वेष करै है, तिन के कारणभूत अन्य पदार्थन विषे द्वेष करै है। तिन के घातकन विषे राग करै है, और इन विषे भी जिन से राग करै है, तिन के कारण घातक अन्य पदार्थन विषे द्वेष करै है। ऐसे ही राग द्वेष की परम्परा प्रवर्त्तै है। और कोई वाह्य पदार्थ शरीर की अवस्था का कारण नाहीं। तिन विषे भी राग द्वेष करै है। जैसे गज आदि के पुत्रादिक से कुछ शरीर का इष्ट होय नाहीं। तथापि तहां राग करै है, जैसे कूकरा आदिक के बिलाई आवतै कुछ शरीर का अनिष्ट होय नाहीं। तथापि तहां द्वेष करै है, और कई वर्ण गन्ध शब्दादिक के अवलोकनादिक से शरीर का इष्ट होता नाहीं। तथापि तिन विषे राग करै है। कोई वर्णादिक के अवलोकनादिक से शरीर के अनिष्ट होता नाहीं। तथापि तिन विषे द्वेष करै है। ऐसे भी वाह्य पदार्थन विषे राग द्वेष करै है। और इन विषे भी जिन से राग करै है। तिन के कारण और घातक अन्य पदार्थन विषे भी राग द्वेष करै है। और जिन से राग द्वेष करै है, उन के कारण घातक अन्य पदार्थन विषे भी राग द्वेष करै है। ऐसे ही यह यहां भी राग द्वेष की परम्परा प्रवर्त्तै है॥ —:(यहां प्रश्न):— जो अन्य पदार्थन विषे तो राग द्वेष करने का प्रयोजन जानना। परन्तु प्रथम तो मूलभूत शरीर की अवस्था विषे वा शरीर की अवस्था का कारण नाहीं। तिन पदार्थन विषे इष्ट अनिष्ट मानने का

प्रयोजन क्या है। —:(तिस का समाधान):— जो प्रथम मूलभूत शरीर की अवस्था आदि कहे तिन विषे भी प्रयोजन विचार राग द्वेष करे तो मिथ्याचारित्र किस लिये नाम पावै। तिन विषे बिना ही प्रयोजन राग द्वेष करै है। और तिन ही के अर्थ अन्य से राग द्वेष करै, इस लिये सर्व राग द्वेष परणति का नाम मिथ्याचारित्र कहा है॥ —:(यहां प्रश्न):— जो शरीर की अवस्था वाह्य पदार्थन विषे इष्ट अनिष्ट मानने का प्रयोजन तो भासे नाहीं। और इष्ट अनिष्ट माने बिना रहा जाता नाहीं, सो कारण क्या है। —:(तिस का समाधान):— इस जीव कै चारित्र मोह के उदय से राग द्वेष भाव होय है, सो यह भाव कोई पदार्थ के आश्रय बिना होय सके नाहीं। जैसे राग होय है, सो कोई पदार्थ विषे होय है, द्वेष होय है, सो भी किसी पदार्थ विषे होय है। ऐसे तिन पदार्थन कै और राग द्वेष कै निमित्त नैमित्तक सम्बन्ध है। तहां विशेष इतना जानना। जो कोई पदार्थ तो मुख्यपने राग का कारण है। कोई पदार्थ मुख्यपने द्वेष का कारण है, कोई पदार्थ किसी को किसी काल विषे राग का कारण होय है। किसी को किसी काल विषे द्वेष का कारण होय है। यहां इतना जानना एक कार्य होने विषे अनेक कारण चाहियें। सो रागादिक होने विषे अन्तरङ्ग कारण मोह का उदय है, सो तो बलवान् है। और वाह्य कारण पदार्थ है। सो बलवान् नाहीं, देखो महा मुनिन कै मोह मंद होतैं वाह्य पदार्थन का निमित्त होतैं भी राग द्वेष उपजते नाहीं। पापी जीवन कै मोह तीव्र होतैं वाह्य कारण न होतैं भी तिन का संकल्प ही कर राग द्वेष होय है। इस लिये मोह के उदय होतैं रागादिक होय हैं। तहां जिस वाह्य

विना ही प्रयोजन वा कुछ प्रयोजन लिये इष्ट
पदार्थ का आश्रय कर राग भाव होता होय तिस विषे विना ही प्रयोजन लिये
बुद्धि होय है। और जिस पदार्थ के आश्रय कर द्वेष भाव होता होय तिस विषे विना ही प्रयोजन लिये
वा कुछ प्रयोजन लिये अनिष्ट बुद्धि होय है। इस लिये मोह के उदय से पदार्थन को इष्ट अनिष्ट माने
विना रहा जाता नाहीं। ऐसे पदार्थन के विषे इष्ट अनिष्ट बुद्धि होतें जो राग द्वेष रूप परिणमन होय
तिस का नाम मिथ्याचारित्र जानना। और इन राग द्वेषन ही के विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य,
रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप, कषायभाव हैं। सो सर्व इस
मिथ्याचारित्र के भेद जानने इन का वर्णन पूर्व ही किया है। और इस मिथ्याचारित्र विषे स्वरूपाचरण
चारित्र का अभाव है। इस लिये इस का नाम कुचारित्र भी कहिये है। और यह परिणाम मिटे नाहीं
अथवा विरक्त नाहीं। इस लिये इस ही का नाम असंयम कहिये है। वा अविरत कहिये है क्योंकि पांच
इन्द्रिय और मन के विषयन विषे पञ्च स्थावर और त्रस की हिंसा विषे स्वच्छन्दपना होय है।
और इन के त्याग रूप भाव न होय सो ही असंयम वा अविरत बारह प्रकार कहा है। सो कषाय भाव
भये ऐसे कार्य होय हैं। इस लिये मिथ्याचारित्र का नाम असंयम वा अविरत जानना। क्योंकि हिंसा,
अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह इन पाप कार्यन विषे प्रवृत्ति का नाम अव्रत है। सो इन का मूल कारण
प्रमत्त योग कहा है। प्रमत्त योग है सो कषायमय है। इस लिये मिथ्याचारित्र का नाम अव्रत भी
कहिये है। ऐसे मिथ्याचारित्र का स्वरूप कहा। इस प्रकार इस संसारी जीव के मिथ्यादर्शन,

मिथ्याज्ञान, मिथ्याचरित्र रूप परिणमन अनादि से पाइये है। ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पर्यंत तो सर्व जीवन कै पाइये है। और संज्ञी पंचेंद्रियन विषे सम्यग्दृष्टिबिना अन्य सर्व जीवन कै ऐसा ही परिणमन पाइये है, परिणमन विषे जैसा जहां सम्भवै तैसा तहां जानना। जैसे एकेन्द्रियादिक के इन्द्रियादिकन की हीनता अधिकता पाइये है। वा धन पुत्रादिक का सम्बन्ध मनुष्यादिक कै पाइये है। सो इन के निमित्त से मिथ्यादर्शनादिक का वर्णन किया। तिस विषे जैसा विशेष सम्भवै तैसा जानना। और एकेन्द्रियादिक जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जाने नाहीं हैं। परन्तु तिस नाम का अर्थ रूप जो भाव हैं। तिस विषे पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइये हैं। जैसे मैं स्पर्श कर स्पर्शूं हूं, शरीर मेरा है,ऐसा नाम न जाने है। तथापि इस का अर्थ रूप जो भाव है, तिस रूप परिणमै है। और मनुष्यादिक कोई नाम भी जाने हैं। और तिस के भाव रूप परिणमै है, इत्यादि विशेष सम्भवै सो जान लैना। ऐसे यह मिथ्यादर्शनादिक भाव जीव कै अनादि से पाइये हैं, नवीन ग्रहे नाहीं। देखो इस की महिमा जो पर्याय धरै है॥ तहां बिना ही सिखाये मोह के उदय से स्वयमेव ऐसा ही परिणमन होय है। और मनुष्यादिक कै सत्य विचार होने के कारण मिलै तौभी सम्यक् परिणाम न होय है। श्री गुरु के उपदेश का निमित्त बने और वह बारम्बार समझावैं। यह कुछ विचार करे नाहीं। आपको भी प्रतिभासे सो तो न माने। अन्यथा ही माने सो कैसे है सो कहिये है। मरण होतैं शरीर से आत्मा प्रत्यक्ष जुदा होय है। एक शरीर को छोड़ आत्मा अन्य शरीर धरै है। सो व्यन्तरादिक अपने पूर्व भव

का सम्बन्ध प्रगट करते देखिये हैं। परन्तु इस कै शरीर से भिन्न बुद्धि न होय सकै है। स्त्री पुत्रादिक अपने स्वार्थ के सगे प्रत्यक्ष देखिये हैं, उन का प्रयोजन न सधै तबही विपरीत होते देखिये हैं। यह तिन विषे ममत्व करै है। और तिन के अर्थ नरकादिक विषे गमन के कारण नाना पाप उपजावै है। धनादिक सामग्री अन्य की अन्य कै होती देखिये है। यह तिन को अपनी मानै है। और शरीर की अवस्था वा बाह्य सामग्री स्वयमेव होती विनसती देखिये है। यह वृथा आप कर्त्ता होय है। तहां जो अपने मनोरथ अनुसार कार्य होय तिस को तो कहै मैं किया। और अन्यथा होय तिस को कहै मैं क्या करूं ऐसे ही होना था। वा ऐसे क्यों भया। ऐसा मानै सो कैतो सर्व का कर्त्ता ही होना था, कै अकर्त्ता होना था, सो विचार नाहीं। और मरण अवश्य होगा। ऐसा जानै परन्तु मरण का निश्चय कर कुछ कर्त्तव्य करै नाहीं। इस पर्याय सम्बन्धी यत्न करै है। और मरण का निश्चय कर कभी तो कहै मैं मरूंगा। शरीर को जलावेंगे, कभी कहै मुझे जलावेंगे। कभी कहै यश रहा तो हम जीवते ही हैं, कभी कहै पुत्रादिक रहेंगे तो मैं ही जीऊंगा। ऐसे बावले की न्याईं बकै है, कुछ सावधानी नाहीं है। और आप को परलोक विषे प्रत्यक्ष जाता जानै है। तिस के तो इष्ट अनिष्ट का कुछ उपाय नाहीं। और यहां पुत्र पौत्रादिक मेरी सन्तति विषे घने काल ताईं इष्ट रहा करें। अनिष्ट न होयें, ऐसे अनेक उपाय करै है, किसी का परलोक भए पीछे, इस लोक की सामग्री कर उपकार भया देखा नाहीं। परन्तु इस के परलोक होने का निश्चय भये भी इस लोक की सामग्री ही का यत्न रहै है। और विषय कषाय की प्रवृत्ति

कार वा हिंसादिक कार्य कर आप दुःखी होय खेद खिन्न होय है। औरन का वैरी होय इस लोक विषे निन्द्य होय है। परलोक विषे बुरा होय है। सो प्रत्यक्ष आप जानै है, तथापि तिन ही के विषे प्रवर्त्तै है, इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासे है, तिस को भी अन्यथा श्रद्धै जानै, आचरै है। सो यह सर्व मोह का माहात्म्य है। ऐसे यह मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्र रूप अनादि से जीव परणमै है। इस ही परिणमन कर संसार विषे अनेक प्रकार दुःख उपजावन हारे कर्म्मन का सम्बन्ध पाइये है। यह ही भाव दुःखन के बीज हैं, अन्य कोई नाहीं। इस लिये हे भाई! जो तूं दुःख से मुक्त भया चाहे है, तो इन मिथ्यादर्शनादिक भावन का अभाव करना यह ही कार्य है। इस कार्य के किये तेरा परम कल्याण होगा॥

इती श्री मोक्ष मार्ग प्रकाशक नाम शास्त्र विषे मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्र का निरूपण नाम छठा अधिकार सम्पूर्ण भया॥ ६

दोहा—बहु विधि मिथ्यागहन कर, मलिन भए निज भाव।
यातैं आप सम्हारि कै, सहज रूप दरसाव॥ १॥

अर्थः—यह जीव पूर्वोक्त प्रकार कर अनादि से मिथ्यादर्शन ज्ञानचारित्र रूप परिणमै है, तिस कर संसार विषे दुःख सहता संता कदाचित् मनुष्यादि पर्यायन विषे विशेष श्रद्धानादिक करने की शक्ति को पावे तहां जो विशेष मिथ्या श्रद्धानादिक के कारणन कर तिन मिथ्या श्रद्धानादिक को पोषे तो तिस जीव.

का दुःख से मुक्त होना अति दुर्ल्लभ होय है। जैसे कोई पुरुष रोगी है, कुछ सावधानी को पाय कुपथ्य सेवे तो उस रोगी का सुलझना कठिन ही होय है। तैसे यह जीव मिथ्यात्वादि सहित है। सो कुछ ज्ञानादिक शक्ति को पाय विशेष विपरीत श्रद्धानादिक के कारणन का सेवन करे तो इस जीव का मुक्त होना कठिन ही होय है। इस लिये जैसे वैद्य कुपत्थ्य का विशेष दिखाये, तिन के सेवन को निषेधे, तैसे ही यहां विशेष मिथ्या श्रद्धानादिक के कारणन का विशेष दिखाय तिन का निषेध करिये है। यहां अनादि से जो मिथ्यात्वादि भाव पाइये हैं, सोतो अगृहीत मिथ्यात्वादि जानने, क्योंकि वे नवीन ग्रहण किये नाहीं। और इन को पुष्ट करने के कारणन कर विशेष मिथ्यात्वादि भाव होय हैं, सो गृहीत मिथ्यात्वादि जानने। तहां अगृहीत मिथ्यात्वादिक का तो पूर्व ही वर्णन किया है सो ही जानना॥

अबगृहीत मिथ्यात्वादिक का निरूपण कीजिये है। कुदेव, कुगुरु, कुधर्म्म, और कल्पित तत्वन का श्रद्धान सो तो मिथ्यादर्शन है, और जिन विषे विपरीत निरूपण कर रागादिक पोषे होंय ऐसे कुशास्त्र तिन विषे श्रद्धान पूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। और जिस आचरण विषे कषायन का सेवन होय। और तिस को धर्म्म रूप अङ्गीकार करे, सो मिथ्या चारित्र है। अब इन का विशेष दिखाइये है। इन्द्र लोकपाल अद्वैतब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव, बुद्ध, पीर, पैगम्बर हनुमान, भैरव, क्षेत्रपाल, देवी, दिहाड़ी, सती, शीतला, चौथा, सांझी, गणगौर, होली, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, ऊत, पितर, व्यंतर, रुपया, मोहर, गऊ, सर्प्प, अग्नि, जल, वृक्ष, शस्त्र, दवात, वासण, इत्यादि अनेक तिन का अन्यथा श्रद्धान कर

तिन को पूजै, है; तिन कर अपना कार्य सिद्ध किया चाहै है, सो वह कार्य, सिद्धि के कर्त्ता नाहीं। इस लिये ऐसे श्रद्धान को मिथ्यात्व कहिये है। तहां तिन का अन्यथा श्रद्धान कैसे होय है सो कहिये है।

॥ अद्वैतब्रह्म मत निरूपण ॥

अद्वैत ब्रह्म को सर्व व्यापी सर्व का कर्त्ता माने सो कोई है नाहीं। मिथ्या कल्पना करे है, प्रथम उस को सर्वव्यापी माने, सो सर्व पदार्थ तो न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं, वा तिन के स्वभाव न्यारे न्यारे देखिये हैं। इन को एक कैसे मानिये, एक मानना तो इतने प्रकार होय सकै है, जिस में एक प्रकार तो यह है, कि सर्व न्यारे न्यारे हैं। तिन के समुदाय की कल्पना कर एक नाम धरिये है, जैसे घोड़े हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न हैं, तिनके समुदाय का नाम सेना है। तिन से जुदा कोई सेना वस्तु नाहीं सो इस प्रकार जो सर्व पदार्थ जिस का नाम ब्रह्म है, सो ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तो न ठहरा। कल्पना मात्र ही ठहरा। और एक प्रकार यह है जो व्यक्ति अपेक्षा तो न्यारे न्यारे हैं। तिन की जाति अपेक्षा कल्पना कर एक कहिये है। जैसे सौ घोड़े हैं सो व्यक्ति अपेक्षा तो जुदे जुदे हैं, तिन के आकारादिक की समानता देख कल्पना कर एक जाति कहिये है, सो वह जाति तिन से जुदी तो कोई है नाहीं। सो इस प्रकार कर जो सबन की एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिये है, सो ब्रह्म जुदा तो कोई न ठहरा। यहां भी कल्पना मात्र ही ठहरा। और एक प्रकार यह है, जो पदार्थ तो न्यारे न्यारे हैं तिन

के मिलाप से एक स्कन्ध होय है, तिस को एक कहिये है। जैसे जल के परमाणु न्यारे न्यारे हैं, तिन का मिलाप भये समुद्रादिक कहिये हैं। वा जैसे पृथ्वी के परमाणुन का मिलाप भये, घटादिक कहिये है। सो यहां समुद्रादिक घटादिक कहिये हैं, सो तिन परमाणुन से भिन्न कोई जुदा तो वस्तु नाहीं है, सो इस प्रकार कर जो सर्व पदार्थ न्यारे न्यारे हैं। परन्तु कदाचित् मिल एक हो जाते हैं सो ब्रह्म है। ऐसे मानिये तो इन से जुदा तो कोई ब्रह्म न ठहरा। और एक प्रकार यह है, कि अङ्ग तो न्यारे न्यारे हैं, और जिस के अङ्ग हैं, सो अङ्गी एक है। जैसे नेत्र हस्त पादादिक भिन्न२ हैं, जिसके यह हैं, सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकार जो सर्व्व पदार्थ तो अङ्ग हैं, जिसके यह हैं, सो अङ्गी ब्रह्म है। यह सर्व्व लोक विराट स्वरूप ब्रह्म का अङ्ग है, ऐसे मानिये तो मनुष्य के हस्तपादादिक अङ्गन के परस्पर अन्तराल भये तो एकत्व पना रहता नाहीं। जुड़े रहे ही एक शरीर नाम पावै। सो लोक विषे तो पदार्थन के अन्तराल परस्पर भासे है। इस का एकत्वपना कैसे मानिये, अन्तराल भये भी एकत्व मानिये तो भिन्नपना कैसे मानिये। यहां कोई कहै मध्य विषे सूक्ष्म रूप ब्रह्म के अङ्ग हैं, तिन कर सर्व्व जुड़ रहे हैं, तिस को कहिये है, जो अङ्ग जिस अङ्ग से जुड़ा है, तिस ही से जुड़ा रहै है। वा टूट टूट अन्य अन्य अङ्गन से जुड़ा करे है। जो प्रथम पक्ष ग्रहैगा तो सूर्यादि गमन करे हैं, तिन के साथ जिन सूक्ष्म अङ्गन से वह जुड़े रहैं, सो भी गमन करैं। और उन को गमन करतैं सूक्ष्म अङ्ग अन्य स्थूल अङ्गन से जुड़े रहैं सो भी गमन करैं, ऐसे सर्व्वलोक अव स्थिर होजाय। जैसे शरीर का एक अङ्ग खेंचें, सर्व्व अङ्ग खींचे जाय हैं। तैसे एक

पदार्थ को गमन करतैं सर्व्व पदार्थन का गमनादि होय, सो भासै नाहीं, और जो द्वितीय पक्ष ग्रहैगा तो अङ्ग टूटने से भिन्नपना हो जाय, तब एकत्वपना कैसे रहा। इस लिये सर्व्व लोक के एकत्व को ब्रह्म मानना है, सो भ्रम है। और एक प्रकार यह है, कि पहिले एक था, पीछे अनेक भया। फिर एक हो जाय है। इस लिये एक है। जैसे जल एक था सो वासणन में जुदा २ भया। फिर मिलै तब एक हो जाय है, इस लिये एक है। वा जैसे सोने का डला एक था, सो कंकण, कुण्डलादि रूप भया। फिर एक सोने का डला हो जाय है। तैसे ब्रह्म एक था, पीछे अनेक रूप भया फिर एक हो जाय है। इस लिये एक ही है। इस प्रकार एकत्व माने है, तो जब अनेक रूप भया, तब जुड़ा रहा कि भिन्न भया। जो जुड़ा कहेगा तो पूर्वोक्त दोष आवैगा भिन्न भया कहैगा, तो तिस काल तौ एकत्वपना न रहा। और जल सुवर्णादिक को भिन्न भये भी एक कहिये है, सो तो एक जाति अपेक्षा कहिये है। सर्व्व पदार्थन की एक जाति भासै नाहीं। कोई चेतन रहै, कोई अचेतन रहै। इत्यादि अनेक रूपमय है। तिन की एक जाति कैसे कहिये। और जाति अपेक्षा एकत्व मानना कल्पनामात्र पूर्व कहा ही है। और पहिले एक था, पीछे भिन्न भया माने है तो जैसे एक पाषाणादि फूट कर टुकड़े २ हो जाय है, तैसे ब्रह्म के खण्ड हो गये। और तिन का इकट्ठा होना माने है, तो तहां तिन का स्वरूप भिन्न रहे है, कि एक हो जाय है। जो भिन्न रहै, तो तहां अपने अपने स्वरूप कर भिन्न ही है। और एक हो जाय है, तो जड़ भी चेतन हो जाय है। वा चेतन जड़ हो जाय है, तहां अनेक वस्तुन का एक वस्तु भया। तब किसी काल विषे अनेक वस्तु किसी काल विषे एक वस्तु ऐसा

कहना बने अनादि अनन्त एक ब्रह्म है। ऐसा कहना बने नाहीं। और जो कहेगा लोक रचना होतें वा न होतें ब्रह्म जैसा का तैसा ही रहै है। इस लिये ब्रह्म अनादि अनन्त है। सो हम पूछै हैं लोक विषे पृथ्वी जलादिक देखियेहैं। सो जुदे नवीन उत्पन्न भये हैं, कि ब्रह्म इन स्वरूप भयाहै। जो जुदे नवीन उत्पन्न भये हैं, तो यह न्यारे भये, ब्रह्म न्यारा रहा तो सर्व्वव्यापी अद्वितीय ब्रह्म न ठहरा। और जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तो कदाचित् लोक भया। कदाचित् ब्रह्म भया तो जैसे का तैसा कैसे रहा। और वह कहै है जो सब ही ब्रह्म तो लोक स्वरूप न होय है, उस का कोई अंश होय है। तिस को कहिये है, जैसे समुद्र का एक बिन्दु विष रूप भया। तहां स्थूल दृष्टि कर तो गम्य नाहीं, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि कर तो एक बिन्दु अपेक्षा समुद्र के अन्यथापना भया। तैसे ब्रह्म का एक अंश भिन्न होय लोकरूप भया तहां स्थूल विचार कर तो कुछ गम्य नाहीं। परन्तु सूक्ष्म विचार किये तो एक अंश अपेक्षा ब्रह्म के अन्यथापना भया। यह अन्यथापना और तो किसी कै भया नाहीं, ऐसे सर्व्व रूप ब्रह्म को मानना, भ्रम ही है। और एक प्रकार यह है, जैसे आकाश सर्व्व व्यापी है, तैसे सर्व्वव्यापी है। सो इस प्रकार माने है तो आकाश वत् जड़ ब्रह्म को मान वा जहां घट पटादिक हैं। तहां जैसे आकाश है। तैसें तहां ब्रह्म भी है, ऐसा भी मान परन्तु जैसे घट पटादिक को और आकाश को एक ही कहिये तो कैसे बने। तैसे लोक को और ब्रह्म को एक मानना कैसे सम्भवै। और आकाश का तो लक्षण सर्वत्र भासे है। इस लिये तिस का तो सर्वत्र सद्भाव मानिये है। ब्रह्म का तो लक्षण सर्वत्र भासता नाहीं। इस लिये तिस का सर्वत्र सद्भाव कैसे मानिये

ऐसे इस प्रकार कर भी सर्व रूप ब्रह्म नाहीं है। ऐसे ही विचार करतैं किसी प्रकार कर भी एक ब्रह्म सम्भवै नाहीं सर्व्वं पदार्थ भिन्न ही भासे हैं। —:(यहां प्रतिवादि कहै):— जो सर्व्वं एक ही है, परन्तु तुम्हारे भ्रम है। इस लिये तुम को एक भासे नाहीं। और तुम युक्ति कही सो ब्रह्म का स्वरूप युक्ति गम्य नाहीं। वचन अगोचर है, एक भी है, अनेक भी है, जुदा भी है, मिला भी है, उस की महिमा ऐसी ही है, तिस को कहिये है। जो प्रत्यक्ष तुझ को वा सबन को भासे। तिस को तो तू भ्रम कहै। और युक्ति कर अनुमान करिये सो तू कहै, सांचा स्वरूप युक्ति गम्य है नाहीं। और कहै सांचा स्वरूप वचन अगोचर है, तो वचन बिना कैसे निर्णय करैं, और तू कहै एक भी है, अनेक भी है, जुदा भी है, मिला भी है, सो तिन की अपेक्षा बतावै नाहीं, बावले की न्याईं बकै है। ऐसे भी है, ऐसा कहै उस की महिमा बतावै सो क्या हय न्याय है। तहां झूठे ऐसे ही वाचालपना करैं हैं सो करो। न्याय तो जैसे सांच है, तैसे ही होगा॥

॥ अब तिस ब्रह्म को लोक का कर्त्ता माने हैं तिसको मिथ्या दिखाये है॥

प्रथम तो ब्रह्म कै ऐसी इच्छा भई "एकोहं बहुस्यां" मैं एक हूं, सो बहुत हो जाऊं, तहां पूछिये है। पूर्व अवस्था में दुःखी होय, तब अन्य अवस्था को चाहे, सो ब्रह्म एक रूप अवस्था से बहु रूप होने को इच्छाकारी। सो तिस एक अवस्था विषै क्या दुःख था। तब वह कहै है, जो दुःख तो न था। ऐसा ही कौतूहल उपजा। तिसको कहिये है, जो पूर्व थोड़ा सुखी होय, और कौतूहल किये घना

सुखी होय। सो तो कौतूहल करना विचारै है। सो ब्रह्म के एक अवस्था से बहुत अवस्था भये घना सुख होता कैसे सम्भवे। और जो पूर्व ही संपूर्ण सुखी होय, तो अवस्था किसलिये पलटै। प्रयोजन विना तो कोई कुछ कर्त्तव्य करै नाहीं। और पूर्व भी सुखी होगा। इच्छा अनुसार कार्य भये भी सुखी होगा। परन्तु इच्छा भई तिस काल तो दुःखी होय है। तब वह कहै है, ब्रह्म कै जिस काल इच्छा होय है, तिस काल ही कार्य होय है। इस लिये दुःखी न होय है। तहां कहिये है स्थूलकाल अपेक्षा तो ऐसे माने परन्तु सूक्ष्म काल अपेक्षा तो इच्छा का और कार्य का होना युगपत् संभवै नाहीं, इच्छा तो तब ही होय जब कार्य न होय, कार्य होय तब इच्छा न होय। इस लिये सूक्ष्म कालमात्र इच्छा रहै तब तो दुःखी भया होगा, क्योंकि इच्छा है सो दुःख है, और कोई दुःख का स्वरूप है नाहीं। इस लिये ब्रह्म कै इच्छा की कल्पना करिये है, सो मिथ्या है। और वह कहै है, कि इच्छा होतैं ब्रह्म की माया प्रगट भई, सो तिस को कहिये है, ब्रह्म कै माया भई, तब ब्रह्म भी मायामयी भया, शुद्ध स्वरूप कैसे रहा। और ब्रह्म कै और माया कै दण्डी दण्डवत् संयोग सम्बन्धी है, कि अग्नि उष्णवत् समवाय सम्बन्ध है। जो संयोग सम्बन्ध है, तो ब्रह्म भिन्न है, माया भिन्न है, अद्वैतब्रह्म कैसे रहा। और जैसे दण्डी दण्ड को उपकारी जान ग्रहै है, तैसे ब्रह्म माया को उपकारी जाने है, तो ग्रहै है, नहीं तो किस लिये ग्रहण करै है। और जिस माया को ब्रह्म ग्रहै तिसका निषेध करना कैसे संभवै, वह तो उपादेय भई। और जो समवाय सम्बन्ध है, तो जैसे अग्नि का उष्णत्व स्वभाव है, तैसे ब्रह्म माया स्वभाव ही है। जो ब्रह्म का स्वभाव तिस का निषेध करना

कैसे संभवै, यह तो उत्तम भई। तब वह कहै है, ब्रह्म तो चैतन्य है, माया जड़ है, सो समवाय सम्बन्ध विषे ऐसे दोय भाव संभवै नाहीं, जैसे प्रकाश और अंधकार एकत्र कैसे संभवैं, और वह कहै है, माया कर ब्रह्म आप तो भ्रम रूप होता नाहीं, तिस की माया कर जीव भ्रम रूप होय हैं, तिस को कहिये है, जैसे कपटी अनेक कपट को आप जाने, आप भ्रम रूप न होय उस के कपट कर अन्य भ्रम रूप हो जायें, तहां कपटी तो उस ही को कहिये, जिसने कपट किया है। तिस के कपट कर अन्य भ्रम रूप भये, तिनको तो कपटी न कहिये। तैसे ब्रह्म अपनी माया को आप जाने, भ्रम रूप न होय, उस की माया कर अन्य जीव भ्रम रूप होय हैं, तहां मायावी तो ब्रह्म ही को कहिये, तिस की माया कर अन्य जीव भ्रम रूप भये, तिन को मायावी किस लिये कहिये। और पूछिये है. जीव ब्रह्म से एक है, कि न्यारा है, जो एक है, तो जैसे कोई आप ही अपने अंगों को पीड़ा उपजावे तो तिस को बावला कहिये है, तैसे ब्रह्म आप से भिन्न नाहीं, ऐसे अन्य जीव तिनको माया कर दुःखी करै है, तो उसको क्या कहोगे, और जो न्यारे हैं, तो जैसे कोई भूत बिना ही प्रयोजन औरन को भ्रम उपजावे पीड़ा उपजावे तो तिसको निकृष्ट ही कहिये, तैसे ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवन को माया उपजाय पीड़ा उपजावै तो उस को क्या कहोगे। ऐसे माया ब्रह्म की कहिये सो भी भ्रम ही है। और वह कहै है। जुदे जुदे बहुत पात्रन विषे जल भरा है। तिन सबन विषे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जुदा जुदा पड़ै है, चन्द्रमा एक है। तैसे जुदे जुदे बहुत शरीरन विषे ब्रह्म का चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइये है, ब्रह्म एक है, इस लिये जीवन कै चेतना है, सो ब्रह्म की है, सो ऐसा कहना भी

भ्रम ही है। क्योंकि शरीर जड़ है, इस विषे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब से चेतना भई तो घट पटादि जड़ हैं, तिन विषे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब क्यों न पड़ा। और चेतना क्यों न भई, और वह कहे है, शरीर को तो चैतन्य नाहीं करे है, जीव को करे है। तब इस को पूछिये है, जीव का स्वरूप चैतन्य है, कि अचेतन है। जो चेतन है तो चेतन का चेतन क्या करेगा। अचेतन है, तो शरीर की वा घटादिक की वा जीव की एक जाति भई। और उस को पूछिये है। ब्रह्म की और जीवन की चेतना एक है, कि भिन्न है। जो एक है, तो ज्ञान का अधिक हीनपना कैसे देखिये है। और यह जीव परस्पर वह उस की जानी को न जाने। वह उस की जानी को न जाने, सो कारण क्या? जो तू कहेगा यह घट उपाधि का भेद है तो घट उपाधि होते तो चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घट उपाधि मिटे, इस की चेतना ब्रह्म में, मिलेगी, कि नाश हो जायगी, जो ब्रह्म में मिलेगी तो यह जीव तो अचेतन रह जायगा। और तू कहेगा जीव भी ब्रह्म में मिल जाय है, तो तहां ब्रह्म विषे मिले जीव का अस्तित्व रहे है, कि नाहीं रहे है। जो अस्तित्व रहे है, तो यह रहा इस की चेतना इस के रही। ब्रह्म विषे क्या मिला, और जो अस्तित्व न रहे है, तो इस का नाश भया, ब्रह्म विषे कौन मिला। और जो तू कहेगा, ब्रह्म की और जीव की चेतना भिन्न है, तो ब्रह्म और सर्व जीव आपही भिन्न भिन्न ठहरे। ऐसे जीवन के चेतना है, सो ब्रह्म की है, ऐसा मानना भ्रम है। शरीरादिक माया के कहो। सो माया ही हाड़ मांसादि रूप होय है, कि माया के निमित्त से और कोई तिन रूप होय है। जो माया ही होय है तो माया के वर्ण गन्धा-

दिक पूर्व ही थे, कि नवीन भये। जो पूर्वही थे तो पूर्वही माया ब्रह्म की थी, ब्रह्म अमूर्त्तीक है, तहां वर्णादिक कैसे सम्भवै। और जो नवीन भये तो अमूर्त्तीक का मूर्त्तीक भया तब अमूर्त्तीक स्वभाव शाश्वता न ठहरा। और जो कहैगा माया के निमित्त से और कोई तिन रूप होय है, तो और कोई पदार्थ तो तू ठहरावता ही नाहीं भया कौन। जो तू कहैगा,नवीन पदार्थ निपजै है, तो माया से भिन्न निपजै है, कि अभिन्न निपजै है, माया से भिन्न निपजे, ता मायामयी शरीरादिक किस लिये कहे, सो तो तिन पदार्थमय भये। और अभिन्न ही निपजे तो माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे, किस लिये कहो हो। ऐसे शरीरादि माया स्वरूप हैं, ऐसा कहना भ्रम है। और वह कहै है, कि माया से तीन गुण निपजे, राजस १, तामस २, सात्विक ३, सो यह भी कहना मिथ्या है। क्योंकि मानादि कषाय रूप भाव को राजस कहिये है। क्रोधादि कषाय रूप भाव को तामस कहिये है। मन्द कषाय भाव को सात्विक कहिये है। सो यह तो भाव चेतनामयी प्रत्यक्ष देखिये है, और माया का स्वरूप जड़ है, सो जड़ से यह भाव कैसे निपजै। जो जड़ कै भी होयँ तो पाषाणादिक के भी होयँ। सो चेतना स्वरूप जीव तिन ही कै यह भाव दीखै हैं। इस लिये यह भाव माया से निपजे नाहीं। जो माया को चेतन ठहरावे तो यह माने। सो माया को चेतन ठहराये शरीरादिक माया से भिन्न निपजै कहैगा,तो न मानेंगे, इस लिये निर्द्धार कर भ्रमरूप मानने से क्या नफा है। और वह कहै है, तीन गुणन से ब्रह्मा,विष्णु,महेश, यह तीन देव प्रगट भये सो यह भी मिथ्या ही है। क्योंकि गुणीसे तो गुण होय है,और गुण से गुणीकैसे निपजे

पुरुष से तो क्रोध होय। क्रोध से पुरुष कैसे निपजै। और इन गुणन की तो निन्दा करिये है। इन कर निपजे ब्रह्मादिक तिन को पूज्य कैसे मानिये। और गुण तो मायामयी और इन को ब्रह्म के अवतार कहिये है। सो यह तो माया के अवतार भये, इन को ब्रह्म के अवतार कैसे कहिये। और यह गुण जिन कै थोड़े भी पाइयें, तिन को तो इन के छुड़ावने का उपदेश दीजिये है, जो इन ही की मूर्त्तनि को पूज्य मानिये, यह तो बड़ा भ्रम है। और तिन का कर्त्तव्य भी इनमयी भासे है, कौतूहलादिक वा युद्धादिक कार्य करै है, सो तिन राजसादि गुणन कर ही यह क्रिया होय है। सो इन कै राजसादिक पाइये हैं। ऐसा कहो इन को पूज्य कहना, परमेश्वर कहना तो बने नाहीं। जैसे अन्य संसारी हैं, तैसे यह भी हैं। और कदाचित् तू कहेगा संसारी तो माया कै आधीन हैं, विना जाने तिन कार्यन को करै हैं। ब्रह्मादिक कै माया आधीन है, यह जानते ही इन कार्यन को करै हैं, सो यह भी भ्रम है। क्योंकि माया के आधीन भये तो काम क्रोधादि निपजै हैं, और क्या होय है। सो ब्रह्मादिक कै तो काम क्रोधादिक की तीव्रता पाइये है,काम की तीव्रता कर स्त्रीनि के वशीभूत भये नृत्य गानादिक करते भये, विह्वल होते भये नाना प्रकार कुचेष्टा करते भये, क्रोधादिक के वशीभूत भये, अनेक युद्धादि कार्य्य करते भये,मान के वशीभूत भये, आप की उच्चता प्रगट करने के अर्थ अनेक उपाय करते भये,माया के वशीभूत भये, अनेक छल करते भये, लोभ के वशीभूत भये, परिग्रह का संग्रह करते भये। इत्यादि बहुत क्या कहिये, ऐसे वशीभूत भये, चीर हरणादि निर्लज्जन की क्रिया और दधि लूटनादि चोरन की क्रिया और रुण्ड-

मालादि धारणा बावलेन की क्रिया, बहुरूप धारणादि भूतन की क्रिया, गऊ चरावणादि नीच कुलीनों की क्रिया, इत्यादि जो निन्द्य क्रिया तिन को तो करते भये, इस से अधिक माया के वशीभूत भये क्या क्रिया होय सो जानी न पड़ी। जैसे कोई मेघ पटल सहित अमावास्या की रात्रि को अंधकार रहित माने, तैसे वाह्य कुचेष्टादि सहित जीव काम क्रोधादिकन के धारी ब्रह्मादिकन को माया रहित माने। और वह कहै है, इन को काम क्रोधादि व्याप्त नाहीं होता यह भी परमेश्वर की लीला है। इस को कहिये है, ऐसे कार्य करै है, सो इच्छा कर करै है, कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छा कर करै है, तो स्त्री सेवन की इच्छा ही का नाम काम है। युद्ध करने की इच्छा ही का नाम क्रोध है॥ इत्यादि ऐसे ही जानने। और बिना इच्छा करै है, तो आप जिस को न चाहे, ऐसा कार्य तो परवश भया ही होय सो परवशपना कैसे सम्भवै। और तू लीला बतावै है, सो परमेश्वर अवतार धार इन कार्यन विषे लीला करै है, तो अन्य जीवन को इन कार्यन से छुड़ाय मुक्त करने का उपदेश किस लिये दीजिये है। क्षमा, सन्तोष, शील, संयमादिक का उपदेश सर्व झूठा भया। और वह कहै है, कि परमेश्वर को तो कुछ प्रयोजन नाहीं। लोक रीति की प्रवृत्ति के अर्थ वा भक्तन की रक्षा दुष्टन का निग्रह तिस के अर्थ अवतार धारे है। इस को पूछिये है, प्रयोजन बिना कीड़ी भी कार्य न करै, परमेश्वर किस लिये करै। और यह प्रयोजन भी किस लोक रीती की प्रवृत्ति के अर्थ करे है। सो जैसे कोई पुरुष आप कुचेष्टा कर अपने पुत्रन को सिखावै, और वह तिस चेष्टा रूप प्रवर्त्तें,

तब उन को मारे तो ऐसे पिता को भला कैसे कहिये। तैसे ब्रह्मादिक आप काम क्रोध रूप चेष्टा कारके अपने निपजाये लोकन के प्रवृत्ति करावै, और वह लोक तैसे प्रवर्त्तैं तब उन को नरकादिक विषै डाले नरकादिक इन ही भावन का फल शास्त्र विषै लिखा है, सो ऐसे प्रभु को भला कैसे मानिये। और तू यह प्रयोजन कहे, कि भक्तन की रक्षा दुष्टन का निग्रह करना, सो भक्तन को दुःखदायक जो दुष्ट भये, सो परमेश्वर की इच्छा कर भये, कि बिना इच्छा कर भये। जो इच्छा से भये तो जैसे कोई अपने सेवक को आप ही किसी को कह कर मरवावे और तिस मारनेवाले को आप मारे, सो ऐसे स्वामी को भला कैसे कहिये। तैसे जो अपने भक्तन को आप ही इच्छा कर दुष्टन कर पीड़ित करावे, और पीछे तिन दुष्टन को आप अवतार धार मारे, तो ऐसे ईश्वर को भला कैसे मानिये। और जो तू कहेगा बिना इच्छा दुष्ट भये तो कैतो परमेश्वर के ऐसा आगामि ज्ञान न होगा। को दुष्ट मेरे भक्तन को दुःख देवेंगे, या पहिले ऐसी शक्ति न होगी। जो इन को ऐसे न होने दे, और उस को पूछिये है, जो ऐसे कार्य्य के अर्थ अवतार धारा सो कहा विना अवतार धारे शक्ति थी कि नाहीं। जो शक्ति थी तो अवतार क्यों धारे, और न थी तो पीछे सामर्थ्य होने का कारण क्या भया। तब वह कहे है, ऐसे किये विना परमेश्वर की महिमा कैसे प्रगट होती। तिस को पूछिये है, अपनी महिमा के अर्थ अपने अनुचरण का पालन करे, प्रतिपक्षीन का निग्रह करे, सो ही राग द्वेष है, सो राग द्वेष तो लक्षण संसारी जीव का है, जो परमेश्वर के भी राग द्वेष पाइये है, तो अन्य जीवन को राग द्वेष छोड़ समताभाव करने का उपदेश किस लिये

दीजिये है। और राग द्वेष के अनुसार कार्य्य करना विचारा, सो कार्य्य थोड़े वा बहुत काल लागे बिना होय नाहीं। तावत् काल आकुलता भी परमेश्वर के होती होगी, और जैसे जिस कार्य्य को छोटा आदमी ही कर सके, तिस कार्य्य को राजा आप करे तो कुछ राजा की महिमा होती नाहीं, निन्दा ही होय। तैसे जिस कार्य को राजा वा विंतर देवादिक कर सके तिस कार्य को परमेश्वर आप अवतार धार करे तो ऐसा मानिये तो कुछ परमेश्वर की महिमा होती नाही निन्दा ही है। और महिमा तो कोई और होय, तिस को दिखाइये है, तू तो अद्वैत ब्रह्म माने है, महिमा किस को दिखावे है। और महिमा दिखावने का फल तो स्तुति करांवना है, सो किस से स्तुति कराया चाहे। और तू कहै है, कि सर्व जीव परमेश्वर की इच्छा अनुसार प्रवर्त्तें हैं, सो जो उसे अपनी स्तुति करावने की इच्छा है, तो सब जीव अपनी स्तुति रूप प्रवर्त्तावने थे, किस लिये अन्य कार्य करने पड़ते। इस लिये महिमा के अर्थ भी कार्य करना न बने है। और वह कहै है, परमेश्वर इन कार्यन को करता संता ही अकर्त्ता है, उस का निर्द्धार होता नाहीं। उस को कहिये है, तू कहेगा यह मेरी माता भी है, और बन्ध्या भी है, तो तेरा कहा कैसे मानेंगे, जो कार्य करे तिस को अकर्त्ता कैसे मानिये। और तू कहै निर्द्धार होता नाहीं, और निर्द्धार बिना मान लेना ठहरा तो आकाश के फूल गधे के सींग भी मानें। सो ऐसे सम्भवै नाहीं। ऐसे असंभव कहना युक्त नाहीं। ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश का होना कहै है, सो मिथ्या जानना। और वह कहै है, ब्रह्मा तो सृष्टि को उपजावे है, विष्णु रचा करे है, महेश संहार करे है, सो ऐसा कहना भी मिथ्या

है। क्योंकि इन कार्यन को करते कोई कुछ किया चाहे, कोई कुछ किया चाहे तब परस्पर विरोध होय। और तू कहेगा यह तो परमेश्वर का ही स्वरूप है, विरोध कैसे होय। जो आप ही उपजावै आप ही छिपावै तो ऐसे कार्य में क्या फल है। जो सृष्टि आप को अनिष्ट है, तो किस लिये उपजाई और इष्ट है तो किस लिये छिपाई, जो पहिले इष्ट लागी तब उपजाई, पीछे अनिष्ट लागी तब छिपाई, ऐसे है तो परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टि का स्वभाव अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहण करेगा, तो परमेश्वर का एक स्वभाव न ठहरा। सो एक स्वभाव न रहने का कारण क्या है, सो बताये। बिना कारण एक स्वभाव की पलटन किस लिये होय। और द्वितीय पक्ष ग्रहण करेगा तो सृष्टि तो परमेश्वर के आधीन थी, जो आप को अनिष्ट लगे, उस को ऐसी किस लिये होने दी। और हम पूछें है, कि ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है, सो कैसे उपजावै है, एक तो प्रकार यह है, जैसे मन्दिर चुनने वाला चूना पत्थर आदि सामग्री इकट्ठी कर आकारादि बनावे तो तैसे ही ब्रह्मा सामग्री इकट्ठी कर सृष्टि रचना बनावे तो यह सामग्री जहां से लाय कर इकट्ठी करी सो ठिकाना बताय, और एक ब्रह्मा ही इतनी रचना बनाई, सो पहिले पीछे बनाई होगी, कि अपने शरीर के हस्तादिक बहुत किये होंगे, सो कैसे है, सो बताय। जो बतावेगा तिस ही में विचार किये विरुद्ध भासेगा। और एक प्रकार यह है, कि जैसे राजा आज्ञा करे, तिस के अनुसार कार्य होय। तैसे ब्रह्मा की आज्ञा कर सृष्टि निपजै है, तो आज्ञा किस को दई। और जिन को आज्ञा दई, वह कहां से सामग्री लाये, और

कैसे रचना करे है,सो बताय। और एक प्रकार यह है,कि जैसे ऋद्धि धारी इच्छा करे तिस के अनुसार कार्य स्वयमेव बने है। तैसे ब्रह्मा इच्छा करे तिसके अनुसार सृष्टि निपजै है, तो ब्रह्मा ही तो इच्छा का कर्त्ता भया। लोक तो स्वयमेव ही निपज्या। और इच्छा तो परम ब्रह्मने की थी, ब्रह्मा का कर्त्तव्य क्या भया। जिस से ब्रह्मा को सृष्टि का निपजावन हारा कहा। फिर तू कहैगा परमब्रह्म भी इच्छा करी। और ब्रह्मा भी इच्छा करी, तब लोक निपज्या तो जानिये है,कि केवल परमब्रह्म की इच्छा कार्यकारी नाहीं,तहां शक्ति हीनपना आया। और हम पूछे हैं, जो केवल लोक बनाया हुआ बने है, तो बनावन हारा तो सुख के अर्थ बनाया सो इष्ट ही रचना करै। इस लोक विषे तो इष्ट पदार्थ थोड़े देखिये हैं,अनिष्ट घने देखिये हैं, जीवन विषे देवादिक बनाये सो तो रमने के अर्थं वा भक्ति करावने के अर्थं इष्ट बनाय और लट, कीड़ी, कूकर, सूर, सिंहादिक बनाये, सो किस अर्थं बनाये, यह तो रमणीक नाहीं, भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट ही हैं। और दरिद्री दुःखी नारकीन को देखे, आप को जुगुप्सा आदि दुःख उपजै ऐसे अनिष्ट किस लिये बनाये, तहां वह कहै है। जो जीव अपने पाप कर लट कीड़ी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै हैं, उस को पूछिये है, कि पीछे तो पाप ही का फल यह पर्याय भये कहो, पहिले लोक रचना करने से इन को ऐसे बनाये सो किस अर्थं बनाये। और पीछे जीव पापरूप परिणये सो कैसे परिणये जो आप ही परणये कहोगे तो जानिये है, कि ब्रह्माने पहिले तो निपजाये, पीछे उस के आधीन न रहे, इस कारण से ब्रह्मा को दुःख भया। और जो कहोगे ब्रह्मा के परिणमाये परणमै

हैं, तो तिन को पापरूप किस लिये परणमाये। जीव तो आप के निपजाये थे, उन का बुरा किस अर्थ किया, इस लिये ऐसे भी न बने। और अजीवन विषे सुवर्ण सुगन्धादि सहित वस्तु बनाई सो तो रमने के अर्थ बनाई। कुवर्ण दुर्गन्धादि सहित वस्तु दुःखदायक बनाई, सो किस अर्थ बनाई, इनका दर्शनादिक कर ब्रह्मा के कुछ सुख तो उपजता होगा नाहीं। और तू कहैगा पापी जीवन को दुःख देने के अर्थ बनाई तो आप ही के निपजाये जीव तिन से ऐसी दुष्टता किस लिये करी। जो तिन को दुःखदायक सामग्री पहिले ही बनाई। और धूलि पर्वतादि वस्तुयें कितनीक ऐसी हैं, जो रमणीक भी नाहीं, और दुःखदायक भी नाहीं। तिन को किस अर्थ बनाई स्वयमेव तो जैसे तैसे होय। और बनावन हारा जो बनावे सो प्रयोजन लिये ही बनावे है। इस लिये ब्रह्मा सृष्टि का कर्ता है, यह वचन मिथ्या है। और विष्णु को लोक का रक्षक कहे हैं, सो भी मिथ्या है। क्योंकि रक्षक होय सो तो दोय ही कार्य करै। एक तो दुःख उपजने के कारण न होने दे, एक सुख विनशने के कारण न होने दे, सो तो लोक विषे दुःख ही उपजने के कारण जहां तहां देखिये हैं। और तिन कर जीवन को दुःख ही देखिये है। क्षुधा तृषा-दिक लग रहे हैं, शीत उष्णादिक कर दुःख होय है, जीव परस्पर दुःख उपजावे हैं, शस्त्रादि दुःख के कारण बन रहे हैं और विनशने के कारण अनेक बन रहे हैं, जीवन कै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रा-दिक पर्याय के नाश के कारण देखिये हैं। और जीवन कै भी परस्परविनशने के कारण देखिये हैं। सो ऐसे दोय प्रकार ही रक्षा करी नाहीं। विष्णु रक्षक होय क्या किया, वह कहे है, कि विष्णु रक्षक ही

है। देखो क्षुधा तृषादिक कै अर्थ अन्न जलादिक किये हैं, कीड़ी को कण कुंजर को मण पहुंचावै है। संकट में सहाय करै है, मरण के कारण विनाशै है। इत्यादि प्रकार कर विष्णु रक्षा करै है। इस को कहिये है। ऐसे है तो जहां जीवन कै क्षुधा तृषादिक बहुत पीड़ैं। और अन्न जलादिक मिले नाहीं। संकट पड़े सहाय न होय। किञ्चित् कारण पाय मरण हो जाय। तहां विष्णु कै शक्ति ही न भई, कि उसको ज्ञान न भया। लोक विषे बहुत तो ऐसे ही दुःखी होय हैं मरण पावे हैं। विष्णु रक्षा किसलिये न करी। तब वह कहै है। यह जीवन कै अपने कर्त्तव्य का फल है। तब उस को कहिये है। जैसे शक्ति हीन लोभी झूठा वैद्य किसी कै कुछ भला होय, तिस को तो कहै मेरा किया भया है। और जहां बुरा होय मरण होय तहां कहै इस का ऐसा ही होनहार था। तैसे तू कहै है, भला भया तहां तो विष्णु का किया भया। और बुरा भया सो इसकै कर्त्तव्य का फल भया, ऐसी झूठी कल्पना किस लिये करै है। क्या तो बुरा भला दोऊ विष्णु का किया कहो, क्या अपने कर्त्तव्य का फल कहो। जो विष्णु का किया भया तो घने जीव दुःखी और शीघ्र मरते देखिये हैं। सो ऐसा कार्य करे, तिस को रक्षक कैसे कहिये। और अपने कर्त्तव्यका फल है तो करेगा सो पावेगा। इसको विष्णु क्या रक्षा करेगा। तब वह कहै है, जो विष्णुके भक्त हैं तिन की रक्षा करै है। उस को कहिये है, कि कीड़ी कुंजर आदि भक्त नाहीं उनके अन्नादि पहुंचावने विषे वा संकट सहाय होने विषे वा मरण होने विषे विष्णु का कर्त्तव्य मान सर्व का रक्षक किस लिये मानता है। भक्तों ही के रक्षक मान सो भक्तन का भी रक्षक दीखता नाहीं। अभक्त भी भक्त पुरुषन

को पीड़ा उपजावते देखिये हैं। तब वह कहै है, बहुत ही बार जायगा प्रल्हादादिक की सहाय करी है॥ तिस को कहिये है। जहां सहाय करी तहां तो तू तैसे ही मान। परन्तु हम तो प्रत्यक्ष म्लेच्छ आदि अभक्त पुरुषन कर भक्त पुरुष पीड़ित होते देखिये हैं। वा मन्दिरादिक का विघ्न करते देखिये हैं, सो हम पूछे हैं, यहां सहाय न करी है, कि शक्ति ही नाहीं, या खबर ही नाहीं। जो शक्ति नाहीं तो इन से भी हीन शक्ति का धारक भया, खबर नाहीं तो, जिसको इतनी भी खबर नाहीं सो अज्ञानी भया। और जो तू कहैगा शक्ति भी है। और जाने भी है। इच्छा भी है। इच्छा ऐसी ही भई, तो भक्तवत्सल किसलिये कहै। ऐसे विष्णु को लोक का रक्षक मानना मिथ्या है। और वह कहै है। महेश संहार करै है। सो भी मिथ्या है। प्रथम तो महेश संहार सदा करै है, कि महाप्रलय होय है तब ही करै है। सो जो सदा करै है, तो जैसे विष्णु की रक्षा करने कर स्तुति कीनी। तैसे इस की संहार करने कर निंदा करो। क्योंकि रक्षा और संहार प्रतिपक्षी हैं, और यह संहार कैसे करै है। जैसे पुरुष हस्तादिक कर किसी को मारे, वा कह कर मरवावे, तैसे महेश अपने अंगन कर संहार करै है, वा आज्ञा कर मरवावै है, जो अपने अंगन कर संहार करै है तो क्षण२ में संहार तो घनें जीवन का सर्व लोक में होय है। यह कैसे अंगन कर वा किस २ को आज्ञा देय युगपत् कैसे संहार करै है। जो तू कहै है, कि महेश तो इच्छा ही करै है, उस की इच्छा अनुसार स्वयमेव उनका संहार होय है। तो इस के सदाकाल मारने रूप दुष्ट परिणाम ही रहा करते होंगे। और अनेक जीवन के युगपत् मारने की

इच्छा कैसे होती होगी, और जो महाप्रलय होतें संहार करे है तो परमब्रह्म की इच्छा भये करै है, कि उस की बिना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भये करै है तो परमब्रह्म के ऐसा क्रोध कैसे भया। जो सर्व के प्रलय करने की इच्छा भई, क्योंकि कोई कारण बिना नाश करने की इच्छा होय नाहीं, और नाश करने की इच्छा तिस ही का नाम क्रोध है। सो कारण बता। और बिना कारण इच्छा होय है तो बावले कैसी इच्छा भई। और तूं कहैगा, कि परमब्रह्म यह ख्याल बनाया था, फिर दूर किया, कारण कुछ भी नहीं है। सो तो ख्याल बनाने वाले को ख्याल इष्ट लगे तब बनावै है। अनिष्ट लगै तब दूर करै है। सो इस को यह लोक इष्ट अनिष्ट लगे है तो इसके लोक से राग द्वेष भया, साक्षीभूत ब्रह्म का स्वरूप किस लिये कहो हो। साक्षीभूत तो उसका नाम है। जो स्वयमेव जैसे होय उस को तैसे ही देखे जानै। जो इष्ट अनिष्ट मान उपजावै, नष्ट करै उसको साक्षीभूत कैसे कहिये। क्योंकि साक्षीभूत रहना और कर्त्ता हर्त्ता होना यह दोऊ परस्पर विरोधी हैं। एक के दोऊ संभवै नाहीं, और परमब्रह्म के पहिले तो इच्छा यह भई थी कि मैं एक हूं, बहुत हो जाऊं और जब बहुत भया तब ऐसी इच्छा भई होगी जो मैं बहुत से एक हो जाऊं। सो जैसे कोई भोलेपने कार्य कर पीछे पछतावे और तिस कार्य को दूर किया चाहै, तैसे परमब्रह्म भी बहुत होय, एक होने की इच्छा करी सो जानिये है, कि बहुत होने का कार्य किया सो भोलेपने ही से किया। आगामि ज्ञान कर किया होता तो किस लिये तिस के

दूर करने की इच्छा होती। और जो परमब्रह्म की इच्छा बिना ही महेश संहार करे है, तो यह परम ब्रह्म का वा ब्रह्मा का विरोधी भया। और पूछे है, कि यह महेश लोक को कैसे संहार करे है, अपने अंगन कर संहार करे है, कि इच्छा होतें स्वयमेव ही संहार होय है। जो अपने अंगन कर संहार करै है, तो सर्व का युगपत् संहार कैसे करे है, और इसकी इच्छा होतें स्वयमेव संहार होय है तो इच्छा तो परमब्रह्म ने करी थी। इसने संहार कैसे किया। और हम पूछे हैं, कि संहार भए सर्व लोक विषे जीव अजीव थे, सो कहां गये तब वह कहै है। जीवन विषे भक्त तो ब्रह्म विषे मिले। अन्य माया विषे मिले अब इसको पूछिये है। माया ब्रह्म से जुदी रहे है, कि पीछे एक होजाय है। जो जुदी रहे है तो ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैत ब्रह्म न रहा। और माया ब्रह्म में एक हो जाय है तो जे जीव माया में मिले थे सो भी माया के साथ ब्रह्म में मिल गए तो महाप्रलय होतें तो सर्व का परमब्रह्म में मिलना ठहरा, तो मोक्ष का उपाय किस लिये करिये है। और जे जीव माया में मिले सो फिर लोक रचना भये। वह ही जीवलोक विषे आवेंगे, कि वह तो ब्रह्म में मिलगये थे, और नये उपजेंगे। जो वह ही आवेंगे तो जानिये है जुदे जुदे रहे हैं। मिले किस लिये कहो। और नये उपजेंगे तो जीवका अस्तित्व थोड़े काल पर्यन्त ही रहे है। किस लिये मुक्त होने का उपाय कीजिये है। और वह कहे है, कि पृथ्वी आदिक है सो माया विषे मिले हैं तब पूछिये है जो माया अमूर्त्तीक सचेतन है, कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है, तो इस में मूर्त्तीक अचेतन कैसे मिले। और मूर्त्तीक अचेतन है, तो

इस में अमूर्त्तीक सचेतन कैसे मिले। और मूर्त्तीक अचेतन है तो यह ब्रह्म में मिले है, कि नाहीं। जो मिले है तो इस के मिलने से ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतन कर मिश्रित भया। और न मिले तो अद्वैतता न रही। और तू कहेगा यह अमूर्त्तीक सचेतन हो जाय है तो आत्मा और शरीरादिक की एकता भई। सो यह संसारी एकता माने ही है। इस को अज्ञानी किस लिये कहिये। और पूछे हैं, कि लोक का प्रलय होतें महेश का प्रलय होय है, कि न होय है। जो होय है तो युगपत् होय है, कि आगे पीछे होय है। जो युगपत् होय है तो आप नष्ट होता लोगों को नष्ट कैसे करै। और आगे पीछे होय है तो महेश लोक को नष्ट कर आप कहां रहा। आप भी तो सृष्टि विषे ही था। ऐसे महेश को सृष्टि का संहार कर्त्ता माने हैं सो मिथ्या है। इस प्रकार कर वा अन्य अनेक प्रकार कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, को सृष्टि का उपजावनहारा रक्षा करने वाला संहार करनहारा मानना मिथ्या जान लोक को अनादि-निधन मानना इस लोक विषे जो जीवादि पदार्थ हैं सो न्यारे न्यारे अनादि निधन हैं। और तिन की अवस्था की पलटना हुआ करै है। तिस अपेक्षा उपजते बिनशते कहिये हैं। और स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं सो अनादि ऐसे ही हैं, और सदा काल ऐसे ही रहेंगे। कदाचित् तू कहेगा, कि बिना बनाय ऐसे आकारादिक कैसे भये, जो होयें तो बनाये ही से होयें —:(तिसका उत्तर):— अनादि से ही जो पाइये हैं उस में तर्क कहां। जैसे तू परमब्रह्म का स्वरूप अनादिनिधन माने है, तैसे स्वर्गादिक जीवादिक अनादिनिधन मानियें हैं। तू कहैगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसे भये, हम कहेंगे परमब्रह्म

दूर त्से भया। तू कहैगा इन की रचना ऐसी किसने करी, हम कहेंगे परम ब्रह्म को ऐसा किस ने बनाया, तू कहैगा परमब्रह्म स्वयं ही सिद्ध है, हम कहेंगे जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयं सिद्ध हैं, तू कहैगा इन की और परमब्रह्म की समानता कैसे संभवै, हम कहेंगे तू संभवने विषे दूषण बताय। लोक को नया उपजावना तिस का नाश करना, तिस विषे तो हमने अनेक दोष दिखाये। लोक को अनादि निधन माने क्या दोष है सो तू बताय, जो तू परमब्रह्म माने है। सो कोई जुदा है नाहीं। यह संसार विषे जीव हैं। सोई यथार्थ ज्ञान कर मोक्षमार्ग के साधन से सर्व्वज्ञ वीतराग होय हैं। —:(यहां प्रश्न):— जो तुम तो न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो मुक्त भये पीछे तो निराकार होय हैं। तहां न्यारे न्यारे कैसे संभवैं। —:(तिसका समाधान):— जो मुक्ति भये पीछे सर्व्वज्ञ को दीखै है, कि नाहीं। जो दीखै है तो कुछ आकार दीखता ही होगा। बिना आकार क्या दीखे। और न दीखे है तो कैतो वस्तु ही नाहीं कै सर्व्वज्ञ ही नाहीं। इस लिये इन्द्रिय ज्ञानगम्य आकार नाहीं। तिस अपेक्षा निराकार हैं। और सर्वज्ञ ज्ञान गम्य हैं। इस लिये आकारवान हैं। आकारवान ठहरा तब जुदा जुदा होय तो क्या दोष लागै। और जो तू जाति अपेक्षा एक कहै हम भी माने हैं। जैसे गेहूं भिन्न भिन्न हैं। तिनकी जाति एक है। ऐसे एक माने तो कुछ दोष है नाहीं। इस प्रकार यथार्थ श्रद्धान कर लोक विषे सर्व पदार्थ अकृत्रिम-जुदे जुदे अनादिनिधन मानने। और जो वृथा ही भ्रम कर सांच झूठ का निर्णय करे तो तू जानें तेरा अश्रद्धान का फल तू पावेगा, और वह ब्रह्मा से पुत्र पौत्रादिक कर कुल

की प्रवृत्ति कहै हैं। और कुलन विषे राक्षस मनुष्य देव तिर्यंचन कै परस्पर प्रसूति भेद बतावैं हैं। तहां देव से मनुष्य वा मनुष्य से देव वा तिर्यंच से मनुष्य मनुष्य से तिर्यंच इत्यादि कोई माता कोई पिता से पुत्र पुत्री का उपजना बतावैं सो कैसे संभवै। और मन ही कर वा पवनादिक कर वा वीर्य सूंघनें आदि कर प्रसूत होते बतावे हैं, सो प्रत्यक्ष विरुद्ध भासे है। ऐसे होतैं पुत्र पौत्रादिक का नियम कैसे रहा, और अन्य अन्य माता पिता से बड़े बड़े महन्तन को भये कहै हैं। सो महन्त पुरुष कुशीली माता पिता से कैसे उपजैं। यह तो लोक विषे गाली है। ऐसा कह उनकी महन्तता किस लिये कहिये है। और गणेशादिक की मैल आदि कर उत्पति बतावे हैं। वा किसी के अंग किसी कै जुड़े बतावे हैं। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्ध कहै हैं। और चौबीस अवतार भये कहे हैं। तहां कोई अवतारन को पूर्णावतार कहै हैं। केइन को अंशावतार कहै हैं। सो पूर्णावतार भये, तब ब्रह्म अन्यत्र व्याप रहा कि नाहीं। जो रहा तो इन अवतारन को पूर्ण किसलिये कहो, न रहा तो इतना उनमात्र ही ब्रह्म रहा। और अंशावतार भये। तहां ब्रह्म का अंश तो सर्वत्र कहो हो। इन विषे क्या अधिकता भई। और कार्य्य तो तुच्छ। तिस के नाश को ब्रह्म आप अवतार धारा कहो। सो जानिये है बिना अवतार धारे ब्रह्म की शक्ति इस कार्य्य करने की न थी। क्यों कि जो कार्य्य स्तोक उद्यम से होय। तहां बहुत उद्यम किस लिये करिये। और अवतारन विषे मच्छ कच्छादिक अवतार भये, सो किञ्चित् करने अर्थ हीन तिर्यञ्च पर्याय रूप भये सो कैसे सम्भवै। और प्रल्हाद के अर्थ नरसिंह अवतार भये, सो हिरण्याक्षस को ऐसा

किसलिये होने दिया। और कितनेक काल अपने भक्तन को किस लिये दुःख होने दिया, और विड़ रूप स्वांग किस लिये धारा। और नाभि राजा के वृषभा अवतार भया बतावे हैं, सो नाभिको पुत्रपने का सुख उपजावने को अवतार धारा। घोर तपश्चरण किस अर्थ किया, उन को तो कुछ साध्य था ही नाहीं, और कहैगा जगत् के दिखावने को किया, तो कोई अवतार तो तपश्चरण दिखावे। कोई अवतार व्यभिचार सेवनादिक दिखावे। कोई क्रोधादिक प्रगट करे। कोई कौतूहल मात्र नाचे जगत् किस को भला जाने यह तो वहुरूपिये कैसा स्वांग भया, तब वह कहै है, कि एक अरहन्त नाम राजा भया। सो वृषभा अवतार का मत्त अङ्गीकार कर जैन मत प्रगट किया। सो जैन विषे कोई अरहन्त नामा राजा भया नाहीं। जो सर्वज्ञ पद पाय पूजने योग्य होय, तिस ही का नाम अरहन्त है। और राम कृष्ण इन दोय अवतारन को मुख्य कहै हैं। सो रामा अवतार ने क्या किया। सीता के अर्थ विलाप कर रावण से लड़ उस को मार राज्य किया। और कृष्णावतार पहिले गुवाल होय। पर स्त्री गोपियन के अर्थ नाना विपरीत निन्द्य चेष्टा कर पीछे जरासिन्धु आदि को मार राज किया। सो ऐसे कार्य करने में क्या सिद्धि भई। और राम कृष्णादिक को एक स्वरूप कहै हैं, सो बीच में इतने काल कहां रहै। सो ब्रह्म विषे रहै, कि जुदे रहै। जुदे रहे तो जानिये है, यह ब्रह्म से जुदे रहे। एक रहै तो राम ही कृष्ण भया सीता ही रुक्मणी भई। इत्यादि कैसे कहिये, और रामावतार विषे तो सीता को मुख्य कहै हैं। कृष्णावतार विषे सीता को रुक्मणि भई कहैं, तिस को तो प्रधान कहैं नाहीं। राधिका कुमारी को मुख्य

कहै हैं, और पूछैं तव कहैं कि राधिका भक्त थी, सो निज स्त्री को छोड़ दासी का मुख्य करना कैसे बने, और कृष्ण कै तो राधिका सहित पर स्त्री सेवन के सर्व विधान भये, सो यह भक्ति कैसे करी। ऐसे कार्य तो महा निन्द्य हैं; और रुक्मणी को छोड़ राधा को मुख्य करी। सो परस्त्री सेवन को भला जान करी होगी। और एक राधा ही विषे आसक्त न भया। अन्य गोपिका कुब्जा आदि अनेक परस्त्री विषे भी आसक्त भया। सो यह अवतार ऐसे ही कार्य का अधिकारी भया। और वह कहै है, लक्ष्मी उस की स्त्री है। और धनादिक को लक्ष्मी कहैं, सो यह तो पृथ्वी आदि जैसे पाषाण धूलि है। तैसे ही रत्न सुवर्णादि देखिये हैं। जुदी ही लक्ष्मी कौन है, उस का भर्त्तार नारायण है। और सीतादिक को माया का स्वरूप कहैं। सो इन विषे आसक्त भये, तव माया विषे आसक्त कैसे न भया। कहां ताईं कहिये। जो निरूपण करैं, सो विरुद्ध करैं, परन्तु जीवन को भोगादिक की वार्त्ता सुहावै। इस लिये तिन का कहना वल्लभ लागै है, ऐसे अवतार कहै हैं। इन को ब्रह्म स्वरूप कहै हैं। और औरन को भी ब्रह्म स्वरूप कहै हैं। एक तो महादेव को ब्रह्म स्वरूप माने हैं, तिस को योगी कहै हैं, सो योग किस अर्थ ग्रहण किया। और मृगछाला भस्मी धारै है, सो किस अर्थ धारै है, रुण्डमाला पहरै है। सो हाड़ का छूना भी निन्द्य है। तिस को गले में किस अर्थ धारै है सर्पादि सहित है। सो इस मैं क्या बड़ाई है। आक धतूरा खाय है, सो इस में क्या भलाई है, त्रिशूलादि राखै है, सो किस का भय है, पार्वती सङ्ग लिये है सो योगी होय स्त्री राखै है। सो ऐसा विपरीतपना किस लिये किया। कामासक्त था तो घर ही में रहा होता।

और उसने नाना प्रकार विपरीत चेष्टा करी । तिस का प्रयोजन तो कुछ भासे नाहीं । बावले कैसा कर्त्तव्य भासे है, और तिस को ब्रह्म स्वरूप कहै हैं। और कृष्ण को इस का सेवक कहै हैं, कभी इसको कृष्ण का सेवक कहै हैं, कभी दोउन को एक कहै हैं, सो कुछ ठिकाना नाहीं। और सूर्यादिक को ब्रह्म का स्वरूप कहै हैं। फिर ऐसा कहै हैं, जो विष्णु ने यह कहा है। धातु विषे सुवर्ण, वृक्षन, विषे कल्पवृक्ष, जूवा विषे झूठ इत्यादि में मैं ही हूं। सो कुछ पूर्वापर विचारै नाहीं। कोई एक अङ्ग कर जिसको संसारी महन्त मानें तिस ही को ब्रह्म का स्वरूप कहैं। सो ब्रह्म सर्व व्यापी है। ऐसा विशेष किस लिये किया। और सूर्य्य विषे वा सुवर्णादि विषे ही ब्रह्म है, तो सूर्य्य उजाला करै है। सुवर्ण धन है, इत्यादि गुणन कर ब्रह्म माना। सो सूर्य्यवत् दीपादिक भी उजाला करै है। सुवर्णवत् रूपा लोहा आदि भी धन है, इत्यादि गुण अन्य पदार्थन विषे भी हैं। तिन को भी ब्रह्म मानो। बड़ा छोटा मानों परन्तु जाति तो एक भई। सो झूठी महन्तता ठहरावने के अर्थ अनेक प्रकार युक्ति बनावै हैं। और अनेक ज्वाला मालनी आदि देवी तिन को माया का स्वरूप कह हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै हैं। सो माया तो निन्द्य है तिस का पूजना कैसे सम्भवै। और हिंसादिक करना कैसे भला होय। और गऊ, सर्प्पादिक, पशु, अभक्ष भक्षणादि सहित तिन को पूज्य कहो, अग्नि पवन जलादिक को देव ठहराय पूज्य कहै। वृक्षादिक को युक्ति बनाय पूज्य कहै, बहुत क्या कहिये। पुरुष लिङ्गी नाम सहित जो होय तिन विषे ब्रह्म की कल्पना कहै हैं। और स्त्रीलिङ्ग नाम सहित होय, तिन विषे माया की कल्पना कर कहै हैं।

अनेक वस्तुन का पूजन ठहरावै हैं। इनके पूजे क्या होयगा, सो कुछ विचार नाहीं। झूठे लौकिक प्रयोजन के कारण ठहराय जगत् को भ्रमावैं हैं और कहै हैं विधाता शरीर को घड़े है, और यम मारे है, और मरते को यमदूत लेने आवै है, मूवे पीछे मार्ग विषे बहुत काल लगै है। और तहां पुण्य पाप का लेखा करै हैं, और तहां दण्डादिक दे हैं। सो यह कल्पित झूठी युक्ति है जीव तो समय २ अनंते उपजैं मरैं तिन का युगपत् कैसे संभवै। और ऐसे मानने का कोई कारण भी भासे नाहीं, और मुवे पीछे श्राद्धादिक कर उस का भला होना कहे हैं। सो जीवता तो किसी के पुण्य पाप कर कोई सुखी दुःखी होता दीखे नाहीं। मुवे पीछे कैसे होय, यह युक्ति मनुष्यन को भ्रमाय अपने लोभ साधने के अर्थ बनाई है, कीड़ा पतंग सिंहादिक जीव भी तो उपजैं मरैं हैं, उनको प्रलय के जीव ठहराये। सो जैसे मनुष्यादिक को जन्म मरण होते देखिये हैं, तैसे ही उन कै भी होते देखिये हैं। झूठी। कल्पना किये क्या सिद्धि है, और वह शास्त्रन विषे कथादिक निरूपै हैं, तहां विचार किये विरुद्ध भासे है। और यज्ञादिक करना धर्म ठहराव। सो तहां बड़े जीव तिन का होम करे हैं, अग्नि काष्टादिक का महा आरम्भ करे हैं, तहां जीव घातहोय है, सो उन ही के शास्त्र विषे वा लोक विषे हिंसा का निषेध है। सो ऐसे निर्दयी हैं, कुछ गिने नाहीं, और कहैं "यज्ञार्थं पशवः सृष्टा" यज्ञ ही के अर्थ पशु बनाये हैं, तहां घात करने का कुछ दोष नाहीं। और मेघादिक का होना शत्रु आदिक का विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभ के अर्थ राजादिकन को भ्रमावैं, जैसे कोई विष से जीवना कहै, सो

प्रत्यक्ष विरुद्ध है। तैसे हिंसा किये धर्म और कार्य सिद्धि कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिन की हिंसा करनी कही, तिन के तो कुछ शक्ति नाहीं, उन की किसी को पीड़ नाहीं, जो किसी शक्तिवान का वा इष्ट का होम करना ठहराया होता तो ठीक पड़ता, और पाप का भय नाहीं। इस लिये पापी दुर्बल के घातक होय अपने लोभ के अर्थ अपना वा अन्य का बुरा करने विषे तत्पर भये हैं ॥

॥ अब अन्य मत मोक्षमार्ग निरूपण करिये है ॥

मोक्षमार्ग ज्ञानयोग भक्तियोग कर दोय प्रकार प्ररूपै हैं। अब पहिले भक्तियोग का निरूपण करे हैं, तहां भक्ति निर्गुण सगुण भेद कर दोय प्रकार कर कहै हैं। तहां अद्वैत परमब्रह्म की भक्ति करनी सो निर्गुण भक्ति है, सो ऐसे कहै हैं। तुम निराकार हो, निरञ्जन हो, मन वचन के अगोचर हो, अपार हो, सर्वव्यापी हो एक हो, सर्व के प्रतिपालक हो, अधम उद्धारन हो, सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हो इत्यादि विशेषण कर गुण गावे हैं। सो इन विषे केई तो निराकारादि विशेषण हैं, सो अभाव रूप हैं, तिनको सर्वथा माने अभाव ही भासे। क्योंकि आकारादि बिनावस्तु के कैसे होय, और केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असंभवी हैं, सो तिन का असंभवपना पूर्व दिखाया ही है। और ऐसा कहे हैं जो जीव बुद्धि कर मैं तिहारा दास हूं, शास्त्र दृष्टि कर तिहारा अंश हूं, तत्व बुद्धि कर तू है सो मैं हूं, सो यह तीनों ही भ्रम हैं, यह भक्ति करन हारा चेतन है, कि जड़ है, जो चेतन है तो यह

चेतना ब्रह्म की है, कि इस ही की है। जो ब्रह्म की है तो मैं दास हूं। ऐसा मानना तो चेतना ही के होय है। सो चेतना ब्रह्म का स्वभाव ठहरा। और स्वभाव स्वभावी कै तादात्म्य सम्बन्ध है। तहां दास और स्वामी का सम्बन्ध कैसे बने। दास स्वामी का सम्बन्ध तो भिन्न पदार्थ होय तब ही बनै। और जो यह चेतना इस ही की है तो यह चेतना का धनी दूजा पदार्थ ठहरा। तो मैं अंश हूं, वा जो तू है सो मैं हूं। ऐसा कहना झूठ भया। और जो भक्ति करने हारा जड़ है, तो जड़ कै बुद्धि का होना असंभव है। ऐसी बुद्धि कैसे भई, कि मैं दास हूं। ऐसा कहना तो तब ही बने है। जब जुदे जुदे पदार्थ होयें और तेरा मैं अंश हूं, ऐसा कहना बने है नाहीं, क्योंकि तू और मैं ऐसा कहना तो तबही बने जब आप और वह भिन्न होय, और अंश अंशी भिन्न होय सके नाहीं। अंशी तो कोई जुदी वस्तु है नाहीं। अंशन का समुदाय सो ही अंशी है। और तू है सो मैं हूं, ऐसा वचन ही विरुद्ध है, एक पदार्थ विषे आपा भी मानें। और उस को पर भी माने सो कैसे संभवै, इस लिये भ्रम छोड़ निर्णय करना, और कोई नाम ही जपै हैं, सो जिस का नाम जपैं तिस का स्वरूप पहिचानें बिना केवल नाम ही का जपना कैसे कार्यकारी है। जो तू कहेगा नाम ही का अतिशय है, तो जो नाम ईश्वर का है, सोही नाम किसी पापी पुरुष का धरा। तहां दोजन का नाम उच्चारण विषे फल की समानता होय सो कैसे बनें, इस लिये पहिले स्वरूप का निर्णय कर पीछे जो भक्ति करने योग्य है तिस की भक्ति करनी, ऐसे निर्गुण भक्ति का स्वरूप दिखाया।

—:(अब सगुण भक्ति कहिये है):— जहां काम क्रोधादिक कर निपजे कार्यन का वर्णन कर स्तुत्यादि

करिये, तिस को सगुण भक्ति कहे हैं। तहां सगुण भक्ति विषे लौकिक शृङ्गार वर्णन जैसे नायक नायका का करिये, तैसे ठाकुर ठकुराणी का वर्णन करे हैं, अपनी या परकी स्त्री सम्बन्धी संयोग वियोग रूप सर्व व्यवहार तहां निरूपे हैं, और स्नान करती स्त्रीनि का वस्त्र चुरावना दधि लूटना, स्त्रीन के पगां पड़ना स्त्रियों के आगे नाचना, इत्यादि जिन कार्यन को संसारी भी करते लज्जित होयें तिन कार्यन का करना ठहरावें हैं, सो ऐसा काम कार्य अति काम पीड़ित भये ही बने। और युद्धादिक किये कहैं सो यह क्रोध के कार्य हैं, अपनी महिमा दरशावने के अर्थ उपाय किये हैं, सो मान के कार्य्य हैं । अनेक छल किये कहैं । सो माया के कार्य हैं । विषय सामग्री की प्राप्ति के अर्थ यत्न किये कहैं, सो यह लोभ के कार्य हैं, कौतूहलादिक कीए कहैं, सो हास्यादिक के कार्य हैं, ऐसे यह कार्य क्रोधादि कर युक्त भये ही बने इस प्रकार काम क्रोधादिक कर निपजे कार्यन को प्रगट कर कहैं हम स्तुति करे हैं। सो काम क्रोधादिक के कार्य ही स्तुति योग्य भये, तो निन्द्य कौन ठहरेंगे। जिन की लोक विषे वा शास्त्र विषे अत्यन्त निन्दा पाइये है। तिन कार्यन का वर्णन कर स्तुति करना तो हस्त चुगल कैसा कार्य भया। हम पूछे हैं, कि कोई किसी का नाम तो कहे नाहीं, और ऐसे कार्यन का निरूपण कर कहे। किसी ने ऐसे कार्य किये हैं। तब तुम उस को भला जानो कि बुरा जानो, जो भला जानो तो पापी भले भये बुरा कौन रहा। बुरे जानो तो ऐसे कार्य कोई करै सो ही बुरा भया, पक्षपात रहित न्याय करो, जो पक्षपात कर कहोगे, ठाकुर का ऐसा वर्णन करना भी स्तुति

है, तो ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थ किये, निन्द्य कार्य करने में क्या सिद्धि भई, कहोगे प्रवृत्ति चलावने के अर्थ किये तो परस्त्री सेवन आदि निन्द्य कार्यन की प्रवृत्ति चलावने में आप के वा अन्य के क्या नफा भया, इस लिये ठाकुर को ऐसे कार्य करना संभवै नाही, और जो ठाकुर ने यह कार्य नहीं किये केवल तुम ही कहो हो तो जिस में दोष न था, तिस को दोष लगाया, ऐसा वर्णन करना तो निन्दा ही है, स्तुति नाहीं, और स्तुति करते जिन गुणन का वर्णन करते आप भी काम क्रोधादि रूप होय, अथवा काम क्रोधादि विषे अनुरागी होय। सो ऐसे भाव तो भले नाहीं। जो कहोगे भक्त ऐसे भाव न करे है तो परणाम भये बिना वर्णन कैसे किया, और अनुराग भये बिना भक्ति कैसे करी। जो यह भाव भले होयें तो ब्रह्मचर्य को वा क्षमादिक को भले कैसे कहिये। इन के तो परस्पर प्रतिपक्षीपना है, और सगुण भक्ति करने के अर्थ राम कृष्णादिक की मूर्त्ति भी शृंगारादि किये वक्रत्वादि सहित स्त्री आदि संग लिये बनावै हैं। उन को देखते ही काम क्रोधादि भाव प्रगट होय आवै, और महादेव के लिङ्ग ही का आकार बनावै हैं। देखो विटम्बना जिस का नाम लीये ही लाज आवै। जगत् तिस को ढका राखे तिस के आकार का पूजन करावे हैं, क्या अन्य अङ्ग उस के न थे, परन्तु घनी विटम्बना ऐसे ही किये प्रगट होय है। और सगुण भक्ति के अर्थ नाना प्रकार विषय सामग्री भेली करैं और नाम तो ठाकुर का करैं, और तिन को आप भोगवैं, भोजनादि बनावैं। फिर ठाकुर को भोग लगावैं ऐसा कह पीछे आप ही प्रसाद की कल्पना कर तिस का भक्षण करैं। सो यहां पूछिये है, कि प्रथम तो ठाकुर को

क्षुधा तृषादिक की पीड़ा न होय तो ऐसी कल्पना कैसे सम्भवैं। और क्षुधादि कर पीड़ित होय, सो व्याकुल होय। तब ईश्वर दुःखी भया, सो और का दुःख कैसे दूर करै। और भोजनादि सामग्री आप तो उन के अर्थ मगावैं अर्पण करी सो करी। पीछे प्रसाद तो ठाकुर दे तब होय, आप ही का तो किया न होय। जैसे कोई राजा को भेट करै, पीछे राजा बकशे तो उस को ग्रहण करना योग्य है। और आप राजा को भेट करे और राजा तो कुछ कहै नाहीं, आप ही राजा मुझ को बकशी ऐसा कह कर उस को अंगीकार करै तो यह ख्याल भया, तैसे यहां भी ऐसे किये भक्ति तो भई नाहीं, हास्य करना ठहराया। और ठाकुर वा तू दोय हो, कि एक हो। दोय हो तो तैं भेट करी। पीछे ठाकुर बकशे सो ग्रहण कीजै। आप ही से ग्रहण किस लिये करै है। और तू कहैगा ठाकुर की तो मूर्त्ति है, इस लिये मैं ही कल्पना करूं हूं। तो ठाकुर के करने का कार्य तैं किया तब तू ही ठाकुर भया। और जो एक हो तो भेट करनी प्रसाद करना झूठा भया। एक भये व्यवहार सम्भवै नाहीं। इस लिये भोजन आसक्त पुरुषन कर ऐसी कल्पना करिये है। और ठाकुर के अर्थ नृत्य गीतादि करावना शीत, ग्रीष्म, वसंत, आदि ऋतुओं विषे संसारीन को सम्भवती ऐसी विषय सामग्री भेली करनी इत्यादि कार्य करें तहां नाम तो ठाकुर का लेना और इन्द्रिय विषय अपने पोषने सो विषयासक्त जीवन कर ऐसा उपाय किया है। और जन्म विवहादिक वा सोवना जगावना इत्यादिक की कल्पना तहां करै हैं। सो जैसे लड़की गुड्डी गुड्डे का खयाल बनाय कर कौतूहल करै, तैसे यह भी कौतूहल करना है, कुछ परमार्थ रूप गुण है नाहीं। और

लड़के ठाकुर का स्वांग बनाय चेष्टा दिखावैं तिस कर अपने विषय पोषैं कहैं यह भी भक्ति है, इत्यादिक क्या कहिये। ऐसी ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषे पाइये हैं, ऐसे दोय प्रकार भक्ति कर मोक्षमार्ग कहैं हैं, तिस को मिथ्या दिखाया॥

अब अन्यमत ज्ञानयोग कर मोक्षमार्ग के स्वरूप का निरूपण करिये है।

एक अद्वैत सर्व्वव्यापी परमब्रह्म का जानना तिस को ज्ञान कहै हैं। सो तिस का मिथ्यापना पूर्वं कहा ही है, और आप को सर्व्वथा शुद्ध ब्रह्मरूप मानना, काम क्रोधादिक वा शरीरादिक को भ्रम जानना। तिस को ज्ञान कहै हैं, सो यह भ्रम है, आप शुद्ध है तो मोक्ष का उपाय किस लिये करे है। आप शुद्ध ब्रह्म ठहरा तब कर्त्तव्य क्या रहा। और प्रत्यक्ष आप को काम क्रोधादि होते देखिये। और शरीरादिक का संयोग देखिये सो इन का अभाव होगा तब होगा। वर्त्तमान विषे इन का सद्भाव मानना भ्रम कैसे भया। और कहते हैं, कि मोक्ष का उपाय करना भी भ्रम है। जैसे जेवड़ी तो जेवड़ी है, तिस को सर्प्प जाने था, सो भ्रम था, भ्रम मिटे जेवड़ी ही है। तैसे आप तो ब्रह्म ही है, आप को अशुद्ध जाने था, भ्रम मिटे आप ब्रह्म ही है, सो ऐसा कहना मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय और तिस को अशुद्ध जानै तो भ्रम हो, और आप काम क्रोधादि सहित अशुद्ध होय रहा तिस को अशुद्ध जाने तो भ्रम कैसे होय, शुद्ध जाने तो भ्रम होय। सो झूठा भ्रम कर आप को शुद्ध ब्रह्म माने, क्या सिद्धि है। और तू

कहैगा यह काम क्रोधादिक तो मन के धर्म्म हैं। ब्रह्म न्यारा है तो तुझ को पूछिये है, मन तेरा स्वरूप है, कि नाहीं। जो है तो काम क्रोधादि भी तेरे ही भये। और नाहीं है, तो तू ज्ञान स्वरूप है, कि जड़ है जो ज्ञान स्वरूप है तो तेरे तो ज्ञान मन इन्द्रिय द्वारा ही होता दीखे है। इन विना कोई ज्ञान बतावै तो तिस को जुदा तेरा स्वरूप मानें सो भासता नाहीं। और "मनज्ञाने" धातु का मन शब्द निपजे है। सो मन तो ज्ञान स्वरूप है। सो यह ज्ञान किस का है, तिस को बताय। सो जुदा कोई भासे नाहीं। और तू जड़ है तो ज्ञान विना अपना स्वरूप का विचार कैसे करे है, यह बने नाहीं। और तू कहै है ब्रह्म न्यारा है। सो वह न्यारा ब्रह्मवत् ही है, कि और है। जो तू ही है तो तेरे में ब्रह्म है। ऐसा मानने वाला जो ज्ञान है। सो तो मन स्वरूप ही है। मन से जुदा नाहीं। और आपा मानना। आप ही विषे हो जाय, जिस को न्यारा जानै तिस विषे आपा माना जाय नाहीं। सो मन से न्यारा ब्रह्म है, तो मन रूप ज्ञान ब्रह्म विषे आपा किसलिये मानेहै। और जो ब्रह्म और ही है तो तू ब्रह्म विषे आपा किस लिये मानै। इस लिये भ्रम छोड़ ऐसा जान, कि स्पर्शनादि इन्द्रिय तो शरीर का स्वरूप है। सो जड़ है। इस के द्वारा जो जानपना होय है, सो आत्मा का स्वरूप है, तैसे ही मन भी सूक्ष्म पुद्गल परमाणुन का पुंज है, सो शरीर ही का अङ्ग है तिस के द्वारा जानपना होय है। वा काम क्रोधादि भाव होय हैं, सो सर्व आत्मा का स्वरूप है। विशेष इतना जानना ज्ञान तो निज स्वभाव है, काम क्रोधादि औपाधिक भाव हैं। तिस कर आत्मा अशुद्ध है। जब समय पाय काम क्रोधादिक मिटैंगे। और जानपना के मन

इन्द्रियन का आधीनपना मिटेगा तब केवल ज्ञान स्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसे ही बुद्धि अहंकारादिक भी जान लेना। क्योंकि मन और बुद्धयादिक यह कार्य्य हैं, और अहंकारादिक हैं, सो काम क्रोधादिक वत् औपाधिक भाव हैं, इनको आप से भिन्न जानना भ्रम है, इन को अपने औपाधिक भाव जान इन के अभाव करने का उद्यम करना योग्य है। और जिन से इन का अभाव न हो सके है। और वह अपनी महंतता चाहते हैं सो ऐसे जीव इन को अपने न ठहराय स्वच्छन्द प्रवर्त्तें हैं। काम क्रोधादिक भावन को बधाय विषय सामग्री विषे वा हिंसादिक कार्यन विषे तत्पर होय रये हैं, और अहंकारादिक के त्याग को भी अन्यथा माने हैं। सर्व को परमब्रह्म मानना, तिसको अहंकार त्याग बतावैं हैं सो मिथ्या है। क्योंकि कोई आप है, कि नाहीं। जो है तो आप विषे आपा कैसे न मानिये, जो आप नहीं है, तो सर्व को ब्रह्म कौन माने है, इस लिये शरीरादिक पर विषे अहं बुद्धि न करनी। तहां कर्त्ता न होना सो अहंकार का त्याग है। आप विषे अहंबुद्धि करने का दोष नाहीं, और सर्व को समान जानना। किसी की निन्दा न करनी, तिस को राग द्वेष का त्याग बतावै हैं, सो भी मिथ्या है। क्योंकि सर्व पदार्थ समान नाहीं हैं, कोई चेतन है, कोई अचेतन है, कोई कैसा है, कोई कैसा है, तिन को समान कैसे मानिये। इस लिये पर द्रव्यन को इष्ट अनिष्ट न मानना। सो राग द्वेष का त्याग है। पदार्थन का विशेष जानने में तो कुछ दोष है नाहीं। और ऐसे ही अन्य मोक्षमार्ग रूप भावन की अन्यथा कल्पना करै हैं। और ऐसी कल्पना कर कुशील सेवे हैं। अभक्ष भक्षण करै हैं, वर्णादि भेद नाहीं करे हैं, हीन क्रिया आचरे हैं। इत्यादि विपरीत

रूप प्रवर्त्तें हैं। जब कोई पूछे तब कहैं, कि यह तो शरीर का धर्म्म है, अथवा जैसी लब्धि है, तैसे होय है, वा जैसे ईश्वर की इच्छा होय है, तैसे होय है। हम को तो विकल्प न करना, सो देखो झूठ आप जान कर प्रवर्त्तें हैं। तिस को शरीर का धर्म्म बतावें, आप उद्यमी होय कार्य करैं, तिस को प्रारब्ध कहैं। आप इच्छा कर सेवैं, तिस को ईश्वर की इच्छा बतावै हैं। विकल्प करैं, और कहैं हम को तो विकल्प न करना, सो धर्म्म का आश्रय ले विषय कषाय सेवैं हैं, इसलिये ऐसी झूठी युक्ति बनावैं हैं। जो अपने परिणाम कुछ भी न मिलावैं तो हम इस का कर्त्तव्य न माने। जैसे आप ध्यान धरे तिष्ठे। कोई अपने ऊपर वस्त्र गेर जाय, तहां आप कुछ सुखी न भया, तहां तो तिस का कर्त्तव्य नहीं सो सांच है। और आप वस्त्र को अङ्गीकार कर पहरे, और अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय तहां जो अपना कर्त्तव्य माने नाहीं सो कैसे सम्भवै। और कुशील सेवना अभक्ष खाना इत्यादि कार्य तो परिणाम मिले बिना होते नाहीं। तहां अपना कर्त्तव्य कैसे न मानिये। इसलिये जो काम क्रोधादिक का अभाव भया होय तो तहां किसी क्रियान विषे भी प्रवर्त्ति संभवै नाहीं। और जो काम क्रोधादि पाइये हैं, तो जैसे यह भाव थोड़े होयें तैसे प्रवृत्ति करनी चाहिये, स्वच्छंद होय इनको वधावना युक्त नाहीं। और कई जीव पवनादिक का साधन कर आप को ज्ञानी माने हैं। तहां इंडा पिंगुला सुखमना रूप नासिका द्वार पवन निकसे है तहां वर्णादिक भेदन से पवन ही को पृथ्वी, तत्वादिक रूप कल्पना करैं हैं। तिसका विज्ञान कर कुछ साधन से निमित्त ज्ञान होय तब जगत् को इष्ट अनिष्ट बतावैं, आप महन्त कहावैं।

सो यह तो लौकिक कार्य हैं, कुछ मोक्षमार्ग नाहीं। जीवन को इष्ट अनिष्ट बताय उन के राग द्वेष वधावैं हैं। और अपने मान लोभादिक निपजावैं हैं, इस में कहा सिद्धि है। और प्राणायामादिक का साधन कर पवन को चढ़ाय समाधि लगावैं हैं, सो यह तो जैसे नट साधन से हस्तादिक कर क्रिया करै, तैसे यहां भी साधन से पवन क्रिया करी। हस्तादिक और पवन यह तो शरीर ही के अङ्ग हैं। इन के साधन से आत्मा का हित कैसे सधे। और तू कहैगा तहां मन का विकल्प मिटै है, सुख उपजै है, यम के वशीभूत पना न होय है, सो यह मिथ्या है। जैसे निद्रा विषे चेतना की प्रवृत्ति मिटै। तैसे पवन साधन से तहां चेतना की प्रवृत्ति मिटै है, तहां मन को रोक राखा है, कुछ वासना तो मिटी नाहीं इस लिये मन का विकल्प मिटा न कहिये। और चेतना विना सुख कौन भोगवै है। इस लिये सुख उपजा न कहिये। और इस साधन वाले तो इस क्षेत्र विषे भये हैं, तिन विषे कोई अमर दीखता नाहीं। अग्नि लगाय तिसका मरण होता दीखै है। इस लिये यम के वशीभूत नाहीं। यह झूठी कल्पना है। और जहां साधन विषे कुछ चेतना रहै, और तहां साधन से शब्द सुनै तिस को अनहद शब्द बतावैं, सो तैसे वीणादिक के शब्द सुनने से सुख मानना, तैसे तिन के सुनने से सुख मानना है। यहां तो विषय पोषण भया, परमार्थ तो कुछ नाहीं ठहरा। और पवन के निकसने पठने विषे "सोहं" ऐसे शब्द की कल्पना कर तिस को अजपा जाप कहै हैं। सो जैसे तीतर के शब्द विषे तू ही शब्द की कल्पना करैं। कुछ तीतर अर्थ अवधार ऐसा शब्द कहता नाहीं। तैसे यहां "सोहं" शब्द की कल्पना है, कुछ पवन अर्थ अवधार

ऐसा शब्द कहता नाहीं। और शब्द के जपने सुनने से ही तो कुछ फल प्राप्ति नाहीं। अर्थ अवधारे फल की प्राप्ति होय है। सो "सोहं" शब्द का तो अर्थ यह है, "सो मैं हूं" यहां ऐसी अपेक्षा चाहिये है, सो कौन तब तिस का निर्णय किया चाहिये। क्योंकि तत् शब्द के और यत् शब्द का नित्य सम्बन्ध है। क्योंकि वस्तु का निर्णय कार तिस विषे अहं बुद्धि धारणे विषे "सोहं" शब्द बने, तहां भी आप को अनुभवे तहां तो "सोहं" शब्द सम्भवे नाहीं। परको अपने स्वरूप बतावनें विषे "सोहं" शब्द सम्भवे। जैसे पुरुष आप को आप जानें तहां "सोहं" कूं ऐसा किस लिये विचारे। कोई अन्य जीव आप को पहिचानता होय। और कोई अपना लक्षण पहिचानता होय। तब उस को कहिये। जो ऐसा सो मैं हूं, तैसे ही यहां जानना। और कोई ललाट भौं नासिका के अग्र भाग देखने का साधन करे। त्रिकुटी आदि का ध्यान भया कह परमार्थ मानें, सो नेत्र की पुतली फिरे मूर्त्तीक वस्तु देखी इस में क्या सिद्धि है। और ऐसे साधन से किञ्चित् अतीत अनागतादिक का ज्ञान होय वा वचन सिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादिक विषे गमनादिक की शक्ति होय। वा शरीर विषे आरोग्यतादिक होय तो यह तो सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिक के स्वयमेव ऐसी ही शक्ति पाइये है, तिन से कुछ अपना भला होता नाहीं। भला तो विषय कषाय की वासना मिटे होय है। सो यह तो विषय कषाय पोषने के उपाय हैं। इस लिये यह सर्व साधन कुछ हितकारी नाहीं। इन विषे कष्ट बहुत मरणादिक पर्यन्त होय है। और हित सधै नाहीं। इस लिये ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करे नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधन विषे लगे हैं। और किसी को बहुत

तपश्चरणादिक कर मोक्ष का साधन कठिन बतावैं हैं। किसी को सुगमपने ही मोक्षभया कहैं। ऊधो आदिक को परम भक्त कहैं तिन को तप का उपदेश दिया कहैं। वेश्यादिक को विना परिणाम केवल नामादिक ही से निर्वाण बतावैं हैं। कुछ थल है नाहीं, ऐसे मोक्षमार्ग को अन्यथा प्ररूपे हैं। और मोक्ष स्वरूप को भी अन्यथा प्ररूपे हैं। तहां मोक्ष अनेक प्रकार बतावे हैं। एक तो मोक्ष ऐसी कहे हैं। जो वैकुण्ठ धाम विषे ठाकुर ठकुराणी सहित नाना भोग विलास करैं हैं, तहां जाय प्राप्ति होय है, और तिन की टहल किया करे सो मोक्ष है। सो यह तो विरुद्ध है, प्रथम तो ठाकुर भी संसारीवत् विषयासक्त होय रहा है, तो जैसा राजादिक हैं, तैसा ही ठाकुर भया, और अन्य पासौं टहल करावनी भई, तब ठाकुर के पराधीनपना भया। और जो यह मोक्ष को पाय तहां टहल किया करै तो जैसे राजा की चाकरी करनी तैसे यह भी चाकरी भई। तहां पराधीन भये सुख कैसे होय, यह बने नाहीं। और एक मोक्ष ऐसा कहे हैं, कि ईश्वर के समान आप होय है, सो मिथ्या है। जो उस के समान और भी जुदा होय, तो बहुत ईश्वर भये। लोक का कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरेगा, सब ही ठहरेंगे तो भिन्न २ इच्छा होने से परस्पर विरोध होय। एक ही है तो समानता न भई। न्यून है तो तिस के नीचापने कर उच्च होने की आकुलता रही, तब सुखी कैसे होय। जैसे छोटा राजा बड़ा राजा संसार विषे होय हैं, तैसे छोटा बड़ा ईश्वर मुक्ति विषे भी यभा, सो बने नाहीं। और एक मोक्ष ऐसा कहे हैं, जो वैकुण्ठ विषे दीपक कैसी एक ज्योति है, तहां ज्योति विषे ज्योति

जाय मिले है, सो यह भी मिथ्या है। दीपक ज्योति तो मूर्त्तीक अचेतन है। सो ऐसी ज्योति तहां कैसे संभवै। और ज्योति में ज्योति मिले यह ज्योति रहै है कि, विनशजाय है। जो रहै है तो ज्योति वधती जासी न रहै, तब ज्योति विषे हीनादिक पनो होसी। और विनश जाय है तो आपका सत्तानाश होसी, ऐसा कार्य उपादेय कैसे मानियें। इसलिये ऐसे भी बने नाहीं। और एक मोक्ष ऐसा कहै हैं, जो आत्मा ब्रह्म ही है। माया का आवरण मिटे मुक्ति ही है, सो भी मिथ्या है। यह माया के आवरण सहित था, तब ब्रह्म से एक था कि जुदा था। जो एक था तो ब्रह्म ही माया रूप भया। और जुदा था, तो माया दूरभये ब्रह्म विषे मिले है। तब इसका अस्तित्व रहै है, कि नाहीं रहै है। जो रहै है तो सर्वज्ञ को तो इस का अस्तित्व जुदा भासै तब संयोग होने से मिला कहो। परन्तु परमार्थ से तो मिला नाहीं, और अस्तित्व नाहीं रहे है, तो आपका अभाव होना कौन चाहे। इस लिये यह भी न बनें, और एक प्रकार मोक्ष ऐसा भी कहै हैं, जो बुद्धि के नाश भये मोक्ष होय है। सो शरीर के अंगभूत मन इन्द्रिय तिन के आधीन ज्ञान रहा, काम क्रोधादि दूर भये ऐसे कहना तो बने है। और तहां चेतनता का भी अभाव भया मानिये तो पाषाणादिक समान जड़ अवस्था को कैसे भली मानियें। और भला साधन करतें तो जानपना वधे है। और भला साधन किये जानपने का कैसे अभाव होना मानिये। और लोक विषे ज्ञान की महंतता से जड़पना की महंतता नाहीं। संसार अवस्था को मुक्ति अवस्था विषे कल्पना कर अपनी इच्छा के अनुसार बके हैं। इस प्रकार वेदान्तादिक मत विषे अन्यथा निरूपण करे हैं। और

ऐसे ही मुसलमानों के मत विषें अन्यथा निरूपण करै हैं। जैसे वह ब्रह्म को सर्वव्यापी एक निरञ्जन सर्व का कर्त्ता हर्त्ता माने हैं। तैसे यह खुदा को माने हैं। और जैसे वह अवतार भये माने हैं तैसे यह पैगम्बर भये माने हैं। जैसे वह ईश्वर कौ पुण्य पाप का लेखा लेना यथायोग्य दण्डादिक देना ठरावै हैं। तैसे यह खुदा को ठहरावै हैं। और जैसे वह ईश्वर की भक्ति से मुक्ति कहै हैं। तैसे यह खुदा की इबादत से कहै हैं। और जैसे यह कहीं दया पोषैं कहीं हिंसा पोषैं तैसे ही यह कहीं रहम करना पोषैं, कहीं जिबह करना पोषैं, और जैसे वह कहीं तपश्चरण करना पोषैं कहीं विषय सेवन पोषैं, तैसे यह भी पोषैं हैं। और जैसे वह कहीं मांस मदिरा शिकार आदि का निषेध करैं, कहीं उत्तम पुरुषों कर तिन का अंगीकार करना बतावैं तैसे यह भी तिनका निषेध वा अंगीकार करना बतावै हैं। ऐसे अनेक प्रकार समानता पाइये है। यद्यपि नामादिक और और हैं, तथापि प्रयोजनभूत अर्थ की एकता पाइये है, और ईश्वर खुदा आदि मूल अज्ञान की तो एकता है, परन्तु उत्तर अज्ञान विषे घने ही विशेष हैं। तहां उनसे भी यह विपरीतरूप विषय कषाय के पोषक हिंसादिक पाप के पोषक प्रत्यक्षप्रमाण लिये विरुद्ध निरूपण करै हैं। इसलिये मुसलमानों का मत महा विपरीत रूप जानना। इस प्रकार इस क्षेत्र काल विषे जिनके मत की प्रचुरता प्रवर्तै है, तिन का मिथ्यापना प्रगट किया। यहां कोई कहै, कि जो यह मत मिथ्या है तो बड़े राजादिक वा बड़े विद्वान् इन मत विषे कैसे प्रवर्त्तैं हैं। —:(तिस का समाधान):— जीवन के मिथ्या वासना अनादि से है, सो इन विषे मिथ्यात्व ही का पोषण है। और जीवन कौ विषय

काषाय रूप कार्यन की चाह प्रवर्त्तै है। सो इन विषे काषाय रूप कार्य्यन ही का पोषण है। और राजादिकान का वा विद्वानों का ऐसे धर्म्म विषे विषय काषाय रूप प्रयोजन सिद्ध होय है। यह संसारी जीव तो लोक निन्द्यपना को भी उलङ्घन कर जिन में पाप होता जाने तिन को भी किया चाहे है। और जो तिन कार्यन को करते धर्म्म बतावें तो ऐसे धर्म्म विषे कौन न लागै। इस लिये इन धर्म्मन की विशेष प्रवृत्ति है। और जो कदाचित् तू कहैगा इन धर्म्मन विषे विरागता दया इत्यादिक भी तो कहे हैं। सो जैसे झोल बिना खोटा द्रव्य चाले नहीं। तैसे सांच मिलाये बिना झूठ चाले नाहीं। परन्तु सर्व के हित प्रयोजन विषे विषय काषाय ही का पोषण किया है। जैसे गीता विषे उपदेश देकर लड़ाई करावने का प्रयोजन प्रगट किया। वेदान्त विषे शुद्ध निरूपण कर स्वच्छन्द होने का प्रयोजन दिखाया, ऐसे ही अन्यत्र जानना। यह काल तो निकृष्ट है, इस विषे तो निकृष्ट धर्म्म ही की प्रवृत्ति विशेष होय है। देखो इस काल विषे जैनी घट गये हिन्दू वढ़ गये हिन्दू घट गये मुसलमान बहुत प्रधान हो गये। सो यह काल का दोष है। ऐसे यहां अवार मिथ्या धर्म्म की प्रवृत्ति बहुत पाइये है। अब पण्डितपना के बल से कल्पित युक्ति कर नाना मत स्थापित भये हैं, तिन विषे जो तत्वादिक मानिये हैं, तिन का निरूपण कीजिये है॥

॥ अथ सांख्यमत निरूपण करिये है ॥

सांख्य मत विषे पच्चीस तत्व मानिये हैं, सत्व १, रज २, तम ३, यह तीन गुण कहे हैं। तहां सत्व कर शान्ति होय है, रज कर चित्त की चंचलता होय है। तम कर मूढता होय है, इत्यादि लक्षण

कहे हैं। इन रूप अवस्था तिस का नाम प्रकृति है। और तिस से बुद्धि उपजे है, इस ही का नाम महातत्व है। और तिस से अहंकार उपजे है, फिर तिस से सोलह मात्रा होय हैं। तहां पांच तो ज्ञान इन्द्रिय होय हैं, स्पर्शन १, रसन २, घ्राण ३, चक्षु ४, श्रोत्र और एक मन होय है, और पांच कर्म्म इन्द्रिय होय हैं, वचन १, चरण २, हस्त ३, लिङ्ग ४, गुदा ५, फिर पांच तनमात्रा होय हैं, रूप १, रस २, गन्ध ३, स्पर्श ४, शब्द ५, फिर रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, स्पर्श से पवन शब्दसे आकाश भया कहे हैं। ऐसे चौबीस तत्व तो प्रकृति स्वरूप हैं। इनसे भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है, ऐसे पचीस तत्व कहे हैं, सो यह कल्पित हैं। क्योंकि राजसादिक गुण आश्रय बिना कैसे होयें। इन का आश्रय तो चेतन द्रव्य ही संभवै है, और इन से बुद्धि भई कहे हैं, सो बुद्धि नाम तो ज्ञान का है। सो ज्ञान किसी गुणधारी पदार्थ विषे होता देखिये है, पदार्थ से ज्ञान भया कैसे मानिये। कोई कहै बुद्धि जुदी है, ज्ञान जुदा है, तो मन तो आगे षोडश मात्रा विषे कहा है। और ज्ञान जुदा कहेगा, तो बुद्धि किस का नाम ठहरेगा। और तिस से अहंकार भया कहैं, सो पर वस्तु विषे मैं करूं हूं, ऐसा मानने, का नाम अहंकार है। साक्षीभूत जानने कर तो अहंकार होता नाहीं, ज्ञान कर उपजा कैसे कहिये। और अहंकार कर षोडश मात्रा कहीं, तिन के विषे पांच ज्ञान इन्द्रिय कही, सो शरीर विषे नेत्रादिक आकाररूप द्रव्यइंद्रिय हैं, सो तो पृथ्वी आदिवत् देखिये हैं, और वर्णादिक के जानने रूप भाव इन्द्रिय है सो ज्ञान रूप है, अहंकार का क्या प्रयोजन है, क्या अहंकार बुद्ध रहित कोई किसी को दीखे है,

तहां अहंकार कर निपजना कैसे संभवै, और मन कहा सो इन्द्रियवत् ही मन है, इसलिये द्रव्यमन शरीर रूप है, भावमन ज्ञान रूप है, और पांच कर्म इन्द्रिय कही, सो यह तो शरीर के अंग हैं, मूर्त्तीक हैं, अहंकार अमूर्त्तीक से इन का उपजना कैसे मानिये। और कर्म इन्द्रिय पांच ही तो नाहीं, शरीर के सर्व अंग कार्यकारी हैं, और वर्णन तो सर्व जीवाश्रित है, मनुष्याश्रित तो नाहीं, इस लिये सूंड पूंछ इत्यादिक अंग भी कर्म इन्द्रिय हैं, पांच ही की संख्या किस लिये कहिये है। और स्पर्शादि पांच तन्मात्रा कही। सो रूपादिक कुछ जुदे वस्तु नाहीं, यह तो परमाणुन से तन्मय गुण हैं, यह जुदे कैसे निपजैं। और अहंकार तो अमूर्त्तीक जीव का परिणाम है, इस लिये यह मूर्त्तीक गुण इस से कैसे निपजे मानिये। और इन पांचन से अग्नि आदि निपजे कहैं, सो प्रत्यक्ष झूठ है। रूपादिक अग्न्यादिक कैतो सहभूत गुण गुणी सम्बन्ध है, कहने मात्र भिन्न है, वस्तु विषे भेद नाहीं, किसी प्रकार कोई भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्र भेद उपजाईये है, इस लिये रूपादिक कर अग्न्यादिक उपजे कैसे कहिये, कहने मात्र ही गुणी विषे गुण है, गुणी से गुण निपज्या कैसे मानिये और इन से भिन्न एक पुरुष कहै हैं, सो उस का स्वरूप अवक्तव्य कहैं, प्रत्युत्तर करते नाहीं। जो पूछिये, कि कैसा है, किस प्रकार कर्त्ता है हर्त्ता है सो बतावते नाहीं। क्योंकि जो बतावै तो तिस ही में विचार किये अन्यथापनो भासै। ऐसे सांख्य मत कर कहै कल्पित तत्व सो मिथ्या जानने। और पुरुष को प्रकृति से भिन्न जानने का नाम मोक्षमार्ग कहै हैं, सो प्रथम तो प्रकृति पुरुष कोई है ही नाहीं, और केवल जानेही से तो सिद्धि

होय नाहीं, जान कर रागादिक मिटाये से सिद्धि होय है, केवल जानने से ही तो कुछ रागादिक घटै नाहीं, परन्तु जब प्रकृति का कर्त्तव्य माने, आप अकर्त्ता रहैं, तब किस लिये आप रागादिक घटावैं। इसलिये यह मोक्षमार्ग नाहीं है। और प्रकृति से पुरुष का जुदा होना मोक्ष कहै हैं, सो पचीस तत्वन विषे चौबीस तत्व तो प्रकृति सबन्धी कहैं एक पुरुष भिन्न कहैं, सो यह तो जुदे ही हैं। और जीव कोई पदार्थ पच्चीस तत्वन विषे कहा ही नाहीं, और पुरुष ही कै प्रकृति संयोग भये जीव संज्ञा होय है, तो पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृति सहित होयें पीछे साधन कर कोई पुरुष रहित होय हैं, ऐसा सिद्ध भया। एक पुरुष न ठहरा। और पुरुष की भूल है, कि कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है, सो जीव को आन लागे है, जो इस की भूल है तो प्रकृति से इन्द्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्व उपजे कैसे मानिये। और जुदी ही है तो वह भी एक वस्तु है, सर्व कर्त्तव्य उस का ठहरा पुरुष का कुछ कर्त्तव्य ही रहा नाहीं, किस लिये उपदेश दीजिये है। ऐसे यह मोक्ष मानना मिथ्या है। और तहां प्रत्यक्ष अनुमान आगम यह तीन प्रमाण कहै हैं। सो तिन का सत्य असत्य का निर्णय जैन के न्याय ग्रन्थन से जानना। और सांख्य मत विषे कोई तो ईश्वर को माने हैं, कोई एक पुरुष को ईश्वर माने हैं। कोई शिव को कोई नारायण को देव माने हैं, अपनी इच्छानुसार कल्पना करे हैं, कुछ निश्चय है नाहीं। और इस मत विषे कोई जटा धारै है, कोई चोटी ही राखे है, कोई मुण्डित होय है कोई काथे वस्त्र पहरै है। इत्यादि अनेक प्रकार भेष धार तत्वज्ञान का आश्रय कर महन्त कहावैं हैं। ऐसे सांख्य मत्त का निरूपण किया॥

॥ अब शिव मत का निरूपण करिये है ॥

शिव मत विषे दोय भेद हैं। नैयायिक, और वैशेषिक, तहां नैयायिक मत विषे सोलह तत्व कहे हैं। प्रमाण १, प्रमेय २, संशय ३, प्रयोजन ४, दृष्टान्त ५, सिद्धान्त ६, अवयव ७, तर्क ८, निर्णय ९, वाद १०, जल्प ११, वितण्डा १२, हेत्वाभास १३, छल १४, जाति १५, निग्रहस्थान १६, तहां प्रमाण चार प्रकार कहे हैं। प्रत्यक्ष १, अनुमान २, शब्द ३, उपमा ४, और आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि इत्यादि प्रमेय कहे हैं। और यह क्या है, तिस का नाम संशय है। जिस के अर्थ प्रवृत्ति होय सो प्रयोजन है। जिस को वादी प्रतिवादी माने, सो दृष्टान्त है। दृष्टान्त कर जिस को ठहराया सो सिद्धान्त है। और अनुमान के प्रत्यक्ष आवें पंच अङ्ग सो अवयव है। संशय दूर भये किसी विचार से ठीक होय सो तर्क है। पीछे प्रतीतरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्य के पक्ष प्रतिपक्ष कर अभ्यास सो वाद है। जानने की इच्छा रूप कथा विषे जो छल जाति आदि दूषण होय सो जल्प है। प्रतिपक्ष रहित वाद सो वितण्डा है। सांचे हेतु आदि नाहीं सो असिद्ध आदि भेद लिये हेत्वाभास है। छल लिये वचन सो छल है। सांचे दूषण नाहीं ऐसे दूषण भासे सो जाति है। जिस कर परवादी का निग्रह होय सो निग्रह स्थान है। इस प्रकार संशयादि तत्व कहे हैं, सो यह कोई वस्तु स्वरूप तो तत्व है नाहीं। ज्ञान के निर्णय करने को वाद कर पण्डिताई प्रगट करने के कारणभूत विचाररूप तत्व कहे। सो इन

से परमार्थ कार्य्य कैसे होय, काम-क्रोधादिक भाव को मेट निराकुल होना सो कार्य्य है। सो तो यहां प्रयोजन कुछ दिखाया नाहीं। पण्डिताई की नाना युक्ति बनाई हैं। सो यह भी एक चातुर्य्यता है। इसलिये यह तत्वभूत नाहीं। और कहोगे इस को जान कर प्रयोजनभूत तत्वन का निर्णय कर सके है। इसलिये यह तत्व कहे हैं। सो ऐसे परम्परा तो व्याकरण वाले भी कहे हैं, कि इसके पढ़ने से अर्थ निर्णय होय है वा भोजनादिक के अधिकारी भी कहे हैं। भोजन किये शरीर की स्थिरता भये तत्वनिर्णय करने को समर्थ होय है सो ऐसी युक्ति कार्य्य कारी नाहीं। और जो कहोगे व्याकरण भोजनादिक तो अवश्य तत्वज्ञान के कारण नाहीं। लौकिक कार्य्य साधने के कारण हैं। सो जैसे यह हैं, तैसे ही तुम तत्व कहे, सो भी लौकिक कार्य्य साधने के कारण होय हैं। जैसे इन्द्रियादिक के जानने को प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे, वा स्थाणू पुरुषादिक विषे संशयादिक का निरूपण किया। इस लिये जिन को जाने अवश्य काम क्रोधादि दूर होयें निराकुलता निपजै वह ही तत्व कार्यकारी हैं। और कहोगे, कि प्रमेय तत्व विषे आत्मा आदिक का निर्णय होय है, सो कार्य्य कारी है, सो प्रमेय तो सर्व वस्तुही है, परमतत्व विषे नाहीं। ऐसा कोई भी नाहीं, इसलिये प्रमेयतत्व किसलिये कहा आत्मादि तत्व कहना था। और आत्मादिक का भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया, सो पक्षपात रहित विचार किये भासे है। जैसे आत्मा के दोय भेद कहे हैं। १ परमात्मा २ जीवात्मा, तहां परमात्मा को सर्व का कर्त्ता बतावे हैं। तहां ऐसा अनुमान करे हैं कि यह जगत् कर्त्ता कर निपजा है, क्योंकि यह कार्य्य है जो कार्य्य है सो कर्त्ता कर निपजा है। जैसे घटादिक तिस को

कहिये है। कर्त्ता जो वस्तु बनावै है, सो किसी अर्थ कार्य्यकारी बनावै है। इस लोक विषे तो अनेक वस्तु ऐसी देखिये हैं, जो कार्य्यकारी नाहीं। इसलिये अनेक पदार्थन का समुदायरूप जगत् तिस विषे कितने ही पदार्थ कृत्रिम हैं, जो मनुष्यादिक कर करिये हैं। जैसे घटादिक और कितने ही अकृत्रिम हैं, जैसे पृथ्वी आदिक के भिन्न २ परमाणू तिन की कार्य्यरूपी पलटना होय है। परन्तु सो परमाणू अपने असली स्वभाव से नित्य हैं, तिन का कोई कर्त्ता नाहीं। इसलिये ईश्वर को कर्त्ता मानना मिथ्या है। और जीवात्मा प्रतिशरीर भिन्न २ हैं। सो यह सत्य है। परन्तु मुक्ति भये पीछे भिन्न भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्व ही कहा ही है। ऐसे ही अन्यमत भी तत्वन को मिथ्या प्ररूपै हैं। और प्रमाणादिक का भी स्वरूप अन्यथा कल्पै हैं, सो जैन ग्रन्थन से परीक्षा किये भासै है। ऐसे नैयायिक मत विषे कहे कल्पित तत्व जानने ॥

॥ अथ वैशेषिक मत निरूपण करिये है ॥

वैशेषिक मत विषे छः तत्व कहे हैं। द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामन्य ४, विशेष ५, समवाय ६, तहां द्रव्य नव प्रकार प्ररूपै हैं। पृथ्वी १, जल २, अग्नि ३, पवन ४, काल ५, आकाश ६, दिशा ७, आत्मा ८, मन ९, तहां पृथ्वी जल अग्नि पवन के परमाणू भिन्न भिन्न हैं। सो परमाणू नित्य हैं। तिन कर कार्य्यरूप पृथ्वी आदि होय है, सो अनित्य है। ऐसा कहना प्रतिपक्षादिक से विरुद्ध है। क्योंकि ईंधन रूप

पृथ्वी के परमाणू अग्निरूप होते देखिये हैं। अग्निके परिमाणू राख होते देखिये हैं। जल के परिमाणू मुक्ताफल होते देखिये हैं। और जो तू कहेगा वह परमाणू जाते रहे हैं। और ही परमाणू तिन रूप होय हैं। सो प्रत्यक्ष को असत्य ठहरावें हैं। ऐसी कोई प्रबल युक्ति कहे तो ऐसे ही मानें। कहे ही से तो ऐसे ठहरे नाहीं, इस लिये सर्व परमाणुन की एक पुद्गल मूर्त्तीक जाति है, सो पृथिवी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। और इन पृथ्वी आदिक का ही जुदा शरीर ठहरावे हैं। सो मिथ्या है। क्यों कि उस का कोई प्रमाण नाहीं। और पृथ्वी आदि तो परमाणुन के पिण्ड हैं, इन का शरीर अन्यत्र अन्यत्र ऐसा संभवै नाहीं। इस लिये यह मिथ्या है। और जहां पदार्थ अटके नाहीं, ऐसी जो पोल तिस को आकाश कहै हैं। क्षण, पल, आदि को काल कहे हैं, सो यह दोनों अवस्तु हैं सत्तारूप पदार्थ नाहीं। पदार्थन का क्षेत्र परिणमनादिक का पूर्वापर विचार करने के अर्थ इन की कल्पना कीजिये है। और दिशादिक कुछ है ही नाहीं। आकाश विषे खण्ड कल्पना कर दिशा मानिये हैं, और आत्मा दो प्रकार कहे हैं, सो पूर्वें निरूपण किया ही है। और मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तो ज्ञानरूप है, सो आत्मा का स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणुन का पिण्ड है, सो शरीर का अंग है। ऐसे यह द्रव्य कल्पित जानने। और —:(चौवीस गुण कहे हैं):— स्पर्श १, रस २, गन्ध ३, वर्ण ४, शब्द ५, संख्या ६, विभाग ७, संयोग ८, परिमाण ९, पृथक्त्व १०, परत्व ११, अपरत्व १२, बुद्धि १३, सुख १४, दुःख १५, इच्छा १६, धर्म १७, अधर्म १८, प्रयत्न १९, संस्कार २०, द्वेष २१, स्निग्ध २२, गुरुत्व २३, द्रव्यत्व २४, सो इन

विषे स्पर्शादिक गुण तो परमाणुन विषे पाइये हैं, परन्तु पृथिवी को गन्धवती कहनी। जल को शीत स्पर्शवान कहना इत्यादि मिथ्या है। क्योंकि कोई पृथिवी विषे गन्ध की मुख्यता न भासे है। कोई जल उष्ण देखिये है इत्यादि प्रत्यक्षादि से विरुद्ध है। और शब्द को आकाश का गुण कहै हैं सो मिथ्या है। शब्द तो भीति इत्यादि से रुकै है, इसलिये मूर्त्तीक है, आकाश अमूर्त्तीक सर्वव्यापी है भीति विषे आकाश रहै। शब्दगुण प्रवेश न कर सकै, यह कैसे बने। और संख्यादि कहैं सो वस्तु विषे तो कुछ है नाहीं। अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थ के हीनाधिक जानने को अपने ज्ञान विषे संख्यादिक की कल्पना कर विचार कीजिये है। और बुद्धिआदि हैं, सो आत्मा का परिणमन है, तहां बुद्धि नाम ज्ञान का है, सो आत्मा का गुण ही है, और जो मन का नाम है, सो मन तो द्रव्यन विषे कहा ही था। यहां गुण किस लिये कहा और सुखादिक हैं सो आत्मा विषै कदाचित् पाइये हैं, आत्मा के लक्षणभूत तो यह गुण हैं नाहीं। अव्याप्तपने से लक्षण भासे है, और स्निग्धादि पुद्गल परमाणु विषे पाइये हैं, सो स्निग्ध गुरु इत्यादिक तो स्पर्श इन्द्रिय कर जानिये हैं। इस लिये स्पर्श गुण विषे गर्भित भये जुदे किस लिये कहे। और द्रव्यत्व गुण जल विषे कहा, सो ऐसे तो अग्नि आदि विषे जर्द्ध गमनत्व आदि पाइये हैं, कै तो सर्व कहने थे, कै सामान्य विषे गर्भित करने थे, ऐसे यह गुण कहे सो भी कल्पित हैं, और कर्म पांच प्रकार कहे हैं, उत्क्षेपण १, अवक्षेपण २, आकुंचन ३, प्रसारण ४, गमन ५, सो यह तो शरीर की चेष्टा है। इन को जुदा कहने का प्रयोजन क्या। और इतनी ही चेष्टा तो होती नाहीं, घने ही प्रकार की होय है। और जदी ही

इन को तत्व संज्ञा काही सो कै तो जुदा पदार्थ होय तिस को जुदा तत्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटने को विशेष प्रयोजनभूत होयें तिनको तत्व कहना था, सो दोनों ही नहीं थे। और ऐसे ही कहिये तो पाषाणादिक की अनेक अवस्था होय हैं, सो क्या करें कुछ साध्य नाहीं। और सामान्य दोय प्रकार है, पर, अपर, तहां पर तो सत्ता रूप है, अपर द्रव्यत्वादि रूप है। और नित्यद्रव्य विषे प्रवृत्ति जिनकी होय सो विशेष है। और अयुत सिद्ध सम्बन्ध का नाम समवाय है, सो सामान्यादिक तो बहुतन को एक प्रकार कर वा एक वस्तु विषे भेद कल्पना कर वा भेद कल्पना अपेक्षा सम्बन्ध मानने कर अपने विचार ही में होय है, कोई यह जुदे पदार्थ तो नाहीं। और इन के जाने काम क्रोधादि मेटने रूप विशेष प्रयोजन की भी सिद्धि नाहीं। इसलिये इन को तत्व किस लिये कहो। और ऐसे ही तत्व कहने थे, तो प्रमेयत्वादिवस्तु के अनन्त धर्म हैं, वा सम्बन्ध आधारादिक कारकन के अनेक प्रकार वस्तु विषे सम्भवे हैं। कै तो सर्व कहने थे, कै प्रयोजन जान कहने थे। इसलिये यह सामान्यादि तत्व भी वृथा ही कहे। ऐसे वैशेषिकन कर कहे कल्पित तत्व जानने। और वैशेषिक दोय भी प्रमाण माने हैं। प्रत्यक्ष १, अनुमान २, सो इनका सत्य असत्य का निर्णय जैन न्याय ग्रन्थन से जानना। और नैयायिक तो कहे हैं, कि विषय, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर, सुख, दुःख, इनके अभाव से आत्मा की स्थिति होनी सो मुक्ति है। और वैशेषिक कहे हैं, चौवीस गुणन विषे बुद्धि आदि नव गुण तिनका अभाव सो मुक्ति है। सो यहां बुद्धि का अभाव कहा, सो बुद्धि नाम ज्ञान का है। सो ज्ञान का अधिकरण पना आत्मा का लक्षण कहा था,

सो जब ज्ञान का अभाव होय तब लक्षण का अभाव होतैं लक्ष्य का भी अभाव होय। तब आत्मा की स्थिति कैसे रही। और बुद्धि नाम मन का भी है सो भाव मन तो ज्ञान रूप है, और द्रव्य मन शरीर रूप है, सो मुक्ति भये द्रव्य मन का संबन्ध छूटै ही छूटै। सो द्रव्य मन जड़ तिस का नाम बुद्धि कैसे होय। और मनवत् ही इन्द्रिय जाननी। और विषय कषाय का अभाव होय वा स्पर्शादिक विषय का जानना मिटै है तो ज्ञान किस का नाम ठहरेगा। तिन विषयन का अभाव होयगा तो लोक का अभाव होगा। और सुख का अभाव कहा सो सुख ही के अर्थ उपाय कीजिये है। तिसका यहां अभाव होय सो उपादेय कैसे होय। और जो आकुलतामय इन्द्रिय जनित सुख का तहां अभाव भया कहैं तो यह सत्य है। और निराकुलता लक्षण अतीन्द्रिय सुख तो तहां संपूर्ण संभवै है। इसलिये सुख का अभाव नाहीं। और शरीर दुःख द्वेषादिक का तहां अभाव कहैं सो सत्य है। और शिव मत विषे कर्त्ता निर्गुण ईश्वर शिव है, तिस को देव माने हैं। सो इसके स्वरूप का अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। और यहां भस्मी, कौपीन, जटा, जनेऊ, आदि चिन्ह सहित भेष होय हैं। सो आचारादि भेद से चार प्रकार हैं। शैव १, पशुपत २, महाव्रती ३, कालमुख ४, सो यह रागादि सहित हैं। इसलिये शिवलिंग नाहीं ऐसे शिव मत का निरूपण किया॥

॥ अब मीमांसक मत का स्वरूप कहिये है ॥

मीमांस दोय प्रकार है। ब्रह्मवादी १, कर्म्मवादी २, तहां ब्रह्मवादी तो सर्व यह ब्रह्म है, दूसरा कोई नाहीं। ऐसा वेदान्त विषै अद्वैतब्रह्म को निरूपै हैं। और आत्मा विषै लय होना सो मुक्ति कहै हैं। सो इनका मिथ्यापना पूर्वें ही दिखाया है, सो विचारना। और कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्य्यन का कर्त्तव्यपना प्ररूपै हैं। सो इन क्रियान विषै रागादिक का सद्भाव पाइये है, इस लिये यह कुछ कार्यकारी नाहीं हैं। और तहां भट्ट और प्रभाकर की बनाई हुई पद्धति है, तहां भट्ट तो छः प्रमाण माने है। प्रत्यक्ष १, अनुमान २, वेद ३, उपमा ४, अर्थापति ५, अभाव ६, और प्रभाकर अभाव विना पांच ही प्रमाण माने है, सो इन का सत्या सत्यपना जैन शास्त्रन से जानना। और तहां षट् कर्म सहित ब्रह्म सूत्र का धारक शूद्र अन्नादिक के त्यागी सो गृहस्थाश्रम में है नाम जिन का ऐसे भट्ट हैं, और वेदान्त विषै यज्ञोपवीत रहित विप्र अन्नादिक के ग्राही भगवत है, नाम जिन का ऐसे चार प्रकार हैं। कुटीचर १, बहूदक २, हंस ३, परमहंस ४, सो यह कुछ त्याग कर संतुष्ट भये हैं, परन्तु ज्ञान श्रद्धान का मिथ्यापना और रागादिक का सद्भाव इन के पाइये है, इस लिये यह भेष कार्यकारी नाहीं ॥

॥ अब जैमनी मत निरूपण करिये है ॥

तहां जैमनी मत विषे ऐसे कहै हैं। सर्वज्ञ देव कोई है नाहीं। नित्य वेद वचन है तिनसे यथार्थ निर्णय होय है। इस लिये पहिले वेदपाठ कर पीछे क्रिया विषे प्रवर्त्तना, सो नोदना सोई है लक्षण जिन का ऐसा धर्म तिस का साधन कहै हैं। "स्वः कामोग्निर्यजेत्" स्वर्ग का अभिलाषी अग्नि को पूजै इत्यादिक निरूपण करै हैं। यहां पूछिये है शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सर्व ही वेद को माने हैं। तुम भी मानो हौ, तुम्हारे वा उन सबन कै तत्वादि निरूपण विषे परस्पर विरुद्धता पाइये है। सो जब वेद ही विषे कहीं कुछ कहीं कुछ निरूपण किया है। तो उस की प्रमाणता कैसी रही, और जो मति वाले ही कहीं कुछ कहीं कुछ निरूपण करै हैं सो तुम परस्पर झगड़ा निर्णय कर एक को वेद का अनुसारी अन्य को वेद से पराङ्मुख ठहरावो, परंतु हम को यह भासे है वेद ही विषे पूर्वापर विरुद्ध लिये निरूपण है। इस ही लिये अपनी अपनी इच्छानुसार तिस का अर्थ ग्रहण करके जुदे जुदे मत के अधिकार भये हैं। सो ऐसे वेद को प्रमाण कैसे कीजिये। और अग्नि पूजे स्वर्ग होय सो अग्नि मनुष्य से उत्तम कैसे मानिये प्रत्यक्ष विरुद्ध है। और स्वर्गदाता कैसे होय ऐसे ही अन्य वेद वचन प्रमाण विरुद्ध है, और वेद विषे ब्रह्म कहा है तो सर्वज्ञ कैसे न माने हैं। इत्यादिक प्रकार कर जैमनीय मत कल्पित जानना ॥

॥ अब बौद्ध मत का स्वरूप निरूपण करिये है ॥

बौद्ध मत विषे चार तत्व प्ररूपैहैं। दुःख १, आयतन २, समुदाय ३, मार्ग ४, तहां संसारी कै बन्धरूप सो दुःखहै। सो पांचप्रकारहै। विज्ञान १, वेदना २, संज्ञा ३, संस्कार ४, रूप ५, तहां रूपादिक का जानना सो विज्ञान है। सुख दुःख का अनुभव सो वेदना है। मन का जानना सो संज्ञा है पढ़ा था तिस को याद करना सो संस्कार है। रूप धारना सो रूप है। यहां विज्ञानादिक को दुःख कहा सो मिथ्या है। दुःख तो काम क्रोधादि कहैं। ज्ञान दुःख नाहीं है। यह तो प्रत्यक्ष देखिये है, किसी कै ज्ञान थोड़ा है। और क्रोध लोभादिक बहुत हैं, सो दुःखी है। किसी कै ज्ञान बहुत है, काम क्रोधादि थोड़ा है वा नाहीं है सो सुखी है। इस लिये विज्ञानादिक दुःख नाहीं हैं। और आयतन, बारह कहे हैं। पांच तो इन्द्रिय और तिन के शब्दादिक पांच विषय और एक मन, एक धर्म्मायतन। सो यह आयतन किस अर्थ कहे, क्षणिक सब को कहैं। इन का क्या प्रयोजन है, और जिस से रागादिक का कारण निपजे ऐसा आत्मा और आत्मीय है नाम जिस का सो समुदाय है। तहां अहंकार रूप आत्मा, और ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक माने। इन का भी कहने का कुछ प्रयोजन नाहीं। और सर्व संस्कार क्षणिक हैं ऐसी वासना सो मार्ग है। सो प्रत्यक्ष बहुत काल ताईं स्थायीपन से वस्तु को अवलोकिये है। तू कहैगा एक अवस्था न रहै है, सो यह हम भी मानें हैं। सो सूक्ष्म पर्याय क्षण स्थायी है। और तिस ही वस्तु

का नाश मानैं यह तो होता न दीखै है, हम कैसे मानें। और बाल वृद्धादि अवस्था विषे एक आत्मा का अस्तित्व भासे है। जो एक नाहीं है, तो पूर्व उत्तर कार्य्य का एक कर्त्ता कैसे मानैं हैं। जो तू कहैगा संस्कार से है, सो संस्कार किस का है। जिस का है, सो नित्य है, कि क्षणिक है। नित्य है, तो सर्व क्षणिक कैसे कहै है। क्षणिक कहै है तो जिसका आधार ही क्षणिक तिससे संस्कारकी परम्परा कैसे कहै हैं। और सर्व क्षणिक तब आप ही क्षणिक भया, तो ऐसी वासना को मार्ग्ग कहै है। सो इस मार्ग्ग का फल को आप तो पावे नाहीं, किस लिये इस मार्ग विषे प्रवर्त्तै है। और तेरे मत विषे निरर्थक शास्त्र किस लिये किये। उपदेश तो कुछ कर्त्तव्य कर फल पावे तिस के अर्थ दीजिये है। ऐसे यह मार्ग मिथ्या है। और रागादिक ज्ञान संतान वासना का उच्छेद जो निरोध तिस को मोक्ष कहै हैं, सो क्षणिक भया तब मोक्ष किस के कहै हैं। और रागादिक का अभाव होना तो हम भी मानै हैं। और ज्ञानादिक अपने स्वरूप का अभाव भये तो आप का अभाव होय, तिस का उपाय करना कैसे हितकारी होय। हिता-हित का विचार करने वाला तो ज्ञान ही है। सो अपने अभाव को हित कैसे मानैं। और बौद्ध मत विषे दोय प्रमाण मानै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, सो इन को सत्यासत्य का निरूपण जैन शास्त्र से जानना। और जो यह दोय ही प्रमाण हैं तो इनके शास्त्र अप्रमाण भये तिन का निरूपण किस अर्थ किया। प्रत्यक्ष अनुमान तो जीव आप ही कर लेगें तुम शास्त्र किस लिये रचे, और तहां सुगत को देव मानै हैं। सो तिस का स्वरूप नग्न वा विक्रिया रूप स्थापै हैं, सो विटम्बना रूप है, और कमण्डल रक्ताम्बर को

धारी पूर्व्वान्ह विषे भोजन करैं । इत्यादि लिङ्ग रूप वौद्ध मत के भिक्षुक हैं सो क्षणिक को भेष धरने का क्या प्रयोजन है। परन्तु महन्तता के अर्थ कल्पित निरूपण करना और भेष धरना होय है। और बौद्ध मत चार प्रकार है। वैभाषित १, सोत्रांतिक २, योगाचार ३, मध्यम ४, तहां वैभाषित तो ज्ञान सहित पदार्थ को माने है। सोत्रांतिक प्रत्यक्ष यह देखिये है। सोई है परे कुछ नाहीं, ऐसा माने है। योगाचारण के आचार सहित बुद्धि पाइये और मध्यम है, सो पदार्थ के आश्रय विना ज्ञान ही को माने हैं, सो अपनी अपनी कल्पना कहे हैं। विचार किये कुछ ठिकाने की बातें नाहीं । ऐसे बौद्ध मत का निरूपण किया॥

॥ अब चारवाक् मत कहिये है॥

कोई सर्वज्ञदेव धर्म्म अधर्म्म मोक्ष है नाहीं। और परलोक नाहीं। वा पुण्य पाप का फल नाहीं। यह इन्द्रिय गोचर जितना है, सो ही लोक है। ऐसे चारवाक् कहे हैं। सो उस को पूछिये है। सर्वज्ञदेव इस कालक्षेत्र विषे नाहीं, कि सर्व्वदा सर्व्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्र विषे तो हम भी नाहीं माने हैं। और सर्व्व काल क्षेत्र विषे नाहीं। ऐसा सर्वज्ञ विना जानना किसके भया। जो सर्व क्षेत्रकाल को जानें सोही सर्वज्ञ है। और न जानेहै तो निषेध कैसे कहैं। और धर्म्म अधर्म्म लोक विषे प्रसिद्ध है जो यह कल्पित होय तो सर्व जन प्रसिद्ध कैसे होयें। और धर्म्म अधर्म्म विषे रूप परणति होती देखियेहै। तिस

कर वर्त्तमान ही सुखी दुःखी होते देखिये है, इनको कैसे न मानिये। और मोक्ष का होना अनुमान विषे आवे है। क्रोधादिक दोष किसी कै हीन हैं, किसी कै अधिक हैं तो जानिये है किसी कै इन की नास्ति भी होती होगी। और ज्ञानादिक गुण किसी कै हीन किसी कै अधिक भासे हैं। इसलिये जानिये है, किसी कै सम्पूर्ण भी होते होंगे। इसलिये जिस कै समस्त दोष की हानि गुणन की प्राप्ति होय सो ही मोक्ष अवस्था है। और पुण्य पाप का फल भी देखिये है। कोई उद्यम करतैं भी दरिद्री रहैं। किसी कै स्वयमेव लक्ष्मी होय है, कोई शरीरका यत्न करे तौभी रोगी रहै। किसी के बिना ही यत्न रोग जाता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिये है, सो इस का कारण कोई तो होगा। जो इस का कारण सोई पुण्य पाप है, और परलोक भी प्रत्यक्ष अनुमान से भासे है। व्यन्तरादिक हैं सो अवलोकिये हैं, मैं अमुक था सो अब देव भया हूं, और तू कहैगा यह तो पवन है। सो हम तो मैं हूं, इत्यादि चेतनाभाव जिस कै आश्रय पाइये है, तिस ही को आत्मा कहे हैं। तू उस का नाम पवन कह परन्तु पवन तो भीति आदिक कर अटके है, आत्मा बंद हुआ भी अटके नाहीं, इस लिये पवन कैसे मानिये है, और जितना इन्द्रियगोचर है, तितनाही लोक कहे है। सो तेरी इन्द्रिय गोचर तो थोड़े से भी योजन दूरवर्त्ती क्षेत्र और थोड़ासा भी अतीत अनागत क्षेत्रकाल वर्त्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकें। और दूर देश की वा बहुत काल की बातें परंपरा से सुनिये ही हैं, इस लिये सब को जानना तेरे नाहीं, तू इतना ही लोक कैसे कहे है, और चारवाक् मत विषे कहे हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिले चेतना होय आवे है, सो मरतैं पृथ्वी आदि यहां

रही, चेतनावान् पदार्थ कहां गया, सो व्यन्तरादि भये प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिये हैं। और एक शरीर विषे पृथ्वी आदि तो भिन्न भिन्न देखिये हैं, चेतना एक भासै है, जो पृथ्वी आदि के आधार चेतना होय तो हाड लहू उश्वासादिक कै जुदी जुदी चेतना ठहरे। और हस्तादिक काटे जैसे उस के साथ वर्णादि रहैं तैसे चेतना भी रहे। और अहंकार बुद्धि तो चेतना के है, सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तो यहां ही रहा, व्यन्तरादि पर्य्याय विषे पूर्वं पर्य्याय का अहंपना मानना देखिये है, सो कैसे होय है। और पूर्वं पर्य्याय के गुह्य समाचार प्रगट करें सो यह जानना किस के साथ गया, जिस के साथ जानना सो ही आत्मा है। और चार्व्वाक् मत विषे खाना, पीना, भोग, विलास, करना इत्यादि स्वच्छन्द वृत्ति को उपदेशै हैं, सो ऐसे तो जगत् स्वयमेव ही प्रवर्त्तै है, शास्त्रादि बनाये क्या भला होने का उपदेश दिया। और तू कहेगा तपश्चरण शील संयमादि छुड़ावने के अर्थ उपदेश दिया है, तो इन कार्यन विषे तो कषाय घटने से आकुलता घटे है, तिस से यहां ही सुखी होना होय है, और यश आदि होय है, तू इन को छुड़ाय क्या भला करे है, विषयासक्त जीव को सुहावती बातें कहे है अपना वा औरन का बुरा कराने का भय नाहीं है। स्वच्छन्द होय विषय सेवन के अर्थ ऐसी झूठी युक्ति बनावे है, ऐसे चार्व्वाक् मत का निरूपण किया, इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं, जो झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषयासक्त पापी जीवन कर प्रगट किये हुए हैं, तिन का श्रद्धानादिक कर जीवन का बुरा होय है ॥

जिनमत है, सो ही सत्यार्थ का प्ररूपक है, सर्वज्ञ वीतराग देव कर भाषित है, तिसका श्रद्धानादिक कर ही जीवन का भला होय है, सो जिन मत विषे जीवादि तत्व निरूपण किये हैं, प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अरहंत देव हैं, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ गुरु हैं, सो इन का वर्णन इस ग्रन्थ विषे आगे विशेष लिखेंगे, सो जानना। यहां कोई कहे तुम्हारे राग द्वेष है, इस लिये तुम अन्यमत का निषेध कर अपने मत को स्थापो हो। तिसको कहिये है, यथार्थ वस्तु के प्ररूपण करने विषें राग द्वेष नाहीं, कुछ अपना प्रयोजन विचार अन्यथा प्ररूपण करे तो राग द्वेष नाम पावै। फिर वह कहे है, जो राग द्वेष नाहीं है, तो अन्यमत बुरे, जैनमत भला ऐसा कैसे कहो हो, साम्यभाव है तो सर्व को समान जानो, मत पक्ष किस लिये करो हो। उस को कहिये है, बुरे को बुरा, और भले को भला कहें तो इस में राग द्वेष क्या किया। और भले बुरे को समान जानना तो अज्ञान भाव है, साम्यभाव नाहीं। फिर वह कहे है, कि सर्व मतन का प्रयोजन तो एक ही है, इसलिये सर्व को समान जानो तिस को कहिये है। जो प्रयोजन एक है तो नाना मत किसलिये किये, एक मत विषे तो एक प्रयोजन लिये अनेक प्रकार व्याख्यान होय है। तिस को जुदा मत कौन कहै है, परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न हैं, सो दिखाइये है। जैनमत विषे एक वीतराग भाव को पोषणे का प्रयोजन है, सो कथान विषे वा लोकादिक का निरूपण विषे वा आचरण विषे वा तत्वन विषे जहां तहां वीतरागता ही की पुष्टता करी है, और अन्य मत विषे सराग भाव पोषने का प्रयोजन है, क्योंकि कल्पित रचना कषायी जीव ही करे हैं, सो

अनेक युक्ति बनाय कषाय भाव ही को पोषैं हैं, जैसे अद्वैत ब्रह्मवादी सर्व को ब्रह्म मानने कर और सांख्यमती सर्व कार्य प्रकृति को मान आप को शुद्ध अकर्त्ता मानने कर। और शिवमती तत्व जानने ही से सिद्धि होनी मानने कर। मीमांसक कषाय जनित आचरण को धर्म्म मानने कर। बौद्धक्षणिक मानने कर चार्व्वाक् परलोकादि न मानने कर। विषय भोगादि रूप कषाय कार्यन विषे स्वछन्द होना ही पोषे हैं। यद्यपि कोई कोई ठिकाने कोई कषाय घटावने का भी निरूपण करें तो उस छल कर अन्य कोई कषाय का पोषण करे हैं, जैसे ग्रह कार्य छोड़ परमेश्वर का भजन करना ठहरावें हैं। और परमेश्वर का स्वरूप सरागी ठहराय उसके आश्रय अपने विषय कषाय पोषें हैं, और जैन धर्म्म विषे देव गुरु धर्म्मादिक का स्वरूप बीतराग ही निरूपण कर केवल बीतरागता ही को पोषें हैं, सो यह प्रगट है। केवल हम ही नहीं कहते वल्कि सर्व ही मत वाले कहे हैं। सो आगे अन्य मतन के ही शाश्त्रन की साक्षी कर जिन मत की समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट करने में निरूपण करेंगे। तब वह कहे है, जो तुमने कहा यह तो सत्य है, परन्तु अन्य मत की निन्दा किये अन्य मती दुःख पावें और तिन से विरोध उपजै। इस लिये क्यों निन्दा करिये। तिसको कहिये है, जो हम कषाय कर निन्दा करें वा औरन को दुःख उपजावें तो हम पापी हैं। परंतु अन्यमत के श्रद्धानादिक कर जीवन कै अतत्व श्रद्धान दृढ़ होय तिस से संसार विषे जीव दुःखी होयें। इस लिये हमने तो केवल करुणा भाव कर ही यथार्थ निरूपण किया है। कोई बिना दोष दुःख पावैं विरोध उपजावें तो हमारा कुछ दोष नहीं। जैसे मदिरा की निन्दा करें तो

कलाल दुःख पावे, कुशील की निन्दा करेतो वेश्यादिक दुःख पावें, खोटे खरे के पहिचानने की परीक्षा बतावने से ठग दुःख पावें तो हम क्या करें । इस प्रकार कर जो पापीन के भय से धर्म्मोपदेश न दीजिये तो जीवन का भला कैसे होय । क्यों कि ऐसा तो कोई भी उपदेश नाहीं । जिस कर सब ही जीव चैन पावैं । और जो सांच कहते हुये भी वह विरोध उपजावें सो विरोध तो परस्पर झगड़ा किये होय है, हम लड़े नाहीं। इसलिये वह आप ही उपशान्त हो जायेंगे, हम को तो हमारे परणाम का फल होगा। और कोई कहै, कि प्रयोजनभूत जीवादिक तत्वन का अन्यथा श्रद्धान किये मिथ्यादर्शनादिक होय है। अन्यमत का श्रद्धान कीये कैसे मिथ्यादर्शनादिक होगा। —:(तिस का समाधन):— अन्य मत विषे विपरीत युक्ति परूपी हैं। तिस से जीवादिक तत्वन का स्वरूप यथार्थ न भासे है। इसलिये हमने यह उपाय इस अर्थ किया है, कि जीवादिक तत्वन का यथार्थ स्वरूप भासै। और वीतराग भाव भये महन्तपना होय, क्योंकि जो वीतरागी नाहीं और अपनी महन्तता चाहे हैं, तिन ने सरागभाव होतैं महन्तता मनावने के अर्थ कल्पित युक्ति कर अन्यथा निरूपण किया है। जैसे अद्वैत ब्रह्मादिक का निरूपण जीव अजीव का और स्वच्छन्द वृत्ति पोषने कर आश्रव सम्वरादिक का और कषायवत् वा अचेतनवत् मोक्ष कहने कर मोक्ष के अयथार्थ श्रद्धान को पोषे हैं। इसलिये हमने अन्यमतन का अन्यथा पना प्रगट किया है, इन का अन्यथापना भासे तो तत्व श्रद्धान विषे रुचिवन्त होय, उन की युक्ति कर भ्रम न उपजै ऐसे अन्यमत निरूपण किया ॥

अब अन्य मतन के शास्त्रन कीही साक्षी कर जिनमत की समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिये है ॥

वैराग्य प्रकरण विषे भर्तृहरि ने ऐसा कहा है :—

एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो ।
नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात्परः ॥
दुर्वारस्मरवाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः।
शेषः कामविडम्बितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः ॥

अर्थ–रागी पुरुषों में, बड़ी प्यारी (गौरी) के आधे देह को धारणे वाला (जिसका वामाङ्ग गौरी है ऐसा) एक ही शिव शोभता है, विरक्तों (वीतरागियों) में, छोड़ा है युवतियों (स्त्रियों) का संग जिसने ऐसा जिन देव से बढ़कर दूसरा नहीं है । इन दोनों से भिन्न पुरुष "जो कि दुर्वार (दुःख से न हटणे वाले) कामदेव के बाण रूपी सांपों की विष (जहर) के चढ़ाव से पागल हुए काम से ठगे हैं" वे विषयों के न छोड़ने को न भोगने को समर्थ हो सकते हैं ॥

भावार्थ-इस विषे सरागीन में महादेव को प्रधान कहा। और वीतरागन में जिनदेव को प्रधान कहा है। सो सरागी भाव वीतरागी भावन में परस्पर प्रतिपक्षीपना है। यह दोनों ही भले नाहीं इन में एक ही हितकारी है। सो वीतराग भाव ही हितकारी है। जिस के होतैं तत्काल आकुलता मिटै है और स्तुति योग्य होय है, जिस से आगामि भला होना केवल हमही नहीं कहे हैं परन्तु सर्व ही मतवाले कहे हैं। और सरागभाव होने से तत्काल आकुलता होय है। निंदक होय है। और आगामि बुरा होय है, इसलिये जिस में वीतराग भाव का प्रयोजन प्रकट किया है ऐसा जो जैनमत सो ही इष्ट है। और जिन में सरागभाव का प्रयोजन प्रगट किया है, ऐसे जो अन्यमत सो सर्व अनिष्ट हैं। इन को समान कैसे मानियें ॥

और बड़ा योग्य वसिष्ट छतीस हजार तिस के प्रथम वैराग्य प्रकरण विषे तहां अहंकार निषेधादि विषे वसिष्ट वा रामसम्बन्ध विषे ऐसा कहा है :—

राम उवाच ॥ नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु च न मे मनः।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि चात्मन्येव जिनो यथा ॥

अर्थ-रामजी बोले। न मैं राम हुं, न मेरी कर्मादिकों में इच्छा है, और न मेरा मन भाव पदार्थों में है। और जिन देव की तरह अपने आत्मा में शान्ति को पाना चाहता हूं ॥

भावार्थ—इस विषे रामजी ने जिन समान होने की इच्छा करी। इस लिये रामजी से जिनदेव का उत्तमपना और प्राचीनपना प्रगट भया, और दक्षिणा मूर्त्ति सहस्र नाम विषे ऐसा कहा है :—

शिव उवाच॥ जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः॥

अर्थ—शिवजी बोले। जैन (जिनदेव करके चलाए हुए) मार्ग (मत) में प्रेम करनेवाला जैन (जैनी) जितक्रोधः (गुस्से के जीतने वाला) जितामयः (रोगों के जीतने वाला)।

भावार्थ—यहां भगवत का नाम जैन मार्ग विषे रत और जैन कहा सो उस में जैनमार्ग की प्रधानता वा प्राचीनता प्रगट भई। और वैशंपायन सहस्र नाम विषे ऐसा कहा है :—

"कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः"

अर्थ—कालनेमि के मारने वाला, वीर (वीर रस युक्त) शूर (बलवान्) शौरि (कृष्ण), जिनेश्वर यह नाम विष्णुसहस्र नाम में विष्णु जी के नामों में हैं।

भावार्थ—यहां भगवान् का नाम जिनेश्वर कहा। इस लिये जिनेश्वर भगवान् हैं, और दुर्वासा ऋषि कृत महिम्न स्तोत्र विषे ऐसा कहा है :—

तत्र दर्शने मुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी।

कर्त्ताऽर्हन्पुरुषोहरिश्च सविता बुधः शिवस्त्वं गुरुः ॥

अर्थ—वहां दर्शन में :—

मुख्यशक्ति आदिकारण प्रधानशक्ति यह जो है सो तू है; और ब्रह्म (व्यापक परमात्मा) भी तू है, कर्म्मेश्वरी (माया) तू है, अर्हन् कर्त्ता भी तू है। पुरुष (जीव) और हरि (विष्णु) सविता (सूर्य्य) वा प्रेरक, और बुध (चन्द्रपुत्र) वा विद्वान् और शिव (महादेव) गुरु (तत्त्व के बतलाने वाला) ये सभी (तुम ही हो) तू ही है ॥

भावार्थ—यहां अरहन्त तुम हो। ऐसी भगवन्त की स्तुति करी। इस लिये अरहन्त के भगवंतपना प्रगट भया। और हनुमन्नाटक विषे ऐसा कहा है :—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः।
सोयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथः प्रभुः ॥

अर्थ—जिसे शैव लोग शिव (महादेव) यह जान उपासते हैं, तथा वेदान्ति लोग जिस को ब्रह्म (व्यापक परमेश्वर) जान ध्यावते हैं। और बौद्ध लोग बुद्धदेव मान जिसको पूजते हैं पुनः प्रमाण (युक्ति-शास्त्र) में चतुर नैयायिक लोग जिसे कर्ता कहते हैं, तथा जैनशासन (जैन मत) के प्रेमवाले लोग जिसको अर्हन्त मानते हैं। और मीमांसक जिसे कर्मरूप वर्णन करते हैं, वह त्रिलोकी का स्वामी प्रभु ईश्वर तुम लोगों के वाञ्छित फल (कामना सिद्ध) को पूरा करे॥

भावार्थ—यहां छहों मतों विषे एक ईश्वर कहा। तहां अरहन्त देव के भी ईश्वरपना प्रगट भया। यहां कोई कहै जैसे यहां सर्व मत विषे एक ईश्वर कहा तैसे तुम भी मानों। तिस को कहिये है, तुमने यह कहा है। हम ने तो नहीं कहा। इस लिये तुम्हारे मत विषे अरहन्त कै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मत विषे भी ऐसा कहैं तो हम भी शिवादिक को ईश्वर मानें। जैसे कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावै। और कोई व्यापारी झूठा रत्न दिखावे। तहां झूठा रत्न वाला तो सर्व रत्नों को समान मोल लेने के अर्थ समान कहै। सांचा रत्न वाला सर्व को कैसे समान माने, तैसे जैनी सांचे देवादिक का निरूपण करे हैं। अन्यमती झूठे देवादिक का निरूपण करैं हैं, तहां अन्य मती समान महिमा के अर्थ सर्व को समान कहैं। जैनी कैसे मानें, और रुद्रयामलतन्त्र विषे भवानीसहस्रनाम विषे ऐसे कहा है:—

कुण्डासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी ।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥

अर्थ-कुण्डासना और जगद्धात्री (जगत् (चराचर) की माता) बुद्धमाता (बुद्धदेव की माता) जिनेश्वरी (जिनदेव की वा जैनियों की ईश्वरी स्वामिनी) जिनमाता (जिनदेव की माता) जिनेन्द्रा (जिनकी ईश्वरी) शारदा (सरस्वती) हंसवाहिनी (हंस जिसका वाहन (सवारी) है) ये नाम भवानीसहस्र नाम में भवानी जी के हैं ॥

भावार्थ-यहां भवानी का नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहा है। इसलिये जिन देव का उत्तम पना प्रगट भया। और गणेशपुराण विषे ऐसाकहा है:-

"जैनं पाशुपतं सांख्यं"

अर्थ-जैन (जिनदेव कृत शास्त्र) पाशुपत (पशुपति = शिव का शास्त्र) और सांख्य (कपिलमुनि-निर्मित शास्त्र) इत्यादि ।

भावार्थ—यहां 'जैनम्' ऐसा कहा है। इस से जैनमत की प्राचीनता प्रकट भई, और व्यासकृत सूत्र विषे ऐसा कहा है :-

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभये निरूपयन्ति"

अर्थ–जैनी लोग एक ही वस्तु (ईश्वर) में दोनों को कर्तृत्व भोक्तृत्व को निरूपण करते हैं, अर्थात् एक परमात्मा को ही कर्त्ता और भोक्ता मानते हैं।

भावार्थ–इत्यादि तिनके शास्त्र विषे जैन मतका निरूपण है। इसलिये जैन मत का प्राचीन पना भासे है। और श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध विषे ऋषभावतारका वर्णन है। तहां इनको करुणामय तृष्णादि रहित ध्यान मुद्रा धारी सर्व कर पूजित कहा है। तिस के अनुसार अरहंत राजा ने प्रवृत्ति करी, ऐसा लिखा है, सो जैसे राम कृष्णादि अवतारन के अनुसार अन्य मत हैं। तैसेही ऋषभावतार के अनुसार जैनमत है। ऐसे अन्य मत कर ही जैनमत प्रमाण भया। यहां इतना विचार और किया चाहिये, कि कृष्णादि अवतारन के अनु-सार विषय कषायन की प्रवृत्ति होय है। ऋषभावतार के अनुसार वीतराग साम्य भाव की प्रवृत्ति होय है। यहां दोनों प्रवृत्तियों को समान मानने से धर्म अधर्म का भेद नहीं रहता। इसलिये भेद के मानने से जो भला होय सोई अङ्गीकार करो। और दशावतार चरित्र विषे ऐसा कहा है:–

बद्ध्वा पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे॥

अर्थ–पद्मासन को बान्धकर जो इन दोनों नयनों को नासा (नाक) के अग्र में लगा कर-अर्थात् नासा के अग्र को देखता हुआ, इत्यादि।

भावार्थ—यहां बुद्धावतार के ध्यान का स्वरूप अरहंतदेव के समान लिखा है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तो अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया। और काशी खण्ड विषे दिवोदास राजा ने सम्बोधन कर राज छुडाया। तहां नारायण तो विनयकीर्त्ति यती भया। लक्ष्मी को विनय श्री अर्यिका करी गरुड़ को श्रावक किया। ऐसा कथन है, सो जहां सम्बोधन करना भया तहां जैनी भेष भया। इसलिये जैन हितकारी प्राचीन प्रति भासे है। और प्रभास पुराण विषे ऐसा कहा है:—

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः॥
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्त्तिर्दिगम्बरः।
नेमिनाथः शिवोथैवं नाम चक्रेऽस्य वामनः॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशनम्।
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदम्॥

अर्थ—भव शिवजी के पश्चिम (पिछले) भाग में वामन ने तप किया था, उस तप से खैंचे हुए, महादेव वामन को प्रत्यक्ष हुए, कैसा महादेव प्रत्यक्ष हुआ कहता है जिसने पद्मासन को लगाया है, और श्याम जिस की मूर्त्ति है, और दिशा जिसके अम्बर (वस्त्र) हैं अर्थात् (नग्न) तब वामन ने इसका नेमिनाथ शिव ऐसा नाम धरा। कैसा नाम जो कि बड़े भयंकर कलियुग में सभी पापों के दूर करने वाला और दर्शन से वा छूने से करोड़ यज्ञ के फल को देने वाला ॥

भावार्थ—यहां वामन को पद्मासन लगाये दिगम्बर महादेव (नग्न) का दर्शन भया कहा। उस ही का नाम नेमिनाथ शिव कहा। और तिस के दर्शनादिक से कोटि यज्ञ का फल कहा, सो ऐसा नेमिनाथ का स्वरूप तो जैनी प्रत्यक्ष माने ही हैं, सो प्रमाण ठहरा। और प्रभास पुराण विषे ऐसा कहा है :—

रैवताद्रौ जिनोनेमिः युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्।

अर्थ—शुद्ध रैवत नामा पर्वत में युग का आदि भूत नेमिनाथ नाम वाला जिनदेव ऋषियों के आश्रम से मुक्ति मार्ग (रीति) वा रस्ते का कारण है इत्यादि ॥

भावार्थ—यहां नेमिनाथ को जिन संज्ञा कही, तिस के स्थान को ऋषि का आश्रम, और मुक्ति का कारण कहा। और युगादि के स्थानक को भी ऐसे ही कहा। इसलिये उत्तम पूज्य ठहरे। और नगरपुराण विषे भवावतार रहस्य विषे ऐसा कहा है :—

अकारादि हकारान्तं मूर्द्धाधोरेफसंयुतं।
नादबिंदुकलाक्रान्तं चन्द्रमंडलसन्निभं॥
एतद्देवि परं तत्वं यो विजानाति तत्वतः।
संसारबन्धनं छित्वा सगच्छेत्परमां गतिम्॥

अर्थ—अकार से लेकर हकार पर्यन्त ऊपर और नीचे रकार से युक्त (मिला हुआ) नाद और बिंदु कलाओं वाला चन्द्रमण्डल (चांद के बिम्ब) के समान, हे देवि! यह परम तत्व है। जैसे (अर्हं) इसको जो यथार्थ रूप से जानता है, वह संसार के बन्धन को काट कर परमगति (मुक्ति) को पा लेता है।

भावार्थ—यहां अर्हं ऐसे पद को परम तत्व कहा, इस के जाने परम गति की प्राप्ति कही, सो अर्हन्त पद जैन पद उक्त है। और नगर पुराण विषे ऐसा कहा है :—

दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते।
मुनिमर्हन्तभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ॥

अर्थ—सत्ययुग में दश १० ब्राह्मणों को भोजन देने से जो फल होता है वही फल कलियुग में अर्हंत भक्त मुनि को भोजन देने से होता है॥

भावार्थ—यहां दश ब्राह्मण को भोजन कराये का जैसा फल कलियुग विषे कहा है। तैसा फल अरहंत भक्त मुनि को भोजन कराये का कहा है, इसलिये जैनी मुनि उत्तम ठहरे, और मनुस्मृति विषे ऐसा कहा है:—

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोथ प्रसेनजित्॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरतः कुलसत्तमः।
अष्टमोमरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः॥
दर्शयन् वर्त्मवीराणां सुरासुरनमस्कृतः।
नीतित्रितयकर्त्ता योयुगादौ प्रथमो जिनः॥

अर्थ—सभ की कुल का आदि वीज (कारण) पहिला विमलवाहन नामा और चक्षुष्मान् ऐसे नाम वाला यशस्वी (कीर्त्ति वाला) वा इस नाम वाला तथा अभिचन्द्र और प्रसेनजित् मरुदेवी और नाभि नाम वाला और कुलमें बड़ा श्रेष्ठ भरत नामा, और आठवां नाभि का मरुदेवी में से उरुक्रम नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। जो उरुक्रम वीरों के मार्ग को दिखलाता हुआ, देवता और दैत्यों से नमस्कार को पाने वाला और युग के आदि में तीन तरह की नीति के करने वाला पहिला जिन (जिनदेव) हुआ॥

भावार्थ—यहां विमलवाहनादिक मनु कहिये। सो जैन विषे कुल कारन के यह नाम कहे हैं। और यहां प्रथम जिनदेव युग की आदि विषे मार्ग का दर्शक और सुरासुर कर पूजित कहा, सो ऐसे ही है। तो जैन मत युग के आदि विषे ही है। तव प्रमाण भूत कैसे न कहिये। और ऋग्वेद विषे ऐसा कहा है:—

ओं त्रैलोक्यप्रतिष्ठितानां चतुर्विंशति तीर्थंकराणां।
ऋषभादि वर्द्धमानान्तानां सिद्धानां शरणंप्रपद्ये॥

अर्थ—जो ऋषभ देव से ले कर वर्द्धमान पर्यन्त जो 'सिद्ध' त्रिलोकी में प्रतिष्ठा (मान) पाने वाले हैं, और चौवीस तीर्थों को स्थापन करने वाले हैं उन सिद्धों की शरण को प्राप्त होता हूं। अर्थात् वे ऋषभदेवादि सिद्ध लोग मुझे बचा लेवें॥

ओंपवित्रं नग्नमुपवि(इ) प्रसामहे येषां नग्ना (नग्नये) जातिर्येषां वीरा।

अर्थ—यजमान कहता है, हम लोग पवित्र (शुद्ध) वा पाप से बचाने वाले, नग्न (दिगम्बर) देवों को प्रसन्न करते हैं। जिन की जाति नग्न रहती है, और वीरा (बल वाली) है। इत्यादि और यजुर्वेद विषे ऐसा कहा है :—

"ओं नमो ऽर्हन्तो ऋषभो"

अर्थ—अर्हन्त नाम वाले (वा) पूज्य ऋषभ देव को प्रणाम हो। फिर ऐसा कहा है :—

ओं ऋषभपवित्रं पुरहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वारं शत्रुंजयंतं पशुरिंद्रमाहु रिति स्वाहा। उत्त्रातारमिंद्रं ऋषभंवदंतिअमृतार मिंद्रहवे सुगतं सुपार्श्व मिन्द्रंहवे श क्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरुहूतमिंद्रमाहु रिति स्वाहा। ओं स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वा

यवला युवांशुभजातायु ओं रक्षरक्ष अरिष्ट नेमि स्वाहा। वामदेवसांत्यर्थ मनुविधीयते सो ऽस्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा॥

अर्थ—पवित्र ऋषभदेव को और इन्द्ररूपी अध्वर को यज्ञों में नग्न को पशु शत्रु को जीतने वाले इन्द्र को जिसे कहते हैं, उसे हवि देता हूं, रक्षा करने वाले परम ऐश्वर्य युक्त और अमृत तथा सुगत (जो सर्व व्यापक) सुपार्श्व (जिस के पास के जीव अच्छे हैं) जिस ऐसे पुरुहूत (इन्द्र) को ऋषभदेव तथा वर्द्धमान कहते हैं, उसे हवि देता हूं, बहुश्रवा (बहुत धनवाला) इन्द्र कल्याण करे। और विश्ववेदा सूर्य हमें कल्याण करे, तथा अरिष्टनेमि गरुड़ हमें कल्याण करे, और बृहस्पति हमारी कल्याण करे, यजुर्वेद, अ॰ २५, मं॰ १९ है। दीर्घायु (बड़ी आयु) को और बल को और शुभ मंगल को दे। और हे अरिष्टनेमि मेरी रक्षा कर (२) वामदेव शान्ति के लिये जिसे हम विधान करते हैं, वह हमारा अरिष्टनेमि है, उसे हवि देते हैं।

भावार्थ—सो यहां जैन तीर्थंकरन के जैन मत का पूजनादि कहा। और यहां यह भास्या जो इन के पीछे वेद रचना भई है। ऐसे अन्य मत के ग्रंथन की साक्षि से भी जैन मत की उत्तमता और प्राचीनता दृढ़ भई। और जिन मत को देखे वह मत कल्पित ही भासे। इसलिये अपना हित का इच्छक होय सो पक्षपात छोड़ साचे जैन धर्म को अंगीकार करो। और अन्य मत विषे पूर्वापर विरोध भासे है, पहिले

अवतार वेद का उद्धार किया, यहां यज्ञादिक विषे हिंसादिक पोषे। और बौद्धादिक अवतार यज्ञ का निंदक होय हिंसादिक निषेधे। वृषभावतार वीतराग संयम का मार्ग दिखाया, कृष्णावतार पर स्त्री रमणादिक विषय कषायन का मार्ग दिखाया। सो अब संसारी किसका कहा करें। किसके अनुसार प्रवर्त्तै। और उनके कहने को या उनके कहने के अनुसार प्रवर्त्तने की इसकौ प्रतीति कैसे आवे। और कहीं तो क्रोधादि कषायन का वा विषयन का निषेध करें। कहीं लड़ने का और विषयादि सेवने का उपदेश दें, तहां प्रालब्धि बतावैं। सो बिना क्रोधादिक भये आप ही लड़ना आदि कार्य्य होय तो यह हम भी मानें, सो तो होता नाहीं। और लड़ना आदि करते हुए जो क्रोधादिक भये न मानिये तो जुदे ही क्रोधादिक कौन हैं। इस लिये तिन का निषेध किया, क्योंकि ऐसे बने नाहीं। इस में पूर्वापर विरोध है। देखो गीता विषे विरागता दिखाई और लड़ने का भी उपदेश दिया। सो यह प्रत्यक्ष विरोध भासे है। और ऋषीश्वरादिकन कर श्राप दिया बतावें। सो ऐसा क्रोध किये निन्द्यपना कैसे न भया, इत्यादि जानना। और :—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति॥

अर्थ—अपुत्र (जिस के घर में पुत्र नहीं है) उस की गति नहीं होती।

भावार्थ—ऐसा भी कहे हैं। और भारत विषे ऐसा भी कहा है :—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम् ।
शिवं (दिवं) गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम्

अर्थ—हे राजेन्द्र अनेक हजार कुमार ब्रह्मचारी लोग कुल की सन्तान को न करके ही स्वर्ग को चले गये ।

भावार्थ—पहिले श्लोक विषे तो यह कहा है, कि जिस के सन्तान नहीं है, उसकी गति नहीं होती। और इस श्लोक विषे कुमार ब्रह्मचारीन को स्वर्ग गये बताये, सो यह परस्पर विरोध है । और भारत विषे ऐसा कहा है:—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं ।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥
वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः ।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चांद्रायणं वृथा ॥ २ ॥
चातुर्म्मास्ये तु संप्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥ ३ ॥

अर्थ—मदिरा और मांस इन को खाना, और रात को भोजन करना तथा कन्दों को भक्षण करना इन को जो करते हैं, तिन की तीर्थयात्रा, और जप और तपस्या ये सभी व्यर्थ हैं। और उन का एकादशी व्रत और हरि निमित्त जागरण (रात को जागना। और पुष्कराज की यात्रा, और सभी चान्द्रायण व्रत विशेष) ये सभी वृथा होते हैं। चौमासे के आने पर जो रात्रि को भोजन करता है, उस की सैकड़ों चान्द्रायण व्रतों से भी शुद्धि नहीं होती।

भावार्थ—इन विषे मद्य मांसादिक का वा रात्रि भोजन का वा चौमासे में विशेषपने रात्रि भोजन कन्द भक्षण का निषेध किया। और बड़े पुरुषन के मद्य मांसादिक का सेवन करना कहैं। व्रतादिक विषे रात्रि भोजन स्थापैं वा कन्दादि भक्षण स्थापैं, ऐसे विरुद्ध निरूपै हैं। ऐसे ही अनेक पूर्वापर विरुद्ध वचन अन्य मत के शास्त्रन विषे हैं। सो वह करें क्या। कहीं तो पूर्व परम्परा जान विश्वास करावने को अर्थ यथार्थ कहा, और कहीं विषय कषाय पोषने के अर्थ अन्यथा कहा। सो जहां पूर्वापर विरोध होय तिन का वचन प्रमाण कैसे करिये। यहां जो अन्य मतन विषे क्षमा, शील, सन्तोषादिक को पोषते वचन हैं। सो तो जैनमत विषे पाइये हैं, और विपरीत वचन हैं सो उन के कल्पित हैं। सो ऐसा न हो कि किसी जीव के उन के जिनमत अनुसार वचन के विश्वास से उन के विपरीत वचन का श्रद्धानादिक हो जाय। इसलिये अन्य मत का कोई अंग भला देख भी तहां श्रद्धानादिक न करना। जैसे विषमिलित भोजन हितकारी नाहीं, तैसे ही उन को जानना। और जो कोई उत्तम धर्म का अंग जिन मत विषे न

पाइये। और अन्य मत विषे पाइये। अथवा कोई निषिद्ध धर्म का अङ्ग जैनमत विषे पाइये, अन्यमत विषे न पाइये तो अन्य मत को आदरो। सो सर्वथा न होय, क्योंकि सर्वज्ञ के ज्ञान से कुछ छिपा नाहीं है। इसलिये अन्यमत का श्रद्धानादिक छोड़ जिन मत का दृढ़ श्रद्धानादिक करना॥

॥ विज्ञापन ॥

विदित हो, कि इस मोक्ष मार्ग ग्रन्थ के बनावने के समय अन्य मतानुयायी श्लोकों का भावार्थ मात्र लिख कर और उन के अर्थ को दूसरी बार देखने के समय लिख देने के लिये छोड़ कर पण्डित टोडरमल्ल जी आगे अपने मत द्वारा अपनी इच्छा को पूरा कर ही रहे थे, कि उन का देहान्त हो गया। इस शोक के कारण पण्डित जी महाशय की इच्छा पूर्ण न हुई। अर्थात् न तो वह अन्य मतानुयायी श्लोकों के अर्थ लिखने पाये, और न इस ग्रंथ को पूर्ण करने पाये।

क्योंकि अन्य मतानुयायी श्लोकों का सरल हिन्दी भाषा में अर्थ हुये बिना न तो पाठक महाशयों को यथार्थ अर्थ समझ में आता था, और न उस के पढ़ने से पूरा २ आनन्द प्राप्त होता था। इस लिये हमने बड़े २ विद्वान् पण्डितों से इन अन्य मतानुयायी श्लोकों का हिन्दी भाषा में अर्थ करवा कर इस ग्रन्थ में लिख दिया है॥

—o—

॥ अब श्वेताम्बर मत निरूपण करिये है ॥

काल दोष से कषाय जीवन कर जिन मत विषे भी कल्पित रचना करी है, सो दिखाइये है॥

श्वेताम्बर मत वाले किसी ने सूत्र बनाये हैं। तिन को गणधर के किये कहे हैं, सो उन को पूछिये है, गणधर ने आचारांगादिक बनाये हैं, सो तुम्हारे पाइये हैं, सो इतने प्रमाण लिये ही किये थे,

कि बहुत प्रमाण लिये किये थे। जो इतने प्रमाण लिये ही किये थे, तो तुम्हारे शास्त्रन विषे आचारांगादिकन के पदन का प्रमाण अठारह हजार आदि कहा है। सो तिन की विधि मिला दो। जोपद के प्रमाण में विभक्ति के अन्त को पद कहोगे, तो कहे प्रमाण से बहुत पद हो जायेंगे। और जो प्रमाण पद कहोगे तो तिस एक पद के साधिक इक्यावन क्रोड़ श्लोक हैं। सो यह तो बहुत छोटा शास्त्र है, सो बने नाहीं। और आचारांगादिक से दशवें कालकादिक का प्रमाण थोड़ा कहाहै। तुम्हारे वधता है, सो कैसे बने। और जो कहोगे आचारांगादिक बड़े थे काल दोष जान तिन ही में से कितनेक सूत्र काढ यह शास्त्र बनाये हैं, सो प्रथम तो टूटक ग्रन्थ प्रमाण नाहीं। और यह प्रबंध है, जो बड़ा ग्रन्थ बनावें तो उस विषे सर्व वर्णन विस्तार ही लिये करें। और जो छोटा ग्रन्थ बनावे तो तहां संक्षेप रूप वर्णन करें। परन्तु सम्बन्ध टूटे नाहीं। औरकोई बड़े ग्रन्थ में से थोड़ासा कथन काट लीजिये तो तहां संबन्ध मिले नाहीं। कथन का अनुक्रम टूटजाय सो तुम्हारे सूत्रन विषे तो कथादिक का भी सम्बन्ध मिलता भासे है। टूटपना भासे नाहीं, और अन्य कविन से गणधर की तो बुद्धि अधिक होसी। तिस के किये ग्रन्थन में थोड़े शब्द में बहुत अर्थ चाहिये। सो तो अन्य कविन कैसी भी गम्भीरता नाहीं। और जो ग्रन्थ बनावे सो अपना नाम ऐसे धरे नाहीं। जो अमुक कहे हैं, ऐसा कहे हैं, कि मैं कहूं हूं। सो तुम्हारे सूत्रन विषे है, कि गोतम कहे हैं। ऐसे वचन हैं, सो ऐसे वचन तो जब ही सम्भवैं, तब और कोई कर्त्ता होय, इस लिये यह सूत्र गणधर कृत नाहीं, और के किये हैं, गणधर का नाम कर कल्पित रचना को प्रमाण कराया चाहे हैं, सो विवेकी तो

परीक्षा कर मानें कहा ही तो न मानें। और वह ऐसे भी कहे हैं। जो गणधर सूत्रन के अनुसार कोई दश पूर्व धारी भया है। जिसने यह सूत्र बनाये हैं तहां पूछिये है जो यह नये ग्रन्थ बनाये थे तो नया नाम धरना था। अङ्गादिक के नाम किस लिये धरे। जैसे कोई बड़े साहूकार की कोठी का नाम धर अपना साहूकारा प्रकट करे, तैसे यह कार्य भया। यह सांच तो तब होता जैसे दिगम्बर आचार्यों ने अनेक ग्रन्थ रचे, सो सर्व गणधर कर भाषित अङ्ग प्रकीर्णकता के अनुसार रचे। और तिन सबन में ग्रंथ कर्ता का नाम सर्व आचार्यों ने अपना भिन्न भिन्न रक्खा है। और तिन ग्रंथन के नामभी भिन्न भिन्न रक्खे हैं। और किसी ग्रन्थका नाम भी अङ्गादिक नहीं रक्खा। और न यह लिखा कि यह गणधर देवने रचा है, जो सांच था सोई लिखा है। तैसे ही तुम्हारे आचार्यादिकन को भी कहना योग्य था। अङ्गादिक का नाम धर गणधर कृत का भ्रम किस लिये उपजाया। इस लिये वह ग्रन्थ गणधर के वा पूर्व धारी के वचन नाहीं हैं, और इन सूत्रन में विश्वास करावनें के अर्थ जिनमत अनुसार कथन है। सो तो सांचा है। दिगम्बर भी तैसे ही कहे हैं, परन्तु जो कल्पित रचना करी है, उस में पूर्वापर विरुद्धपनो वा प्रत्यक्षादि प्रमाण से विरुद्धपनो भासे है। सो दिखाइये है, अन्य लिङ्गी के वा गृहस्थ के वा स्त्री के वा चाण्डालादि शूद्रन के साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति होनी माने हैं, सो बने नाहीं। सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र की एकता मोक्षमार्ग है। सो सम्यग्दर्शन का स्वरूप तो ऐसा कहे हैं :—

प्राकृतम्–

अरिहन्दे महादेवे जावजीवं सुसाहणो गुरुणो।
जिण पणत्तं तत्तं एसम्मत्तं मए (हवे) गहियम्॥

संस्कृते–

अर्हन्तो महादेवो यावज्जीवं सुसाधनं गुरोः।
जिन प्रणीतं तत्वं सम्यक्तं मया (हवे) गृहीतम्॥

अर्थ—अर्हन्त जो सभ देवन में उत्कृष्ट देव, गुरु से कहे हुये साधन और जिन देव प्रणीत (रचे हुये) तत्त्व को यावत् जीव (आयु भर) निश्चय से करना यही सम्यक्त है।

भावार्थ—सो अन्य लिङ्गी के अरहन्त देव साधु गुरु का, और जिन प्रणीत तत्व का मानना कैसे सम्भवे। और जब न सम्भवै तब सम्यक्त भी न होय, और जब सम्यक्त न होय, तब मोक्ष कैसे होय। जो कहोगे अन्तरङ्ग के श्रद्धान होने से सम्यक्त होय है। सो विपरीत लिङ्ग धारक की प्रसंशादिक किये भी सम्यक्त को अतिचार कहा है। सो सांचा श्रद्धान भये पीछे आप विपरीत लिङ्गधारक कैसे रहै। और बिना जिन लिङ्ग धारे और महा व्रतादिक अङ्गीकार किये, केवल श्रद्धान भये ही से

सम्यक् चारित्र अन्य लिङ्ग विषे कैसे बने। यदि अन्य लिङ्ग विषे भी सम्यक् चारित्र होय है, तो जैनलिङ्ग अन्य लिङ्ग समान भये। इस लिये अन्य लिङ्ग को मोक्ष कहना मिथ्या है, और गृहस्थ को मोक्ष कहे हैं सो हिंसादिक सर्व सावद्य योग का त्याग किये सम्यक् चारित्र होय है। सो सर्व सावद्य योग का त्याग किये गृहस्थ पनो कैसे संभवै। यदि कहोगे अंतरङ्ग का त्याग भया है तो यहां तो तीन योग कर त्याग करिये है। काय कर त्याग कैसे भया। और जो वाह्य परिग्रहादिक राखे भी महाव्रत होय तो महाव्रतों विषे तो वाह्य त्याग करने की ही प्रतिज्ञा करिये है। त्याग किये बिना महाव्रत न होय है। महाव्रत बिना छठा आदि गुण स्थान न होय है, तब मोक्ष कैसे होवे। इसलिये गृहस्थी को मोक्ष कहना मिथ्या वचन है। और स्त्री को मोक्ष कहे हैं सो स्त्री से जब सप्तम नरक योग पाप न होय सके है। तब तिससे मोक्ष का कारण जो शुद्ध भाव सो कैसे होय। क्योंकि जिस के भाव दृढ़ होयें, सो ही उत्कृष्टपाप वा धर्म्म उपजाय सके है। और स्त्री के निःशंक एकान्त विषे ध्यान धरना सर्व परिग्रहादिक का त्याग करना संभवै नाहीं। जो कहोगे एक समय विषे पुरुष वेदी, वा, स्त्री वेदी वा नपुंसक, वेदी, के सिद्धि होन सिद्धान्त विषे कही है। इसलिये स्त्री को मोक्ष मानिये है, सो यहां भाव वेदी है, कि द्रव्य वेदी है। जो भाव वेदी है, तो हम माने ही हैं। द्रव्यवेदी है तो पुरुष स्त्रीवेदी तो लोक विषे अनेक दीखे हैं नपुंसक तो कोई विरला ही दीखे है। एक समय विषे मोक्ष जाने वाले इतने नपुंसक कैसे संभवें, इसलिये द्रव्य वेद अपेक्षा कथन बने नाहीं, और जो कहोगे नव गुण स्थान ताईं वेद कहे हैं, सो भी भाव वेद

अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेद अपेक्षा होय तो चौदवां गुण स्थान पर्य्यन्त वेद का सद्भाव कहना संभवै। इसलिये स्त्री के मोक्ष का कहना मिथ्या है। और शूद्रन को मोक्ष कहे हैं सो चाण्डालादिक को उत्तम कुल वाले गृहस्थी सन्मानादिक कर दानादिक कैसे देवें, लोक विरुद्ध होय। और नीच कुलवालों के उत्तम परिणाम न होय सकें। और नीच गोत्र कर्म का उदय तो पञ्चम गुण स्थान पर्य्यन्त ही है। ऊपर के गुण स्थान चढ़े विना मोक्ष कैसे होय। जो कहोगे संयम धारे पीछे उस के उच्च गोत्र ही का उदय कहिये है, तो संयम धारणे वा न धारणे की अपेक्षा से ही उच्च नीच गोत्र का उदय ठहरा। ऐसे होतें तो असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिक तिन सबन कै ही नीच गोत्र का उदय ठहरे, जो उन के कुल अपेक्षा उच्च गोत्र का उदय कहोगे तो चाण्डालादिक के भी कुल अपेक्षा ही नीचगोत्र का उदय कहो। तिस का सद्भाव तुम्हारे सूत्रन विषे भी पञ्चम गुणस्थान पर्य्यन्त ही कहा है। सो कल्पित कहने में पूर्व्वापर विरोध होय ही होय। इस लिये शूद्रन के मोक्ष कहना मिथ्या है। ऐसे श्वेताम्बर मत विषे सर्व कै मोक्ष की प्राप्ति कही। सो तिस का प्रयोजन यह है, जो सर्व का भला मनावना मोक्ष का लालच देना और अपने कल्पित मत की प्रवृत्ति करनी है। परन्तु विचार किये सर्वथा मिथ्या भासे है। और तिनके शास्त्रन विषे अच्छेरा कहे हैं, सो कहते हैं, कि यह हुंडावसर्प्पणी के निमित्त से भये हैं, इन को छेड़ने नाहीं, सो काल दोष से बहुत ही बातें होयें, परन्तु प्रमाण विरुद्ध तो न होयें। जो प्रमाण विरुद्ध भी होयें तो आकाश का फूल, गधे के सींग, इत्यादिक होना भी बने, सो तो संभवे नाहीं। इसलिये जो वह अछेरा कहे हैं, सो प्रमाण

विरुद्ध है किस लिये सो कहिये है। वर्द्धमान जिन कितनेक काल ब्राह्मणी के गर्भ विषे रहे, पीछे क्षत्रियाणी के गर्भ विषे बधे ऐसा कहे हैं, सो किसी का गर्भ किसी के धरा प्रत्यक्ष भासे नाहीं, अनुमानादिक में भी आवे नाहीं, और तीर्थंकर के भया कहिये, तो गर्भ कल्याणक किसी के घर भया जन्म कल्याणक किसी के घर भया रत्नवृष्टि कितनेक दिन किसी के घर भई, कितनेक दिन किसी के घर भई सोलह स्वप्न किस को आये, पुत्र किसी कै भया, इत्यादि असंभव भासे है। और माता तो दोय भई और पिता तो एक ब्राह्मण ही रहा, जन्म कल्याणादि विषे उस का सन्मान न किया, अन्य कल्पित पिता का सन्मान किया, सो तीर्थंकर के दोय पिता कहना महा विपरीत भासे है। सर्वोत्कृष्ट पद के धारक कै ऐसे वचन सुनने भी योग्य नाहीं, और तीर्थंकर की भी ऐसी अवस्था भई तो सर्वत्र ही अन्य स्त्री का गर्भ अन्य स्त्री के घर देना ठहरे तो वैष्णव जैसे अनेक प्रकार पुत्र पुत्री का उपजना बतावें हैं, तैसे यह भी कार्य भया। सो ऐसे निकृष्ट काल विषे भी ऐसा अनुचित कार्य्य होता दीखे नाहीं, तहां चौथे काल विषे ऐसा होना कैसे संभवै। इसलिये यह कथन मिथ्या है। और मल्ली तीर्थंकर को कन्या कहे हैं, सो स्त्री पर्य्याय हीन है, सो उत्कृष्ट तीर्थंकर पद धारक कै न बने है, और तीर्थंकर के नग्न लिंग ही कहे हैं, सो स्त्री के नग्नपना न संभवै है इत्यादि विचार किये असंभव भासे है। और हरिक्षेत्र का भोग भूमिया को नरक गया कहे हैं, सो बन्ध वर्णन विषे तो भोग भूमिया के देवगति देवायु ही का बंध कहे हैं, नरक को कैसे गया, सिद्धान्त में अनन्तकाल विषे जो बात होय सो भी कहैं। जैसे तीसरे नरक पर्य्यन्त तीर्थंकर प्रकृति का सत्व कहा भोगभूमिया के नरक

आयु गति का बंध न कहा, सो केवली तो भूले नाहीं। इसलिये यह कथन भी मिथ्या है। ऐसे ही सर्व अछेरे असंभव जानने। और वह कहे हैं, इन को छोड़नें नाहीं, सो झूठ कहने वाला ऐसे ही कहे है, और जो कहोगे, कि जैसे दिगम्बर विषे तीर्थंकर कै पुत्री चक्रवर्त्ती का मान भंग इत्यादि कार्य काल दोष से भया कहे हैं, तैसे यह भी भये। सो तिस को कहिये है, कि यह कार्य्य तो प्रमाण विरुद्ध नाहीं, अन्य के होते थे, महंतन के भी भये। इसलिये काल दोष भया कहे हैं, गर्भ हरणादिक कार्य्य प्रत्यक्ष अनुमानादिक से विरुद्ध है, तिन का होना कैसे संभवै, और अन्य भी घने ही कथन प्रमाण विरुद्ध करे हैं, जैसे कहे हैं, कि सर्वार्थ सिद्ध के देव मन ही से प्रश्न करे हैं, केवली मन ही से उत्तर देवे हैं, सो सामान्य ही जीव के मन की बात मनःपर्य्याय ज्ञानी विना जान सके नाहीं, केवली के मन की बात सर्वार्थ सिद्ध के देव कैसे जानें, और केवली के भाव मन का तो अभाव है, द्रव्य मन जड़ आकार मात्र है, उत्तर किस ने दिया, इसलिये यह भी वचन मिथ्या है। ऐसे अनेक प्रमाण विरुद्ध कथन किये हैं, इसलिये तिन के आगम (शास्त्र) कल्पित जानने, और सो श्वेताम्बर मतवाले देव गुरु धर्म का स्वरूप अन्यथा निरूपै हैं, तहां केवली कै क्षुधादिक दोष कहे हैं, सो यह देव का स्वरूप अन्यथा है। क्योंकि क्षुधादिक दोष होतैं आकुलता होय, तब अनन्त सुख कैसे बने। और जो कहोगे शरीर को क्षुधा लागे है, आत्मा तद्रूप न होय है, तो क्षुधादिक का उपाय आहारादिक किस लिये ग्रहण किया कहो हो। क्षुधादिक कर पीड़ित होय तब आहार ग्रहण करै, और कहोगे जैसे कर्म्मोदय से विहार होय है, तैसे ही आहार ग्रहण होय है,

सो विहार तो विहायोगति प्रकृति के उदय से होय है, यह पीड़ा का उपाय नाहीं, और बिना इच्छा भी किसी जीव के होय है, और आहार है, सो प्रकृति का उदय नाहीं, क्षुधा कर पीड़ित भये ही ग्रहण करे है, और आत्मा पवनादिक को प्रेरे तब ही निगलना होय है। इसलिये विहारवत् आहार नाहीं। जो कहोगे साता वेदनी के उदय से आहार ग्रहण होय है, सो बने नाहीं। जो जीव क्षुधादिक कर पीड़ित होय, पीछे आहारादिक कर ग्रहण से सुख मानें, तिस के आहारादिक साता के उदय से कहिये, आहारादिक का ग्रहण सातावेदनीय का उदय से स्वयमेव होय, ऐसे तो है नाहीं। जो ऐसे होय तो सातावेदनीय का मुख्य उदय देवन कै है, सो निरन्तर आहार क्यों न करें। और महामुनि उपवासादिक करें, तिन कै साता का उदय, और निरन्तर भोजन करने वालों कै असाता का भी उदय सम्भवै है। सो जैसे बिना इच्छा विहायोगति के उदय से विहार संभवै, तैसे बिना इच्छा केवल साता वेदनीय के उदय ही से आहार का ग्रहण संभवै नाहीं। और वह कहे हैं कि सिद्धान्त विषे केवली कै क्षुधादिक ग्यारह परिषह कही हैं, इसलिये तिन के क्षुधा का सद्भाव सम्भवै है। और आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसे होय, इसलिये तिन के अहारादिक माने हैं। —:(तिसका समाधान):— कर्म प्रकृति का उदय मंद तीव्र भेद लिये है, जहां अति मन्द उदय होतें तिस के उदय जनित कार्य की व्यक्तता भासे नाहीं। इसलिये मुख्यपने अभाव कहिये, तारतम्य विषे सद्भाव कहिये। जैसे नवमें गुण स्थान विषे वेदादिक का उदय मन्द है, तहां मैथुनादिक क्रिया व्यक्त नाहीं। इसलिये तहां ब्रह्मचर्य

कहा, तारतम्य विषे मैथुनादिक का सद्भाव कहिये है, तैसे केवली के असाता का उदय अतिमन्द है; इसलिये एक कांडक विषे अनन्तवें भाग अनुभाग हैं। ऐसे बहुत अनुभाग कांडन कर वा गुण संक्रमादिक कर सत्ता विषे असाता वेदनीय का अनुभाग अत्यन्त मन्द भया, तिस के उदय विषे क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं, जो शरीर को क्षीण करे। और मोह के अभाव से क्षुधादिक जनित दुःख भी नाहीं। इस लिये क्षुधादिक का अभाव कहिये हैं, तारतम्य विषे तिन का सद्भाव कहिये है, और वह कहे हैं, कि आहारादिक बिना तिनकी उपशांतता कैसे होय —:(तिसका उत्तर):— जो आहारादिक कर उपशांत होने योग्य क्षुधा लागे तो मन्द उदय किस लिये रहा कहिये। देखो देव भोग भूमिया आदिक कै किञ्चित् मन्द उदय होतें ही बहुत काल पीछे किंचित् आहार ग्रहण होय है, सो इनकै तो अति मंद उदय भया। इस लिये इन कै आहार का अभाव संभवे है। फिर कहे हैं, कि देवभोग भूमिया का तो शरीर ही ऐसा है, कि जिस को भूख घने काल पीछे बहुत थोड़ी लगे। इनका तो शरीर कर्म्म भूमि का उदारिक है, इस लिये इनका शरीर आहार बिना देशोनकोड़ि पूर्वपर्य्यन्त उत्कृष्ट पने कैसे रहे, —:(तिसका समाधान):— देवादिक का शरीर वैसा है, सो कर्म ही के निमित्त से है। यहां भी केवल ज्ञान भये ऐसा ही कर्म उदय भया जिस कर शरीर ऐसा भया। जिस को भूख प्रगट होती ही नाहीं। जैसे केवल ज्ञान भये पहिले केश नख बधे थे, अब बधे नाहीं। छाया होती थी सो होती नाहीं, शरीर विषे निगोद थी, तिस का अभाव भया। बहुत प्रकार कर जैसे शरीर की अवस्था अन्यथा भई, तैसे ही अहार बिना भी शरीर जैसा का

तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई। सो प्रत्यक्ष दीखे है। औरन को जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होजाय। इन का आयु के अन्त पर्यन्त शरीर शिथिल न होय। इसलिये अन्य मनुष्यन के और इन के शरीर की समानता सम्भवै नाहीं। और जो तुम कहोगे देवादिक कै आहार ही ऐसा है। जिस कर बहुत काल तक भूख मिटै है, इनकी भूख किस से मिटी, और शरीर पुष्ट कैसे रहा। —:(तिसका उत्तर):— असाता का उदय मन्द होने से मिटी, और समय समय परम औदारिक शरीर वर्गणा का ग्रहण होय है, सो वह तो कर्म्म आहार है, और ऐसी कर्म्म वर्गणा का ग्रहण होय है। जिस कर क्षुधादिक व्यापे नाहीं॥ शरीर शिथिल होय नाहीं, सिद्धांत विषे इसही की अपेक्षा केवली कै आहार कहा है। और अन्नादिक का आहार तो शरीर की पुष्टता का मुख्य कारण नाहीं। प्रत्यक्ष देखो कोई थोड़ा आहार ग्रहै, शरीर पुष्ट बहुत होय। कोई बहुत आहार ग्रहै शरीर क्षीण रहै, और पवनादिक साधने वाले बहुत काल ताईं आहार न लेहैं। तौभी तिन का शरीर पुष्ट रहा करे है। वा ऋद्धिधारी मुनिन कै बहुत बड़े२ उपवासादिक करतैं भी शरीर पुष्ट बना रहै है, सो केवली कै तो सर्वोत्कृष्टपना है। उन कै अन्नादिक बिना शरीर पुष्ट बना रहै तो क्या आश्चर्य भया। और केवली कैसे आहार को जाय कैसे याचे। वह आहार को जाय तब समवसरण खाली कैसे रहै। अथवा अन्य का लाय देना ठहराओगे, तो लाय कौन दे। उन के मन की कौन जाने। पूर्वं उपवासादिक की प्रतिज्ञा करी थी, तिस का कैसे निर्वाह होय। जीव अन्तराय सर्वत्र भासैं। कैसे अहार ग्रहैं, इत्यादिक विरुद्धता भासै है, तब वे कहै हैं, कि आहार तो ग्रहै हैं, परन्तु किसी

को दीखे नाहीं है। तिसको कहिये है आहार ग्रहण निन्द्य जाना तव तिसका न देखना अतिशय विषे लिखा सो उनके निंद्य पना रहा न दीखे है, तो क्या भया। ऐसे अनेक प्रकार विरुद्धता उपजे है। उनकी और भी अविवेकता की बातें सुनो, केवली के निहार (शौच जाना) कहे हैं, रोगादिक भया कहे हैं। और कहे हैं, कि किसी ने वर्द्धमान तिर्थंकर ऊपर तेजोलेस्या छोड़ी तिस कर वर्द्धमान स्वामी के पेट का रोग भया। तिस कर बहुत दस्त लग गये, ऐसे अनेक विपरीत रूप प्ररूपे हैं। सो तीर्थंकर केवली के भी ऐसा कर्म्म का उदय रहा। और अतिशय न भया तो इन्द्रादिक कर पूज्यपना कैसे शोभै। और निहार कैसे करें। कहां तक कहिये कोई भी सम्भवती बात नाहीं। और जैसे रागादिक युक्त छद्मस्थ की क्रिया होय, तैसे केवली के क्रिया ठहरावैं हैं, वर्द्धमान स्वामी के उपदेश विषे हे गोतम ऐसा बारम्बार कहना ठहरावें हैं। सो उन की तो अपने काल विषे स्वयमेव ही दिव्य ध्वनि होय है। तहां सर्व को उपदेश होय है। गोतम को सम्बोधन कैसे बने, और केवली के नमस्कारादिक क्रिया ठहरावैं हैं, सो अनुराग बिना बन्दना सम्भवे नाहीं। और गुणाधिक को बन्दना सम्भवे। उन सेती गुणाधिक कोई रहा नाहीं सो कैसे बने। और हाट विषे समोसरण उतरा कहे हैं, सो इन्द्र क्रत समवसरण हाट विषे कैसे रहे, इतनी रचना तहां कैसे समावै और हाट विषे किसलिये रहे क्या इन्द्र हाट सारिखी रचना करने को भी समर्थ न था, जिस कर हाट का आश्रय लीजिये। और कहे हैं कि केवली उपदेश देने को गये। सो घर घर जाय उपदेश देना तो अतिराग से होय है। सो मुनि के भी सम्भवे नाहीं,

केवली के कैसे बने, ऐसे ही अनेक विपरीतता तहां प्ररूपै हैं। केवली शुद्ध केवल ज्ञान दर्शनमय रागादि रहित भये, तिन कै अघातिन के उदय से संभवती क्रिया कोई होय है, केवली कै मोहादिक का अभाव भया है। इसलिये उपयोग मिले जो क्रिया होय सके सो सम्भवै नाहीं। पाप प्रकृति का अनुभाग अत्यन्त मन्द भया है। ऐसा मन्द अनुभाग अन्य किसी के नाहीं। इसलिये अन्य जीवन कै पाप उदय से जो क्रिया होती देखिये है, सो केवली कै न होय। ऐसे केवली भगवान् कै सामान्य मनुष्य कैसी क्रिया का सद्भाव कह कर देव के स्वरूप को अन्यथा प्ररूपै हैं। और गुरु के स्वरूप को अन्यथा प्ररूपै हैं, मुनि कै वस्त्रादिक चौदह उपकर्ण कहे हैं। सो हम पूछे हैं, कि मुनि को निर्ग्रन्थ कहैं। और मुनि पद लेतैं चौबीस प्रकार का सर्व परिग्रह त्याग कर महाव्रत अङ्गीकार करें हैं, सो यह वस्त्रादिक परिग्रह हैं, कि नाहीं। जो हैं तो त्याग किये पीछे किस लिये राखे। और नाहीं हैं, तो वस्त्रादिक गृहस्थी राखें। तिस को भी परिग्रह मत कहो, सुवर्णादिक को ही परिग्रह कहो। और जो कहोगे जैसे क्षुधा के अर्थ आहार ग्रहण करिये है, तैसे ही शीत उष्णादिक के अर्थ वस्त्रादिक ग्रहण करिये हैं। सो मुनि पद अङ्गीकार करतैं आहार का त्याग किया नाहीं, परिग्रह का त्याग किया है। और अन्नादिक का तो संग्रह करना परिग्रह है, भोजन करने जाय, सो परिग्रह नाहीं। और वस्त्रादिक का संग्रह करना पहरना सर्व परिग्रह है। सो लोक विषे प्रसिद्ध है। और जो कहोगे, कि शरीर की स्थिति के अर्थ वस्त्रादिक राखियें हैं ममत्व नाहीं है। इसलिये इन को परिग्रह न कहिये। —:(तिस का उत्तर):— श्रद्धान

विषे तो जब सम्यक् दृष्टी भया तब ही समस्त पर द्रव्यन विषे ममत्व का अभाव भया। तिस अपेक्षा तो चौथे गुण स्थान ही परिग्रह रहित कहा है । और प्रवृत्ति विषे ममत्व नाहीं है तो कैसे ग्रहण करे हैं। इस लिये वस्त्रादिक का ग्रहण करना छूटेगा तब ही निपरिग्रह होगा । और जो कहोगे कि वस्त्रादिक को कोई ले जाय तो क्रोध न करै हैं, वा क्षुधादिक लगे तो बेचैन न होय हैं, वा वस्त्रादिक पहर प्रमाद करें नाहीं । परिणामन की स्थिरता कर धर्म्म ही साधे हैं, इसलिये ममत्व नाहीं। तिस को कहिये है वाह्य क्रोध करें वा मत करें। परन्तु जिस के ग्रहण विषे इष्ट बुद्धि होय तिस के वियोग विषे अनिष्ट बुद्धि अवश्य होय ही होय। जो इष्ट बुद्धि न भई तो तिस के अर्थ याचना किसलिये करिये है। और बेचते नाहीं, सो धातु राखने से अपनी हीनता जान नाहीं बेचिये हैं । जैसे धनादिक रखना तैसे ही वस्त्रादिक रखना है, क्योंकि लोक विषे परिग्रह के चाहक जीवन कै दोनों ही की इच्छा है। इसलिये चौरादिक के भयादिक के कारण दोनों ही समान हैं । और परिणामन की स्थिरता कर धर्म्म साधने से ही परिग्रह पना न होय तो किसी को बहुत शीत लगे तब वह सौड़ राख परिणामन की स्थिरता करेगा। और धर्म्म साधेगा तो उस को भी निपरिग्रही कहो । ऐसे गृहस्थ धर्म्म मुनि धर्म्म विषे विशेष क्या रहेगा। जिस कै परीषह सहन की शक्ति न होय सो परिग्रह राख धर्म्म साधै, तिस का नाम गृहस्थ धर्म्म है। और जिस के परिणाम निर्मल भये परीषह कर व्याकुल न होय सो परिग्रह न राख धर्म्म साधे तिस का नाम मुनि धर्म्म है। और जो कहोगे, कि शीतादिक की परीषह

कार व्याकुल कैसे न होय। —:(तिसका उत्तर):— व्याकुलता तो मोह के उदय के निमित्त से होय है। सो मुनि कै तो षटादि गुण स्थान विषे तीन चौकड़ी का उदय नाहीं। और संज्वलन कै सर्व घाती स्पर्द्धकन का उदय नाहीं। देश घाती स्पर्द्धकन का ही उदय है, सो कुछ तिन का बल नाहीं। जैसे वेदक सम्यग्दृष्टी कै सम्यग् मोहनी का उदय है, सो सम्यक्त को घात न कर सके है, तैसे देश घाती संज्वलन का उदय परिणा-मन को व्याकुल कर सके नाहीं, और मुनिन के और औरन के परिणामन की समानता नाहीं। और सबन कै सर्व घाती का उदय इन कै देश घाती का उदय, इसलिये औरन के जैसे परिणाम होयें, तैसे उन के कदाचित् न होयें, इसलिये जिन कै सर्व घाती कषायन का उदय होय, सो गृहस्थी ही रहैं। और जिन कै देश घाती का उदय होय सो मुनि धर्म्म अङ्गीकार करे। तिस कै शीतादिक कर परिणाम व्याकुल न होयें। इसलिये वह वस्त्रादिक राखें नाहीं। और कहोगे जैन शास्त्रन विषे चौदह उपकरण मुनि राखें, ऐसा कहा है। —:(तिसका समाधान):— सो तुम्हारे ही शास्त्रन विषे कहा है, दिगम्बर शास्त्रन विषे तो कहा नाहीं। तहां तो लङ्गोट मात्र परिग्रह रहे भी ग्यारवीं ही प्रतिमा का धारक श्रावक कहा है, सो अब यहां विचारो दोनों में कल्पित वचन कौन के हैं। प्रथम तो कल्पित रचना जिस कै कषाय होय सोई करे। और जिस कै कषाय होय सोई नीचे पद विषे उच्चपदपना प्रगट करै। सो यहां दिगम्बर विषे वस्त्रादिक राखे, धर्म्म होय नाहीं, ऐसा तो न कहा। परन्तु तहां वस्त्र राखे श्रावक धर्म्म कहा। श्वेताम्बर विषे मुनि धर्म्म कहा। सो यहां नीच क्रिया होतैं उच्च पद प्रगट किया सो ही कषाय है, इस कल्पित कहने कर आप को

वस्त्रादि राखतें भी लोक मुनि मानने लगें, इस में मान कषाय पोषा गया। और औरन कै सुगम क्रिया विषे उच्च पद का होना बताया। इस लिये इस में घने लोक लग गये सो जो कल्पित मत भये हैं, ऐसे ही भये हैं। इस लिये जो श्वेताम्बर मत विषे वस्त्रादिक होते भी मुनिपना कहा है सो कल्पित है। पूर्वोक्त युक्ति कर विरुद्ध भासे है, और कहोगे, दिगम्बर मत विषे भी शास्त्र पीछी आदि उपकरण मुनि कै कहे हैं। ऐसे ही हमारे चौदह उपकरण कहे हैं। —:(तिसका समाधान):— जिस कर उपकार होय, तिस का नाम उपकरण है। सो यहां शीतादिक की वेदना दूरकरने से उपकरण ठहराइये तो सर्व परिग्रह उपकरण नाम पावे सो धर्म्म विषे इन का क्या प्रयोजन है, यह तो पाप के कारण हैं। धर्म्म विषे तो धर्म्म के उपकारी जो होयें तिन का नाम उपकरण है। सो शास्त्र तो ज्ञान का कारण है, पीछी दया का कारण है, कमण्डल शौच का कारण है, सो यह तो धर्म्म के उपकारी भये। परन्तु वस्त्रादिक कैसे धर्म्म के उपकारी होयें। वह तो केवल शरीर के सुख ही के अर्थ धारिये हैं। और सुनों जो शास्त्र राख महन्तता दिखावैं। पीछी कर बुहारी दें। कमण्डल कर जलादिक पीवैं। वा मैल उतारें तो शास्त्रादिक भी परिग्रह ही हैं, सो मुनि ऐसे कार्य करें नाहीं। इस लिये धर्म्म के साधन को परिग्रह संज्ञा नाहीं। भोग के साधन को परिग्रह संज्ञा होय है। ऐसा जानना, और कहोगे कमंडल से शरीर ही का मल दूर करिये है, —:(तिसका उत्तर):— मुनि मल दूर करने की इच्छा कर कमण्डल नाहीं राखे हैं। शास्त्र वाचना आदि कार्य करैं, और मल लिप्त होय, तिन का अविनय होय, लोक निन्द्य होय। इसलिये इस धर्म्म के अर्थ

कमंडल राखिये है। ऐसे ही पीछी आदि उपकरण सम्भवें हैं, वस्त्रादिक को उपकरण संज्ञा संभवे नाहीं। काम अरति आदि मोह के उदय से विकार बाह्य प्रगट होय। और शीतादिक सहे न जावें, इसलिये विकार ढाकने को वा शीतादिक घटावने को वस्त्रादिक राखे हैं, और इन के उदय से अपनी महन्तता भी चाहे हैं। इसलिये कल्पित युक्ति कर उपकरण ठहराये हैं, और घर २ याचना कर आहार लावना ठहरावे हैं, सो प्रथम तो यह पूछिये है, याचना धर्म्म का अंग है, कि पाप का अंग है। जो धर्म्म का अंग है तो मांगने वाले सर्व धर्मात्मा होयें, और पाप का अंग है, तो मुनि कै कैसे संभवे। और कहोगे लोभ कर कुछ धनादिक याचें तो पाप होय। यह तो धर्म्म साधन के अर्थ शरीर की स्थिरता राखी चाहे हैं, इसलिये आहारादिक किया चाहे हैं। -:(तिस को कहिये है):- आहारादिक कर धर्म्म होता नाहीं, शरीर का सुख होय है, शरीर के सुख के अर्थ अति लोभ भये याचना करिये है, जो अति लोभ न होता तो आप किस लिये मांगता, वे ही देते तो लेता। और अति लोभ भये यहां पाप भया, तब मुनि धर्म्म नष्ट भया, और धर्म्म क्या साधेगा। तब वह कहे है, कि मन विषे तो आहार की इच्छा होय और याचे नाहीं, तो माया कषाय भया। और याचने में हीनता आवे है, सो गर्भ कर याचे नाहीं, तब मान कषाय भई, आहार लेना था, सो मांग लिया, इस में अति लोभ क्या भया। और इस से मुनि धर्म्म कैसे नष्ट भया, सो कहो। तिस को कहिये है, जैसे किसी व्यापारी के कुमावने की इच्छा मन्द है, हाट ऊपर तो बैठे, और मन विषे व्यापार करने की इच्छा भी है, परन्तु

किसी को वस्तु लेने देने रूप व्यापार के अर्थ प्रार्थना नाहीं करे है, स्वयमेव कोई आवे और अपनी विधि मिले तो व्यापार करे है, तो तिस कै लोभ की मन्दता है, माया वा मान नाहीं है। माया मान कषाय तो तब होय जब छल करने के अर्थ अपनी महंतता के अर्थ ऐसा स्वांग करे, सो भले व्योपारी कै ऐसा प्रयोजन नाहीं। इसलिये उस के माया मान न कहिये। तैसे मुनि के आहारादिक की इच्छा मन्द है, सो आहार लेने को आवें, और मन विषे आहार लेने की इच्छा भी है, परन्तु आहार के अर्थ प्रार्थना नाहीं करे हैं स्वयमेव कोई देवे तो और अपनी विधि मिले, तब आहार लेवे हैं। उन कै लोभ की अतिमन्दता है, माया वा मान नाहीं है, माया मान तो तब होय, जब छल करने के अर्थ वा महंतता के अर्थ ऐसा स्वांग करें सो मुनि के ऐसा प्रयोजन नाहीं, इस लिये इन कै माया मान नाहीं है, जो ऐसे ही माया मान होय तो जे मन ही कर पाप करैं, वचन काय कर न करैं तिन सबन कै माया ठहरे, ऐसे अनर्थ होय, सो यह बनें नाहीं। और जो तुम कहोगे आहार मांगने में अति लोभ क्या भया —:(तिसका उत्तर):— जब अति कषाय होय तब ही निन्द्य कार्य्य अंगीकार करके भी मनोरथ पूरा किया चाहे सो मांगना लोक निन्द्य है, तिस को भी अंगीकार कर आहार की इच्छा पूर्ण करने की चाह भई. इसलिये अति लोभ भया, और तुम ने कहा मुनि धर्म कैसे नष्ट भया। —:(तिसका उत्तर):— मुनि धर्म विषे ऐसी तीव्र कषाय संभवै नाहीं, और किसी का आहार देने का परिणाम न था, इस ने उस के घर में जाय याचना करी, तहां उस कै सकुचना भई, वा न दिये लोक निन्द्य होने का भय

भया। इसलिये उस को आहार दिया सो उस का अंतरंग प्राण पीड़ने से हिंसा का सद्भाव भया, जो आप उस के घर में न जाते, और उस ही के देने की इच्छा होती तो वह देता, तब उस कै हर्ष होता। परन्तु उस के मकान के अंदर जाकर उस से भोजन मांगना यह तो उस को दवाय कर कार्य करावना भया, और अपने कार्य के अर्थ याचना रूप वचन है, सो पाप रूप है, सो यहां असत्य वचन भी भया। और उस कै देने की इच्छा न थी, इसने मांगा तब उस ने अपनी इच्छा से दिया नाहीं, सकुच कर दिया। इस लिये अदत्त ग्रहण भी भया, और गृहस्थी के घर में स्त्री जैसे तैसे तिष्टे थी, यह चला गया तहां ब्रह्मचर्य्य की वाड़िका भंग भया। और आहार लाय कितनेक काल राखा, तब आहारादि राखने को पात्रादिक राखे सो परिग्रह भया। ऐसे पांच महाव्रतन का भंग होने से मुनि धर्म्म नष्ट भया। इस लिये याचना कर आहार लेना मुनि को युक्त नाहीं। और वें कहे हैं, कि मुनि कै बाईस परीषहन में याचना परीषह कही है, सो मांगे बिना तिस परीषह का सहना कैसे होय --:(तिस का समाधान):-- याचना करने का नाम याचना परीषह नाहीं है। याचना करनी नाहीं, तिस का नाम याचना परीषह है, जैसे अरति करने का नाश अरति परीषह नाहीं, अरति करना नाहीं, तिस का नाम अरति परीषह है। तैसे याचना करना परीषह ठहरे तो रंकादिक घनी याचना करे हैं। तिन कै घना धर्म्म होय, और कहोगे मान घटावनें से इस को परीषह कहे हैं। --:(तिस का उत्तर):-- कोई कषायी कार्य के अर्थ कोई कषाय छोड़े भी पाप ही होय है। जैसे कोई लोभ के अर्थ अपने अपमान को भी न गिने तो तिस

के लोभ की अति तीव्रता है, उस अपमान करावने से भी महा पाप होय है। और आप को इच्छा कुछ नाहीं, कोई स्वयमेव अपना अपमान करे है, तो उस के महा धर्म्म है। सो यहां तो भोजन के लोभ के अर्थ याचना कर अपमान कराया। इस लिये पाप ही है धर्म नाहीं। और वस्त्रादिक के भी अर्थ याचना करे है, सो वस्त्रादिक कोई धर्म का अंग नाहीं, शरीर के सुख का कारण है, इसलिये पूर्वोक्त प्रकार तिस का निषेध जानना। देखो अपना धर्म रूप उच्च पद को याचना कर नीचा करे है, सो इस में धर्म की हीनता होय है, इत्यादि अनेक प्रकार कर मुनि धर्म विषे याचना आदि नाहीं संभवे है, सो ऐसी असंभवती क्रिया के धारक को साधु गुरु कहे हैं, और गुरु का स्वरूप अन्यथा कहे हैं, और धर्म्मका स्वरूप भी अन्यथा कहे हैं। इस लिये यह वचन कल्पित हैं, और वह कहैं हैं, कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन की एकता मोक्षमार्ग है, इस ही का नाम धर्म्म है। सो इस का स्वरूप भी वह अन्यथा प्ररूपै हैं, सो ही कहिये है। तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, तिस की तो प्रधानता नाहीं है, आप जैसे अरहन्त देव साधु गुरु दया धर्म्म निरूपै हैं। तिन के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहे हैं। सो प्रथम तो अरहन्तादिक का स्वरूप अन्यथा कहे हैं, सो इतने ही श्रद्धान से तत्व श्रद्धान भये बिना सम्यक्त कैसे होय। इस लिये यह उन का कहना मिथ्या है। और तत्वन के श्रद्धान को भी सम्यक्त कहे हैं। परन्तु प्रयोजनभूत तत्वन का श्रद्धान नाहीं कहे हैं। गुण स्थान मार्ग्गणादि रूप जीव का अणु स्कन्धादि रूप अजीव का पुण्य पाप के स्थानन का अविरतिआदि आश्रवन का व्रतादिक रूप सम्बर का तपश्चरणादि रूप निर्ज्जरा

का सिद्ध होने के लिङ्गादिक भेदन कर मोक्ष का स्वरूप जैसे उन के शास्त्र विषे कहा है, तैसे तहां देख लीजिये। और केवली का वचन प्रमाण है, ऐसे तत्वार्थ श्रद्धान कर सम्यक्त भया माने हैं। सो हम पूछे हैं ग्रीवेयक जाने वाला द्रव्य लिङ्गी मुनि के ऐसा श्रद्धान होय है, कि नाहीं, जो होय है तो उस को मिथ्या दृष्टि किस लिये कहिये। और न होय है, तो उस ने जैनधर्म्म लिङ्ग बुद्धि कर धरा है, तिस के देवादिक की प्रतीति कैसे नाहीं भई। और उस कें बहुत शास्त्राभ्यास है, सो उस ने जीवादिक के भेद कैसे न जानें, और अन्य मत का लवलेश भी उस के अभिप्राय विषे नाहीं है, तिस कै अरहन्त वचन की प्रतीति कैसे न भई मानिये। इसलिये उस के ऐसा श्रद्धान तो अवश्य ही होय है। परन्तु सम्यक्त न भई है, देखो नारकी भोग भूमिया तिर्यञ्च आदिक के श्रद्धान होने का निमित्त नाहीं है। और तिन के बहुत काल पर्यन्त सम्यक्त रहे है। और उन कै ऐसा श्रद्धान नाहीं होय तौभी सम्यक्त होय है इसलिये सम्यक् श्रद्धान का स्वरूप यह नाहीं है। सांचा स्वरूप है, सो आगे वर्णन करेंगे, सो जानना, और जो शास्त्र का अभ्यास करना तिस को सम्यग्ज्ञान कहे हैं। सो द्रव्य लिङ्गी मुनि कै शास्त्राभ्यास होतें भी मिथ्याज्ञान कहा है। असंजत सम्यग्दृष्टि कै विषयादि रूप जानना, तिस को सम्यग्ज्ञान कहा है। इसलिये यह स्वरूप नाहीं है। सांचा स्वरूप आगे कहेंगे सो जानना। और उन कर निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिक रूप श्रावक यती का धर्म्म धारणे कर सम्यक् चारित्र भया माने हैं। सो प्रथम तो व्रतादिक का स्वरूप अन्यथा कहे हैं, सो कुछ पूर्वें ही गुरु वर्णन

विषे कहा है। और द्रव्य लिङ्गी कै महाव्रत होतैं भी सम्यक् चारित्र न होय है, और उन के मत के अनुसार गृहस्थादिक के महाव्रत आदि बिना अङ्गीकार किये भी सम्यक् चारित्र होय है। इसलिये यह स्वरूप नाहीं, सांचा स्वरूप अन्य है। सो आगे कहेंगे। यहां वह कहे हैं, द्रव्य लिङ्गी कै अन्तरङ्ग विषे पूर्वोक्त श्रद्धानादिक न भये। वाह्य ही भये, इसलिये सम्यक्तादि न भये। –:(तिस को कहियेहै):–जो अन्तरङ्ग नाहीं, और वाह्य धारे सो तो कपट कर धारे। सो उस कै कपट होय तो ग्रैवेयक कैसे जाय नरकादिक विषे जाय बन्ध तो अन्तरङ्ग परिणामन से होय है, सो अन्तरङ्ग जिन धर्म्म रूप परिणाम भये विना ग्रीवेयक जाना सम्भवै नाहीं। और व्रतादिक रूप शुभोपयोग ही से देव गति का बन्ध मानैं, और इस ही को मोक्षमार्ग मानैं, सो बन्धमार्ग मोक्षमार्ग को एक किया सो मिथ्या है, और व्यवहार धर्म्म विषे अनेक विपरीत निरूपै हैं, निन्दक को मारने में पाप नाहीं ऐसा कहे हैं। सो अन्य मती तीर्थंकरादिक को भी निन्दते भये, तिन को इन्द्रादिक मारे नाहीं, सो पाप न होता तो क्यों न मारते। और प्रतिमा जी के आभरणादिक बतावें हैं, सो प्रतिविम्ब तो बीतराग भाव बधावने के कारण स्थापन किया था, आभरणादिक बनाये, अन्यमत की मूर्त्तिवत् यह भी भये, इत्यादिक कहां ताईं कहिये। अनेक अन्यथा निरूपण करे हैं। इस प्रकार श्वेताम्बर मत कल्पित जानना। यहां सम्यग्दर्शनादिक का अन्यथा निरूपण से मिथ्यादर्शनादिक ही की पुष्टता होय है। इसलिये इस का श्रद्धान न करना॥

॥ अब ढूंढक मत का निरूपण करिये है ॥

श्वेताम्बर मत विषे ही ढूंढिये प्रगट भये हैं। सो आप को सांचे धर्म्मात्मा माने हैं, सो भ्रम है। किसलिये सो कहिये है। कोई तो भेष धार साधु कहावैं, सो उनके ग्रन्थन के अनुसार भी व्रत सुमति गुप्त आदि का साधन नाहीं भासे है। और देखो मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदना कर सर्व सावद्य योग के त्याग करने की प्रतिज्ञा करैं हैं और पीछे पालते नाहीं हैं। बालक को वा भोले को वा शूद्रादिक को भी दीक्षा देहैं, और ऐसे त्याग करें हैं, कि त्याग करतैं समय कुछ विचार न करे हैं, कि हम क्या त्याग करे हैं। पीछे पाले भी नाहीं, और तिन को सर्व साधु मानें हैं, और वह कहे हैं, कि दीक्षा ग्रहण करने वाले को पीछे जब धर्म्म बुद्धि होय जाय है, तब इस का भला होय है। सो पहिले दीक्षा देने वाले ने प्रतिज्ञा भङ्ग होती जान प्रतिज्ञा कराई। और इस ने प्रतिज्ञा अङ्गीकार कर भङ्ग करी सो यह पाप किस को लगा। पीछे धर्म्मात्मा होने का निश्चय क्या है। और जो साधु का धर्म्म अङ्गीकार कर यथार्थ न पाले तो तिस को साधु मानियें, कि न मानियें। जो मानियें तो जे साधु मुनि नाम धरावैं हैं, और भ्रष्ट हैं, तिन सवन को साधु मानना ठहरे। और जो न मानियें तो इन का साधु पना न रहा। और जैसे आचरण संयुक्त तुम साधु मानो हो तिस का भी पालन किसी विरले के पाइये है। सबन को साधु किस लिये मानो हो। यहां कोई कहै। हम तो जिस के यथार्थ आचरण देखेंगे तिस को ही साधु मानेंगे, और किसी को न

मानेंगे। उस को पूछिये है, एक संघ विषे बहुत भेषी हैं, जहां जिस के यथार्थ आचरण मानों हो सो यह औरन को साधु माने है,कि न माने है। जो माने है तो वह तो अश्रद्धानी भया, तुम तिस को पूज्य कैसे मानो हो। और न माने है, तो उन सेती साधु का व्यवहार किस लिये राखे है। और आप उन को साधु न मानें अपने संघ विषे राख औरन से साधु मनाय औरन को अश्रद्धानी कर ऐसा कपट किस लिये करे है। और जिस को तुम साधु न मानोंगे तो तुम अन्य जीवन को भी ऐसा ही उपदेश करोगे, कि इन को साधु मत मानों, सो ऐसे तो धर्म्म पद्धति विषे विरोध होय है। और जिन को तुम साधु मानों हो, तिस से भी तुम्हारा विरोध भया। क्योंकि वह उस को साधु माने है। और जिस के तुम सत्यार्थ आचरण मानों हो सो विचार कर देखो तो उस के भी सत्यार्थ मुनि धर्म्म नाहीं पाइये है। यहां कोई कहे, कि अन्य भेष धारण से तो घने अच्छे हैं, इस लिये हम उन को साधु माने हैं, सो तिन को कहिये है। अन्य मतन विषे तो नाना प्रकार भेष सम्भवैं हैं क्योंकि तहां राग भाव का निषेध नाहीं है। यहां जैन मत विषे तो जैसा कहा है, तैसा ही भये साधु संज्ञा होय है, यहां कोई कहै, कि शील संयमादिक पाले हैं तपश्चरणादिक करे हैं, सो जितना करैं तितना ही भला है। तिस को कहिये है, यह सत्य है, धर्म तो थोड़ा भी पालना भला है, परतु प्रतिज्ञा तो बड़े धर्म की करिये और पालिये थोड़ा तो तहां प्रतिज्ञा भंग से महा पाप होय है। जैसे कोई उपवास की प्रतिज्ञा कर एक बार भोजन करे तो उस के बहुत बार भोजन का संयम होतैं भी प्रतिज्ञा भंग से पाप ही कहिये, तैसे मुनि

धर्म की प्रतिज्ञा कर कोई किञ्चित धर्म्म भी न पाले तो उसके शील संयमादि होतें भी पापी कहिये। जैसे एकान्त की प्रतिज्ञा कर एक बार भोजन करे तो धर्मात्मा ही है, तैसे ही अपना श्रावक पद धराय थोड़ा भी धर्म साधन करे तो धर्मात्मा ही है, यहां तो ऊंचा नाम धराय नीच क्रिया करने से पापीपना संभवे है, यथायोग्य नाम धराय धर्म्म क्रिया करतें तो पापी होता नाहीं, जितना धर्म साधे तितना ही भला है। यहां कोई कहै पंचम काल का अंत पर्यंत चतुर्विधि संघ का सद्भाव कहा है, इन को साधु न मानियें तो किस को मानियें —:(तिसका उत्तर):— जैसे इस काल विषे हंस का सद्भाव कहा है, और गम्यक्षेत्र विषे हंस नाहीं दीखे हैं, तो औरन को हंस मानें जाते नाहीं, हंस का लक्षण मिले ही हंस मानें जायें। तैसे इस काल विषे साधु का सद्भाव है, और गम्यक्षेत्र विषे साधु न दीखे है, तो औरन को साधु मानें जाते नाहीं, साधु का लक्षण मिले ही साधु मानें जायें, और बिना लक्षण मिले ही कोई माने तो तहां अन्य कुलिंगी को भी साधु मानों, सो ऐसे तो विपरीति होय है इस लिये यह बने नाहीं, कोई कहै इस पञ्चम काल में ऐसे भी साधु होय हैं, तो ऐसा सिद्धान्त का वचन बताओ, बिना सिद्धान्त ही तुम मानों हो तो पापी होगे, ऐसे अनेक युक्ति कर इन के साधुपना बने नाहीं, और साधुपना बने बिना साधुनें मा गुरु मानें मिथ्या दर्शन होय है। क्योंकि पहिले साधु को गुरु मानें ही सम्यक् दर्शन होय है, और श्रावक धर्म को अन्यथा कहे हैं, त्रस की हिंसा स्थूल मृषादि होतें भी जिस का कुछ प्रयोजन नाहीं, ऐसा किञ्चित त्याग

कराय उसको देशव्रती भया कहे हैं, सो त्रस घात जिस में होय ऐसा कार्य करे हैं सो देशव्रत गुण स्थान विषे तो ग्यारह व्रत कहे हैं, तहां त्रस घात कैसे संभवै। और ग्यारह प्रतिमा भेद श्रावक के हैं तिन विषे दशवीं ग्यारहवीं प्रतिमा धारक श्रावक के व्रत भी धारते नाहीं। और साधु होय हैं जो पूछा जावे तो कहे हैं, प्रतिमा धारक श्रावक अबार हो सकता नाहीं, सो देखो श्रावक धर्म तो कठिन और मुनि धर्म सुगम ऐसा विरुद्ध भासै है। और देखो ग्यारवीं प्रतिमा धारक के थोड़ा परिग्रह मुनि के बहुत परिग्रह बतावें हैं, सो संभवता वचन नाहीं, और कहे हैं, यह प्रतिमा तो थोड़े ही काल तक पाल कर छोड़ दीजिये हैं सो जो कार्य उत्तम है तो धर्म बुद्धि ऊंची क्रिया को किस लिये छोड़ें और नीच कार्य है तो किसलिये अंगीकार करें, सो यह संभवे नाहीं। और कुदेव कुगुरु को नमस्कारादिक करतैं भी श्रावकपना बतावैं हैं। और कहे हैं, कि धर्म कर तो नाहीं वंदे हैं, लौकिक व्यवहार है, सो सिद्धान्त विषे तो तिन की प्रशंसा स्तवन करने वाले को भी मिथ्याती कहा है। तब गृहस्थियों का भला मनावने के अर्थ वंदना करना कैसे संभवे। और जो कहोगे भय लज्जा कौतूहलादिक कर वंदे हैं, तो इन ही कारण कर कुशी-लादिक सेवन करतैं भी पाप मत कहो अंतरंग विषे पाप जानना चाहिये। जो ऐसे कहोगे तो सर्व आचरण विषे विरुद्धता हो जायगी। देखो कैसे पश्चाताप का विषय है, कि मिथ्यात्व सारिखे महा पाप की प्रवृत्ति छुड़ावने की तो मुख्यता नाहीं, और पवन काय की हिंसा ठहराय उघारे मुख बोलना छुड़ावने की मुख्यता पाइये है, इसलिये यह क्रम भंग उपदेश है, और देखो कि धर्म के अंग अनेक हैं, तिन विषे एक

पर जीव की दया ही को मुख्य कहै हैं तिसका भी विवेक नाहीं, जलका छानना, अन्न को सोधना, सदोष वस्तुका भक्षण करना, हिंसादिक रूपका व्यापार न करना इत्यादि दया के अंगन की तो मुख्यता नाहीं, और मुखपट्टी का बांधना, शौचादिक थोड़ा करना, इत्यादि दया के अंगनकी तो मुख्यता करे हैं, सो मैल युक्त पट्टी कै थूक के संवंध से जीव उपजे तिन का तो यत्न नाहीं, और पवन की हिंसा का यत्न बतावैं हैं, सो नासिका कर बहुत पवन निकसे तिस का तो यत्न करते ही नाहीं, और जो उन के शास्त्रन के अनुसार बोलने ही के यत्न के लिये पट्टी बांधिये है तो सदैव किसलिये राखिये बोलिये तब यत्न कर बोलिये और जो कहोगे कि भूल जानेके भयकर सदैव राखिये है, तो जब इतना भी याद न रहे तो अन्यधर्म साधन कैसे होगा। और शौचादिक थोड़ा करिये है, सो संभवता शौच तो मुनि भी करे हैं। इस लिये गृहस्थी को तो अपने योग्य शौच करना अवश्य चाहिये स्त्री संगमादिक कर शौच किये विना सामायकादि क्रिया करने से अविनय विक्षिप्तता आदि कर पाप उपजे है, ऐसे जिन की मुख्यता करैं तिन का भी ठिकाना नाहीं, और कई दया के अंग योग्य पालैं हैं, हरित काय का त्याग आदि करैं जल थोड़ा खंडावैं। इन का हम निषेध करते नाहीं, और इस अहिंसा का एकांत पकड़ प्रतिमा चैत्यालय की पूजनादि क्रिया का निषेध करैं हैं, सो उन ही के शास्त्रन विषे प्रतिमा आदिक का निरूपण है। तिस को ज़बरदस्ती लोपै हैं, देखो उन ही के शास्त्र "भगवती सूत्र" विषे ऋद्धि धारी मुनि का निरूपण है, तहां मेरुगिरि आदि विषे जाय, "तच्चवेययाइवंदई" ऐसा पाठ है, इस का अर्थ यह है, कि तहां चैत्यों को वंदे है, सो चैत्यों नाम

प्रतिमा का है, सो प्रसिद्ध है, और वह हठ कर कहे हैं। चैत्य शब्द के ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजे हैं सो अन्य अर्थ हैं प्रतिमा का अर्थ नहीं है। उस को पूछिये है कि मेरुगिरि नन्दीश्वर द्वीप विषे जाय, तहां चैत्य वंदना करी, सो वहां ज्ञानादिक की वंदना करने का अर्थ कैसे संभवै, ज्ञानादिक की वंदना तो सर्वत्र संभवै है, जो वंदने योग्य चैत्य वहां ही संभवै। और सर्वत्र न संभवै तिस को तहां वंदना करने का विशेष संभवै है। सो ऐसा संभवता अर्थ प्रतिमा ही है। और चैत्य शब्द का मुख्य अर्थ प्रतिमा ही है सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थ कर चैत्यालय नाम संभवै है, इस को हठ कर किसलिये लोपो हो। और नन्दीश्वर द्वीपादिक विषे जाय देवादिक पूजनादि क्रिया करे हैं, तिस का व्याख्यान उन के शास्त्रन में ही जहां तहां पाइये है। और लोक विषे जहां तहां अकृत्रिम प्रतिमा का निरूपण है, सो यह रचना अनादि है, सो यह रचना भोग कौतूहलादिक के अर्थ तो है नाहीं, और इन्द्रादिक के स्थानन विषे है तहां वह निःप्रयोजन रचना देख उस से उदासीन होते होंगे तहां दुःखी होता होगा, सो संभवै नाहीं के अच्छी रचना देख विषय पोखते होंगे। सो अर्हन्त मूर्त्ति कर सम्यग्दृष्टि अपना विषय पोषैं यह भी संभवै नाहीं, इस लिये तहां तिन की भक्त्यादिक ही करैं हैं यह ही संभवै है। सो उन के सूर्याभि देव का व्याख्यान है, तहां प्रतिमा जी के पूजने का विशेष वर्णन किया है, इस को लोपने के अर्थ कहे हैं, कि देवन का ऐसा ही कर्त्तव्य है, सो सांच, परन्तु कर्त्तव्य का तो फल होय ही होय, सो तहां धर्म होय है, कि पाप होय है, जो धर्म होय है, तो अन्यत्र पाप होता था, यहां धर्म भया, इस

को औरन के समान कैसे कहिये, यह तो योग्य कार्य भया, और पाप है, तो तहां "णमोत्थुणं" का पाठ पढ़ा सो पाप के ठिकाणे ऐसा पाठ किस लिये पढ़ा। और एक विचार यहां यह आया कि "णमोत्थुणं" के पाठ विषे तो अरहंत की भक्ति है, सो प्रतिमा जी के आगे जाय यह पाठ पढ़ा तब प्रतिमा जी के आगे जो अरहंत भक्ति की क्रिया है, सो करनी युक्त भई । और जो वह ऐसा कहे हैं, कि देवन कै ऐसा कार्य है, मनुष्यन कै नाहीं, क्योंकि मनुष्यन कै प्रतिमा आदि बनावने विषे हिंसा होय है, सो उन ही के शास्त्रन विषे ऐसा कथन है, द्रौपदी राणी प्रतिमा जी का पूजन जैसे सूर्याभि देव किया तैसे करती भई, इस लिये इस से यह निर्णय हुवा, कि मनुष्यों को भी ऐसा कार्य्य करना योग्य है। यहां एक यह विचार आया कि चैत्यालय प्रतिमा बनावने की प्रवृत्ति न थी तो द्रौपदी ने कैसे प्रतिमा पूजन किया । और प्रवृत्ति थी, तो बनावने वाले धर्मात्मा थे, कि पापी थे । जो धर्मात्मा थे, तो गृहस्थियों को ऐसा कार्य्य करना योग्य भया । और पापी थे तो तहां भोगादिक का प्रयोजन तो था नाहीं, किस लिये बनाया। और द्रौपदी तहां "णमोत्थुणं" का पाठ किया, वा पूजनादिक किया सो कौतूहल किया कि धर्म किया, जो कौतूहल किया तो महा पापनी भई। क्योंकि धर्म विषे कौतूहल किया । और जो धर्म किया तो तब औरन को भी प्रतिमाजी की स्तुति पूजा करनी युक्त भई यहां वह ऐसी मिथ्या युक्ति बतावें हैं, कि जैसे इन्द्र की स्थापना से इन्द्र का कार्य सिद्धि नाहीं । तैसे अरहंत प्रतिमा कर कार्य सिद्धि नाहीं, —:(तिस का उत्तर):— जो अरहंत आप किसी को भक्त मान उस का भला करते होयें तो हम ऐसे भी मानें । सो तो वें बीतराग हैं।

यह जीव आप ही भक्ति कर अपने भावन से शुभ फल पावे है। जैसे स्त्री का आकार रूप काष्ट पाषाण की मूर्त्ति देख तहां विकार रूप होय अनुराग करे तो तिस कै पाप बंध होय है। तैसे ही अरहंत का आकार रूप धातु पाषाण की मूर्त्ति देख धर्म बुद्धि से तहां अनुराग करे तो शुभ की प्राप्ति तहां कैसे न होय, तब वह कहे है, कि बिना प्रतिमा ही हम अरहंत विषे अनुराग कर शुभ उपजावेंगे। —:(तिस का उत्तर):— आकार देखे जैसा भाव होय है तैसा परोक्ष स्मरण किये भाव होय नाहीं, क्योंकि लोक विषे भी स्त्री का अनुरागी स्त्री का चित्र बनावे है, इसलिये प्रतिमा जी का आलम्बन कर भक्ति विशेष होनेसे विशेष शुभकी प्रप्ति होय है, और कोई कहै प्रतिमा को देखो परन्तु पूजनादि करनेका क्या प्रयोजनहै, —:(तिसका उत्तर):— जैसे कोई किसी जीवका आकार बनाय उस ही की हिंसा किये का पाप निपजावै वा कोई किसी का आकार बनाय द्वेष बुद्धि से उसकी बुरी अवस्था करे तो जिस का आकार बनाया तिस की बुरी अवस्था किये कैसा फल निपजे है। तैसे अरहंत का आकार बनाय राग बुद्धि से पूजनादिक करै तो अरहंत का पूजनादिक किये कैसा शुभ फल निपजे है वा तैसा ही फल होय अति अनुराग भये प्रत्यक्ष दर्शन न होतैं आकार बनाय पूजनादि करिये है इस धर्म्मानुराग से महा पुण्य उपजे है, और ऐसी कुतर्क करै हैं, कि जिस कै जिस वस्तु का त्याग होय तिसके आगे उस वस्तु को धरना यह तो हास्य करानाहै, इसलिये चंदनादिक कर अरहंत का पूजन युक्त नाहीं। —:(तिस का समाधान):— मुनि पद

लेते ही सर्व परिग्रह का त्याग किया था, केवल ज्ञान भये पीछे तीर्थंकरदेव के समवसरणादि बनाये छत्र चामरादि किये, सो हास्य करी कि भक्ति करी। हास्य करी तो इंद्र महा पापी भया, सो बने नाहीं, जो भक्ति करी तो पूजनादिक विषे भी भक्ति ही करिये है, छद्मस्थ के आगे त्याग करी वस्तु को धरना हास्य है क्योंकि उस के विक्षिप्तता होय आवे है, केवली के वा प्रतिमा के आगे अनुराग कर उत्तम वस्तु धरने का दोष नाहीं, उनके विक्षिप्त होय नाहीं, धर्म्मानुराग से जीव का भला होयहै। तब वह कहे है, कि प्रतिमा बनावनें विषे चैत्यालयादिक करावनें विषे पूजनादि करने विषे हिंसा होय है। और धर्म्म अहिंसा है, और हिंसा कर धर्म्म मानने से महा पापी होय है। इस लिये हम इन कार्य्यन को निषेधे हैं —:(तिसका उत्तर)—: उन ही के शास्त्र विषे ऐसा वचन है॥

प्राकृतम्—

सुच्चाजाणइकल्लाणं सुच्चाजाणइपावगं।
उभयं जाणये सुच्चा जं सेयं तं समायर॥ १ ॥

संस्कृते—

श्रुत्वा जानीहि कल्याणं श्रुत्वा जानीहि पापम्।
उभयं जानीहि श्रुत्वा यत्सेव्यं तत्समाचर॥ १

अर्थ—कल्याण (पुण्य) को सुन कर जान, पाप को सुन कर जान और उभय (दोनों) को सुन कर जान "इन में से" जो सेवने योग्य है उस को सेवन कर॥

भावार्थ—यहां कल्याण पाप उभय इन तीनों को शास्त्र सुन कर जाने ऐसा कहा। सो उभय तो पाप और कल्याण मिले होय है, सो ऐसा कार्य भी होना ठहरा। तहां पूछिये है, कि केवल धर्म्म से तो उभय घाट ही है। और केवल पाप से उभय भला है, कि बुरा है। जो बुरा है तो इस में तो कुछ कल्याण का अंश मिला पाप से बुरा कैसे कहिये, भला है तो केवल पाप छोड़ ऐसा कार्य करना ठहरा। और युक्ति कर भी ऐसे ही सम्भवे है कोई त्यागी होय मन्दिरादिक को नाहीं करावे है, वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यन विषे प्रवर्त्ते है। तिस को छोड़ प्रतिमादि करना करावना पूजनादि करना उचित नाहीं है। परन्तु कोई अपने निवास के लिये मन्दिर बनावे तिस से तो चैत्यालयादिक करावना भला है, कि नाहीं। हिंसा तो भई, परन्तु मकान बनावने वाले के तो लोभ भया अनुराग की वृद्धि भई, और चैत्यालय बनावने वाले कै लोभ घटा धर्म्मानुराग भया। और कोई व्यापारादि कार्य करे, जिस में टोटा थोड़ा होय नफा घना होय सोई करे है। तैसे ही पूजनादिक कार्य्य जानने। वहां मन्दरादिक बनावने विषे तो हिंसादि बहुत होय है। लोभादिक बधे हैं, यह तो पापही की प्रवृत्ति है। यहां प्रतिमादिक बनावने विषे हिंसादिक भी किञ्चित् होय है। लोभादिक घटे हैं, धर्म्मानुराग बधे है। अथवा जो त्यागी न होयें और अपने धन को पाप विषे खरचते होयें, तिन को चैत्यालयादि करावना युक्त ही है, इसलिये जो निरवद्य सामायिकादि कार्यन विषे उपयोग को

नाहीं लगाय सकैं तिन को पूजनादिक करना निषेध नाहीं। और जो तुम कहोगे कि निरवद्य सामायिकादि कार्य ही क्यों न करैं। धर्म्म विषे काल गमावना तहां ऐसे कार्य किस लिये करैं। —:(तिस का उत्तर):— जो शरीर कर पाप छोड़े ही निरवद्यपना होय तो ऐसे ही करैं, परन्तु परिणामन विषे पाप छूटे निरवद्यपना होय है, सो बिना आलम्बन सामायिकादिक विषे जिस का परिणाम लगै नाहीं। सो पूजनादिक कर तहां अपना उपयोग लगावै है। तहां नाना अवलंबन कर उपयोग लग जाय है। क्योंकि जो वहां उपयोग को न लगावे तो पाप कार्यन विषे उपयोग भटकै। तब बुरा होय, इस लिये तहां प्रवृत्ति करनी युक्त है। और तुम कहो हो धर्म्म के अर्थ हिंसा किये तो महा पाप होय है। अन्यत्र हिंसा किये थोड़ा पाप होय है, सो प्रथम तो यह सिद्धान्त का वचन नाहीं। और युक्ति से भी मिले नाहीं। क्योंकि ऐसा माने इन्द्र जन्म कल्याणक विषे बहुत जल कर अभिषेक करै है, समवसरण विषे देव पुष्प वृष्टि चमर ढारना। इत्यादि कार्य्य करै हैं सो यह महा पापी हुये। जो तुम कहोगे उनका ऐसा ही व्यवहार है, सो क्रिया का फल तो भये विना रहता नाहीं। जो पाप होता तो इन्द्र तो सम्यग्दृष्टि है। ऐसा कार्य किसलिये करता। जो धर्म्म है तो किस लिये निषेध करो हो। और भला तुम ही को पूछे हैं, तीर्थंकर की वन्दना को राजादिक गये साधुन की वन्दना को दूर भी जाय हैं। सिद्धान्त सुनना आदि कार्य करने को गमनादि करिये हैं। तहां मार्ग विषे हिंसा भई। और साधर्म्मी जिमाइये हैं। साधु का मरण भये तिस का संस्कार करै हैं। साधु होय तब उत्सव करिये है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीखे है। सो यहां भी हिंसा होय है। सो ये कार्य तो

धर्म्म ही के हेतु हैं। अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहां महा पाप उपजै है तो पूर्वं ऐसे कार्य किये तिन का निषेध करो। और अब भी गृहस्थी ऐसे कार्य करै हैं, तिन का त्याग करो। और जो धर्म्म उपजै है तो धर्म्म के अर्थ हिंसा विषे महा पाप वताय किसलिये भ्रमावो हो, इसलिये ऐसा मानना युक्त है, कि जैसे थोड़ा धन ठिगाये वहुत धन का लाभ होय तो वह कार्य करना भला है। तैसे थोड़ी हिंसादि पाप भये वहुत धर्म्म निपजै तो वह कार्य करना योग्य है। जो थोड़े धन का लोभ कर कार्य विगाड़े तो वह मूर्ख ही है। तैसे थोड़ी हिंसा के भय से जो वड़ा धर्म्म छोड़े है वह पापी होय है। और कोई वहुत धन ठिगावै। और थोड़ा धन उजावै, वा न उपजावै तो वह मूर्ख ही है। तैसे वहुत हिंसादिक कर वहुत पाप उपजावै। और भक्ति आदि धर्म्म विषे थोड़ा प्रवर्त्तै वा न प्रवर्त्तै तो वह पापी ही होय है। और जैसे विना ठिगाये ही धन का लाभ होतैं, ठिगावे तो मूर्ख है। तैसे निरवद्य धर्म्म रूप उपयोग होतैं सावद्य धर्म्म विषे उपयोग लगावना युक्त नाहीं ऐसे अपने परिणामन कर अवस्था देख भला होय सो करना, एकान्त पक्ष कार्यकारी नाहीं। और अहिंसा ही केवल धर्म्म का अङ्ग नाहीं है। रागादिकन का घटावना धर्म्म का अङ्ग मुख्य है। इसलिये जैसे परिणामन विषे रागादिक घटैं सो कार्य करना। और गृहस्थियों को अणुव्रतादिक का साधन भये विना ही सामायिक पड़िकवणो पोषह आदिक्रियान का मुख्य आचरण करावें हैं सो सामायिक तो राग द्वेष रहित साम्य भाव भये होय है। पाठ मात्र पढ़े वा उठना बैठना किये ही तो होता नाहीं। और कहोगे, कि अन्य कार्य करता इसलिये भला है सो सत्य है। परन्तु सामायिक पाठ विषे प्रतिज्ञा तो ऐसी करे जो

मन वचन काय कर सावद्य को न करूंगा, न कराउंगा, और मन विषे तो विकल्प हुवा ही करै है। और वचन काय विषे भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहां प्रतिज्ञा भङ्ग होय। सो प्रतिज्ञा भङ्ग करने से तो न करना भला है। क्योंकि प्रतिज्ञा भङ्ग करना महा पाप है। और हम पूछे हैं, कि कोई प्रतिज्ञा भी न करै और भाषा पाठ पढ़े और तिस विषे उपयोग राखै, और कोई प्रतिज्ञा करै, और प्राकृतादिक का पाठ पढ़े तिस के अर्थ का आप को ज्ञान नाहीं बिना अर्थ जानै तहां उपयोग रहै नाहीं। तब उपयोग अन्यत्र भटकै तो प्रतिज्ञा भङ्ग भई। ऐसे इन दोजन में विशेष धर्म्मात्मा कौन है। जो पहिले को कहोगे तो ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिये, दूसरे को कहोगे तो प्रतिज्ञा भङ्ग का पाप न भया। वा परिणामन के अनुसार धर्म्मात्मा पना न ठहरा, पाठादिक करने के अनुसार ठहरा। इसलिये अपना उपयोग जैसे निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा करनी, जिस का अर्थ जानिये सो पाठ पढ़ना पद्धति कर नाम धरावने में नफा नाहीं, और पडिकवणो नाम पूर्व दोष निराकरण करने का है। "सोमिच्छामिदुक्कड़े" इतना कहे ही तो दुःकृत मिथ्या न होयहै। योग्य परिणाम भये दुःकृत मिथ्या होय है। इसलिये पाठ ही कार्यकारी नाहीं। और "पडिकमणा" के पाठ विषे ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिक विषे जो दुःकृत लगा होय सो मिथ्या होय, सो व्रत धारे बिना ही तिन का पडिकमणा करना कैसे सम्भवै, जैसे जिस कै उपवास न होय सो उपवास विषे लागे दोष का निराकरण करे तो असम्भवपना ही होय। इसलिये यह पाठ पढ़ना किस प्रकार बने,

और पौषह विषे भी सामायिकवत् प्रतिज्ञा करना ही पाले है, इसलिये पूर्वोक्त ही दोष है, और पौषह नाम तो पर्व्व का है। सो पर्व्व के दिन भी कितनेक काल पर्यन्त पाप क्रिया करे पीछे पौहषधारी होय। सो जितने काल बने तितने काल साधन करने का दोष नाहीं, परन्तु पौषह का नाम करिये सो युक्त नाहीं। सम्पूर्ण पर्व्व विषे निरवद्य रहे ही पौषह होय है। जो थोड़े भी काल का पौषह नाम होय तो सामायिक को भी पौषह कहो। नहीं तो शास्त्र विषे प्रमाण बतावो, कि जघन्य पौषह का इतना काल है, सो बड़ा नाम धराय लोगन को भ्रमावने का यह प्रयोजन भासे है, और आषडी लेने का पाठ तो और पढ़ें अंगीकार और करें सो पाठ विषे तो मेरे त्याग है ऐसा बचन है। इसलिये जो यह चाहिये त्याग करे सोई पाठ पढ़े और जो पाठ न आवे तो पाठ भाषा ही में पढ़े परन्तु पद्धति के अर्थ यह रीति है, और प्रतिज्ञा ग्रहण करावने की तो मुख्यता है और यथाविधि पालने की शिथिलता है, और भाव निर्म्मल होने का विवेक नाहीं। आर्त्त परिणामन कर वा लोभादिक कर भी उपवासादिक करें हैं तहां धर्म्म मानें हैं सो फल तो परिणामन से होय है। इत्यादि अनेक कल्पित बातें कहे हैं। सो जैन धर्म्म विषे सम्भवें नाहीं। ऐसे यह जैन विषे श्वेताम्बर मत है। सो भी देवादिक का वा तत्वन का वा मोक्षमार्गादिक का अन्यथा निरूपण करें हैं। इसलिये मिथ्यादर्शनादिक को पोषे हैं, सो त्याज्य है। सांचा जिनधर्म्म का स्वरूप आगे कहेंगे, तिस कर मोक्षमार्ग विषे प्रवर्त्तना योग्य है तहां प्रवर्त्तने से तुम्हारा कल्याण होगा॥

इति श्रीमोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्र विषे अन्यमत निरूपण नाम पञ्चमोऽधिकार समाप्त भया।

॥ ओंनमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ अब मिथ्यात्व निरूपण करिये है ॥

॥ दोहा ॥

मिथ्या देवादिक भजे, हो है मिथ्या भाव ।
तज तिन को सांचे भजो, यह हितहेत उपाव ॥

अनादि से ही इसजीव के मिथ्यादर्शनादिक भाव पाइये हैं । तिन की पुष्टता के कारण कुदेव कुगुरु कुधर्म्म सेवन है, तिस का त्याग भये मोक्षमार्ग विषे प्रवृत्ति होय है, इसलिये इन का निरूपण करिये है ॥

॥ अब कुदेवादिक का निरूपण कर तिन का निषेध करिये है ॥

तहां जो हित के कर्त्ता नाहीं, उन को भ्रम से हित का कर्त्ता जान सेवे हैं सो कुदेव हैं । तिन का सेवन तीन प्रकार प्रयोजन लिये करिये है । कहीं तो मोक्ष का प्रयोजन है, कहीं परलोक का प्रयोजन है, कहीं इस लोक का प्रयोजन है, सो इनमें से कोई भी प्रयोजन तो सिद्ध होय नाहीं, परन्तु कुछ विशेष हानि होय है । इसलिये तिन का सेवन मिथ्या भाव है, सो ही दिखाइये है । अन्य मत विषे जिन के सेवने से

मुक्ति होनी कही है, तिन को कोई जीव मोक्ष के अर्थ सेवन करे है, सो मोक्ष होय नाहीं, तिन का वर्णन पूर्वै ही अन्यमत अधिकार विषे कहा है, और अन्य मत विषे कहे जो देव तिनको इस प्रयोजन लिये सेवैं हैं, कि परलोक विषे सुख होय, दुख न होय। सो ऐसी सिद्धि तो पुण्य उपजाये। और पाप का नाशकिये होय है, सो आप पाप उपजावे है, और कहेहै, ईश्वर हमारा भला करेगा यह तो अन्याय ठहरा कि किसीको पापका फल दे किसीको न दे सो ऐसे तो है नाहीं, जैसाअपना परिणाम करेगा तैसाही फल पावेगा किसीका बुरा भलाकरने वाला ईश्वरनाहीं, और तिन देवन का सेवन करते हुए तिन देवन का तो नाम करैं, और अन्य जीवन की हिंसा कर, वा भोजन नृत्यादि कर, अपने विषयन को सर्व प्रकार पोषैं सो पाप परिणामन का फल तो लगे बिना रहे नाहीं, हिंसा विषय कषाय को सर्व जन पाप कहैहैं। और पाप का फल सब खोटा ही मानैं हैं, सो कुदेवन के सेवन विषे तो हिंसा विषयादिक का अधिकार है, इस लिये कुदेवन के सेवन से पर-लोक विषे भला नहीं होयहै। और घने जीव इस पर्याय संबंधी शत्रुओं के नाश करने के लिये वा रोगा-दिक मिटावनें वा धनादिक की प्राप्ति वा पितरादिक दुःख मेटने के वा सुख पावने के इत्यादि अनेक प्रयोजन लिय कुदेवन का सेवन करैंहैं। हनुमानादिक भैरव देवन को पूजैं हैं। गनगोर सांझी आदि बनाय पूजैंहैं। चूहा शीतला, दिहाड़ी, आदि जत, पितर, व्यन्तरादिक को पूजैं हैं। सूर्य, चंद्रमा, शनिश्चर, आदिक ज्योतिषी देवन को पूजैं हैं। पीर पैगम्बर आदिक को पूजैं हैं गज घोटकादिक को पूजैं हैं, सो ऐसे कुदेवन का सेवन तो मिथ्या श्रद्धानादिक से ही होयहै। क्योंकि प्रथम तो जिनका सेवन करैं उनमें कितने

ही तो कल्पना मात्र ही देवहैं, सो तिनका सेवन कार्य्यकारी कैसेहोय। और व्यंतरादिक हैं यह किसी का बुरा भला करने को सामर्थ्य नाहीं, जो सामर्थ्य होयें तो कर्त्ता ठहरैं सो उन का किया कुछ होता दीखता नाहीं। प्रसन्न होय धनादिक को दे सके नाहीं, दुःखी होय बुरा कर सकते नाहीं, यहां कोई कहे दुःख तो देते देखिये हैं, पूजने से दुःख देने से हट जायें हैं। -:(तिस का उत्तर):- इसके पाप का उदय होय तब उन के भी ऐसी ही कौतूहल बुद्धि उपजे है तिस कर चेष्टा करैं हैं चेष्टा करने से यह दुःखी होय है। और जो कौतूहल से वें कुछ कहें और यह उन का कहा न करे। तब वह चेष्टा करने से आप हीं रह जाय हैं और जो इस के पुण्य का उदय होय तो वह कुछ भी कर सकते नाहीं, सो दिखाइये है, कितनेक जीव उन को पूजते नाहीं, वा उन की निन्दा करैं हैं, वा उन को दुःखी करैं हैं, परन्तु वह इन को दुःख दे सकते नाहीं। जैसे बहुते कहते देखिये हैं जो फलाना हम को मानें नाहीं। परन्तु उस से हमारा कुछ वस नाहीं। इस लिये व्यन्तरादिक कुछ कर सकते नाहीं। सर्व्व अपने पुण्य पाप से ही सुख दुःख होय है। उन के मानने पूजने से उलटा रोग लगे है, कुछ कार्य्य सिद्धि नाहीं। और अन्य मत विषे भक्तन की सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिये इत्यादि कहे हैं, -:(तिस का उत्तर):- तहां कितने तो कल्पित वातें कहे हैं, और कितनेक व्यन्तरादिक कर किये कार्य्यन को परमेश्वर के किये कहे हैं, सो परमेश्वर तो त्रिकालज्ञ है, सर्व्व प्रकार समर्थ है। भक्त को दुःख किस लिये होने दे और अब भी देखिये है, कि म्लेच्छादिक धर्म्म

कार्य्यन विषे महा उपद्रव करैं हैं, भक्तन को दुःख देवें हैं। धर्म विध्वंस करैं हैं, मूर्त्ति विघ्न करैं हैं सो परमेश्वर कै ऐसे कार्य्यन का ज्ञान न होय तो सर्वज्ञ पनो रहै नाहीं, जानै पीछे सहाय न करै तो भक्तवत्सलता गई वा सामर्थ्यरहित भया और साक्षीभूत रहै तो आगे भक्तन की सहाय करी कहै हैं, सो झूठ ठहरे, उस के तो एकसी प्रवृत्ति है। और जो कहोगे ऐसी भक्ति नाहीं है, तो म्लेच्छन से तो यह भले हैं, मूर्त्ति आदिक तो उस ही की स्थापना थी, उसका विघ्न न होने देने था, और पापी जीवों का उदय होय है, सो परमेश्वर का किया होय है कि नाहीं, जो परमेश्वर का किया होय है तो निन्दकन को सुखी करै भक्तन को दुःखी करै, भक्तवत्सल पना कैसे रहा, और परमेश्वर का किया न होय है तो परमेश्वर सामर्थ्य रहित भया इस लिये यह कार्य्य परमेश्वर कृत नाहीं, कोई अनुचरी व्यन्तरादिक चमत्कार दिखावे है, ऐसा ही निश्चय करना। और कोई पूछे कि कोई व्यन्तर अपना प्रभुत्व कहै, वा प्रत्यक्ष को बताय दे कोई कुस्थान वासादिक बतावै, अपनी हीनता कहै, पूछिये सो न बतावै, भ्रम रूप वचन कहै वा औरन को अन्यथा परणमावे, औरन को दुःख दे इत्यादि विचित्रता कैसे है।

—:(तिस का समाधान):— व्यन्तर विषे प्रभुत्व की अधिक हीनता तो है परन्तु जो कुस्थान विषे वासादिक बताय हीनता दिखावै है, सो तो कौतूहल से वचन कहे है। व्यंतर बालकवत् कौतूहल किया करे हैं। सो जैसे बालक कौतूहल कर आप को हीन दिखावै चिड़ावै गाली सुने पीछे हसने लग जाय तैसे व्यन्तर चेष्ठा करें हैं जो कुस्थान ही के वासी होयें तो उत्तम स्थानन विषे आवैं हैं तहां कौन

के लाये आवे हैं। आप ही से आवें हैं तो आप शक्ति होतें कुस्थान विषे किसलिये रहैं इसलिये तिन का ठिकाना तो जहां उपजैं हैं तहां इस पृथ्वी के नीचे वा ऊपर है सो मनोग्य है। कौतूहल के लिये चाहे सो कहे हैं और जो इन को पीड़ा होती होय तो रोवैं रोवते हसने कैसे लग जायें। केवल इतना है, कि मन्त्रादिक की अचिंत्य शक्ति है। सो कोई सच्चे मंत्र के निमित्तसे नैमित्तिक सम्बन्ध होय तो उसकै किंचित गमनादिक न होय सकेहै। और उसको किंचित दुःख उपजेहै। वा कोई प्रबल उसको मने करे है, तब वह रह जाय है, वा आप ही रहि जाय है इत्यादि मंत्र ही की शक्ति है। परंतु जलावना आदि न होय है। मंत्र वाला जलाया कहे है। सो वैक्रियक शरीर कै जलावना आदि सम्भवे नाहीं। क्योंकि व्यन्तरन कै अवधि ज्ञान होय है, वह अप्रगट हो जाय सकैहैं, किसी कै अज्ञान थोड़े क्षेत्रकाल जानने का है किसी कै बहुत का है। तहां उस कै इच्छा होय और उस कै बहुत ज्ञान होय तो अप्रत्यक्ष को पूछे तिस का उत्तर देवै तथा आपके थोड़ा ज्ञान होय तो अन्य महन्त ज्ञानी को पूछ आय कर जुबाब दे। और आप को थोड़ा ज्ञान होय वा इच्छा न होय तो पूछे तिसका उत्तर न दे, ऐसा जानना। और थोड़े ज्ञानवाले व्यन्तरादिकन कै उपजने से कितनेक काल तक ही पूर्व जन्म का ज्ञान रह सके है। पीछे तिस का स्मरण मात्र रह जाय है। तहां कोई इच्छा कार आय कुछ चेष्टा करे तो कर और पूर्व जन्म की बातें कहै कोई अन्य वार्ता पूछे वह थोड़ा भी न जानैं तो विना जाने कैसे कहै। और तिस का उत्तर आप न दे सके वा इच्छा न होय तहां मान के वश होय कौतूहलादिक से उत्तर दे

वा झूठ बोले ऐसा जानना। और देवन में ऐसी शक्ति है जो अपने वा अन्य के शरीर को वा पुद्गल स्कंध को जैसी इच्छा होय तैसे परिणमावै इसलिये नाना आकारादिक रूप आप होय वा अन्य नाना चरित्र दिखावे और अन्य जीव के शरीर को रोगादिक युक्त करै यहां इतना है, अपने शरीर को वा पुद्गल स्कंधन को तो जितनी शक्ति होय तितने ही परिणमाय सके इसलिये सर्व कार्य्य करने की शक्ति नाहीं। और जीवन के शरीरादिक को उस के पुण्य पाप के अनुसार परिणमाय सके है। उस के पुण्य का उदय होय तो आप रोगादि रूप न परिणमाय सके है। और पाप का उदय होय तो उस का इष्ट कार्य्य न कर सके है। ऐसे व्यन्तरादिकन की शक्ति जाननी। यहां कोई कहे इतनी जिनकी शक्ति पाइये तिन के मानने पूजने में दोष क्या। —:(तिस का उत्तर):— आप के पाप उदय होय तो सुख न दे सके है, पुण्य उदय होय तो दुःख न दे सके है। और तिन के पूजने में कोई पुण्य बंध होय नाहीं। रागादिक की वृद्धि होतैं पाप ही होय है। इसलिये तिन का मानना पूजना कार्य्यकारी नाहीं बुरा करनेवाला है। और व्यन्तरादिक मनावें हैं पुजावे हैं सो कौतूहल करे हैं कुछ विशेष प्रयोजन नाहीं राखे हैं। जो उन को माने पूजे हैं तिस सेती कौतूहल किया करें हैं। जो न माने न पूजें तिन को कुछ न कहे हैं, जो उन के प्रयोजन होय तो न मानने न पूजने वालों को घना दुःख दें सो तो तिन के न मानने न पूजने का घने देखिये हैं, तिन को कुछ भी कहते दीखते नाहीं। और प्रयोजन तो क्षुधादिक की पीड़ा होय तो होय। सो उन कै व्यक्त नाहीं, जो होय तो उन के अर्थ नैवेद्यादिक दीजिये हैं तिन को ग्रहण क्यों न करें। वा औरन को

जिमानें आदि करने ही को किसलिये कहैं। इसलिये उनके कौतूहल मात्र क्रिया है। सो आप को उन के कौतूहल का ठिकाना भये दुःख होय हीनता होय इसलिये उन को मानना पूजना योग्य नाहीं। और कोई पूछे कि व्यन्तर ऐसे कहे हैं गया आदि विषे पिण्डदान करो तो हमारी गति होगी हम फिर न आवेंगे सो यह क्या वार्त्ता है। —:(तिस का उत्तर):— जीवन के पूर्व भव का संस्कार तो रहे ही है। व्यन्तरन के पूर्व भव का स्मरणादिक से विशेष संस्कार है इस लिये पूर्व भव के विषे ऐसी ही वासना थी कि गयादिक विषे पिण्ड प्रदानादिक किये गति होय है। इसलिये ऐसे कार्य्य करने को कहेहैं। मुसलमान आदिक मर कर व्यन्तर होय हैं सो ऐसे कहते नाहीं वह अपने संस्कार रूप ही वचन कहे हैं इसलिये सर्व व्यन्तरन की गति तैसे ही होती होय तो सर्व ही समान प्रार्थना करें सो है नाहीं ऐसा जानना। ऐसे व्यन्तरादिकन का स्वरूप कहा। और सूर्य्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं तिन को पूजे हैं सो भी भ्रम है। सूर्य्यादिक को परमेश्वर का अंश मान पूजे हैं सो उस के तो एक प्रकाश ही अधिक भासे है, सो प्रकाशवान अन्य रत्नादिक भी हैं अन्य कोई ऐसा लक्षण नाहीं जिस कर उस को परमेश्वर का अंश मानियें। और चन्द्रमादिक को धनादिक की प्राप्ति के अर्थ पूजे हैं सो उस के पूजने से ही धन होता होय तो सर्व दरिद्री इस कार्य्य को करें। इसलिये यह मिथ्या भाव है। और ज्योतिष के विचार से खोटा ग्रहादिक आवे तिन का पूजनादिक करें हैं उस के अर्थ दानादिक दे हैं सो जैसे मृगादिक स्वयमेव गमनादि करें हैं पुरुष के वामे दाहिणे आये सुख दुःख होने का आगामि ज्ञान का कारण होय हैं कुछ सुख दुःख देने को

समर्थ नाहीं। तैसे ग्रहादिक स्वयमेव गमनादिक करे हैं प्राणीन के यथायोग्य संभव को प्राप्त होते हुए सुख दुःख होने का अगामि ज्ञान का कारण होय हैं। कुछ सुख दुःख देने को सामर्थ्य नाहीं हैं। कोई तो उनका पूजनादि करे है तिसकै भी इष्ट न होय है। और कोई न करे है तिसकै भी इष्ट होय है, इसलिये तिनका पूजनादिक करना मिथ्याभाव है। यहां कोई कहे पूजना तो पुण्य है सो भला ही है। —:(तिस का उत्तर):— धर्मके अर्थ देना पूजना तो पुण्य है,यह तो दुःख का भय कर वा सुख का लोभ कर दे है अथवा पूजे है। इसलिये पाप ही है, इत्यादि अनेक प्रकार जोज्योतिषी देवन को पूजे हैं, सो मिथ्यात्व है। और देवी दिहाड़ी आदि हैं, सो कोई तो व्यंतरीहै,कोई ज्योतिषणी है। तिन का अन्यथा स्वरूप मान पूजनादिक करे हैं। कोई कल्पित हैं सो तिन की कल्पना कर पूजनादि करे हैं। ऐसे व्यंतरादिक के पूजने का निषेध किया, यहां कोई कहे। क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी यक्ष,यक्षणी आदि जो जिन मत के अनुसर हैं। तिन को पूजनादिक करने में तो दोष नाहीं। —:(तिसका उत्तर):— जिनमत में संयम धारे पूज्यपनो होय है सो देवन के संयम होता ही नाहीं। और इनको सम्यक्ती मान पूजिये हैं तो भवनत्रिक में सम्यक्त की भी मुख्यता नाहीं। जो सम्यक्त कर ही पूजिये तो सर्वार्थ सिद्ध के देव लौकान्तिक देव तिन को ही क्यों न पूजिये। और कहोगे इनके जिन भक्ति विशेष है सो भक्ति की विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्र कै है, वह सम्यग्दृष्टि है, उस को छोड़ कर इन को किसलिये पूजिये। और जो कहोगे जैसे राजा के प्रतिहारादिक हैं, तैसे तीर्थंकर कै क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरण विषे इन का अधिकार नाहीं यह झूठी मानी

है। और जैसे प्रतिहारादिक का मिलाया राजा से मिले है। तैसे यह तीर्थंकर को मिलावते नाहीं। वहां तो जिसके भक्ति होय सोई तीर्थंकर का दर्शनादिक करे है कुछ किसी के आधीन नाहीं। और देखो अज्ञानता भयुधादिक लिये रौद्र स्वरूप जिनका उनकी गाय गाय कर भक्ति करें हैं। सो जिनमत विषे रौद्ररूप पूज्य भया तो यह भी अन्य मत ही के समान भया। तीव्र मिथ्यात्व भाव कर जिनमत विषे ऐसी विपरीत प्रवृत्ति का मानना होय है ऐसे क्षेत्रपालादिक को भी पूजना योग्य नाहीं। और गज सर्पादिक तिर्यञ्च हैं, सो प्रत्यक्ष ही आप से हीन देखिये हैं। इन का तिरस्कारादिक कर सकिये है। इन की निन्द्य दशा प्रत्यक्ष देखिये है, और वृक्ष, अग्नि, जलादिक स्थावर हैं, सो तिर्यञ्च से भी अत्यन्त हीन देखिये हैं, और शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्व शक्ति कर हीन प्रत्यक्ष भासे हैं। पूज्यपने का उपचार भी सम्भवे नाहीं। इसलिये इन का पूजना महा मिथ्या भाव है। इन को पूजने से प्रत्यक्ष वा अनुमान कर भी कुछ फल की प्राप्ति नाहीं। इसलिये इन को पूजना योग्य नाहीं। इस प्रकार सर्व ही कुदेवन का पूजना मानना निषेध है, देखो मिथ्यात्व की महिमा लोक विषे आप से नीचे को नमस्कार करने विषे आप को निन्द्य मानें हैं। और मोहित होय रोड़ी(कुरड़ी)पर्यन्त को पूजना भी निन्द्य न मानें हैं। और लोक विषे तो जिससे प्रयोजन सिद्ध होता जानें तिस ही की सेवा करें हैं और मोहित होय कुदेवन से मेरा प्रयोजन कैसे सिद्ध होगा। ऐसे बिना विचारे ही कुदेवन का सेवन करे हैं और कुदेवन का सेवन करतें हजारों विघ्न होयें तिस को तो गिने नाहीं।

कोई पुण्य के उदय से इष्ट कार्य हो जाय तो उस को कहैं इस के सेवन से यह कार्य भया है। और कुदेवादिक का सेवन किये विना जो इष्ट कार्य होय तिन को तो गिने नाहीं। और कोई अनिष्ट हो जाय, तो कहैं इसका सेवन न किया था, इसलिये अनिष्ट भया है। इतना नहीं विचारे हैं, कि जो इन ही के आधीन इष्ट अनिष्ट करना होय तो जो पूजें हैं तिन के इष्ट होय। और जो न पूजें तिन के अनिष्ट होय सो ऐसा तो दीखता नाहीं। जैसे किसी के शीतला को बहुत मानतें भी पुत्रादिक मरते देखिये हैं किसी के बिना मानें ही जीवते देखिये हैं। इसलिये शीतला का भी मानना कुछ कार्यकारी नाहीं ऐसे ही सर्व कुदेवन का मानना कुछ कार्यकारी नाहीं। यहां कोई कहे कार्यकारी नाहीं तो मति होहु, तिन के मानने में कुछ विगाड़ भी तो नाहीं है। —:(तिस का उत्तर):— जो विगाड़ न होय तो हम किसलिये निषेध करें। इन के मानने से मिथ्यात्वादि दृढ़ होने कर मोक्षमार्ग दुर्लभ होय है। सो यह बड़ा विगाड़ है। और पाप बन्ध होने से आगामि दुःख पाइये है। यह विगाड़ है, यहां कोई पूछे, कि मिथ्यात्वभाव तो अतत्व श्रद्धानादिक भये होय है, और पाप बन्ध खोटे कार्य किये होय है तिन के मानने से मिथ्यात्वादिक पाप बंध कैसे होय॥ —:(तिस का उत्तर):— प्रथम तो परद्रव्यन को इष्ट अनिष्ट मानना ही मिथ्या है। क्योंकि कोई द्रव्य किसी का मित्र शत्रु नाहीं है। और जो इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाइये है तो तिसका कारण पुण्य पाप है, इसलिये जैसे पुण्य बंध होय पाप बंध न होय सो ही करो। और जो पुण्य के उदय का निश्चय न होय केवल इष्ट अनिष्ट के बाह्य कारण तिनके संयोग वा वियोग

का ही उपाय करै सो तो कुदेव के मानने से इष्ट अनिष्ट बुद्धि दूर होती नाहीं। केवल बुद्धि को ही प्राप्त होय है। और पुण्य बन्ध भी नाहीं होता केवल पाप बन्ध ही होय है, और कुदेव किसी को धनादिक देते वा छीनते भी नाहीं। इसलिये यह वाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किसलिये करिये है। जब अत्यन्त भ्रम बुद्धि होय है जीवादिक तत्वन का श्रद्धान ज्ञान का अंश भी न होय। और राग द्वेष की अति तीव्रता होय। तब जो कारण नाहीं तिन को भी इष्ट अनिष्ट का कारण मानें हैं। तब कुदेवन का मानना होय है। ऐसा तीव्र मिथ्यात्वादिक भाव भये मोक्षमार्ग अति दुर्ल्लभ होय है॥

॥ अब कुगुरु के श्रद्धानादिक को निषेधिये है ॥

जो जीव विषय कषायादिक अधर्म रूप तो परिणमैं। और मानादिक से आप को धर्म्मात्मा मनावें हैं। धर्म्मात्मा योग्य नमस्कारादिक क्रिया करावें है। अथवा किंचिञ्चत् धर्म्म का कोई अङ्ग धार बड़े धर्म्मात्मा कहावें हैं। बड़े धर्म्मात्मा योग्य क्रिया करावें हैं। ऐसे धर्म का आश्रय कर आप को बड़ा मनावें हैं। सो सर्व्व कुगुरु जानने, क्योंकि धर्म पद्धति विषे तो विषय कषायादि छूटे जैसे धर्म्म को धारे तैसा ही अपना पद मानना योग्य है। तहां कोई तो कुल कर आप को गुरु माने है। तिन विषे कई ब्राह्मणादिक तो कहै हैं, हमारा कुल ही ऊंचा है। इसलिये हम सर्व के गुरु हैं। सो उस कुल की उच्चता तो धर्म्म साधन से है। जो उच्च कुल विषे उपज हीन आचरण करें तो उस को उच्च कैसे मानियें।

जो कुल विषे उपजे हों से उच्चता रहे तो मांस भक्षण किये भी उस को उच्च ही मानों सो बनें नाहीं। भारत ग्रन्थ विषे भी अनेक प्रकार के ब्राह्मण कहे हैं। तहां जो ब्राह्मण होय चाण्डाल कार्य करे तिस को चाण्डाल ब्राह्मण कहा है। सो कुल ही से उच्चपना होय तो ऐसी हीन संज्ञा किस लिये दई है। और वैष्णव शास्त्रन विषे ऐसा भी कहे हैं, वेद व्यासादिक मछली आदिक से उपजे हैं तहां कुल का अनुक्रम कैसे रहा। और मूल उत्पत्ति तो ब्रह्मा से कहे हैं, इसलिये सर्व का एक कुल है। भिन्न कुल कैसे रहा। और उच्च कुल की स्त्री कै भी नीच कुल के पुरुष से वा नीच कुल की स्त्री कै उच्चकुल के पुरुष से सङ्गम करते हुए सन्तान होती देखिये है। तहां ऊचनीच कुल का प्रमाण कैसे रहा। जो कदाचित् कहोगे ऐसे ही है, तो ऊच नीच कुल का विभाग किसलिये मानों हो लौकिक कार्यन विषे असत्य की भी प्रवृति संभवे है। धर्म्म कार्यन विषे तो असत्य संभवे नाहीं, इसलिये धर्मपद्धति विषे कुल अपेक्षा महन्तता नाहीं संभवे है। धर्म साधन ही से महन्तपना होय है। ब्राह्मणादिक कुल विषे महन्तता है सो धर्म की ही प्रवृत्ति से है। जो धर्म्म प्रवृत्ति छोड़ हिंसादिक पाप विषे प्रवर्त्तै तो तहां महंतपना कैसे रहे। और कई कहै हैं जो हमारे वड़े भक्त भये हैं, सिद्ध भये हैं। धर्म्मात्मा भये हैं। हम उन की सन्तान विषे हैं। इसलिये हम गुरु हैं। सो उन वड़ेन के वड़े तो ऐसे उत्तम थे नाहीं। तिन की संतान विषे जो उत्तम कार्य किये उत्तम मानों हो तो उत्तम पुरुष की सन्तान विषे उत्तम कार्य न करे तिस को उत्तम किसलिये मानों हो। और शास्त्रन विषे वा लोक विषे यह प्रसिद्ध है, कि पिता शुभ

कार्य कर उच्चपद को पावे। पुत्र अशुभकार्य कर नीच पद को पावे। अथवा पिता अशुभ कार्य कर नीच पद को पावे। पुत्र शुभ कार्य कर उच्च पद को पावे। इसलिये बड़ेन की अपेक्षा महन्तता मानना योग्य नाहीं। ऐसे कुल कर गुरुपना। मिथ्याभाव जानना। और कितनेक तो पद कर गुरुपना मानेहैं। कोई पूर्वे महन्त पुरुष हुवा होय तिस के पाठ जो शिष्य प्रति शिष्य होते आये तहां तिन विषे तिस महन्त पुरुष कैसे गुण न होते भी गुरुपना मानिये है, सो जो ऐसे ही होय तो उपपाठ विषे कोई परस्त्री गमनादि महा पाप करेगा सो भी धर्म्मात्मा ठहरेगा, सुगति को प्राप्त होगा सो सम्भवै नाहीं। और वह महापापी है, तो पाठ का अधिकार कहां गया। इसलिये जो गुरु पद योग्य कार्य करे, सो ही गुरु है। और कोई पहिले तो स्त्री आदि के त्यागी थे पीछे भ्रष्ट होय व्यवहारादि कार्य कर गृहस्थी भये। तिन की सन्तान होने से आप को गुरु पद माने है। सो भ्रष्ट हुए पीछे गुरुपना कैसे रहा। और गृहस्थीवत् यह भी भया। इतना विशेष भया। जो भ्रष्ट होय, गृहस्थ भया, इस को जो मूल गृहस्थी हैं धर्म गुरु कैसे मानें। और कई अन्य तो सर्व पाप कार्य करैं एक स्त्री परणे नाहीं। इस ही अङ्ग कर गुरुपनों माने हैं, सो एक अब्रह्म ही तो पाप नाहीं। हिंसा परिग्रहादिक भी पाप हैं तिनको करते धर्म्मात्मा गुरु कैसे मानिये। और वह धर्म्म बुद्धि से विवाहादिक का त्यागी नहीं भया है। कोई आजीवका वा लज्जा आदि प्रयोजन को लिये विवाह न करेहै। क्योंकि जो धर्म्मबुद्धि होती तो हिंसादिक को किसलिये बधावता, और जिसके धर्म्म बुद्धि नाहीं तिसके शील की भी दृढ़ता रहै नाहीं। और विवाह

करे नाहीं। तब पर स्त्री गमनादि महा पाप को उपजावे। ऐसी क्रिया होतें गुरुपना मानाना महा भ्रम बुद्धि है। और कोई किसी प्रकार का भेष धारणे में गुरुपनो मानेहै, सो भेष धारणे में कौनसा धर्म भया। जिस से धर्म्मात्मा गुरु मानाजावे तहां कितने ही तो टोप ओढैंहैं, कितने ही मुद्रा धारैंहैं, कितने ही चोला पहरे हैं। कितनेही चादर ओढैंहैं। कितने ही लाल वस्त्र राखे हैं। कितने ही श्वेत वस्त्र राखे हैं। कितने ही भगवा राखें हैं। कितने ही टाट पहरें हैं। कितने ही मृगछाला राखे हैं। कितने ही राख लगावें हैं। इत्यादि अनेक स्वांग बनावें हैं। सो जो शीत उष्णादि सहे न जाते थे। लज्जा न छूटी थी तो पगड़ी अंगरक्खा इत्यादि प्रवृत्ति रूप वस्त्रादिक का त्याग किसलिये किया। उन को छोड़ ऐसे स्वांग बनावने में कौनसा धर्म्म का अंग भया। केवल गृहस्थियों को ही ठगने के अर्थ ऐसे भेष जानने। जो गृहस्थी सारखा अपना स्वांग राखे तो गृहस्थी कैसे ठिगावें। क्योंकि इसको उन से अपनी आजीवका वधावने का वा मानादिक करावने का प्रयोजन साधना है, इसलिये ऐसे स्वांग बनावे है। जगत् भोला तिस स्वांग को देख ठिगावे है और धर्म भया माने है, सो यह भ्रम है सोई कहा है :—

जह कुवेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमणए हरिसं।
तह मिच्छवेस मुहिया गयं पिणमुणंति धम्मणिहं ॥ १ ॥

अर्थ–जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिक को ठिगावता हुवा भी हर्ष माने है। तैसे मिथ्यात्त्व भाव कर ठिगाये जो जीव सो नष्ट होते धर्म धन को नाहीं जाने है॥

भावार्थ–मिथ्याभेष करने वाले जीवन की सुश्रूषा आदि करने से जो इस का धर्म्म नष्ट होय तिस का तो विषाद नाहीं, मिथ्या बुद्धि से हर्ष करै है। तहां कोई तो जो मिथ्या शास्त्रन विषे भेष निरूपण किये हैं। तिन को धारै है। और उन शास्त्रन विषे उनके रचन हारे पापी पुरुषन ने जो उनमें अपनी बड़ाई करावने के लिये सुगम क्रिया से उच्च पद निरूपण किया है वा अन्य जीव इस मार्ग विषे वहुत लगैं। इस अभिप्राय से मिथ्या उपदेश दिया। तिस की परम्परा कर विचार रहित जीव इतना तो विचारे नाहीं। जो सुगम क्रिया से उच्च पद होता बतावे हैं सो यहां कछु दगा है। सो भ्रम कर तिन के कहे हुए मार्ग विषे प्रवर्त्तें है, और कोई शास्त्रन विषे तो मार्ग कठिन निरूपण किया सो तो सधै नाहीं। और अपना ऊंचा नाम धराये विना लोक माने नाहीं, इस अभिप्राय से यती, मुनि, आचार्य, उपाध्याय, साधु, भट्टारक, संन्यासी, योगी, तपस्वी, नग्न इत्यादि नाम तो ऊंचा धरावे हैं। और इन के आचरणों को नाहीं साधि सके हैं, इसलिये इच्छानुसार नाना भेष बनावे हैं, और कई अपनी इच्छानुसार ही नवीन नाम धरावैं हैं। और इच्छा अनुसार ही भेष वनावें हैं। ऐसे अनेक भेष धारणे से गुरुपना माने हैं सो यह मिथ्यात्त्वहै, यहां कोई पूछे भेष तो वहुत प्रकार के दीखें, तिन विषे सांचें झूठे भेष की पहिचान कैसे होय –:(तिस का समाधान):– जिन भेषों विषे विषय कषाय

का कुछ लगाव नाहीं सो भेष सांचे हैं। सो सांचे भेष तीन प्रकार के हैं। अन्य सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुड़ विषे कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है :—

एमं जिणस्स रूपं विदियं उकिठ सावयाणं तु।
अवरठियाह तिययं चउत्थपुण लिङ्गदंसणं णच्छि ॥

अर्थ—एक तो जिनदेव का स्वरूप निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि लिङ्ग, दूसरा उत्कृष्ट श्रावकन का स्वरूप दसवीं ग्यारवीं प्रतिमा का धारक श्रावक लिङ्ग, और तीसरा आर्य्यकानि का स्वरूप यह स्त्रीन का लिंग,ऐसे यह तीन लिंग तो श्रद्धानपूर्वक हैं। और चौथा लिंग सम्यग्दर्शन स्वरूप कोई नाहीं है॥

भावार्थ—इन तीन लिंग विना अन्यलिंग को माने है सो श्रद्धानी नाहीं वह मिथ्यादृष्टि है। और इन भेषन विषे कई अपने भेष की प्रतीति करावने के लिये किंचित् धर्म के अंग को भी पाले हैं, जैसे खोटा रुपया चलावने वाला तिस विषे कुछ रुपये का भी अंश राखे है, तैसे वह धर्म का कोई अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावेहै। यहां कोई कहे, कि जो धर्म साधन किया तिसका तो फल होगा—:(तिस का उत्तर):— जैसे उपवास का नाम धराय कण मात्र भी भक्षण करे तो पापी है। और जो एकांत का नाम धराय किञ्चित भोजन करे तो धर्मात्मा है। तैसे उच्च पदवी का नाम धराय तिस में किञ्चित भी अन्यथा प्रवर्त्ते तो महा पापी है, और नीच पदवी का नाम धराय कुछ भी धर्म्म साधन करे तो धर्मात्मा

है। इसलिये धर्म साधन तो जितना बनें तितनाही कीजिये कुछ दोष नाहीं । परन्तु ऊंचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किये महा पापी होय है, सोई षट्पाहुड़ विषे कुन्दकुन्दाचार्य्य कर कहा है॥

जह जायरूव सरिसो तिलतुसमित्तं ण गहद अत्थेसु
जइलेय अयवहुलय तदो पुणयजाइ णिग्गेयं ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ—मुनि पद है सो यथा जात रूप सदृश है जैसा जन्म होय तैसा नग्न है। सो वह मुनि धन वस्त्रादिक तिन विषे तिल का तुस मात्र भी ग्रहण न करें हैं, और जो कदाचित् अल्प वस्त्र भी ग्रहैं तो तिस से निगोद जायें, सो यहां देखो गृहस्थपने में बहुत परिग्रह राख कुछ प्रमाण करे तो स्वर्ग मोक्ष का अधिकारी होय है। और मुनि पद में किंचित् परिग्रह अंगीकार किये भी निगोद जाने वाला होय है, इसलिये ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृति युक्त नाहीं, देखो हुण्डावसर्प्पिणी काल विषे यह कलिकाल प्रवर्त्ते है तिसके दोष कर जिनमत विषे भी मुनि का स्वरूप तो ऐसा जैसा बाह्यआभ्यंतर परिग्रह का लगावना ही केवल अपने आत्मा को आप अनुभव करने से शुभाशुभ भावन से उदासीन रहै और अब विषय कषायी जगत् के जीव मुनि पद धारैं हैं तहां सावद्य का तो त्यागी होय पंच महाव्रतादिक अंगीकार करना कहैं और श्वेत रक्तादि वस्त्रन को ग्रहैं वा भोजनादि विषे लोलपी होयें वा अपनी २ पद्धति बधावनें के उद्यमी होयें वा कई धनादिक भी राखें हैं वा हिंसादिक नाना आरम्भ करें हैं

सो जब किंचत् परिग्रह ग्रहण करनेका फल निगोद कहाहै। तब ऐसे पापनका फल तो अनन्त संसार होयही होय, और देखो लोकन की अज्ञानता कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करे तिसको तो पापी कहैं और ऐसी बड़ी प्रतिज्ञा भंग करते देख तिन को गुरु मानें हैं और मुनिवत् तिनका सन्मानादिक करे हैं सो शास्त्र विषे तो कृत कारित अनुमोदना का फल एकसा ही कहा है। इस लिये इनका ऐसा ही फल लगेगा मुनि पद लेनेका तो क्रम यह है, कि पहिले तत्वज्ञान होय पीछे उदासीन परिणाम होयें परीषहादि सहने की शक्ति होय तब स्वयमेव ही मुनि भया चाहे। तब श्री गुरु मुनि धर्म्म अंगीकार करावैं यह कैसी विपरीत है, कि तत्वज्ञान रहित विषय कषायासक्त जीवन को माया कर वा लोभ दिखाय कर मुनि पद देना पीछे अन्यथा प्रवृत्ति करावनी सो यह तो बड़ा अन्याय है। इस प्रकार कुगुरु वा तिनके सेवकन का निषेध किया। अब इस कथन के दृढ़ करने को शास्त्रन की साक्षी दीजिये है। तहां उपदेश "सिद्धान्त रतनमाला" विषे ऐसा कहा है॥

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणि ऊणलिंतिदाणाई।
दोणवि अमुणियसारा दूसमि समयम्मिवदन्ति॥

अर्थ—काल दोष से गुरु हैं सो भाट भये भाटवत् शब्द कर दातार की स्तुति करके दानादिक ग्रहे हैं। सो इस दुःखमाकाल विषे दोनों ही दातार वा पात्र संसार विषे डूबे हैं। और तहां कहा है

सप्पे दिट्ठे णासइ लाओ णहि कोवि किम्बि अक्केई।
जोचइ कुगुरुसप्पं हामूढा भणंति तं दुट्ठं ॥ ॥

अर्थ---सर्प्प को देख कोई भागे तिस को तो लोक कुछ भी कहैं नाहीं, हाय २ जो कुगुरु सर्प्प को छोड़े तिस को मूढ़ दुष्ट कहैं और बुरा शब्द बोलें :-

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंता देइ मरणाइं।
तो वरं सप्पो गहियं मा कुगुरुसेवनं भद्द।

अर्थ---अहो सर्प्प कर तो एक बार ही मरण होय है और कुगुरु कर अनन्त वार मरण होय है अनन्त वार जन्म मरण करावे है इसलिये हे भद्र! सांप का ग्रहण तो भला है परन्तु कुगुरु का सेवन भला नाहीं। और भी गाथा इस श्रद्धान दृढ़ करने के लिये तहां बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थ से जान लेनी। और संघपट्ट विषे ऐसा कहा है :-

क्षुत्क्षामः किल कोपि रङ्कशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा कञ्चन पक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाऽऽचार्यकम्।

चित्रं चैत्यगृहे ग्रहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्वं वराकीयति॥

अर्थ---देखो क्षुधा कर कृश कोई रंक का बालक कहीं चैत्यालयादिक विषे दीक्षाधर कोई पक्ष कर पाप रहित न होता संता भी आचार्य्य पद को प्राप्त भया और वह चैत्यालय विषे आप गृहस्थवत् प्रवर्तें है निजगछ विषे कुटुम्बवत् प्रवर्तें है आप को इन्द्रवत् महान् माने है ज्ञानीन को बालकवत् अज्ञानी माने है सर्व गृहस्थियों को रंकवत् माने है सो यह बड़ा आश्चर्य्य भया है और

यैर् (येभ्यो) जातो न च वर्द्धितो न च न च क्रीतो।

इत्यादि काव्य हैं तिनका अर्थ ऐसा है कि जिन कर न तो जन्म भया, और बधायाभी नाहीं और मोल भी लिया नाहीं देनदार भया नाहीं इत्यादि कोई प्रकार तालुक नाहीं और गृहस्थियों को वृषभवत् जाने है, उन से जोरावरीदानादिक लहै सो हाय २ यह जगत् राजा कर रहित है कोई न्याय पूछने वाला नाहीं ऐसे ही इस श्रद्धान के पोषक तहां काव्य हैं सो तिस ग्रन्थ से जानना, यहां कोई कहे कि यह तो श्वेताम्बर विरचित उपदेश है। तिन की साक्षी किस लिये दई —:(तिस का समाधान):— जैसे नीचा पुरुष जिसका निषेध करै तिसका उत्तमपुरुष के तो सहज ही निषेध भया तैसे जिन के वस्त्रादिक उपकर्ण कहे हैं वह आपही उसका

निषेध करें तो दिगम्बर धर्म्म विषे तो ऐसी विपरीतता का सहज ही निषेध भया। और दिगम्बर ग्रन्थन विषे भी इस अज्ञान के पोषक वचन हैं। तहां श्री कुन्दकुन्दाचार्य्य कृत षट् पाहुड़ विषे ऐसा कहा है।

दंसणमूलो धम्मो उवपट्ठं जिण वरेहि सिस्साणं।
तंसो ऊणं सकक्कण दंसणहीणो ण वंदिव्वो।

अर्थ—श्रीजिनदेव ने सम्यग्दर्शन है मूल जिसका ऐसा धर्म्म उपदेशा है तिसको सुनकर हे कर्णा सहित यह मानों कि जो सम्यक्त कर रहित जीव हैं सो वंदने योग्य नाहीं और जो आप कुगुरु हैं और कुगुरुओं का आप अज्ञान करे हैं सो सम्यक्ती कैसे होवें और बिना सम्यक्त के धर्म्म न होय, और धर्म्म बिना वंदने योग्य कैसे होवें॥

जं दंसणे सुभट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा ए।
एदे भट्ठविभट्ठा सेसं पि जणं विणासंति॥

अर्थ—जो दर्शन विषे भ्रष्ट हैं, ज्ञान विषे भ्रष्ट हैं, चारित्र विषे भ्रष्ट हैं, सो जीव भ्रष्टों से भी भ्रष्ट हैं। और जो जीव उन का उपदेश माने हैं, तिन का नाश करे हैं बुरा करे हैं।

जे दंसणे सुभट्ठा पाए पंडिति दंसणं धराणं।

तेहूति लल्ला मूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥

अर्थ-जो आप तो सम्यक्त से भ्रष्ट हैं, और सम्यक्त धारकन को अपने पैरों पड़ाया चाहे हैं सो लूले गूंगे होय हैं। वा स्थावर होय हैं, और तिन के बोध की प्राप्ति महा दुर्लभ होय है ॥

तेवि पडंति च तेसिं जाणंति लज्जगारव भयाणं।
तेसिं पिणत्थि बोही पावं अणुमोय माणाणं ॥ ॥ ॥

अर्थ—जे लज्जा कर वा भय कर भी तिन के पगा पड़ें हैं तिन के भी बोध जो सम्यक्त सो नाहीं है, क्योंकि वह जीव पापी की अनुमोदना करते हैं सो पापीन का सन्मानादिक किया तिस पाप की अनुमोदना का फल लगेगा।

जस्स परिगाह गहणं अप्पं वहुपच हवइ विलिंगस्स।
सोग रहि उजिण वयणे परिगह रहित्तु णिरायारो॥

अर्थ—जिस लिंग के थोड़ा वा बहुत परिग्रह का अंगीकार होय सो जिन वचन विषे निन्दा योग्य है। परिग्रह रहित ही अनागार होय हैं।

धम्मोमिण पावासौ दोसावो सोच उच्छ फुल्ल सम्मो ।

णिफ्फलणिग्गुणयारो णड सवणोणा माळ्वेण ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ—जो धर्म विषे निरुद्यमी है दोषन का धारक है ईंष के फल समान निष्फल है, गुण के आचरण कर रहित है सो नग्न रूप नट मनुष्य है अथवा भांडवत् भेषधारी है। सो नग्न भये ही भांड का दृष्टान्त संभवै है और परिग्रह राखे तो यह दृष्टान्त भी बने नाहीं :—

जो पाव मोहिय मई लिंग धतूण जिणवरं दाणं ।

पावं कुणंति पावाते वत्ता मोक्खमग्गस्स ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ—पाप कर मोहित भई है बुद्धि जिस की ऐसा जो जीव जिनदेव का लिंग धार पाप करे है सो पाप मूर्त्ति मोक्षमार्ग विषे भ्रष्ट जाननी। और ऐसा कहा है :—

जे पंच चेल्लसत्ताग्रन्थगाहीया जायणा सीला।

आधा कम्मेपिरया ते चात्ता मोक्ख मगासि ॥ ॥ ॥

अर्थ—जो पंच प्रकार वस्त्र विषे आसक्त हैं। परिग्रह को ग्रहण हारे हैं याचना सहित हैं पाप कर्म्म आदि दोषन विषे रत हैं सो मोक्षमार्ग विषे भ्रष्ट जानने। और भी गाथा शास्त्र विषे इस श्रद्धान के दृढ़ करने के लिये कही हैं सो तहां से जाननी। और कुन्द कुन्दादि आचार्य्य कृत लिंग पाहुड़ है तिस विषे मुनि लिंग धार जो हिंसा आरम्भ यंत्र मंत्रादिक करें हैं। तिन का निषेध बहुत किया है। और गुण भद्राचार्य कृत आत्मानुशासन विषे ऐसा कहा है :—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्य्यां यथा मृगाः।
वनाद्विसन्त्युपग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः॥

अर्थ—जैसे रात्री विषे मृग इधर उधर से भयवान् होय वन से नगर के समीप आय वसे हैं, तैसे इस कलिकाल विषे तपस्वी इधर उधर से भयवान् होय वन से नगर के समीप आय वसे हैं, सो यह महा खेद कारी कार्य्य भया है। यहां नगर समीप ही रहना निषेधा है तो नगर विषे रहना तो निषेध भया ही :—

वरं गार्हस्थमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः।
स्वस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः॥

अर्थ—अगामि होनहार है अनंत संसार जिस से ऐसे तप से तो गृहस्थपनाही भला है। कैसा है वह

तप प्रभात ही स्त्रियों के कटाक्ष रूपी लुटेरों से लूटी है वैराग्य संपदा जिस की ऐसा है । और योगेंद्र देव क्रत "परमात्मा प्रकाश" विषे ऐसा कहा है :—

चिल्लाचिल्लीपुत्थय हि तूसइ मूढणि भंतु ।
एयहि लज्जइ णा (जा) णिउ बंधह हेतु मणंतु ॥

अर्थ—जो चेला चेली की पुस्तकन विषे संतुष्ट हैं सो मूढ़ हैं और जो भ्रांति रहित हैं और ज्ञान-वान हैं वह इन को बंध का कारण जानते संते इन से लज्जायमान होय हैं :—

केणविअप्पउ वंचियउ सिरलुंचिवि छारेण ।
सयलुवि संगण परहरिय जिणवरलिंगधरेण ॥

अर्थ—जो जीव किसी विषय सुख की अभिलाषा कर ठगे गये हैं उन्हों ने सिर का लोंच तो किया परन्तु समस्त परिग्रह छोड़ा नाहीं :—

जिजिणलिंग धरे विमुणि इठपरिगाहलिंति ।
छदि करि विणु ते विजय सो पुणि छदि गिलिंति ॥

अर्थ—हे जीव ! जो मुनि लिंग धार इष्ट परिग्रह को ग्रहे हैं सो वमन कर तिस तिस वमन को ही

फिर भक्षण करे है, सो यह कार्य्य निन्दनीक है। इत्यादि तहां कहैं हैं ऐसे शास्त्रन विषे कुगुरु का वा तिन के आचरणन का वा तिनकी सुश्रूषा का निषेध किया है सो जानना। और जहां मुनि के धात्री दूत आदि छियालीस दोष आहारादिक विषे कहे हैं तहां गृहस्थियों के बालकों को प्रसन्न करना समाचार कहना मंत्र औषधि ज्योतिषादिक कार्य्य बतावना इत्यादि और किया कराया अनुमोदा भोजन लेना इत्यादि क्रिया का निषेध कियाहै। सो अब काल दोषसे इनही दोषनको लगाय आहारादिक ग्रहैहैं। और पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिका निषेध किया है। सो अब यह तिनही के लक्षणोंको धरे हैं इतना विशेष है, कि वह तो नग्न रहै हैं यह नाना परिग्रह राखे हैं, और तहां मुनिन कै तो भ्रमरी आदि आहार लेने की विधि कही है और यह आसक्तहोय दातारके प्राण पीड़ितकर आहारादिक लेवें हैं जो गृहस्थ धर्म्म विषे भी उचित नाहीं, वा अन्याय लोक निन्द्य पाप रूप कार्य्य को करते हुये प्रत्यक्ष देखिये हैं और जिनबिंब शास्त्रादिक सर्व्वोत्कृष्ट पूज्य हैं तिनका तो अविनयकरे हैं और आप तिनसे भी महंतता राखे हैं और ऊंचा बैठनाआदि प्रवृत्तिको धारेहैं इत्यादि अनेक विपरीतता प्रत्यक्षभासेहै और आपको मुनिमानें मूल गुणादिक के धारक कहावें हैं। ऐसे अपनी महिमा करावें हैं। और गृहस्थी भोले उन कर प्रशंसादिक कर ठगे हुए धर्म का विचार करें नाहीं। उनकी भक्ति विषे तत्पर होय हैं, बड़े बड़े पाप को बड़ा धर्म मानना इस मिथ्यात्व का फल कैसे अनन्त संसार न होय। एक जिन वचन से अन्यथा मानें महा पापी होना शास्त्र विषे कहा है। यहां तो जिन वचन को अन्यथा माना कुछ बात ही राखी नाहीं। इस समान और पाप

कौन है, अब यहां कुयुक्ति कर जो तिन कुगुरुन का स्थापन करे हैं। तिनका निराकर्ण कीजिये है, तहां वह कहे हैं गुरु बिना तो निगुरा होय है। और वैसे गुरु अब दीखे नाहीं, इसलिये इन ही को गुरु मानना —: (तिसका उत्तर) :— निगुरा तो उसका नाम है, जो गुरु माने ही नाहीं। और जो गुरु तो मानें और इस क्षेत्र विषे गुरु का लक्षण न देख किसी को गुरु न मानें तो इस श्रद्धान से तो निगुरा होता नाहीं। जैसे नास्तिक तो उसका नाम है। जो परमेश्वर को माने ही नाहीं, और जो परमेश्वर को तो माने, और इस क्षेत्र विषे परमेश्वर का लक्षण न देख किसी को परमेश्वर न मानें तो नास्तिक होता नाहीं। तैसे यह जानना, और वह कहे है कि जिन शास्त्रन विषे अवार केवली का तो अभाव कहा है और मुनि का तो अभाव कहा नाहीं। —: (तिसका उत्तर) :— ऐसा तो कहा नाहीं, कि इन देशन विषे सद्भाव रहेगा, भरत क्षेत्र विषे कहा है। सो भरत क्षेत्र तो बहुत बड़ा है, कहीं सद्भाव होगा, इसलिये अभाव न कहा है जहां तुम रहो हो तिस ही क्षेत्र विषे सद्भाव मानोंगे तो जहां ऐसे भी गुरु न पावोगे तो तहां किस को गुरु मानोंगे। जैसे हंसनका सद्भाव अवार कहा है। और हंस दीखे नाहीं तो काग को हंस कैसे मानिये सो मुनि दीखें नाहीं, तो औरन को मुनि माना जाय नाहीं। और वह कहे हैं कि एक अक्षर के दाता को गुरु माने हैं। जो शास्त्र सिखावे सुनावे तिनको गुरु कैसे न मानिये। —: (तिसका उत्तर) :— गुरु नाम बड़े का है। सो जिस प्रकार की महंतता जिसकै संभवे, तिस प्रकार तिस को गुरु संज्ञा संभवै है। जैसे कुल अपेक्षा माता पिता को गुरु संज्ञा है। तैसे ही विद्या पढ़ावने वाले को विद्या अपेक्षा

गुरु संज्ञा है। यहां तो धर्म का अधिकार है। इसलिये जिस के धर्म्म अपेक्षा महन्तता सम्भवै सोई गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्र का है॥

"चारित्तं खलुधम्मो"

अर्थ--जो चारित्र है सोई निश्चय करके धर्म्म है॥

ऐसा शास्त्र विषे कहा है। इसलिये चारित्र के धारक ही को गुरु संज्ञा है। और जैसे भूतादिक का नाम भी देव है, तथापि जहां देव का श्रद्धान विषे अरहन्त देव ही का ग्रहण है। तैसे औरन का भी नाम गुरु है। तथापि यहां गुरु श्रद्धान विषे निर्ग्रन्थ गुरु ही का ग्रहण है, सो जिन धर्म विषे अरहन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु ऐसा प्रसिद्ध वचन है। —:(यहां प्रश्न):— जो निर्ग्रन्थ बिना और गुरु न मानिये सो कारण क्या। —:(तिस का उत्तर):— निर्ग्रन्थ बिना अन्य जीव सर्व प्रकार कर महन्तता नाहीं धरे हैं जैसे लोभी शास्त्र का व्याख्यान करे है। तहां वह उन को शास्त्र सुनावने से महन्त भया। वह उस को धन वस्त्रादिक देने से महन्त भया। यद्यपि वाह्य शास्त्र सुनावने वाला महन्त है। तथापि जो अन्तरङ्ग लोभी होय सो दातार को उच्च मानें और दातार लोभी को नीचा मानें इस लिये उस के सर्वथा महन्तता न भई। यहां कोई कहे निर्ग्रन्थ भी तो आहार ले हैं। —:(तिस का उत्तर):— लोभी होय दातार की सुश्रूषा कर दीनता से

आहार न ले हैं। इसलिये महन्तता घटे नाहीं जो लोभी होय सो ही हीनता पावे है। ऐसे ही अन्य जीव जानने। इसलिये निर्ग्रन्थ ही सर्व्व प्रकार महन्तता युक्त हैं, और निर्ग्रन्थ बिना अन्य प्रकार कर गुणवान नाहीं। इस लिये गुणन की अपेक्षा महन्तता और दोषन की अपेक्षा हीनता भासे है, तब निःशङ्क स्तुति करी जाय नाहीं। और निर्ग्रन्थ बिना अन्य जीव जैसा धर्म साधन करैं हैं तैसा वा तिस से अधिक गृहस्थी भी धर्म साधन कर सकै हैं। तहां गुरु संज्ञा किस को होय। इसलिये वाह्य आभ्यन्तर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना। यहां कोई कहै, ऐसे गुरु तो अब यहां नाहीं। इस लिये जैसे अरहन्त की स्थापना प्रतिमा है। तैसे गुरुन की स्थापना यह भेष धारी हैं। —:(तिस का समाधान):— जैसे राजा की स्थापना चित्रमादिक करिये तो राजा का प्रतिपक्षी नाहीं। और कोई सामान्य मनुष्य आप को राजा मनावे तो वह राजा का प्रतिपक्षी होय है, तैसे अरहन्तादिक की पाषाणादि विषे स्थापना बनावैं तो तिन का प्रतिपक्षी नाहीं। और कितने ही सामान्य मनुष्य आप को मुनि मनावें तो वह मुनिन के प्रतिपक्षी भये ऐसे ही स्थापना होती होय तो अरहन्त भी आप को मनावें। और उन की स्थापना होय तो वाह्य तो वैसी ही भई चाहिये। वह निर्ग्रन्थ यह बहुत परिग्रह के धारी यह कैसे बनें। और कई कहे हैं, कि अब श्रावक भी तो जैसे सम्भवै तैसे नाहीं, इसलिये जैसे श्रावक तैसे मुनि।
—:(तिस का समाधान):— श्रावक संज्ञा तो शास्त्र विषे सर्व गृहस्थी जैनयों को है। श्रेणक भी

असंयमी था तिस को उत्तर पुराण विषे श्रावक उत्तम कहा है। और बारह सभा विषे श्रावक कहे तहां सर्व व्रत धारी न थे। जो सर्व व्रत धारी होते तो असंयमी मनुष्यों की जुदी संख्या कहते, सो कहीं नाहीं। इस लिये गृहस्थी जैनी श्रावक नाम पावें हैं। और मुनि संज्ञा तो निर्ग्रन्थ विना कहीं भी कही नाहीं। और श्रावक के तो आठ मूल गुण कहे हैं सो मद्य मांस मधु पञ्च उदंबरादिक फलन का भक्षण श्रावकन के नाहीं। इसलिये जिस तिस प्रकार श्रावकपना तो सम्भवै भी है। और मुनि के अट्ठाईस मूल गुण कहे हैं, सो भेषियन के दीखते नाहीं। इसलिये इन के मुनिपना किसी प्रकार भी सम्भवै नाहीं। और गृहस्थ अवस्था विषे पूर्वें जम्बू कुमारादिक बहुत हिंसादिक के कार्य किये सुनिये हैं। परन्तु मुनि होय तो किसी ने हिंसादिक के कार्य किये नाहीं। परिग्रह राखे नाहीं। इस लिये ऐसी युक्ति कार्य कारी नाहीं। और देखो आदिनाथ जी के साथ चार हजार राजा दीक्षा लई। और भ्रष्ट भये तब देव उन को कहते भये जिन लिङ्गी होय अन्यथा प्रवर्त्तोगे तो हम दण्ड देंगे। जिन लिंग छोड़ तुम्हारी इच्छा होय सो तुम करो। इसलिये जिन लिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्त्तें सो तो दण्ड योग्य है। बन्दनादि योग्य कैसे होय। अब बहुत क्या कहिये जो जिन लिङ्ग विषे कुभेष धारे हैं, सो महा पाप उपजावें हैं। अन्य जीव उन की सुश्रूषा आदि करे हैं, सो भी पापी होय हैं। "पद्मपुराण विषे यह कहा है" श्रेष्टी धर्म्मात्मा ने चारण मुनि को भ्रम से भ्रष्ट जान दान न दिया, सो प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिन को दानादिक देना कैसे सम्भवै। यहां कोई कहै

हमारे अन्तरङ्ग विषे तो श्रद्धान सत्य है। परन्तु वाह्य लज्जादिक कर शिष्टाचार करे हैं, सो फल तो अन्तरङ्ग का होगा। —:(तिस का उत्तर):— षट्पाहुड़ विषे लज्जादिक कर बन्दनादिक का निषेध दिखाया है सो पूर्वं ही वर्णन किया है। और कोई जोरावरी मस्तक नवाय हाथ जुड़ावे तो यह सम्भवै कि हमारा अन्तरङ्ग न था, आप ही मानादिक से नमस्कारादि करै, तहां अन्तरङ्ग कैसे न कहिये। जैसे कोई अन्तरङ्ग विषे मांस को बुरा जाने। और राजादिक का भला मनावनें को मांस भक्षण करे तो उस को व्रती कैसे मानियें। तैसे अन्तरङ्ग विषे तो कुगुरु सेवन को बुरा जाने है, और तिन का वा लोकन का भला मनावने को सेवन करे तो श्रद्धानी कैसे कहिये। क्योंकि वाह्य त्याग किये ही अन्तरङ्ग त्याग सम्भवे है, इसलिये जो श्रद्धानी जीव हैं तिन को किसी प्रकार भी कुगुरुन की सुश्रूषादि करनी योग्य नाहीं। इस प्रकार कुगुरु सेवनादिक का निषेध किया। यहां कोई कहै, कि तत्व श्रद्धानी कै कुगुरु सेवन से मिथ्यात्व कैसे भया। —:(तिस का उत्तर):— जैसे शील वती स्त्री अन्य पुरुष सहित भर्त्तारवत् रमण क्रिया सर्वथा करै नाहीं, तैसे श्रद्धानी पुरुष कुगुरु सहित सुगुरुवत् नमस्कारादि क्रिया सर्वथा करै नाहीं। किसलिये यह तो जीवादि तत्वन का श्रद्धानी भया है। तहां रागादिक को निषिद्ध श्रद्दै है। वीतराग भाव को श्रेष्ट माने है। इस लिये जिन कै वीतरागता पाइये है, ऐसे ही गुरु को उत्तम जान नमस्कारादि करे है। जिन के रागादिक पाइये तिन को निषिद्ध जान नमस्कारादि कदाचित् करे नाहीं। कोई कहै जैसे राजादिक को करैं तैसे

इन को भी करैं। —:(तिस का उत्तर):— राजादिक धर्म पद्धति विषे नाहीं। और गुरु का सेवन धर्म्म पद्धति विषे है। सो राजादिक का सेवन तो लोभादिक से होय है। तहां चारित्र मोह का उदय सम्भवै है। और गुरुन की जगह कुगुरुन को सेवने से तत्व श्रद्धान के कारण जो गुरु तिन से प्रतिकूल भया। सो लज्जादिक से जिसने कारण विषे विपरीतता उपजाई तिस के कार्य भूत तत्व श्रद्धान विषे दृढ़ता कैसे सम्भवे। इसलिये तहां दर्शन मोह का उदय सम्भवे है। ऐसे कुगुरुन का निरूपण किया॥

॥ अब कुधर्म्म का निरूपण कीजिये है॥

जहां हिंसादिक पाप उपजें, वा विषय कषायन की वृद्धि होय तहां धर्म मानिये सो कुधर्म्म जानना। तहां यज्ञादिक क्रियान विषे महा हिंसादिक उपजावें बड़े जीवन का घात करें और अपने इन्द्रियन के विषय पोषें तिन जीवन विषे दुष्ट बुद्धि कर रौद्रध्यानी होय तीव्र लोभ से औरन का बुरा कर अपना कोई प्रयोजन साधा चाहें ऐसा कार्य्य कर तहां धर्म्म मानें हैं सो कुधर्म है, और तीर्थन विषे वा अन्यत्र स्थानादिक विषे जो कार्य्य करें तहां बड़े छोटे घने जीवन की हिंसा होय शरीर को चैन उपजे उस से विषय पोषण होय और कामादिक बधें और कौतूहलादिक कर तहां कषाय भाव बधावें और तहां धर्म मानें सो यह कुधर्म है। और संक्रांति ग्रहण व्यतिपातादिक विषे दान दें,

वा खोटे ग्रहादिक के अर्थ दान दें और पात्र जान लोभी पुरुषन को दान दें। और दान देने विषे सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिल आदिक वस्तुओं को दें। सो देखो संक्रान्ति आदि पर्व धर्म रूप नाहीं, जोतिषी सञ्चारादिक कर संक्रान्ति आदि होय है। और दुष्ट ग्रहादिक के अर्थ दिया सो तहां भय लोभादिक की अधिकता भई। इसलिये तहां दान देने में धर्म्म नाहीं। और लोभी पुरुष देने योग्य पात्र नाहीं। इसलिये लोभी नाना असत्य युक्ति कर ठगे हैं। कुछ भला करते नाहीं। भला तो तब होय जब इस के दान की सहायता से वह धर्म्म साधे सो वह तो उलटा पाप रूप प्रवर्त्तै है। पाप के सहाय से भला कैसे होय। सो ही "रयणसार शास्त्र" विषे कहा है:—

गाथा॥ सुपुरिसाणं दाणं कप्पतरुणां फलाणसोहं वा।
लोहीणं दाणंजई विमाणं सोहासरवज जाणेह॥

अर्थ—सत् पुरुषन को दान देना कल्प वृक्षन के फलन की शोभा समान शोभै है। और सुख दायक भी है। और लोभी पुरुषन को दान देना जोमडा का विमान जो चक्रडोल तिस की शोभा समान जानो। शोभा तो होय परन्तु धनी को परम दुःखदायक होय है, इसलिये लोभी पुरुषन को दान देने में धर्म नाहीं। और द्रव्य तो ऐसे दीजिये जिस कर उस के धर्म वधे। सुवर्ण हस्ती

आदिक दीजिये तिन कर हिंसादिक उपजै। वा मान लोभादिक बधे तिस कर महा पाप होय ऐसी वस्तुओं के देने वाले को पुण्य कैसे होय। और विषयासक्त जीव रति दानादिक विषे पुण्य ठहरावे हैं। सो प्रत्यक्ष कुशीलादिक पाप जहां होय तहां पुण्य कैसे होय, और युक्ति मिलावने को कहैं, कि वह स्त्री सन्तोष पावे है तो स्त्री तो विषय सेवन किये सुख पावे ही पावे, शील का उपदेश किसलिये दिया रति समय विषे भी उस के मनोरथ अनुसार न प्रवर्त्तैं तो दुःख पावै। सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषय पोषने का उपदेश दे हैं। ऐसे ही दया दान वा पात्र दान बिना अन्य दान दे धर्म्म मानना, सो सर्व कुधर्म है। और ब्रतादिक करके तहां हिंसादिक वा विषयादिक बधावैहैं सो ब्रतादिक तो तिन के घटावने के अर्थ कीजिये हैं। और जहां अन्न का तो त्याग करैं और कंद मूलादिक का भक्षण करैं तहां हिंसा विशेष भई। और दिवस विषे तो भोजन करैं नांहीं। और रात्रि विषे करैं सो प्रत्यक्ष दिवस भोजन से रात्रि भोजन विषे हिंसा विशेष भासैहै, प्रमाद विशेष होय है। और ब्रतादिक कर नाना शृंगार बनावें हैं, कौतुहल करैं हैं। जूवा आदि रूप प्रवर्तैं हैं इत्यादि पाप क्रिया करैंहैं। और ब्रतादिक का फल लौकिक इष्ट की प्राप्ति अनिष्ट के नाश को चाहें। तहां कषायन की तीब्रता विशेष भई। ऐसे ब्रतादिक कर धर्म माने हैं सो कुधर्म है। और भक्ति आदि कार्यन विषे हिंसादिक का पाप बधावैं वा नृत्यादिक वा इष्ट वा अन्य सामग्रीन कर विषयन को पोषैं। कौतुहल प्रमादादि रूप प्रवर्तैं। तहां पाप तो बहुत उपजावें और धर्म का कुछ साधन नाहीं। तहां जो धर्म्म मानें सो सर्व कुधर्म्म हैं। और कोई शरीर

को तो क्लेश उपजावै है, और तहां हिंसादिक उपजावै है, वा कषायादिकरूप प्रवर्तै है। जैसे पंचाग्नि तापें सो अग्नि कर बड़े छोटे जीव जलें उस से हिंसादिक बधै। इस में क्या धर्म्म भया और जहं पांव नीचे माथा अधोमुख झूलें और जहं बाहु राखें इत्यादिक साधन कर तहां क्लेश ही होय, कुछ यह धर्म्म के अङ्ग नाहीं। और पवन साधन करें तहां नेती धोती इत्यादि कार्यन विषे जलादिक कर हिंसादिक उपजावैं। उस से कोई चमत्कार उपजे तिस से मानादिक वधैं इसलिये तहां कुछ भी धर्म्म साधन नाहीं, इत्यादि क्लेश तो करें परन्तु विषय कषाय घटावने का कोई भी साधन करें नाहीं। अन्तरङ्ग विषे तो क्रोध, मान, माया, लोभादिक का अभिप्राय है सो वृथा ही क्लेश कर धर्म्म माने हैं सो कुधर्म है। और कितने ही इस लोक विषे जिनसे दुःख न सहाजाय वा परलोक विषे इष्ट की इच्छा वा अपनी वड़ाई पावने के अर्थ क्रोधादिक कर अपघात करे हैं। जैसे पति वियोग से अग्नि विषे जलकर सती कहावें। वा हिमालय में गले हैं, काशी करोत ले हैं। जीवत माटी ले हैं। इत्यादिक कार्य कर धर्म्म माने हैं। सो अपघात का तो वड़ा पाप है, शरीरादिक से अनुराग घटा था, तो तपश्चरणादि किया होता मर जाने में किस धर्म्म का अङ्ग भया। इसलिये अपघात करना कुधर्म्म है। ऐसे अन्य भी घने कुधर्म्म के अङ्ग हैं, कहां ताईं कहिये। जहां विषय कषाय वधै धर्म मानिये, सो सर्व कुधर्म्म जाननें। देखो काल दोष से जैन धर्म विषे भी कुधर्म्म की प्रवृत्ति भई। जैनमत विषे धर्म्म सब कहे हैं। तहां तो विषय कषाय छोड़ संयम रूप प्रवर्त्तना योग्य है तिस को तो आदरैं नाहीं। और व्रतादिक का नाम धराय तहां नाना शृङ्गार वनावे हैं। गरिष्ट भोजना-

दिक करैं हैं। वा कौतूहलादिक वा कषाय वधावने के कार्य करैं हैं। जूवा आदि महा पाप रूप प्रवर्त्तैं हैं। और पूजनादिक कार्यन विषे उपदेश तो यह था॥

"सावद्यलेशो वहुपुण्यराशौ दोषाय न"

अर्थ—पाप का अंश बहुत पुण्य समूह विषे दोष के अर्थ नाहीं। इस छल कर पूजा प्रभावना-दिक कार्यन विषे रात्रि विषे दीपादिक कर वा अनन्त कायादिक का संग्रह कर वा अयतनाचार प्रवृत्ति कर हिंसादिक रूप पाप तो बहुत उपजावैं हैं। और स्तुति भक्ति आदि शुभ परिणामन विषे प्रवर्त्तैं नाहीं, वा थोड़ा प्रवर्त्तैं सो टोटा घना नफा थोड़ा वा नफा कुछ नाहीं। ऐसे कार्य करने में तो बुरा ही दीखे है। और जिन मन्दिर तो धर्म्म का ठिकाना है। तहां नाना कुकथा करनी सोवना इत्यादिक प्रमाद रूप प्रवर्त्तैं हैं वा तहां बाग बावड़ी इत्यादि बनाय विषय पोषैं हैं। और लोभी पुरुषन को गुरु मान दानादिक दें वा तिन की असत्य स्तुति कर महन्तपनो मानैं हैं, इत्यादि प्रकार कर विषय कषायन को तो बधावैं और धर्म्म मानें सो धर्म्म तो वीतराग भाव रूप है। तिस विषे ऐसी विपरीत प्रवृत्ति काल दोष से ही देखिये है। इस प्रकार कुधर्म्म सेवने का निषेध किया॥

॥ अब इस विषे मिथ्यात्व भाव कैसे भया सो कहिये है॥

तत्व श्रद्धान करने विषे प्रयोजन भूत एक यह है। रागादिक छोड़ना इस ही भाव का नाम

धर्म्म है । जो रागादिक भावन को वधाय धर्म्म मानना तहां तत्व श्रद्धान कैसे रहा । और जिन आज्ञा से प्रतिकूल भया । और रागादिक भाव तो पाप हैं, तिन को धर्म्म माना । सो यह तो झूठा श्रद्धान भया । इस लिये कुधर्म्म सेवन विषे मिथ्यात्व भाव है । ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र सेवन विषे मिथ्यात्व भाव की पुष्टता होती जान इस का निरूपण किया । सोई षट्पाहुड़ विषे कहा है :—

गाथा॥ कुत्थिय देवं धम्मं कुत्थिय लिंगं च वंदये जोई ।
लज्जाभयगारवदो मिथ्यादिठ्ठीह्वेसोउ ॥ ॥ ॥

अर्थ—जो लज्जा से वा भय से वा बड़ाई से भी कुत्सित देव धर्म्म वा लिङ्ग को वन्दे हैं, सो मिथ्या दृष्टि होय हैं । इसलिये जो मिथ्यात्व का त्याग किया चाहे है तो पहिले कुदेव, कुगुरु, कुधर्म्म का त्याग कर, क्योंकि सम्यक्त्व के पच्चीस मलिन के त्याग में अमूढ़ दृष्टि विषे वा षडायतन विषे इन ही का त्याग कराया है । इस लिये इन का अवश्य त्याग करना । और कुदेवादिक के सेवने से जो मिथ्यात्व भाव होय है, सो यह हिंसादिक पापन से भी बड़ा महापाप है । क्योंकि इसके फल से निगोद नरकादिक पर्याय पाइये है । तहां अनन्त काल पर्यन्त महा सङ्कट पाइये है । और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति महा दुर्लभ होजाय है । सोई षट्पाहुड़ विषे कहा है :—

गाथा॥ कुत्थियधम्मम्मिरउ कुत्थिय पासंड भत्तिसंयुत्तौ।
कुत्थिय तवंकुणंतो कुत्थियगईभायणौ होई॥ ॥

अर्थ--जो जीव कुत्सित धर्म्म विषे रत हैं कुत्सित पाखण्डीन की भक्ति संयुक्त हैं, कुत्सित तप के कर्त्ता हैं सो जीव कुत्सित जो खोटी गति तिसको भोगनहारे होय हैं। सो हे भव्य! किंचित् मात्र लोभ से वा भय से भी कुदेवादिक का सेवन मत कर, क्योंकि इस से अनन्तकाल पर्य्यन्त महा दुःख सहना होय है। इसलिये ऐसा मिथ्यात्व भाव करना योग्य नाहीं, जिनधर्म्म विषे तो यह आम्नाय है, कि पहिले बड़ा पाप छुड़ाय पीछे छोटा पाप छुड़ाया है सो इस मिथ्यात्व को सप्त व्यसनादिक से भी बड़ा पाप जान पहिले छुड़ाया है। इसलिये जो पाप के फल से डरे है, और अपने आत्मा को दुःख समुद्र में डुबोया न चाहे है सो जीव मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो। निन्दा प्रशंसादिक के विचार से शिथिल होना योग्य नाहीं। क्योंकि नीति शास्त्र विषे भी ऐसा कहा है :--

छन्दः॥ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अर्थ—जो निन्दे हैं तो निन्दो। और स्तुति करें हैं सो करो लक्ष्मी आवे चाहे जावे और अब ही मरण होय वा युगान्तर विषे होय। परन्तु तिन विषे जो निपुण पुरुष हैं सो न्याय मार्ग से एक पैंड भी हटें नाहीं। सो हे भव्य! ऐसा न्याय विचार कर निन्दा प्रशंसादिक के भय अथवा लोभादिक से अन्याय रूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति करनी युक्त नाहीं। यह देव गुरु धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं इन के आधार धर्म है इन विषे शिथिलता राखे अन्य धर्म कैसे होय। इसलिये बहुत कहने कर क्या सर्वथा प्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्म का त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिक के त्याग किये बिना मिथ्यात्व भाव बहुत पुष्ट होय है यहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाइये है इसलिये इनका निषेध निरूपण किया है तिस को जान मिथ्यात्व भाव को छोड़ अपना कल्याण करो॥

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र विषे कुदेव कुगुरु कुधर्म निषेध वर्णन रूप
छठा अधिकार समाप्त भया॥

———⁂———

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अब जो जैनधर्म्म विषे मिथ्यात्वभाव है तिस का स्वरूप कहिये है ॥

॥ दोहा ॥

इस भवतरु को मूल इक, जानो मिथ्या भाव।
ताको कर निर्मूल अब, करिये मोक्षउपाव ॥

अब जो जीव जैनी हैं और जिन आज्ञा को माने हैं और तिन के भी मिथ्यात्व रहे है तिस का निरूपण कीजिये है। क्योंकि इस मिथ्यात्व वैरी का अंश भी बुरा है इसलिये सूक्ष्म मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है, तहां जिन आगम विषे निश्चय व्यवहार रूप वर्णन है सो इन के स्वरूप विषे यथार्थ का नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है । सो इन के स्वरूप को तो न जानते हुए अन्यथा प्रवर्त्तें हैं, सोई कहिये है। कितने ही जीव तो निश्चय को न जानते हुए निश्चयाभास के श्रद्धानी होय आप को मोक्षमार्गी माने हैं अपने आत्मा को सिद्ध समान अनुभवें हैं, सो आप प्रत्यक्ष संसारी हैं भ्रम कर आप को सिद्ध समान माने हैं, सो मिथ्यादृष्टि हैं, शास्त्रन विषे जो सिद्ध समान आत्मा को कहा है सो द्रव्यदृष्टि कर कहा है पर्याय अपेक्षा समान नाहीं है। जैसे राजा और रंक

तैसे ही सिद्ध और संसारी जीवत्वपने की अपेक्षा समान हैं मनुष्यपने की अपेक्षा समान हैं तैसे ही सिद्ध और संसारी जीवत्वपने की अपेक्षा समान हैं सिद्धपना संसारीपना की अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसे सिद्ध शुद्ध हैं तैसे ही यह आप को शुद्ध मानें सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्याय अपेक्षा समानता मानें सो यह मिथ्यादृष्टि है। और आप को केवल ज्ञानादिक का सद्भाव मानें सो आप कै तो क्षयोपशम रूप मति श्रुतादिक ज्ञान का सद्भाव है क्षायिकभाव तो कर्म्म के क्षय भये होय है, यह भ्रम से कर्म्म के क्षय भये बिना ही क्षायिक भाव मानें है, सो यह मिथ्यादृष्टि है। शास्त्र विषे सर्व जीवन का केवल ज्ञान स्वभाव कहा है सो शक्ति अपेक्षा कहा है। सर्व जीवन विषे केवल ज्ञानादि रूप होने की शक्ति है वर्त्तमान व्यक्तता तो व्यक्त भये ही कहिये। कोई ऐसा माने है, कि आत्मा के प्रदेशन विषे तो केवल ज्ञानहै ऊपर आवरण से प्रगट न होयहै सो यह भ्रमहै। जो केवल ज्ञान होय तो वज्र पटलादि आगे होतैं भी वस्तु को जाने सो कर्म्म के आगे आने से कैसे अटके। इसलिये कर्म्मन के निमित्त से केवल ज्ञान का अभाव ही है जो इसका सर्वदा सद्भाव रहे तो इसको पारणामिक भाव कहते, सो यह तो क्षायिकभाव है। सर्व भेद जिसमें गर्भित ऐसा चैतन्य सो पारणामिकभाव है,इसकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादि रूप वा केवल ज्ञानादि रूप हैं सो यह पारणामिक भाव नाहीं, इसलिये केवल ज्ञानका सर्वदा सद्भाव न जानना। और जो शास्त्रन विषे सूर्य्य का दृष्टांत दिया है तिस का इतना ही भाव लेना, जैसे मेघ पटल दूर भए सूर्य्य का प्रकाश प्रगट होय है, तैसे कर्म्म उदयदूर होतैं केवल ज्ञान होय है। और ऐसा भाव न लेना जैसे सूर्य्य विषे

प्रकाश होय है, तैसे आत्मा विषे केवल ज्ञान रहे है। क्योंकि दृष्टान्त सर्व प्रकार मिले नाहीं। जैसे पुद्गल विषे वर्ण गुण है तिसकी हरित पीतादि अवस्था है सो वर्त्तमान विषे कोई अवस्था है सो वर्त्तमान कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्था का अभाव ही है। तैसे आत्मा विषे चैतन्य गुण है तिसकी मति ज्ञानादिक रूप अवस्था हैं। सो वर्त्तमान कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्था का अभाव ही है। और कोई कहै, कि आवरण नाम तो वस्तु के आच्छादने का है, केवल ज्ञान का सद्भाव नाहीं है तो केवल ज्ञानावरण किस लिये कहो हो। —:(तिस का उत्तर):— यहां शक्ति है तिस को व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कहा है जैसे देश चारित्र के अभाव होतैं शक्ति घातने की अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कहा तैसे जानना। और ऐसे जानो जो वस्तु विषे पर निमित्त से भाव होय तिसका नाम औपाधिकभाव है। और पर निमित्त बिना जो भाव होय तिस का नाम स्वभाव है। सो जैसे जल कै अग्निका निमित्त होतैं उष्णपना भया तहां शीतलपने का अभाव होय है परन्तु अग्नि का निमित्त मिटे शीतलताई हो जाय है इसलिये सदा काल जल का स्वभाव शीतल कहिये है। क्योंकि ऐसी शक्ति सदा पाइये है। और व्यक्त भये स्वभाव व्यक्त भया कहिये। कदाचित् व्यक्त रूप होयहै। तैसे आत्माके कर्म्म का निमित्त होतैं अन्य रूप भया। तहां केवल ज्ञान का अभाव है। परन्तु कर्म्म का निमित्त मिटे सर्वदा केवल ज्ञान हो जाय है। क्योंकि सदा काल आत्मा का स्वभाव केवल ज्ञान कहिये है क्योंकि ऐसी शक्ति सदा पाईये है। व्यक्त भये स्वभाव व्यक्त भया कहिये और जैसे शीतल स्वभाव कर उष्ण जल को

शीतल मान पीवे तो दाझ ही होय। तैसे केवल ज्ञान स्वभाव कर अशुद्ध आत्मा को केवल ज्ञान मान अनुभवे तो दुःखी ही होय। ऐसे केवल ज्ञानादिक रूप आत्मा को अनुभवे है सो मिथ्या दृष्टि है। और रागादि भाव आप के प्रत्यक्ष होतैं भ्रम कर आत्मा को रागादि रहित मानें है। सो पूछिये है यह रागादिक तो होते देखिये हैं। यह किस द्रव्य के अस्तित्व विषे हैं। जो शरीर वा कर्म रूप पुद्गल के अस्तित्व विषे होयें तो यह भाव अचेतन वा मूर्त्तीक होयें। सो यह रागादिक तो प्रत्यक्ष अमूर्त्तीक भाव भासें हैं इसलिये यह भाव आत्मा ही के हैं। सोई समयसार की कलशाविषे कहा है।

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्त्ता ततो
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न वै पुद्गलः ॥ १ ॥

अर्थ—यह रागादि रूप भाव कर्म है। सो किसी का किया नाहीं है, इस से यह कार्य भूत है। और जीव और कर्म्म प्रकृति इन दोनों का भी कर्त्तव्य नाहीं। क्योंकि ऐसे होय तो अचेतन कर्म्म प्रकृति भी कर्त्ता ठहरे। इसलिये तिन भाव कर्म्म का भी यह कर्त्तव्य नाहीं। क्योंकि ऐसे होय तो तिस अचेतन

सो० प्र० ३०१

कर्म्म प्रकृति के भी भाव कर्म्म का फल सुख दुःख का भोगना होय सो यह संभवै नाहीं और एकली कर्म्म प्रकृति का भी यह कर्त्तव्य नाहीं। क्योंकि उसके अचेतनपना प्रगट है इसलिये इस रागादिक का जीव ही कर्त्ता है और सो रागादिक जीव ही का कर्म्म है क्योंकि भाव कर्म्म तो चेतना अनुसारी है चेतना बिना न होय और पुद्गल ज्ञाता है नाहीं ऐसे रागादिक भाव जीव के अस्तित्व विषे हैं अब जो रागादिक भावन का निमित्त कर्म्म ही को मान आप को रागादिक का अकर्त्ता माने है सो कर्त्ता तो आप और आप निरुद्यमी होय प्रमादी रहना चाहे इसलिये कर्म्म ही का दोष ठहरावे है। सो यह दुःखदायक भ्रम है सो ही समयसार के कलशा विषे कहा है।

रागजन्मनि निमित्ततां परं द्रव्यमेव नु विकल्पयन्ति ये।
उत्तरन्ति नहि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान बोधये॥

अर्थ—जो जीव रागादिक की उत्पत्ति विषे पर द्रव्य ही का निमित्त पना माने है सो जीव शुद्ध ज्ञान कर रहितहै। ऐसी अंध बुद्धि होते संते वह मोहनदी को नाहीं उतरे हैं और समयसार के सर्व विशुद्धि अधिकार विषे जो आत्मा को अकर्त्ता माने हैं और कहे हैं कि कर्म्म ही जगावे है, कर्म्म ही सुवावे है, परघात कर्म्म से हिंसा है वेद कर्म्म से ब्रह्म है। इसलिये कर्म्म ही कर्त्ता है, तिस जैनी को सांख्य मती कहा है। जैसे सांख्य मती आत्मा को शुद्ध मान स्वछन्द होय है, तैसे ही यह भया। और

इस श्रद्धान से यह दोष भया जो रागादिक अपने जाने नाहीं आपको कर्त्ता न माने तब रागादिक होने का भय रहा नाहीं वा रागादिक मेटनें का उपाय रहा नाहीं, तब स्वछंद होय खोटे कर्म्म बान्ध अनन्त संसार विषे रुले हैं। —:(यहां प्रश्न):— जो समयसार विषे ऐसा कहा है :—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।

अर्थ—वर्णादि वा रागादिक भाव हैं सो सर्व ही इस आत्मा से भिन्न हैं। और तहां रागादिक को पुद्गलमय कहे हैं। और अन्य शास्त्रन विषे भी रागादिक से भिन्न आत्मा को कहा है। सो यह कैसे है। —:(तिसका उत्तर):— रागादिक भाव परद्रव्य के निमित्त से औपाधिक भाव हैं। और यह जीव तिन को स्वभाव जाने है,जिसको स्वभाव जाने तिसको बुरा कैसे मानें। वा तिसके नाश का उद्यम किस लिये करे, सो यह श्रद्धान भी विपरीत है। तिसके छुडावनें के स्वभाव की अपेक्षा रागादिक को भिन्न कहे हैं। और निमित्त की मुख्यता कर पुद्गलमय कहे हैं, जैसे वैद्य रोग मेटा चाहे, जो शीत को अधिक देखे तो उष्ण औषधि बतावे। आताप को अधिक देखे तो शीतल औषधि बतावे। तैसे श्री गुरु रागादिक छुड़ाया चाहे हैं, जो रागादिक को पर का मान कर स्वछन्द होय निरुद्यमी होय तो तिसके उपादान कारण की मुख्यता कर रागादिक को आत्मा का कह कर ऐसा श्रद्धान कराया है। और जो रागादिक आपका स्वभाव मान तिनके नाश का उद्यम नाहीं करे है, तिसके

निमित्त कारण की मुख्यता कर रागादिक परभाव हैं। ऐसा श्रद्धान कराया है, दोऊ विपरीत श्रद्धान से रहित भये सत्य श्रद्धान होय है तब ऐसामाने जो रागादिक भाव आत्माका स्वभाव तो नाहीं कर्म्मके निमित्तसे आत्मा के अस्तित्वविषे विभाव पर्याय निपजे है। निमित्त मिटे इनके नाशहोतें स्वभाव भाव रह जायहै, इस लिये इसके नाशका उद्यम करना —:(यहां प्रश्न):—जो कर्म के निमित्त से यहहोय है। सो तावत् कर्म का उदय रहे विभाव दूर कैसे होय इसलिये इसका उद्यम करना निरर्थक है —:(तिसका उत्तर):-- कार्य होने विषे अनेक कारण चाहिये हैं, तिन विषें जो कारण बुद्धि पूर्वक होयें तिनको तो उद्यम कर मिलावे, और अबुद्धि पूर्वक कारण स्वयमेव मिलें तब कार्य सिद्ध होय, जैसे पुत्र होने का कारण बुद्धि पूर्वक तो विवाहादिक करना है। और अबुद्धि पूर्वक भवतव्य है, तहां पुत्र का अर्थी विवाहादिक का उद्यम करे, और भवतव्य स्वयमेव होय तब पुत्र होय। तैसे विभाव दूर करने का कारण बुद्धि पूर्वक तत्व विचारादिक हैं, और अबुद्धि पूर्वक मोह कर्म का उपशमादिक हैं। तिसका अर्थी तत्व विचारादिक का तो उद्यम करे, और मोह कर्म्म का उपशमादिक स्वयमेव होय। तब रागादिक दूर होय यहां कोई ऐसा कहै, कि जैसे विवाहादिक भी भवतव्य आधीन हैं, तैसे तत्व विचारादिक भी कर्म के चयोपशमादिक के आधीन है इसलिये उद्यम करना निरर्थक है —:(तिसका उत्तर):— ज्ञानावरण का तो चयोपशम तत्व विचारादि करने योग्य तेरे भया है इसलिये उपयोग को यहां लगावने का उद्यम कराइये है। असंज्ञी जीवन के चयोपशम नाहीं है तो उनको किस लिये उपदेश दीजिये है, तब वह कहे है होनहार होय तो तहां

जो ऐसे श्रद्धान है तो सर्वंच
उपयोग लगे, बिना होनहार कैसे लगे। —:(तिसका उत्तर):— जो ऐसे श्रद्धान है तो सर्वंच

उपयोग लगे, बिना होनहार कैसे लगे। तू खान पान व्यापारादिक का तो उद्यम करे, और यहां होनहार कोई ही कार्य्य का उद्यम मत करो। तू खान पान व्यापारादिक का तो उद्यम करे, और यहां होनहार बतावै, सो जानिये है तेरा अनुराग यहां नाहीं। मानादिक कर ऐसी झूठी बातें बनावै है, इस प्रकार जो रागादिक होतैं भी तिन कर रहित आत्माको माने है सो मिथ्यादृष्टि जानने। और कर्म नोकर्म का संबन्ध होतैं आत्मा को निर्बन्ध मानें सो प्रत्यक्ष इनका बन्ध देखिये है। ज्ञानावरणादिक से ज्ञाना-दिक का घात देखिये है, शरीर कर तिसके अनुसार अवस्था होती देखिये है। बन्ध कैसे नाहीं, जो बन्ध न होय तो मोक्षमार्गी इनके नाश का उद्यम किस लिये करें। यहां कोई कहे शास्त्र विषे आत्मा को कर्म नोकर्म से भिन्न अबन्ध स्पृष्ट कैसे कहा है। —:(तिसका उत्तर):— संबन्ध अनेक प्रकार के हैं। तहां तदात्म संबन्ध अपेक्षा आत्मा को कर्म्म नोकर्म से भिन्न कहा है, क्योंकि द्रव्य मिल कर एक नाहीं हो जाय है। और इस ही अपेक्षा अबन्ध स्पृष्ट कहा है। और निमित्त नैमित्तिक संबन्ध अपेक्षा बन्ध है। उनके निमित्त से आत्मा अनेक अवस्था धारे है। इसलिये सर्वथा निर्बंध आप को मानना मिथ्यादृष्टि है। यहां कोई कहे, हम को तो बन्ध मुक्ति का विकल्प करना नाहीं क्योंकि शास्त्र विषे ऐसा कहा है :—

"जो बन्धउ मुक्कउ मुणइ सो बन्धइ णिभंति"

अर्थ-जो जीव बन्धा और मुक्ति भया माने है सो निःसंदेह बन्धे है, तिस को कहिये है जो जीव केवल पर्याय दृष्टि होय बन्ध मुक्ति अवस्था को माने है। द्रव्य स्वभाव का ग्रहण नाहीं करे है तिनको ऐसा उपदेश दिया है। जो द्रव्य स्वभाव को न जानता जीव बन्धा मुक्त भया माने है सो बन्धे है। और जो सर्वथा ही बन्ध मुक्ति न होय तो सो जीव बन्धे है ऐसा किस लिये कहे हैं, और बन्ध के नाश से तिसकै मुक्ति होने का उद्यम किस लिये करिये है, किसलिये आत्मा अनुभव करिए है। इसलिये द्रव्य दृष्टि कर एक दशा है। पर्याय दृष्टि कर अनेक अवस्था होय हैं, ऐसा मानना योग्य है। ऐसे ही अनेक प्रकार कर केवल निश्चय नय के अभिप्राय से विरुद्ध श्रद्धानादिक कराइये है, क्योंकि जिन वाणी विषे तो नाना अपेक्षा कहीं कैसा, कहीं कैसा निरूपण कियाहै। यह अपने अभिप्राय से निश्चय नय की मुख्यता कर जो न किया होय तिस ही को ग्रहण कर मिथ्यादृष्टि धारे हैं, और जिन वाणी में तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता भये मोक्ष कहा है। सो इस कै सम्यग्दर्शन ज्ञान विषे सप्त तत्व का श्रद्धान भया चाहिये सो तिनका तो विचार नाहीं। और चारित्र विषे रागादिक दूर किये चाहिये, तिसका भी उद्यम नाहीं। एक अपने आत्मा को शुद्ध अनुभवना इस ही को मोक्षमार्ग जान सन्तुष्ट भया है। तिसका अभ्यास करने को अन्तरङ्ग विषे ऐसा चितवन किया करै है, कि मैं सिद्ध समान शुद्ध हूं केवल ज्ञानादि सहित हूं। द्रव्यकर्म्म नोकर्म रहित हूं, परमानन्दमय हूं, जन्म मरणादि दुःख मेरे नाहीं, इत्यादि चितवन करै है। सो यहां पूछिये है यह चितवन द्रव्यदृष्टि कर करो हो तो द्रव्य तो

अशुद्ध सर्व पर्यायन का समुदाय है। तुम शुद्ध अनुभवन किस लिये करो हो, और पर्यायदृष्टि कर करो हो तो तुम्हारे तो वर्तमान अशुद्ध पर्याय है तुम आप को शुद्ध कैसे मानो हो, और जो शक्ति अपेक्षा शुद्ध मानो हो तो मैं ऐसा होने योग्य हूं, ऐसा मानो। परन्तु मैं ऐहा हूं ऐसा किस लिये मानों हो इसलिये आप को शुद्ध रूप चितवन करना भ्रम है। क्योंकि तुम आप को सिद्ध मानो हो तो यह संसार अवस्था किस की है। और तुम्हारे केवल ज्ञानादिक हैं तो यह मतिज्ञानादिक किस के हैं। और द्रव्य कर्म्म नोकर्म रहित हो तो ज्ञानादिक की व्यक्तता क्यों नहीं, परमानन्दमय हो तो अब कर्तव्य क्या रहा। जन्म मरणादि दुःख नाहीं तो दुःखी कैसे होते हो, इसलिये अवस्था विषे अन्य अवस्था मानना भ्रम है। यहां कोई कहै शास्त्र विषे शुद्ध चितवन करने का उपदेश कैसे दिया है। —:(तिसका उत्तर):— एक द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना है। एक पर्याय अपेक्षा शुद्धपना है, तहां द्रव्य अपेक्षा तो परद्रव्य से भिन्न-पना, वा अपने भावन से अभिन्नपना तिस का नाम शुद्धपना है। और पर्याय अपेक्षा औपाधिक भावन का अभाव होना तिसका नाम शुद्धपना है। सो शुद्ध चितवन विषे द्रव्य अपेक्षा शुद्धपना ग्रहण किया है, सो समयसार व्याख्यान विषे कहा है।

एष एको वा शेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो
भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिधीयते॥

अर्थ---जो आत्मा प्रमत्त अप्रमत्त नाहीं है सो यह ही समस्त परद्रव्य के भावन से भिन्नपने कर सेया हुआ शुद्ध ऐसा कहिये है। और तहां ही ऐसा कहा है।

समस्तकारकचक्रप्रक्रियोत्तीर्णनिर्मलानुभूतमात्रत्वाच्छुद्धः।

अर्थ---समस्त ही कर्त्ता कर्म आदि कारकन के समूह की प्रक्रिया से पारंगत ऐसी जो निर्मल अनुभूति जो अभेद ज्ञान तन्मात्र है इसलिये शुद्ध है ऐसे शुद्ध शब्द का अर्थ जानना, और ऐसे ही केवल ज्ञान शब्द का अर्थ जानना। जो परभाव से भिन्न निःकेवल आप ही तिस का नाम केवल है। ऐसे ही अन्य यथार्थ अर्थ अवधारणा। क्योंकि पर्याय अपेक्षा शुद्धपना माने वा केवली आप को मानें महा विपरीत होय है। इसलिये आप को द्रव्य पर्याय रूप अवलोकना द्रव्य कर सामान्य स्वरूप अवलोकना पर्याय कर अवस्था विशेष अवधारणा ऐसे ही चितवन किये सम्यग्दृष्टि होय है। क्योंकि सांच अवलोके विना सम्यग्दृष्टि कैसे नाम पावै। और मोक्षमार्ग का वा रागादिक मेटने का श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है, सो तो विचार ही नाहीं। आप के शुद्ध अनुभव से ही आप को सम्यग्दृष्टि मान अन्य सर्व साधन का निषेध करे है शास्त्र अभ्यास करना निरर्थक बतावे है द्रव्यादिक का वा गुण स्थान मार्गणा त्रिलोकादिक के विचार को विकल्प ठहरावे है तपश्चरण करना तथा क्लेश माने है, व्रतादिक का धारणा बन्धन में पड़ना ठहरावे हैं। पूजना इत्यादि सर्व कार्य्यन को शुभाशुभ जान हेय प्ररूपे है,

इत्यादि सर्व साधन को उठाय प्रमादी होय परणमे है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय तो मुनिन के भी तो ध्यानाध्ययन होय सो ही कार्य्य मुख्य है। ध्यान विषे उपयोग न लगे तब अध्ययन विषे ही उपयोग को लगावें हैं। अन्य ठिकाना बीच में उपयोग लगावना योग्य है नाहीं। और शास्त्र कर तत्वन का विशेष जानने से सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होयहै। और तहां यावत् उपयोग रहे तावत् कषाय मन्द रहें। और आगामि वीतराग भावन की वृद्धि होय ऐसे कार्य्य को निरर्थक कैसे मानिये और वह कहे हैं। जो जिन शास्त्रन विषे अध्यात्म उपदेश है तिनका अभ्यास करना अन्य शास्त्र का अभ्यास कर कुछ सिद्धि नाहीं, तिस को कहिये है। जो तेरे साची दृष्टि भई है तो सर्व ही जैन शास्त्र कार्य्यकारी है। तहां भी मुख्यपने आत्म शास्त्रन विषे तो आत्मा स्वरूप का मुख्य कथन है। सो सम्यग्दृष्टि भये आत्म स्वरूप का तो निर्णय हो चुका तब ज्ञान की निर्मलता के अर्थ वा उपयोग को मन्द कषाय रूप राखने के अर्थ अन्य शास्त्रन का अभ्यास मुख्य चाहिये। और आत्म स्वरूप का निर्णय भया है, तिसको स्पष्ट राखने के अर्थ अध्यात्म शास्त्रन का भी अभ्यास चाहिये, परन्तु अन्य शास्त्रन विषे अरुचि तो न चाहिये जिस कै अन्य शास्त्रन विषे अरुचि है तिस कै अध्यात्म की रुचि साची नाहीं जैसे जिसके विषयासक्तपना होय सो विषयासक्त पुरुषन की कथा भी रुचि से सुने वा विषय के विशेष जाने वा विषय के आचार विषे जो साधन होय तिसको भी हित रूप जाने वा विषय के स्वरूप को भी पहिचाने। तैसे जिस कै आत्म रुचि भई होय सो आत्म के धारक तीर्थंकरादिकन का पुराण भी

जानै, और आत्मा के विशेष जानने से गुण स्थानादिक को भी जानै और आत्मा आचार विषे व्रतादिक साधन हैं तिनको भी हित रूप मानें और आत्मा के स्वरूप को पहिचाने। इसलिये चारों ही अनुयोग कार्यकारी हैं। और तिनका नीका ज्ञान होने के अर्थ शब्द न्याय शास्त्र का भी जानना चाहिये। सो अपनी शक्ति अनुसार सबन का थोड़ा बहुत अभ्यास करना योग्य है। और वह कहे है "पद्मनंद पचीसी" विषे ऐसा कहा है। जो आत्मा स्वरूप से निकस वाह्य शास्त्रन विषे बुद्धि विचरे है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है। —:(तिस का उत्तर):— यह सत्य कहा है बुद्धि तो आत्मा की है तिस को छोड़ परद्रव्य शास्त्र विषे अनुरागिणी भई। तिस को व्यभिचारिणी कहिये। परन्तु जैसे स्त्री शीलवती है तो योग्य ही है और न रहा जाय तो उत्तम पुरुष को छोड़ चाण्डालादिक का सेवन किए तो अत्यन्त निन्दक होय। तैसे बुद्धि आत्मा स्वरूप विषे प्रवर्त्तै तो योग्य ही है। और न रहा जाय तो प्रशस्त शास्त्रादिक को छोड़ अप्रशस्त विषयादिक विषे लगे तो महा निन्दनीक ही होय। सो मुनि कै भी स्वरूप विषे बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं तो तेरी कैसे रहा करे इस लिये शास्त्राभ्यास विषे उपयोग लगा-वना युक्त है। और जो तू द्रव्यादिक के वा गुण स्थानादिक के विचार को विकल्प ठहरावे है सो विकल्प तो है परन्तु जब निर्विकल्प योग न रहे और इन विकल्पन को करे नाहीं तो तब अन्य विकल्प बहुत रागादिक गर्भित होय क्योंकि निर्विकल्प दशा सदा रहे नाहीं। इसलिये छद्मस्थ का उपयोग एक रूप उत्कृष्ट रहे तो अन्तर्मुहूर्त्त रहे। और तू कहैगा मैं आत्मा स्वरूप ही का चितवन अनेक प्रकार किया

कहूं सो सामान्य चितवन विषे तो अनेक प्रकार बने नाहीं। और विशेष करेगा तो तब द्रव्य गुण पर्याय गुण स्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध इत्यादि अवस्था का विचार होगा। और केवल आत्म ज्ञान ही से तो मोक्षमार्ग होय नाहीं। सप्त तत्वन का श्रद्धान ज्ञान भये, वा रागादिक दूर किये मोक्षमार्ग होय है सो सप्त तत्वन के विशेष जानने को जीव अजीव ज्ञान के विशेष वा कर्म के आस्रव बन्धादिक का विशेष अवश्य जानना योग्य है। क्योंकि सम्यग्दर्शन ज्ञान की प्राप्ति होय और तिस पीछे रागादिक दूर करने से जो रागादिक बधावने के कारण तिन को छोड़ और जो रागादिक घटावने के कारण होयें। तहां उपयोग को लगावना सो द्रव्यादिक का गुणस्थानादिक का विचार रागादिक घटावने का कारण है। इन विषे कोई रागादिकका निमित्त नाहीं। इसलिये सम्यग्दृष्टि भये पीछे भी यहां ही उपयोग लगावना। तब वह कहे है रागादिक मिटावने का कारण होय तिन विषे तो उपयोग लगावना। परन्तु त्रिलोकवर्त्ती जीवन की गति आदिक विचार करना वा कर्म्म का बन्ध उदय सत्तादिक विशेष जानना। वा त्रिलोक का आकार प्रमाणादिक जानना, इत्यादि विचार कौन कार्य्यकारी है। —:(तिस का उत्तर):— इन के भी विचार से रागादिक वधे नाहीं। क्योंकि ये ज्ञेय इस के इष्ट अनिष्ट रूप हैं नाहीं इसलिये वर्त्तमान रागादिक का कारण नाहीं, क्योंकि इन के विशेष जानने से तत्वज्ञान निर्म्मल होय है और आगामि रागादिक घटावने का ही कारण है। इसलिये यह कार्यकारी है तब वह कहे है स्वर्ग नर्कादिक के जानने से तहां राग द्वेष होय है। —:(तिस का समाधान):— ज्ञानी कै तो ऐसी बुद्धि होय

नाहीं, अज्ञानी कै होय है तहां पाप छोड़ कर पुण्य कार्य विषे लगे तहां कुछ रागादिक घटे। तब वह कहे है। शास्त्र विषे ऐसा उपदेश है। प्रयोजन भूत थोड़ा ही जानना कार्यकारी है। इसलिये बहुत विकल्प किसलिये करिये। —:(तिस का उत्तर):— जो जीव अन्य बहुत जाने और प्रयोजन भूत को न जाने अथवा जिन को बहुत जानने की शक्ति नाहीं तिन को यह उपदेश दिया है, और जिस के बहुत जानने की शक्ति होय तिसको तो यह कहा नाहीं कि बहुत जाने बुरा होगा। जितना बहुत जानेगा तितना ही प्रयोजन भूत जानना निर्मल होगा क्योंकि शास्त्र विषे ऐसा कहा है :—

सामान्य शास्त्रतोनूनं विशेषो बलवान भवेत् ॥

अर्थ—सामान्य शास्त्र से विशेष शास्त्र बलवान है। विशेष ही से निकै निर्णय होय है। इसलिये विशेष जानना योग्य है। और वह तपश्चरण को वृथा क्लेश ठहरावे है। सो मोक्षमार्ग भये तो संसारी जीवन से उलटी परणति चाहिये, संसारीन कै इष्ट अनिष्ट सामग्रीन से राग द्वेष होय है। इस कै राग द्वेष न चाहिये। तहां राग छोड़ने के अर्थ इष्ट सामग्री भोजनादिक का त्यागी होय है, और द्वेष छोड़ने के अर्थ अनिष्ट सामग्री अनशनादिक अङ्गीकार करे है। क्योंकि स्वाधीनपने ऐसा साधन होय तो पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिले भी राग द्वेष न होय। सो चाहिये तो ऐसे। और तेरे अनशनादिक से द्वेष भया इसलिये तिस को क्लेश ठहराया। जब यह क्लेश भया तब भोजन करना सुख स्वयमेव

ठहरा। तहां राग आया तो ऐसी परणति सो संसारीन के पाइये है। तैं मोक्षमार्गी होय क्या किया, और जो तू कहेगा कई सम्यग्दृष्टि भी तपश्चरण नाहीं करे हैं। —:(तिस का उत्तर):— यह कारण विशेष से तपन होय सकै है। परन्तु अज्ञान विषे तो तप को भला जाने है तिस के साधन का उद्यम राखे है। तेरे तो अज्ञान यह है तप करना क्लेश है और तप का तेरे उद्यम नाहीं। इसलिये तेरे सम्यग्दृष्टि कैसे होय। तब वह कहे है शास्त्र विषे ऐसा कहा है, तप आदि का क्लेश करे है सो करो। ज्ञान बिना सिद्धि नाहीं। —:(तिस का उत्तर):— जो जीव तत्व ज्ञान से तो पराङ्मुख हैं और तप ही से मोक्षमार्ग माने है। तिन को ऐसा उपदेश दिया है, कि तत्वज्ञान बिना केवल तप ही से मोक्षमार्ग न होय। और तत्व ज्ञान भये रागादि मेटने के अर्थ तप करने का तो निषेध है नाहीं, क्योंकि जो निषेध होय तो गणधरादिक तप किस लिये करें। इसलिये अपनी शक्ति अनुसार तप करना योग्य है और व्रतादिक को बन्ध माने है सो स्वच्छन्द वृत्ति तो अज्ञान अवस्था ही विषे थी, ज्ञान पाये तो परणति को रोके ही है। और तिस परणति को रोकने के अर्थ बाह्य हिंसादिक के कारणन का त्याग अवश्य भया चाहिये। इसलिये जितना जितना ज्ञान होय तितना तितना त्याग बहुत भया चाहिये। तब कहे है। हमारे परणाम तो शुद्ध हैं। बाह्य त्याग किया तो क्या न किया तोक्या। —:(तिस का उत्तर):— जो हिंसादिक कार्य तेरे परणाम बिना स्वयमेव होते होयें तो हम ऐसे ही मानें। परंतु जब तू अपने परिणाम कर कार्य करे तो तेरे परिणाम शुद्ध कैसे कहिये। विषय सेवनादिक क्रिया वा प्रमाद रूप गम-

नादि क्रिया परिणाम विना कैसे होय। सो क्रिया तो उद्यमी होय तू करे है और तहां हिंसादिक होय तिस को तू गिने नाहीं। परिणाम शुद्ध माने सो ऐसी माने तो तेरे परिणाम अशुद्ध ही हैं। तब वह कहे है। परिणामन को रोके वा वाह्य हिंसादिक भी घटावे परन्तु प्रतिज्ञा करने में वन्ध होय है इसलिये प्रतिज्ञारूप व्रत अङ्गीकार करना नाहीं। —:(तिस का समाधान):— जिस कार्य्य करने की आशा रहे है, तिसकी प्रतिज्ञा लीजिये है। क्योंकिजिस की आशा रहे तिस से राग रहे है और राग भाव से विना कार्य्य किये भी अविरत से कर्म्म वन्ध हुआ करे है इसलिये प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। और कार्य करने में वन्ध हुए विना परिणाम कैसे रुकेगा जव प्रयोजन पड़े तब तिस रूप परिणाम होय ही होय। क्योंकि बिना प्रयोजन पड़े तिसकी आशा रहे है इसलिये प्रतिज्ञा करनी युक्त है तव वह कहे है प्रतिज्ञा किये न जानिये कैसा उदय आवे पीछे प्रतिज्ञा भङ्ग होय तो महा पाप लगे इसलिये पराब्धि अनुसार कार्य बने सो बनो प्रतिज्ञा का विकल्प न करना। —:(तिस का समाधान):— प्रतिज्ञा ग्रहण करते जिसका निर्वाह होता न जाने तिस प्रतिज्ञा को करे नाहीं। परन्तु प्रतिज्ञा लेते ही यह अभिप्राय रहे कि प्रयोजन पड़े प्रतिज्ञा छोड़ दूंगा तो वह प्रतिज्ञा कौन कार्य कारी भई। जो प्रतिज्ञा ग्रहण करते समय ऐसे परिणाम रहें, कि मरणांत भये भी प्रतिज्ञा न छोड़ूंगा तो ऐसी प्रतिज्ञा करनी युक्त है। बिना प्रतिज्ञा किये अविरत सम्बन्धी वन्ध मिटे नाहीं और जो आगामि उदय के भय कर प्रतिज्ञा न लीजिये तो उदय को विचारे तो सब ही कर्त्तव्य का नाश होय है जैसे जितना

करै। कदाचित् किसी कै भोजन से अजीर्ण भया होय तो तिस
आप को पचता जाने तितना भोजन करै। कदाचित् किसी कै भोजन से अजीर्ण भया होय तो तिस
भय से भोजन छोड़ दे तो मरण ही होय। तैसे जितना आप के निर्वाह होता जाने तैसी प्रतिज्ञा
करै कदाचित् किसी कै प्रतिज्ञा से भ्रष्टपना भया होय तो तिस भय से प्रतिज्ञा करनी छोड़े तो असं-
यमी होय इसलिये बने सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। और परालब्धि अनुसार तो बने ही है तू उद्यमी
होय भोजनादिक तो करै है, और त्याग करने में प्रतिज्ञा करनी मनै बतावै है जो यहां उद्यम करै है
तो त्याग करने में भी उद्यमी होना युक्त है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा हो जायगी तब हम परालब्धि ही
मानेंगे तेरा कर्त्तव्य न मानेंगे। सो किसलिये स्वच्छन्द होने की युक्ति बनावै है बने सो प्रतिज्ञा कर व्रत
धारणा योग्य ही है। और वह पूजनादिक कार्य को शुभ आस्रव जान हेय मानै है सो यह सत्य
है, परन्तु जो इन कार्यन को छोड़ शुद्धोपयोग रूप होय तो भले ही है। और विषय कषाय
रूप अशुभ रूप प्रवर्त्तै तो अपना बुरा ही करै, शुभोपयोग से स्वर्गादिक होय वा भली वासना
से भले निमित्त से कर्म की स्थिति अनुभाग घट जाय तो सम्यक्तादिक की भी प्राप्ति हो जाय और
अशुभोपयोग से नरक निगोदादिक होय। वा बुरी वासना से वा बुरे निमित्त से कर्म की स्थिति
अनुभाग वध जाय तो सम्यक्तादि दुर्लभ होजाय और शुभोपयोग होतैं कषाय मन्द होय है। अशु-
भोपयोग होतैं तीव्र होय है। सो मन्द कषाय का कारण छोड़ तीव्र कषाय का कार्य करना ऐसा है
जैसे कड़वी वस्तु न खानी और विष खाना सो यह अज्ञानता है। तब वह कहै है। शास्त्र विषै शुभ अशुभ

को समान कहा है। इसलिये हम को तो विशेष जानना युक्त नाहीं। —:(तिस का समाधान):— जो जीव शुभोपयोग को मोक्ष का कारण मान उपादेय माने है, शुद्धोपयोग को नाहीं पहिचाने है तिन को शुभ अशुभ दोनों की अपेक्षा वा बन्ध के कारण की अपेक्षा समान दिखाइये है। और शुभ अशुभ भावन का परस्पर विचार करिये तो शुभ भावन विषे कषाय मन्द होय है इसलिये बन्ध क्षीण होय है। अशुभ भावन विषे कषाय तीव्र होय है। इसलिये बन्ध वहुत होय है। ऐसे विचार किये अशुभ की अपेक्षा सिद्धान्त विषे शुभ को भला कहिये है। जैसे रोग तो थोड़ा वा वहुत भी बुरा है। परन्तु वहुत रोग की अपेक्षा थोड़े रोग को भी भला कहिये इसलिये शुद्धोपयोग न होय तो अशुभ को छोड़ शुभ विषे प्रवर्त्तना युक्त है। शुभ को छोड़ अशुभ विषे प्रवर्त्तना युक्त नाहीं है तब वह कहे है, कामादिक वा क्षुधादिक मिटावने को अशुभ रूप प्रवृति तो भये विना रहती नाहीं। और शुभ प्रवृत्ति की चाह करनी पड़े है सो ज्ञानी को चाह करनी नाहीं। इसलिये शुभ का उद्यम करना नाहीं। —:(तिस का उत्तर):— शुभ प्रवृत्ति विषे उपयोग लगावने कर तिस के निमित्त से विरागता वधने कर कामादिक हीन होय हैं। और क्षुधादिक विषे भी संक्लेश थोड़ा होय है। इसलिये शुभोपयोग का अभ्यास करना उचित है। और उद्यम किये भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीड़े हैं तो तिन के अर्थ जैसे थोड़ा पाप लगे सो करना। और शुभोपयोग छोड़ निःशंक पाप रूप प्रवर्त्तना युक्त नाहीं। और तू कहे है ज्ञानी को चाह करनी योग्य नाहीं। और शुभोपयोग चाह किये होय है,

सो जैसे कोई पुरुष किञ्चित् मात्र भी अपना धन दिया चाहे नाहीं परन्तु जहां बहुत द्रव्य जाता जाने तहां चाह कर थोड़ा द्रव्य देने का उपाय करे है। तैसे ज्ञानी कै किञ्चित् मात्र भी कषाय रूप कार्य की चाह नाहीं परन्तु जहां बहुत कषाय रूप अशुभ कार्य होता जाने तहां चाह कर भी थोड़ा कषाय रूप शुभकार्य करने का उद्यम करे है। इस से यह बात सिद्ध भई, कि जहां शुद्धोपयोग होता जाने तहां तो शुभ कार्य का निषेध ही है । और जहां अशुभोपयोग होता जाने तहां शुभ उपाय कर अङ्गीकार करना युक्त है। इस प्रकार अनेक व्यवहार कार्य को उत्थाप स्वच्छन्दपना को स्थापे है तिस का निषेध किया । अब निश्चयावलम्बी जीवन की प्रवृत्ति दिखाइये है । एक शुद्धात्मा को जान ज्ञानी होय है अन्य कुछ चाह नाहीं ऐसा जान कभी एकान्त विषे तिष्ट कर ध्यानमुद्रा धार कर, मैं सर्व कर्म उपाधि रहित सिद्ध समान आत्मा हूं, इत्यादि विचार कर सन्तुष्ट होय है, सो यह विशेषण कैसे सम्भवै। और यह असम्भव है कि ऐसा विचारे नाहीं, अथवा अचल अखण्ड आदि विशेषण कर आत्मा को ध्यावे है सो यह विशेषण अन्य द्रव्यन विषे भी सम्भवे है । और विशेषण किस अपेक्षा से होय है, सो विचार नाहीं। और कदाचित् सोया बैठा जिस तिस अवस्था विषे ऐसा विचार राख आप को ज्ञानी माने है । और ज्ञानी कै आस्रव बन्ध नाहीं ऐसा आगम विषे कहा है ऐसा मान कदाचित् विषय कषाय रूप होय है, तहां बन्ध होने का भय नाहीं करे

है स्वछन्द भया रागादिक रूप प्रवर्त्तै है सो आपा पर को जानने का चिन्ह तो वैराग्य भाव है। सो "समयसार" विषे कहा है :—

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि से निश्चय कर ज्ञान वैराग्य शक्ति होय है और कहा है। :—

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मेस्या
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु ।
आलम्ब्यन्तां सुमतिषु परं ते यतोद्यापि पापाः
आत्मज्ञानावगमविरहात्सन्ति सम्यक्तशून्याः ॥

अर्थ—मैं स्वयमेव सम्यग्दृष्टि हूं। मेरे कदाचित् बन्ध नाहीं ऐसा ऊंचा फुलाया है, मुख जिसने ऐसे वैराग्य शक्ति रहित आचरण करे है तो करो। और पंचसुमति की सावधानी को अवलम्बे है तो अवलम्बो। ज्ञान शक्ति बिना अभी तक पापी ही है, यह दोनों आत्मा अनात्मा का ज्ञान

रहित पने से सम्यक्त रहित ही है और पूछिये है। परको पर जाना तो परद्रव्य विषे राग करने का क्या प्रयोजन रहा। तहां वह कहे है, मोह के उदय से रागादिक होय हैं। पूर्वै भरतादिक ज्ञानी भये तिन कै भी विषय कषाय रूप कार्य भया सुनिये है। -:(तिस का उत्तर):- ज्ञानी कै भी मोह के उदय से रागादिक होय हैं यह सत्य हैं। परन्तु विधिपूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगे करेंगे। और जिस कै रागादिक होने का कुछ विषाद नाहीं तिन के नाश का उपाय नाहीं तिस कै रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं सम्भवे है ऐसे श्रद्धान बिना सम्यग्दृष्टि कैसे होय जीवाजीवादिक तत्वन का श्रद्धान करने का प्रयोजन तो इतना ही है। और भरतादिक सम्यग्दृष्टीन कै विषय कषायन की प्रवृत्ति जैसी हुई है सो भी विशेष आगे कहेंगे। तू उन का उदाहरण कर स्वच्छन्द होगा तो तेरै तीव्र आश्रव बन्ध होगा। सोई कहा है॥

मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदि ते स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ॥

अर्थ—ज्ञान नय के अवलोकन हारे जीव जो स्वछन्द होय मन्द उद्यमी होय है। सो संसार विषे डूबे हैं और भी तहां कहा है॥

ज्ञानिनः कर्म ननु कर्त्तुमुचितम्।

अर्थ—आत्मज्ञानी पुरुष को निश्चय से कर्म (क्रिया) करना योग्य है।

इत्यादि कलशाविषे वा तथापि :—

"न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिना"

अर्थ—आत्मज्ञान वाले पुरुष को निरर्गल (स्वतन्त्र) न होना चाहिये ॥

भवार्थ—इत्यादि कलशा विषे स्वच्छन्द होना निषेधा है। विना चाहे जो कार्य होय सो कर्म्म वन्ध का कारण नाहीं अभिप्राय से कर्त्ता होय करै। और अज्ञाता रहे यह तो वने नाहीं, इत्यादि निरूपण किया है। इसलिये रागादिक को बुरे अहितकारी जान तिनके नाशके अर्थ उद्यम राखना। तहां अनुक्रम विषे पहिले तीव्ररागादिक छोड़ने के अर्थ अशुभ कार्य छोड़ शुभ विषे उपयोग लगावना पीछे मन्द रागादिक भी छोड़ने के अर्थ शुभ को भी छोड़ शुद्धोपयोग रूप होना। और कई जीव व्यापारादिक कार्य वा स्त्री सेवनादिक कार्यन को भी घटावे हैं, और शुभ को हेय जान शास्त्राभ्यासादिक कार्यन विषे नाहीं प्रवर्त्तें हैं। वीतराग भाव शुद्धोपयोग को प्राप्त भये नाहीं। सो जीव धर्म अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ से रहित होते संते आलसी निरुद्यमी होय हैं, तिन की निन्दा पञ्चास्तिकाय के व्याख्यान विषे करी है तिन को दृष्टान्त दिया है, जैसे बहुत खीर खाण्ड खाय पुरुष आलसी होय है, वा जैसे वृक्ष निरुद्यमी है तैसे सो जीव आलसी निरुद्यमी भये हैं। अब इन को पूछिये है तुम वाह्य तो शुभ अशुभ कार्यन को घटाया परन्तु उपयोग तो आलम्ब विना रहता नाहीं। सो तुम्हारा

उपयोग कहां रहै है सो कहो। जो वह कहे है, कि आत्मा का चितवन करे है तो शास्त्रादिक अनेक प्रकार आत्मा के विचार को तो तुम ने विकल्प ठहराया, और कोई विशेषण आत्मा के जानने में बहुत काल रहता नाहीं। वारम्वार एक रूप चितवन विषे छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिक का भी उपयोग ऐसे न रह सकै इसलिये वह भी शास्त्रादिक कार्यन विषे प्रवर्त्तैं हैं। तेरा उपयोग गणधरादिक से भी कैसे शुद्ध भया मानिये। इसलिये तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैसे कोई व्यापारादिक विषे निरुद्यमी होय ठाली जैसे तैसे काल गुमावै। तैसे तू धर्म विषे निरुद्यमी होय प्रमादी हुवा वृथा ही काल गुमावै है। कभी कुछ चितवनसा करे कभी बातें बनावे। कभी भोजनादि करे। अपना उपयोग निर्मल करने को शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्तिआदि कार्यन विषे प्रवर्त्तता नाहीं सूनासा होय प्रमादी होने का नाम शुद्धोपयोग ठहराया तहां क्लेश थोड़ा होनेसे जैसे कोई आलसी होय पड़ा रहने में सुख मानें। तैसे आनन्द माने है। अथवा जैसे स्वपने विषे आप को राजा मान सुखी होय तैसे आप को भ्रम से सिद्ध समान शुद्ध मान आप ही आनन्दित होय है। अथवा जैसे कहीं रति मान सुखी होय है, तैसे कुछ विचार करने विषे रति मान सुखी होय है। इसलिये तिस को अनुभव जनित आनन्द कहे है, और जैसे कहीं अरति मान उदास होय तैसे व्यापारादिक पुत्रादिक को खेद का कारण जान तिन से उदास रहे है। तिस को वैराग्य माने है। सो ऐसा अज्ञान वैराग्य तो कषाय गर्भित है, जो वीतराग रूप उदासीन दशा विषे निराकुलता होय सो सच्चा आनन्द ज्ञान वैराग्य, ज्ञानी जीवन के

चारित्र मोह की हीनता भये प्रगट होय है। और वह व्यापारादिक क्लेश छोड़ यथेष्ट भोजनादिक कर सुखी हुआ प्रवर्त्ते है। आप को तहां कषाय रहित माने है,सो ऐसे आनन्दरूप भये तो रौद्रध्यान होय है। जहां सुख सामग्रीको छोड़ दुःख सामग्रीके संयोग भये संक्लेश न होय, राग द्वेष न उपजै, कषायभाव न होय, ऐसी भ्रम रहित प्रवृत्ति तिन कै न पाइये है। इस प्रकार जो जीव केवल निश्चयाभास के अवलम्बी हैं, सो मिथ्यादृष्टि जानने। जैसे वेदान्ती वा सांख्य मत वाले जीव केवल शुद्ध आत्मा के श्रद्धानी हैं, तैसे यह भी जानने। इसलिये श्रद्धान की समानता कर उनका उपदेश इनको इष्टलगे है। इनका उपदेश उनको इष्ट लगे है और तिन जीवन कै ऐसा श्रद्धान है। जो केवल शुद्धात्मा के चितवन से सम्वर निर्ज्जरा होय है। वा मुक्त आत्मा के सुख का अंश तहां प्रगट होय है। और जीव कै गुणस्थानादिक अशुद्ध भावन का वा आप बिना अन्य जीव पुद्गलादिक का चितवन किये आश्रवबन्ध होय है। इसलिये अन्य विचार से पराङ्मुख रहे हैं सो यह भी सत्य श्रद्धान नाहीं। क्योंकि शुद्ध स्वरूप का चितवन करो वा मत करो वा अन्य चितवन करो जो बीतरागता लिये भाव होय तो तहां सम्वर निर्ज्जरा ही होय और जहां रागादिक रूप भाव होय तहां आश्रवबन्ध ही है। जो परद्रव्य के जानने ही से आश्रव-बन्ध होय तो केवली तो समस्त परद्रव्य को जाने हैं। तिन कै भी आश्रवबन्ध होय। तब वह कहे है जो छद्मस्थ कै परद्रव्यन की चितवन होतैं आश्रवबन्ध होय है सो भी नाहीं। क्योंकि शुक्लध्यान विषै भी मुनीन कै छहौं द्रव्यन के गुण पर्याय का चितवन होना निरूपण किया है। वा अवधिमनः-

पर्यायादिक विषे परद्रव्य जानने ही की विशेषता होय है। और चौथे गुणस्थान विषे कहूं अपने स्वरूप का चितवन करे हैं। तिन कै भी आस्रवबन्ध अधिक है। गुणश्रेणी निर्जरा नाहीं है, पञ्चम गुणस्थान विषे आहार विहारादि क्रिया होतें परद्रव्य चितवन से भी आस्रवबन्ध थोड़ा है। वा गुण श्रेणी निर्ज्जरा हुवा करे है। इसलिये स्वद्रव्य के चितवन से भी निर्ज्जरावन्ध नाहीं रागादिक घटे निर्ज्जरा होय है रागादिक भये वन्ध है सो रागादिक के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नाहीं, इसलिये अन्यथा माने हैं। तहां वह पूछे है, कि ऐसे है तो निर्विकल्प अनुभव दशा विषे तप प्रमाण निक्षेपादिक का वा दर्शन ज्ञानादिक का भी विकल्प करने का निषेध किया है सो कैसे। —:(तिस का समाधान):— जो जीव इन ही विकल्पों विषे लग रहे हैं। अभेद रूप एक आप को अनुभवें नाहीं हैं तिन को ऐसा उपदेश दिया है। जो यह सर्व विकल्प वस्तु के निश्चय करने का कारण है वस्तु के निश्चय भये इन का प्रयोजन कुछ रहे नाहीं। इसलिये इन विकल्पनको छोड़ अभेद रूप एक आत्मा का अनुभव करना। इन के विचार रूप विकल्प ही विषे फस रहना योग्य नाहीं। और वस्तु के निश्चय भये पीछे ऐसा नाहीं जो सामान्य रूप ही का चितवन रहा करे। स्वद्रव्य का वा परद्रव्य का सामान्य रूप वा विशेष रूप जानना होय परन्तु वीतरागता लिये होय तिस ही का नाम निर्विकल्प दशा है। तहां वह पूछे है, कि यहां तो वहुत विकल्प भये हैं इनको निर्विकल्पसंज्ञा कैसे सम्भवे। —:(तिसका उत्तर):—निर्विचार होने का नाम निर्विकल्प नाहीं है। क्योंकि छद्मस्थ कै जानना विचार लिये है, तिसका अभावमाने ज्ञान

का अभाव होय है। तब जड़पना भया सो आत्मा के होता नाहीं। इसलिये विचार तो रहे ही है और जो कहोगे समान्य ही का विचार है विशेष का नाहीं तो सामान्य विचार तो बहुत काल रहता नहीं वा विशेष की अपेक्षा विना सामान्य का स्वरूप भासता नाहीं। जो कहोगे आप हीं का विचार रहता है परका नाहीं तो पर विषे पर बुद्धि भये विना आप विषे निज बुद्धि कैसे आवे। तहां वह कहे है, समय-सार विषे ऐसा कहा है :—

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमिच्छन्न धारया।
तावध्यायन्परं धूत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥

अर्थ—भेद विज्ञान जब तक निरन्तर भावना तब तक पर से छूट ज्ञान विज्ञान विषे स्थित होय क्योंकि भेद विज्ञान छुटे विशेष जानना मिट जाय है। और केवल आप ही को आप जाना करे है। —:(तिस का उत्तर):— यहां तो यह कहा है। जो पूर्वें आपा पर को एक जाने था, पीछे जुदा जानने के लिये भेद विज्ञान को जब तक ही भावना तब तक ज्ञानकर पर रूप को भिन्न जान अपने ज्ञान रूप ही विषे निश्चिन्त होय पीछे भेद विज्ञान करने का प्रयोजन रहा नाहीं। स्वयमेव पर को पररूप आत्मा से भिन्न जाना करे है ऐसा नाहीं है जो परद्रव्य का जानना ही मिटजाय है, इसलिये परद्रव्य का जानना वा स्वरूप को विशेष जानने का नाम विकल्प नाहीं है सो कैसा है सो कहिये है। राग द्वेष के वश से

किसी ज्ञेय के जानने विषे उपयोग लगावना, वा किसी ज्ञेय के जानने से छुडावना ऐसे वारम्वार उपयोग को भ्रमावना तिस का नाम विकल्प है । और जहां वीतराग रूप होय जिस को जाने है तिस को यथार्थ जाने है अन्य अन्य ज्ञेय के जानने के लिये उपयोग को नाहीं भ्रमावे है। तहां निर्वि-कल्प दशा जाननी। यहां कोई कहे छद्मस्थ का उपयोग तो नाना ज्ञेय विषे भ्रमे ही भ्रमै तहां निर्विक-ल्पता कैसे सम्भवे है। —:(तिस का उत्तर):— जितने काल एक जानने रूप रहे। तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्त विषे ध्यान का लक्षण ऐसा कहा है :—

"एकाग्रचित्तनिरोधो ध्यानम्"

अर्थ—एकाग्र हुए चित्त को रोकना इसका नाम ध्यान है॥

भावार्थ—एक का मुख्य चितवन होय अन्य चिन्ता का निरोध होय तिस का नाम ध्यान है, सर्वार्थसिद्धि सूत्र की टीका विषे यह विशेष कहा है जो सर्व चिन्ता रोकने का नाम ध्यान होय तो अचेतनपना होजाय। और ऐसी भी विवक्षा है जो सन्तान अपेक्षा नाना ज्ञेय का भी जानना होय। परन्तु जबतक वीतरागता रहे रागादिक कर आप उपयोग को भ्रमावे नाहीं, तब तक निर्विकल्प दशा कहिये है। तब वह कहे हैं ऐसे है तो परद्रव्य से छुडाय स्वरूप विषे उपयोग लगावने का उपदेश किस लिये दिया है। —:(तिस का समाधान):— शुभाशुभ भावन के कारण परद्रव्य

हैं, तिन विषे उपयोग लगने से जिन के राग द्वेष होय आवे है। और स्वरूप चितवन करे तो राग द्वेष घटे । ऐसी नीचली अवस्था वाले जीवन को पूर्वोक्त उपदेश है। जैसे कोई स्त्री विकार भाव कर पर घर जाती थी तिस को मने किया, कि तू पर घर मत जाय घर में बैठी रहो। और जो स्त्री निर्विकार भाव कर किसी के घर जाय यथायोग्य प्रवर्त्तै तो कुछ दोष है नाहीं। तैसे यह उपयोग रूप परणति राग द्वेष भाव कर परद्रव्यन विषे प्रवर्त्तै थी तिस को मनै करा परद्रव्यन विषे मत प्रवर्त्तै, स्वरूप विषे मग्न रहो। और जो उपयोगरूप परणति वीतराग भाव कर परद्रव्य को जान यथायोग्य प्रवर्त्तै तो कुछ दोष है नाहीं। तब वह कहे है, ऐसे है तो महा मुनि परिग्रहादिक के त्याग का चितवन किसलिये करे हैं। —:(तिस का समाधान):— जैसे विकार रहित स्त्री कुशील के कारण परघर का त्याग करे, तैसे बीतराग परणति राग द्वेष के कारण परद्रव्यन का त्याग करे है। और जो व्यभिचार के कारण नाहीं। ऐसे परघर जाने का त्याग है नाहीं। तैसे जो राग द्वेष के कारण नाहीं ऐसे परद्रव्य जानने का त्याग है नाहीं। तब वह कहे है। जैसे स्त्री प्रयोजन जान पितादिक के घर जावे तो जावे बिना प्रयोजन जिस तिस के. घर जाना तो योग्य नाहीं है। तैसे परणति प्रयोजन जान सप्त तत्वन का विचार करे, तो दोष नाहीं परन्तु बिना प्रयोजन गुणस्थानादिक का बिचार करना योग्य नाहीं। —:(तिस का समाधान):— जैसे जो स्त्री प्रयोजन जान पितादिक के मित्रादिक के भी घर जाय। तैसे परणति तत्वन का विशेष जानने का कारण गुणस्थानादिक कर्मादिक को भी जाने।

और यहां ऐसा जानना । जैसे स्त्री शीलवती उद्यम कर तो कुशील के कारण विट् पुरुषन के स्थान में न जाय, परन्तु परवश से तहां जाना वन जाय तो तहां कुशील न सेवै तो सो स्त्री शीलवती ही है । तैसे वीतराग परणति उपाय कर तो रागादिक के कारण परद्रव्यन विषे न लगे है जो स्वयमेव तिन का जानना होजाय तो तहां रागादिक न करे तो सो परणति शुद्ध ही है । तैसे स्त्री आदि की परिग्रह मुनि के होय तिन को जाने ही नाहीं । अपने स्वरूप ही का जानना रहे है । ऐसा मानना मिथ्या है । उन को जानते तो हैं परन्तु रागादिक नाहीं करे हैं । इस प्रकार परद्रव्य को जानते भी वीतराग भाव होय है ऐसा श्रद्धान करना । तब वह कहे है ऐसे है तो शास्त्र विषे ऐसा कैसे कहा है । जो आत्मा का श्रद्धान ज्ञान आचरण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है । —:(तिस का समाधान):— अनादि से परद्रव्य विषे आप का श्रद्धान ज्ञान आचरण था, तिस के छुडावने को यह उपदेश है । आप ही विषे आप का श्रद्धान ज्ञान आचरण भये परद्रव्य विषे राग द्वेषादिक परणति करने का श्रद्धान वा आचरण मिट जाय तब सम्यग्दर्शनादिक होय है । जो परद्रव्य का परद्रव्य रूप श्रद्धानादिक करने से सम्यग्दर्शनादिक होय नाहीं तो केवली के भी तिन का अभाव होय । जहां परद्रव्य को बुरा जानना निजद्रव्य को भला जानना, तहां तो राग द्वेष सहज ही भया । जहां आप को आपरूप पर को पररूप यथार्थ जाना करे तहां राग द्वेष नाहीं । तैसे ही श्रद्धानादिक रूप प्रवर्तें तब ही सम्यग्दर्शनादिक रूप होय है ऐसा जानना । इसलिये बहुत क्या कहिये जैसे रागादिक मिटा-

वने का श्रद्धान होय सोई श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। जैसे रागादिक मिटावने का जानना होय सोई जानना सम्यग्ज्ञान है। जैसे रागादिक मिटे सोही आचार सम्यक् चारित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है। इस प्रकार निश्चय नय का आभास लिये एकान्त पक्ष के धारी जैनाभास तिन का मिथ्यात्व निरूपण किया ॥

अब व्यवहाराभास पक्ष के धारक जैनाभास के मिथ्यात्व का निरूपण कीजिये है ॥

जिन आगम विषे जहां व्यवहार की मुख्यता कर उपदेश है, तिस को जान वाह्य साधन ही का श्रद्धानादिक करे है। तिन के सर्व धर्म्म के अङ्ग अन्यथा रूप मिथ्या भाव को प्राप्त होय हैं। सो विशेष कहिये है। यहां ऐसा जान लेना, व्यवहार धर्म्म की प्रवृत्ति से पुण्यबन्ध होय है। इसलिये पाप प्रवृत्ति अपेक्षा तो इस का निषेध है नाहीं, परन्त जहां जो जीव व्यवहार प्रवृत्ति कर ही संतुष्ट होय और सांचे मोक्षमार्ग विषे उद्यमी न होय, तिस को मोक्षमार्ग विषे सन्मुख करने को तिस की शुभ रूप मिथ्यात्व प्रवृत्ति का भी निषेध निरूपण कीजिये है सो यह कथन कीजिये है, तिस को सुन जो शुभ प्रवृत्ति छोड़ अशुभ प्रवृत्ति करोगे तो तुम्हारा बुरा होगा। और जो यथार्थ श्रद्धान कर मोक्षमार्ग विषे प्रवर्त्तोगे तो तुम्हारा भला होगा। और जैसे कोई रोगी निर्गुण औषधि का निषेध सुन औषध

साधन छोड़ कुपथ्य करेगा तो वह मरेहीगा। वैद्य का कुछ दोष नाहीं। तैसे कोई संसारी पुण्य रूप धर्म का निषेध सुन धर्म साधन छोड़ विषय कषाय रूप प्रवर्त्तेगा तो वही नरकादिक विषे दुःख पावेगा। उपदेशदाता का तो दोष है नाहीं। उपदेश देने वाले का तो अभिप्राय असत्य श्रद्धानादिक छुडाय मोक्षमार्ग विषे लगावने का जानना। ऐसे अभिप्राय से यहां निरूपण कीजिये है। तहां कई जीव तो कुलक्रम ही कर जैनी हैं। जैन धर्म्मका स्वरूप जानते नाहीं परन्तु कुलविषे जैसी प्रवृति चलीआई है तैसे ही प्रवर्त्तें हैं। सो जैसे अन्य मती अपने कुल धर्म्म विषे प्रवर्त्तें हैं तैसे यह भी प्रवर्त्तें हैं, जो कुलक्रम ही से धर्म्म होय तो म्लेच्छ आदि सर्व ही धर्म्मात्मा होयें जैनधर्मका विशेष क्या रहा। सोई कहा है,

गाथा—लोयम्मि रायणीया णायं ण कुलकम्मिकयईया।
किंपुण् णं तिलोय पहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि॥

अर्थ—लोक विषे यह राज नीति है, कि कदाचित् कुल क्रम कर न्याय नाहीं होय है जिसका कुल चोर होय तो चोरी करते पकड़ें तो उस का कुल क्रम जान छोड़ें नाहीं दण्ड ही दें हैं तो त्रिलोकप्रभु जिनेन्द्रदेव के धर्म्म के अधिकार विषे कैसे कुल क्रम अनुसार न्याय संभवे और जो पिता दरिद्री होय आप धनवान् होय तहां तो कुल क्रम विचार आप दरिद्री होय नाहीं धर्म्म विषे कुल का क्या प्रयो-जन है। और पिता नरक जाय पुत्र मोक्ष जाय तहां कुलक्रम कैसे रहा। जो कुल ऊपर दृष्टि होय तो पुत्र

भी नरकगामी होय सो धर्म्म विषे कुलक्रम का कुछ प्रयोजन नाहीं । इसलिये शास्त्रन का अर्थ विचार कर जो काल दोष से जिन धर्म्म विषे भी पापी पुरुषन कर कुदेव, कुगुरु, कुधर्म्म, सेवनादिक रूप वा विषय कषाय पोषणादिरूप विपरीत प्रवृत्ति चलाई है तिस का त्याग कर जिन आज्ञानुसार प्रवर्तना योग्य है । यहां कोई कहे परम्परा छोड़ नवीन मार्ग विषे प्रवर्तना युक्त नाहीं तिस को कहिये है जो अपनी बुद्धि कर नवीन मार्ग पकड़े तो युक्त नाहीं। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्म्म का स्वरूप शास्त्रन विषे लिखा है तिस की प्रवृत्ति मेट बीच में पापी पुरुषन ने अन्यथा प्रवृत्ति चलाई है सो तिस को परम्परा मार्ग कैसे कहिये । और तिस को छोड़ पुरातन जैन शास्त्रन विषे जैसा धर्म्म लिखा था, तैसा प्रवर्त्ते तो तिस को नवीन मार्ग कैसे कहिये । और जो कुल विषे जैसे जिनदेव की आज्ञा है तैसे ही धर्म्मकी प्रवृत्ति है तो आप को भी तैसे ही प्रवर्तना योग्य है परन्तु तिस को कुलाचरण न जानना । धर्म्म जान तिस के स्वरूप फलादिक का निश्चय कर अंगीकार करना, जो सांचे भी धर्म को कुलाचरण जान प्रवर्त्ते हैं उन को भी धर्म्मात्मा न कहिये । क्योंकि सर्व कुल के उस आचरण को छोड़े तो आप भी छोड़ दे, और वह आचरण करे है सो कुल का भय कर करे है कुछ धर्म्म बुद्धि से नाहीं करे है सो वह धर्म्मात्मा नाहीं । इसलिये व्यवहारादिक कुल सम्बन्धी कार्य्यन विषे तो कुल कर्म्म का विचार करना और धर्म सम्बन्धी कार्यन विषे कुल का विचार न करना जैसे धर्म मार्ग सांचा तैसे प्रवर्तना योग्य है । और कितने ही आज्ञानुसारी जैनी होय हैं । जैसी उस विषे आज्ञा है तैसी माने हैं

परन्तु आज्ञा की परीक्षा करते नाहीं जो आज्ञा ही मानना धर्म है तो सर्व मत वाले अपने २ शास्त्रन की आज्ञा मान धर्मात्मा होयें इसलिये परीक्षा कर जिन वचन का सत्यपना पहिचान जिन आज्ञा माननी योग्य है, बिना परीक्षा किये सत्य असत्य का निर्णय कैसे होय। और बिना निर्णय किये जैसे अन्यमती अपने शास्त्रन की आज्ञा माने हैं तैसे इस ने जिन शास्त्रन की आज्ञा मानी यह तो पक्ष कर आज्ञा मानना होय है। —:(यहां प्रश्न):— शास्त्र विषे दश प्रकार सम्यक् विषे आज्ञा सम्यक् कहा है। वा आज्ञा विचय धर्म ध्यानका भेद कहा है। निःशंकित अङ्ग विषे जिन वचन विषे संशय करना निषेधा है सो कैसे है। —:(तिस का समाधान):— शास्त्र विषे कई तो कथन ऐसे हैं जिन की प्रत्यक्ष अनुमानादिक कर परीक्षा कर सकिये है और कई कथन ऐसे हैं जो प्रत्यक्ष अनुमानादिक गोचर नाहीं। इसलिये वह आज्ञाही कर प्रमाण होय हैं तहां नानाशास्त्रन विषे जो कथन समान होय तिनकी तो परीक्षा करने का प्रयोजन है नाहीं। और जो कथन परस्पर विरुद्ध होय तिन विषे जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादिक गोचर होय तिनकी तो परीक्षा करनी तहां जिन शास्त्रन के कथनकी प्रमाणता ठहरे तिन शास्त्रन विषे जो प्रत्यक्ष अनुमान गोचर नाहीं ऐसे कथन किये होयें तिनकी भी प्रमाणता करनी। और जिन शास्त्रन विषे कथन की प्रमाणता न ठहरे तिनके सर्व ही कथन की अप्रमाणता माननी। यहां कोई कहे परीक्षा किये कोई कथन किसी शास्त्र विषे प्रमाण भासे कोई कथन किसीशास्त्र विषे अप्रमाणभासे तो क्या करिये। —:(तिस का समाधान):— जो आप्त के भासे शास्त्र हैं तिन विषे कोई

कथन भी प्रमाण विरुद्ध न होय क्योंकि कै तो जानपना न होय कै राग द्वेष होय तो असत्य कहै। सो आप्त कै ऐसा दोष है नाहीं। इसलिये परीक्षा भली प्रकार करी नाहीं है। इसलिये यह भ्रम है, तब वह कहै है जो छद्मस्थ कै अन्यथा परीक्षा हो जाय तो क्या करै। —:(तिसका समाधान):— सांची झूठी दोनों वस्तुओं को लिखे और प्रमाद छोड़ परीक्षा करै तो सांची ही परीक्षा होय जहां पक्षपात कर नीकै परीक्षा न करै तो तहां ही अन्यथा परीक्षा होय है तब वह कहै है जो शास्त्र विषे परस्पर विरुद्ध कथन तो घने ही हैं किस २ की परीक्षा करिये। —:(तिस का समाधान):— मोक्षमार्ग विषे देव गुरु धर्म्म वा जीवादिक तत्व वा बंध मोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं सो इन की तो परीक्षा कर लेवै और जिन शास्त्रन विषे यह सांच कहे हैं तिन सर्व की आज्ञा माननी योग्य है। और जिन विषे यह अन्यथा प्ररूपें हैं तिनकी आज्ञा न माननी। जैसे लोक विषे जो पुरुष प्रयोजनभूत कार्य्य विषे झूठ न बोले सो प्रयोजन रहित कार्यन विषे कैसे झूठ बोलेगा, तैसे जिन शास्त्रन विषे प्रयोजनभूत देवादिक का स्वरूप अन्यथा न कहा तिस विषे प्रयोजन रहित द्वीप समुद्रादिक का कथन अन्यथा कैसे होगा, क्योंकि देवादिक का कथन अन्यथा किये वक्ता के विषय कषाय पोषे जाय हैं। —:(यहां प्रश्न):— जो देवादिक का कथन तो अन्यथा विषय कषाय से किया, तिन ही शास्त्रन विषे अन्य कथन अन्यथा किस लिए किया। —:(तिस का समाधान):— जो एक ही कथन अन्यथा कहे तो उस का अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट हो जाय जुदी पद्धति ठहरे नाहीं इसलिये घने कथन अन्यथा करने से जुदी पद्धति

ठहरे है तहां तुच्छ बुद्धि भ्रम में पड़ जायें, कि यह भी मत है इसलिये प्रयोजनभूत में अन्यथापना मिलावनें के अर्थ अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घने ही किये और प्रतीति जनावने के अर्थ कोई २ सच्चा भी कथन किया है परन्तु स्याना होय सो भ्रम में पड़े नाहीं प्रयोजनभूत कथन की परीक्षा कर जहां सांचा भासे तिस मत की सर्व आज्ञा मानें। सो परीक्षा किये जैनमत ही सांचा भासे है अन्य नाहीं। क्योंकि इस का वक्ता सर्वज्ञ बीतराग है। सो झूठ किस लिये कहे, ऐसे जिन आज्ञा मानने से जो सांचा श्रद्धान होय उस का नाम आज्ञासम्यक्त है। और तहां एकाग्र चितवन होय उस ही का नाम आज्ञाविचय धर्म्म ध्यान है, जो ऐसे न मानिये और बिना परीक्षा किए ही आज्ञामानने से सम्यक् वा धर्म ध्यान हो जाय तो जो द्रव्यलिङ्गी आज्ञा मान मुनि भया और आज्ञानुसार साधन कर ग्रीवैयक पर्यन्त प्राप्ति होय है तो तिस के मिथ्यादृष्टि पना कैसे रहा । इसलिये कुछ परीक्षा कर आज्ञा माने ही सम्यक् वा धर्म्मध्यान होय है, लोक विषे भी कोई प्रकार परीक्षा भये ही पुरुष की प्रतीति कीजिये है। और तू कहा जिन वचन विषे संशय करने से सम्यक्त में शंका नाम दोष होय है सो न जानियें यह कैसे है ऐसा मान निर्णय न कीजिये तो तहां शंका नाम दोष होय है । और जहां निर्णय करने के विचार से ही सम्यक्त को दोष लगे तो अष्टसहस्री विषे आज्ञा प्रधान से परीक्षा प्रधान को उत्तम किस लिये कहा। पूछना आदि स्वाध्याय के अङ्ग कैसे हैं प्रमाण नय से पदार्थन के निर्णय करने का उपदेश किसलिये दिया। इसलिये परीक्षा कर आज्ञा माननी योग्य है । और कई

पापी पुरुषों ने अपना कल्पित कथन किया है। और तिन को जिन वचन ठहराया है सो तिन को जैनमत का शास्त्र जान प्रमाण न करना तहां भी प्रमाणादिक से परीक्षा कर वा परस्पर शास्त्रन से विधि मिलाय वा ऐसे संभवै कि नाहीं, ऐसा विचार कर विरुद्ध अर्थ को मिथ्या जानना। जैसे ठग आप पत्र लिख तिस में लिखने वाले का नाम किसी साहूकार का धरा तिस के नाम के भ्रम से कोई धन को ठगावे तो दरिद्री ही होय, तैसे पापी आप ग्रन्थादिक बनाय तहां कर्त्ता का नाम जिन गणधर आचार्य का धरा, तिस नाम के भ्रम से झूठा श्रद्धान करे तो मिथ्यादृष्टि ही होय। तब वह कहे है। गोमट्टसार विषे ऐसा कहा है। सम्यक्दृष्टि जीव अज्ञानी गुरु के निमित्त से झूठा भी श्रद्धान करे तो आज्ञा मानने से सम्यग्दृष्टि ही है, सो यह कथन कैसे किया है। —:(तिस का उत्तर):— जो प्रत्यक्ष अनुमानादिक गोचर नाहीं। सूक्ष्म पने से निर्णय जिन का न होय सकै तिन की अपेक्षा यह कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्म्मादि तत्वादिक का अन्यथा श्रद्धान भये तो सर्वथा सम्यक् रहे नाहीं यह निश्चय करना। इसलिये बिना परीक्षा किये केवल आज्ञा ही कर जैनी हैं सो भी मिथ्यादृष्टि जानने। और कई परीक्षा भी कर जैनी हैं परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करै हैं। दया शील तप संयमादिक क्रिया कर वा पूजा प्रभावनादिक कार्यन कर वा अतिशय चमत्कारादिक कर वा जिन धर्म से इष्टप्राप्ति होने कर जिन मत को उत्तम जान प्रीतवंत होय जैनी होय हैं। सो अन्य मत विषे भी यह कार्य तो होय है। इसलिये इन लक्षणन विषे तो अतिव्याप्ति दोष पाइये है। —:(यहां प्रश्न):— जैसे जिन धर्म विषे यह

कार्य हैं। तैसे अन्यमत विषे नाहीं पाई हैं इसलिये अतिव्याप्ति नाहीं । —:(तिसका समाधान):— यह तो सत्य है असे ही है। परन्तु तू जैसे दयादि माने है तैसे वह भी निरूपै हैं। परजीवन की रक्षा को तू दया कहे सोई वह कहे हैं असे ही अन्य भी जानने तब वह कहे है उनके ठीक नाहीं कभी दया प्ररूपैं कभी हिंसा प्ररूपैं हैं तिस को कहिये है तहां दयादिक का अंशमात्र तो आया इसलिये अतिव्याप्तिपना इन लक्षण कै पाइये है। इन कर सांची परीक्षा होय नाहीं। तब कैसे होय सो कहिये है जिन धर्म विषे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग कहा है। तहां सांचे देवादिक का वा जीवादिक का श्रद्धान किये सम्यक्त होय है वा तिन के जाने सम्यक् ज्ञान होय है, वा सांचा रागादिक मिटे सम्यक्चारित्र होय है सो इनका स्वरूप जैसे जिन मत विषे निरूपण किया है तैसे कहीं निरूपण किया नाहीं। वा जैनी बिना अन्यमती असा कार्य कर सकते नाहीं। इसलिये यह जिन मत का सांचा लक्षण है। इस लक्षण को पहिचान जो परीक्षा करे सो ही श्रद्धानी है। इस बिना अन्य प्रकार परीक्षा करे हैं, सो मिथ्यादृष्टि ही रहे हैं । और कई सङ्गति कर ही जैन धर्म को धारें हैं, कई महान् पुरुष को जिन धर्म विषे प्रवर्त्तता देख आप भी प्रवर्त्तें हैं कई जिन धर्म की शुद्ध वा अशुद्ध क्रियान विषे प्रवर्त्तें हैं इत्यादि अनेक प्रकार के जीव आप विचार कर जिन धर्म का रहस्य नाहीं पहिचाने हैं और जैनी नाम धरावें हैं सो सर्व मिथ्यादृष्टि जानने । इतना तो है जिन मत विषे पाप की प्रवृति विशेष न होय सके है और पुण्य के निमित्त घने हैं और सांचा मोक्षमार्ग का भी कारण तहां बन रहा है, इसलिये जो कुलादिक कर भी जैनी हैं सो भी औरन से तो भले ही हैं। और

जो जीव कपट कर अजीवका के अर्थ वा वड़ाई के अर्थ वा कुछ विषय कषाय संबंधी प्रयोजन विचार जैनी होयहैं सो पापीहैं। और तीव्रकषाय भये ही असी बुद्धि आवे है सो उन का सुलझना कठिनहै। जैनधर्म तो संसार के नाश के अर्थ सेविये है तिसकर जो सांसारिक प्रयोजन साधा चाहे हैं सो वड़ा अन्याय करे हैं इसलिये सो तो मिथ्यादृष्टि ही हैं यहां कोई कहे, कि हिंसा कर जिन कार्यन को करिये सो कार्य्य धर्म साधन कर सिद्ध कीजिये तो बुरा क्या भया। दोनों प्रयोजन सधैं तिसको कहिये है पापकार्य धर्म कार्य का एक साधन किये पाप ही होय है जैसे कोई धर्म का साधन चैत्यालय बनाय तिस ही को स्त्री सेवनादि पाप कार्य का भी स्थान करे तो पापी हीहोय। और हिंसादिक कर भोगादिक के अर्थ जुदा मंदिर बनावे तो बनावो, परन्तु चैत्यालय विषे भोगादिक करना युक्त नाहीं। तैसे धर्म का साधन पूजा शास्त्रादिक कार्य हैं। तिन ही को आजीविकादि पापके भी साधन करे तो पाप ही होय। हिंसादिक कर प्रयोजन अर्थ व्यापारादि करेगा तो करो। परन्तु पूजादिक कार्यन विषे प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो ऐसे है तो मुनि भी धर्म साधने के लिये पर घर भोजन करें हैं वा साधर्म्मी साधर्म्मी का उपकार करे करावें हैं सो कैसे बने। —:(तिसका उत्तर):— जो आप तो कुछ आजीविकादिक का प्रयोजन साध धर्म नाहीं साधे है आपको धर्मात्मा जान कोई स्वयमेव भोजन उपकारादिक करे है तो कुछ दोष नाहीं। और जो आप ही भोजानादिक का प्रयोजन विचार धर्म साधे है सो पापी ही है। जो वैरागी होय मुनिपना अंगीकार करे हैं। तिनके भोजनादिक का प्रयोजन नाहीं शरीरादिक की स्थिति के

अर्थ स्वयमेव भोजनादिक कोई देवे तो लेवें और नाहीं तो समताराखें संक्लेश रूप होयें नाहीं। और आप हितके अर्थ धर्म साधें हैं, और आपकै जिसका त्याग नाहीं असा उपकार करावें हैं, सो भी कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करे तो करो उनकै उपकार करवाने का अभिप्राय नाहीं है। और करे तो आपकै कुछ संक्लेश सुख होता नाहीं असे तो योग्य है और आप ही आजीविका आदिका प्रयोजन साध वाह्य साधन धर्म का करे जहां भोजनादिक उपकार कोई न करे तहां संक्लेश करै यांचना करै उपाय करै वा धर्म साधन विषे शिथिल हो जाय सो पापी ही जानना। असे सांसारिक प्रयोजन लिये जो धर्म साधे हैं सो पापी ही हैं, और मिथ्यादृष्टि भी हैं। इस प्रकार जिन मत वाले भी मिथ्यादृष्टि जानने। अब इनकै धर्म का साधन कैसे पाइये है सो विशेष दिखाइये है। तहां जो जीव कुल प्रवृत्ति कर वा देखा देखी वा लोभादिक का अभिप्राय कर धर्म साधे हैं तिनकै तो धर्म दृष्टि नाहीं। जो भक्ति करे हैं तो चित्त तो कहीं है दृष्टि फिरा करे है, और मुख से पाठादिक करे हैं वा नमस्कारादि करे हैं। परन्तु यह ठीक नाहीं मैं कौन हूं किस की स्तुति करूं हूं किस प्रयोजन के अर्थ स्तुति करूं हूं। पाठ विषे क्या अर्थ है। सो कुछ ठीक नाहीं और कदाचित् कुदेवादिक की भी सेवा करने लग जाय है। तहां सुदेव गुरु शास्त्र विषे वा कुदेव गुरु शास्त्रादिक विषे विशेष पहिचाने नाहीं और जो दान दे है सो पात्र कुपात्र का विचार रहित जैसे अपनी प्रशंसा होय तैसे दान दे है। और तप करे है तो भूखा रह कर जैसे महंतपना होय सो कार्य करे है परिणामन की पहिचान नाहीं। और व्रतादिक धारे है तहां वाह्य क्रिया ऊपर दृष्टि है सो भी कोई सांची क्रिया करे है कोई

झूठी क्रिया करे है सो अन्तरङ्ग में रागादिक भाव पाइये हैं तिनका विचार नाहीं। वाह्य भी रागादिक पोषने का साधन करेहै और पजा प्रभावनादिक कार्य करेहै। तहां जैसे लोक विषे वड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे जायें तैसे कार्य करे है और वहुत हिंसादिक निपजावे है सो यह कार्य तो अपना वा अन्य जीवन का परिणाम सुधारने के अर्थ था। और तहां किञ्चित् हिंसादिक भी निपजै है तो थोड़ा अपराध होय और गुण वहुत होयें सो कार्य्य करना कहाहै परंतु इसके परिणामन की पहिचान नाहीं और यहां अपराध कितना लगेहै गुण कितना होयहै सो नफे टोटे का ज्ञान नाहीं विधि अविधि का ज्ञान नाहीं। और शास्त्र अभ्यास करे है तहां पद्धति रूप प्रवर्त्ते है जो वाचे है तो औरन को सुनायदे है पढ़ैहै तो आप पढ़ जाय है। सुने है सो सुन ले है। जो शास्त्राभ्यास का प्रयोजन है तिसको आप अन्तरङ्ग विषे नाहीं अवधारे है इत्यादि धर्म कार्यन का मर्म नाहीं पहिचाने है जैसे कुल विषे बड़े प्रवर्त्ते हैं तैसे हमको भी करना वा ऐसे किये हमारे लोभादिक की सिद्धि होसी इत्यादिक विचार लिये अभूतार्थ धर्म को साधे है। और कई जीव ऐसे हैं जिनके कुछ तो कुलादिक रूप बुद्धि है कुछ धर्म वुद्धि भी है इसलिये पूर्वोक्त प्रकार भी धर्म्म का साधन करेहै। और कुछ आगम में कहा तिसप्रकार अपने परिणाम भी सुधारे है इसकै मिश्रपना पाइये है। और कई धर्म बुद्धि कर धर्म साधे हैं। परन्तु निश्चय धर्म्म को न जाने हैं इसलिये अभूतार्थ रूप धर्म को साधे हैं तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को मोक्षमार्ग जान तिनका साधन करे हैं तहां शास्त्र विषे देव गुरुधर्म की प्रतीति किये सम्यक् होना कहा है ऐसी आज्ञा मान अरहंत देव निर्ग्रंथ

गुरु जैनधर्म जैनशास्त्र बिना औरन को नमस्कार करने का त्याग किया है परन्तु तिन के गुण औगुण की परीक्षा नाहीं करे हैं अथवा परीक्षा भी करे हैं तो तत्वज्ञान रूप साची परीक्षा नाहीं करें हैं वाह्य लक्षण कर परीक्षा करे हैं ऐसे प्रतीति कर सुदेव गुरु शास्त्रन की भक्ति विषे प्रवर्त्तें हैं तहां अरहंत देव हैं सो इंद्रादिक कर पूज्य हैं अनेक अतिशय सहित हैं क्षुधादिक दोष रहित हैं शरीरकी सुंदरता को धरे हैं स्त्री संगमादिक रहित हैं दिव्यध्वनि कर उपदेश दे हैं केवल ज्ञान कर लोकालोक जाने हैं काम क्रोधादिक नष्ट किये हैं इत्यादिक विशेषण करे हैं यहां इन विषे कई विशेषण तो पुद्गल के आश्रय हैं कई जीव के आश्रय हैं तिनको भिन्न भिन्न नाहीं पहिचाने हैं जैसे असमान जातीय मनुष्यादिक पर्य्यायन विषे भिन्न भिन्न जान मिथ्यादृष्टि धरे हैं और जो वाह्य विशेषण हैं तिन को जान तिन कर अरहंत देव के महंत पना माने हैं और जो जीव के विशेषण हैं तिन को यथावत् न जान तिन कर अरहंत देव का महंतपना आज्ञा अनुसार मानें हैं अथवा अन्यथा माने हैं क्योंकि यथावत् जीव का विशेषण जान मिथ्यादृष्टि रहे नाहीं और तिन अरहंतन को स्वर्ग मोक्ष का दाता दीनदयालु अधम उधारक, पतित पावन, माने हैं ऐसा नाहीं जाने हैं, कि फल तो अपने परिणामन का लगे है अरहंत तो निमित्त मात्र हैं इसलिये उपचार कर वह विशेषण संभवे है अपने परिणाम शुद्धि भये बिना अरहंत स्वर्ग मोक्ष का दाता नाहीं और अरहंतादिक के नामादिक से स्वानादिक ने स्वर्ग पाया तहां नामादिक का ही अतिशय माने हैं बिना परिणाम मिले मनुष्यादिक भी स्वर्ग प्राप्त नाहीं होयें तो सुनने वालों को कैसे

होय स्वानादिक कै नाम सुनने के निमित्त से कोई मंद कषाय रूप भाव भये हैं तिन का फल स्वर्ग
भया है उपचार कर नाम ही की मुख्यता करी है और अरहंतादिक के नाम वा पूजनादिक से अनिष्ट
सामग्री का अभाव इष्ट सामग्री की प्राप्ति मान रोगादिक मेटने के अर्थ वा धनादिक की प्राप्ति के
अर्थ नाम ले है वा पूजनादि करै सो इष्ट अनिष्ट का तो कारण पूर्व कर्म्म का उदय है अरहंत तो
कर्त्ता है नाहीं। अरहंतादिक की भक्ति रूप शुभोपयोग परिणामन से पूर्व पाप का संक्रमणादिक हो
जाय है इसलिये उपचार कर अनिष्ट का नाश और इष्ट की प्राप्ति का कारण अरहंतादिक की भक्ति
कहिये है। और जो जीव पहिले ही सांसारिक प्रयोजन लिये भक्ति करै तिसकै तो पाप ही का अभिप्राय
भया। कांचा रूप भाव भये तिन कर पूर्व पाप का संक्रमण कैसे होय, और कई जीव भक्ति को मुक्ति का
कारण जान तहां अति अनुरागी होय प्रवर्त्तैं हैं सो अन्यमती जैसे भक्ति से मुक्ति माने हैं तैसे इन कै
भी श्रद्धान भया, सो भक्ति तो राग रूप है राग से बंध है इसलिये मोक्ष का कारण नाहीं। जब राग का
उदय आवे तब भक्ति न करै तो पापानुराग होय इसलिये अशुभ राग छोड़ने को ज्ञानी भक्ति विषे प्रवर्त्तैं
हैं वा मोक्षमार्ग का भी बाह्य निमित्त मात्र माने हैं परन्तु यहां ही उपादेय मान संतुष्ट न होय हैं।
शुद्धोपयोग के उद्यमी रहे हैं,सोई पंचास्तिकाय व्याख्यान विषे कहा है।

इयं भक्तिः केवलं भक्ति प्रधानस्या ज्ञानिनो भवति।

तीव्ररागद्वेषविनोदार्थंस्थानरागनिषेधार्थंकदाचित् ज्ञानिनोपि भवति॥

अर्थ–केवल भक्ति ही है प्रधान जिन कै ऐसे जीव अज्ञानी होय हैं और तीव्र राग ज्वर मेटने के अर्थ वा ठिकाने कुठिकाने राग निषेधने के अर्थ कदाचित् ज्ञानी कै भी होय है। तहां वह पूछे है। ऐसे है तो ज्ञानी से अज्ञानी कै भक्ति की अधिकता होती होगी। –:(तिस का उत्तर):– यथार्थपने की अपेक्षा कर तो ज्ञानी कै सच्ची भक्ति है अज्ञानी कै नाहीं है और राग भाव की अपेक्षा अज्ञानी के श्रद्धान विषे कारण जानने से अति अनुराग है ज्ञानी के श्रद्धान विषे शुभ बंध का कारण जानने से तैसा अनुराग नाहीं है। वाह्य कदाचित् ज्ञानी कै अनुराग घना होय है कदाचित् अज्ञानी के होय है। ऐसा जानना ऐसे देव भक्ति का स्वरूप दिखाया। अब गुरु भक्ति उस के कैसी है सो कहिये है॥

कई जीव आज्ञा अनुसारी हैं सो तो यह जाने हैं, कि यह जैन के साधु हैं। हमारे गुरु हैं इसलिये इनकी भक्ति करनी ऐसे विचार भक्ति करे हैं। और कई जीव परीक्षा भी करे हैं तहां यह मुनि दया पाले हैं शीलपाले हैं धनादिक नाहीं राखे हैं उपवासादिक तप करे हैं, क्षुधा परीषह सहे हैं। किसी से क्रोधादिक नाहीं करे हैं उपदेश दे औरन को धर्म्म विषे लगावे हैं। इत्यादि गुण विचार तिन विषे भक्ति भाव करे हैं सो ऐसेगुण तो परमहंसादिक अन्यमती तिनविषे वा जैनीमिथ्यादृष्टि तिनविषे भी पाइये हैं इस लिये इन विषे अति व्याप्तपना है इन कर सच्ची परीक्षा होय नाहीं। और इन गुणों को विचारे हैं तिन विषे

कई जीवाश्रित हैं कई पुद्गलाश्रित हैं तिनको विशेष जानना। समान जाने मुनि पर्य्यायविषे एकत्व बुद्धिसे मिथ्यादृष्टि रहे है । और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की ऐकता रूप मोक्षमार्ग सोई मनीन का साचा लक्षण है तिस को पहिचाने नाहीं क्योंकि यह पहिचान भये मिथ्यादृष्टि रहती नाहीं। ऐसे मनीन का सच्चा धर्म स्वरूप ही न जाने तो सांची भक्ति कैसे होय इसलिये पुण्य बंध का कारण भूत शुभ क्रिया रूप गुण को पहिचान तिन की सेवा से अपना भला होना जान तिन विषे अनुरागी होय भक्ति करे हैं। ऐसा गुरु भक्ति का स्वरूप कहा है । अब शास्त्र भक्ति का स्वरूप कहिये है॥

कई जीव तो कहे हैं, कि यह केवली भगवान् की वाणी है इसलिये केवली के पूज्यपना से यह भी पूज्य है। ऐसा जान भक्ति करे हैं। और कई ऐसे परीक्षा करे हैं, इन शास्त्रन विषे वैराग्यता क्षमा दया शील संतोषादिक का निरूपण है इसलिये यह उत्कृष्ट है, ऐसा जान भक्ति करें हैं सो ऐसा कथन तो अन्य शास्त्र वेदांतादिक तिन विषे भी पाइयेहै। और इन शास्त्रन विषे त्रिलोकादिक का गंभीर निरूपण है इसलिये उत्कृष्ट जान भक्ति करे हैं, सो यहां अनुमानादिक का तो प्रवेश नाहीं सत्य असत्य का निर्णय कैसे होय। इसलिये ऐसे साची परीक्षा होय नाहीं यहां तो अनेकांतरूप सांचा जीवादिक तत्वन का निरूपण है और सांचा रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग दिखाया है। तिस कर जैन शास्त्रन की उत्कृष्टता है तिस को नाहीं पहिचाने है क्योंकि यह पहिचान भये मिथ्यादृष्टि रहे नाहीं। ऐसा शास्त्र भक्ति का स्वरूप कहा। इस प्रकार इस के देव गुरु शास्त्र की प्रतीति भई, इसलिये व्यवहार सम्यक्त भया

माने है परन्तु उन का सांचा स्वरूप भासता नाहीं। इसलिये प्रतीति भी साची भई नाहीं साची प्रतीति बिना सम्यक्त की प्राप्ति नाहीं इसलिये मिथ्यादृष्टि ही है। और शास्त्र विषै तत्वार्थ श्रद्धान सम्यग्-दर्शन ऐसा वचन कहा है। इस लिये जैन शास्त्र विषै जीवादिक तत्व कहे हैं तैसे आप सीखे है तहां ही उपयोग लगावे है औरन को उपदेश दे है परन्तु तिन तत्वों का भाव भासता नाहीं। और यहां तिस वस्तु के भाव ही का नाम तत्व कहा है स्वभाव भासे बिना तत्वार्थ श्रद्धान कैसे होय, भाव वासना कहा सो कहिये है, जैसे कोई पुरुष चतुर होने के अर्थ संगीत शास्त्र कर ग्राम मूर्छना रागन का रूप ताल तिन के भेद को सीखे है, परन्तु स्वरादिक का स्वरूप नाहीं पहिचाने है। स्वरूप पहिचाने बिना अन्य स्वरादिक को अन्य स्वरादिक माने है, वा सत्य भी माने है तो निर्णय कर नाहीं माने है इस लिये उस के चतुर पना होय नाहीं तैसे कोई जीव सम्यक्त होने के अर्थ शास्त्र कर जीवादिक तत्वन के स्वरूप को सीखे है परन्तु तिन का स्वरूप नाहीं पहिचाने है स्वरूप पहिचाने बिना अन्य तत्वन को अन्य तत्व रूप मान लेवे है। वा सत्य भी माने है तो निर्णय कर नाहीं माने है। इसलिये उस के सम्यक्त होय नाहीं। और जैसे कोई सङ्गीत शास्त्रादिक पढ़ा है वा नाहीं पढ़ा है। जो स्वरादिक के स्वरूप को पहिचाने है तो वह चतुर ही है। तैसे शास्त्र पढ़ा है वा न पढ़ा है, जो जीवादिक के स्वरूप को पहिचाने है तो वह सम्यग्दृष्टि ही है। जैसे हिरण रागादिक का नाम न जाने है और तिस के स्वरूप को पहिचाने है। तैसे तुच्छ बुद्धि जीवादिक का नाम न जाने है, तिन के स्वरूप को पहिचाने है, यह

मैं हूं, यह पर है, यह भाव बुरे हैं, यह भले हैं, ऐसे स्वरूप को पहिचाने तिस का नाम भाव भासना है, शिवभूत मुनि जीवादिक का नाम न जाने था। और तुष माष भिन्न ऐसा घोषने लगा सो यह सिद्धान्त का शब्द था नाहीं, परन्तु आपा पर का भाव रूप ध्यान किया। इसलिये केवली भया। और ग्यारह अङ्ग का पाठी जीवादिक तत्वन का विशेष भेद जाने है परन्तु भाव भासे नाहीं। इसलिये मिथ्यादृष्टि ही रहे है अब इस के तत्व श्रद्धान किस प्रकार होय है, सो कहिये है। जिन शास्त्र विषे जीव के त्रस थावरादिक रूप वा गुणस्थान मार्गणादिक रूप भेदन को जाने है, और जीव के पुद्गलादिक भेद को वा तिन के वर्णादि विशेष तिन को जाने है। परन्तु अध्यात्म शास्त्र विषे भेद विज्ञान का कारणभूत वा वीतराग दशा होने के कारणभूत जैसे निरूपण किया तैसे नाहीं जाने है, और किसी प्रसङ्ग से तैसे भी जानना होजाय तो शास्त्र अनुसार जान ले है। परन्तु आप को आप जान पर का अंश भी आप विषे न मिलावना। और आप का अंश भी पर विषे न मिलावना ऐसा सांचा श्रद्धान नाहीं करे है, जैसे अन्य मिथ्यादृष्टि निर्द्धार विना पर्य्याय बुद्धि कर जानपना विषे वा वर्णादिक विषे अहं बुद्धि धारे है। तैसे यह भी आत्मा अनात्मा मिश्रित ज्ञानादिक विषे वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादिक क्रियान विषे आपा माने है और शास्त्र के अनुसार कभी सांची बात भी बनावे है परन्तु अन्तरङ्ग निर्द्धार रूप श्रद्धान नाहीं। इसलिये जैसे मतवाला माता को माता भी कहे सो स्याना नाहीं है। तैसे इस को सम्यक्ति न कहिये है। जैसे कोई और ही बातें करता होय तैसे आत्मा का

कथन करे है परन्तु यह आत्मा मैं हूं, ऐसा भाव नाहीं भासे है। और जैसे कोई और से भिन्न बतावता होय तैसे आत्मा शरीर की भिन्नता प्ररूपै है। परन्तु मैं इस शरीरादिक से भिन्न हूं, ऐसा भाव भासे नाहीं। और पर्याय विषे जीव पुद्गल कै परस्पर निमित्त से अनेक क्रिया होय हैं, तिन को दोय द्रव्य का मिलाप कर निपजी जाने है यह जीव की क्रिया है, तिस का पुद्गल निमित्त है, यह पुद्गल की क्रिया है, तिस का जीव निमित्त है। ऐसा भिन्न भिन्न भाव भासे नाहीं। इत्यादि भाव भासे बिना जीव अजीव का सांचा श्रद्धानी न कहिये। क्योंकि जीव अजीव जानने का तो यह ही प्रयोजन था, सो भया नाहीं। और आश्रवतत्व विषे जो हिंसादिक रूप पापाश्रव है, तिन को हेय जाने है। अहिंसादिकरूप पुण्याश्रव है। तिन को उपादेय माने है। सो यह दोनों ही कर्मबन्ध के कारण इन विषे उपादेयपना मानना सोई मिथ्यादृष्टि है। सो ही समयसार के बन्धादि अधिकार विषे कहा है। सर्व जीवन कै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मन के निमित्त से होय है। जहां अन्य जीव अन्य जीवन के कार्यन का कर्त्ता होय सो ही मिथ्याध्यवसाय बन्ध का कारण है। और मारने का वा दुःख करने का अध्यवसाय होय सो पाप बन्ध का कारण है। ऐसे अहिंसादिक सत्य आदिक तो पुण्यबन्ध का कारण है। और हिंसादिक असत्यादिक पापबन्ध कारण है। यह सर्व मिथ्याध्यवसाय है सो त्याज्य है। इसलिये हिंसादिवत् अहिंसादिक को भी बन्ध का कारण जान हेय ही मानना हिंसा विषे मारने की बुद्धि होय सो उस

को आयु पूरी हुए विना मरे नाहीं । अपनी द्वेष परणति कर आप ही पाप बांधे है। अहिंसा विषे रक्षा करने की बुद्धि होय सो उस का आयु अवशेष विना वह जीवे नाहीं । अपनी प्रशस्त राग परणति कर आप ही पुण्य बांधे है ।ऐसे यह दोय ही हेय हैं। जहां वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्त्ते तहां निर्बन्ध है सो ही उपादेय है । जब तक ऐसी दशा न होय तब तक प्रशस्त राग रूप प्रवर्त्तो। परन्तु श्रद्धान तो ऐसा राखो जो यह भी बन्ध का कारण हेय है, क्योंकि श्रद्धान विषे इस को मोक्षमार्ग जानना यही मिथ्यादृष्टि है । और जो मिथ्यात्व अविरत कषाययोगादि आस्रव के भेद हैं तिन को बाह्य रूप तो माने अन्तरङ्ग विषे इन भावन की जाति को पहिचाने नाहीं तहां अन्य देवादिक के सेवनरूप को गृहीत मिथ्यात्व जाने । और अनादि अगृहीत मिथ्यात्व है तिस को नाहीं पहिचाने है । और त्रस स्थावर की हिंसा वा इन्द्रिय मन के विषय तिन की प्रवृत्ति को अनृत जाने, हिंसा विषे जो प्रमाद परणति मूल है, और विषय कषाय सेवन में जो अभिलाषा मूल है, तिन को न अवलोके है, और बाह्य क्रोधादिक करना तिस को कषाय जाने है, अभिप्राय विषे जो राग द्वेष बसे है, तिस को नाहीं पहिचाने है। और बाह्य चेष्टा होय तिस को योग्य जाने है । शक्तिभूत योगन को न जाने है। ऐसे आस्रव का स्वरूप अन्यथा जाने है । और राग द्वेष मोह रूप जो आस्रव भाव है तिनके नाश करने की तो चिन्ता नाहीं, और बाह्य क्रिया वा बाह्य निमित्त मेटने का उपाय राखे है सो तिनके मेटे आस्रव मिटता नाहीं। द्रव्यलिङ्गी मुनि अन्य देवादिक की सेवा न करे है।

हिंसा वा विषयन विषे न प्रवर्ते है। क्रोधादिक न करे है। मन, वचन, काय को रोके है, तौभी उस कै मिथ्यात्वादिक चारों आश्रव पाइये हैं। और कपट कर भी कार्य न करै है। कपट कर करे तो ग्रीवैयक पर्यन्त कैसे पहुंचे। इसलिये जो अन्तरङ्ग अभिप्राय विषे मिथ्यात्वादिक रूप रागादिक भाव हैं, सोई आश्रव है तिस को न पहिचाने इसलिये यह आश्रव तत्व का सत्य श्रद्धानी नाहीं। और वन्ध तत्वन विषे जो अशुभ भावन कर नरकादि रूप पाप वन्ध होवे तिस को तो बुरा जाने और शुभ भावन कर देवादिक रूप पुण्य का बन्ध होय तिस को भला जाने। सो ऐसे तो सब ही जीवन कै दुःख सामग्री विषे द्वेष शुभ सामग्री विषे राग पाइये है। सो ही इस कै राग द्वेष करने का श्रद्धान भया जैसा इस पर्याय सम्बन्धी सुख दुःख सामग्री विषे राग द्वेष करना तैसा ही आगामि पर्याय सम्बन्धी दुःख सुख सामग्री विषे राग द्वेष करना है। और शुभ अशुभ भावन कर पुण्य पाप का विशेष तो अघाति कर्मन विषे होय है। सो अघाति कर्म आत्मा गुण के घातक नाहीं, और शुभ अशुभ भावन विषे घाति कर्मन का तो निरन्तर बन्ध होय है सो सर्व पाप रूप ही है, और सो ही आत्म गुण के घातक हैं। इसलिये अशुद्ध भावन कर कर्म बन्ध होय तिन विषे भला बुरा जानना सोई मिथ्या श्रद्धान है। सो ऐसे श्रद्धान से बन्ध का भी इस कै सत्य श्रद्धान नाहीं है। और सम्वर तत्व विषे अहिंसादिक रूप शुभभाव मिश्रभाव तिन को सम्वर जाने है। सो एक ही कारण से पुण्य भी माने हैं। और सम्वर भी माने है, सो वने नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो मुनीन कै एके-

काल एक भाव होय है, तहां उन के बन्ध भी होय है, और सम्वर भी होय है, निर्ज्जरा भी होय है सो कैसे है। —:(तिस का समाधान):— वह भाव मिश्र रूप है कुछ वीतरात भया है, कुछ सराग रहा है। जो अंश वीतराग भये तिन कर संवर है, और जो अंश राग रहे तिन कर बन्ध है सो मिश्र भाव से तो दोय कार्य बने, परन्तु एक प्रशस्तराग ही से पुण्याश्रव भी मानना, और सम्वर निर्ज्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभाव विषे भी यह सरागता है, यह वीतरागता है। ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टि ही के होय है। इसलिये अवशेष सरागता को हेय श्रद्धै है। मिथ्यादृष्टि के ऐसी पहिचान नाहीं। इसलिये सराग भाव विषे सम्वर का भ्रम कर प्रशस्त राग रूप कार्य्यन को उपादेय श्रद्धै है, और सिद्धान्त विषे गुप्ति सुमति धर्म अनुप्रेक्षा परीषह जय चारित्र, इन कर सम्वर होय है ऐसा कहा है। सो इन को भी अयथार्थ श्रद्धै है। कैसे है सो कहिये है। वाह्य मन, वचन, काय, की चेष्टा मेट पाप चितवन न करे, मौन धरे, गमनादिक न करे, सो गुप्ति माने है, सो यहां तो मन विषे भक्ति आदि रूप प्रशस्त रागादिक नाना विकल्प होय हैं। वचन काय की चेष्टा आप रोक राखे है, तहां शुभ प्रवृति है। और प्रवृति विषे गुप्तिपना बने नाहीं, इसलिये वीतराग भाव भये जहां मन, वचन, काय, की चेष्टा न होय सोही सांची गुप्ति है, और पर जीवन की रक्षा के अर्थ यत्नाचार प्रवृति तिस को सुमति माने है। सो हिंसा के परिणाम से तो पाप ही होय है। और रक्षा के परिणाम से सम्वर कहोगे तो पुण्यबन्ध का कारण कौन ठहरेगा। और एषणा सुमति विषे

दोष टाले है तहां रचा का प्रयोजन है नाहीं, इसलिये रचा ही के अर्थ सुमति है नाहीं, तो सुमति कैसे होय है सो कहिये है। मुनीन के किञ्चित् राग भये गमनादि क्रिया होय है । तहां तिन क्रियान विषे अति आसक्तता के अभाव से प्रमाद रूप प्रवृत्ति न होय है । और अन्य जीवन को दुःखी कर अपना गमनादिक प्रयोजन न साधे है, इसलिये स्वयमेव ही दया पाले है। ऐसे सांची सुमति है, और बन्धादिक के भय से वा स्वर्ग मोच की चाह से क्रोधादिक न करे है सो यहां क्रोधादिक करने का अभिप्राय तो गया नाहीं। जैसे कोई राजादिक के भय से वा महन्तपने के लोभ से परस्त्री न सेवे है, तो उसको त्यागी न कहिये है। तैसे ही यह क्रोधादिक का त्यागी नाहीं सो कैसे त्यागी होय सो कहिये है पदार्थ के इष्ट अनिष्ट भासे क्रोधादिक होय है। जब तत्वज्ञान के अभ्यास से कोई इष्ट अनिष्ट न भासे तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजै तब सांचा धर्म होय है।और यह अनित्यादि चितवन से शरीरादिक को बुरा जान हितकारी न जान तिन से उदास होना तिस का नाम अनुप्रेचा कहे है। सो यह तो जैसे कोई मित्र था, तब उस से राग था, पीछे उस का अवगुण देख उदासीन भया तैसे शरीरादिक से राग था पीछे अन्य तत्वादिक अवगुण अवलोक उदासीन भया । सो ऐसी उदासीनता तो द्वेष रूप है। जहां जैसे अपने शरीरादिक का स्वभाव है तहां तैसा पहिचान भ्रम को मेट भला जान राग न करना बुरा जान द्वेष न करना ऐसी सांची उदासीनता के अर्थ ही यथार्थ अन्य तत्वादिक का चितवन सोई सांची अनुप्रेचा है । और क्षुधादिक भये तिन के नाश का उपाय न करना तिस को

परीषह सहना कहे है सो उपाय तो न किया और अंतरंग चुधादिक अनिष्ट सामग्री मिले दुःखी भया, रति आदिक का कारण मिले सुखी भया तो दुःख सुख रूप परिणाम है। सोई आर्त्तध्यान रौद्रध्यान है ऐसे भावन से संवर कैसे होय इसलिये दुःख का कारण मिले दुःखी न होय सुख का कारण मिले सुखी न होय ज्ञेय रूप कर तिन का जानन हारा ही रहे सोई सांची। परीषह का सहना है और हिंसादिक सावद्ययोग के त्याग को चारित्र माने है तहां महा व्रतादिक रूप के शुभोपयोग को उपादेय रूप पना कर ग्रहण माने है। सो तत्वार्थ सूत्र विषे आश्रव पदार्थन का निरूपण करते हुए महाव्रत अणुव्रत कोभी आश्रव रूप कहे हैं यह उपादेय कैसे होयें। और आश्रव तो बंध का साधक है। चारित्र मोक्ष का साधक है, इसलिये महा व्रतादिक रूप आश्रव भावन कै चारित्रपना संभवै नाहीं। सकल कषाय रहित जो उदासीन भाव तिस ही का नाम चारित्र है। जो चारित्र मोह के देश घाती स्पर्द्धकान के उदय से महा मंद प्रशस्त राग होयहै, सो चारित्र का मूल है इसको छूटता न जान इसका त्याग करे नाहीं। सावद्य योग ही का त्याग करे है। सो जैसे कोई पुरुष कंद मूलादि बहुत दोषी हरित काय का त्याग करे। और कई हरित काय को भक्षण करेहै। परंतु तिसको धर्म्म न माने है। तैसे मुनि हिंसादिक तीव्र कषाय रूप भावन का त्याग करें हैं। कई मंद कषाय रूप महा व्रतादिक को पाले हैं। परन्तु तिस को मोक्षमार्ग न माने हैं।

-:(यहां प्रश्न):-

जो ऐसे है तो चारित्र के तेरह भेदन विषे महा व्रतादिक कैसे कहे हैं।

-:(तिस का समाधान):-

यह व्यवहार चारित्र कहा है, व्यवहार नाम

उपचार का है सो महा व्रतादिक भये ही वीतराग चारित्र होय है ऐसा सम्बन्ध जान महाव्रतादिक विषे चारित्र का उपचार किया है। निश्चय कर निकषाय भाव है सो ही सांचा चारित्र है। इस प्रकार संवर के कारणन को अन्यथा जानता संवर का सांचा श्रद्धानी न होय है। और यह अनशनादिक तप से निर्जरा माने है सो केवल वाह्य तप ही तो किये निर्जरा होय नाहीं वाह्य तप तो शुद्धोपयोग वधावने के अर्थ कीजिये है शुद्धोपयोग निर्जरा का कारण है इसलिये उपचार कर तप को भी निर्जरा का कारण कहा है। जो वाह्य दुःख सहना ही निर्जरा का कारण होय तो तिर्यञ्च भी क्षुधा तृषा सहे हैं। तब वह कहे है वह तो पराधीन सहे हैं स्वाधीन पने धर्म्म बुद्धि से उपवासादिक रूप तप करे है तिस कै निर्जरा होय है। —:(तिस का समाधान):— धर्म बुद्धि से वाह्य उपवासादिक तो किये और तहां उपयोग अशुभ शुभ शुद्ध रूप जैसे परिणमे तैसे परिणमो घने उपवासादिक किये घनी निर्जरा होय, थोड़े किये थोड़ी निर्जरा होय, जो ऐसे नियम ठहरे तो उपवासादिक ही मुख्य निर्जरा का कारण ठहरे, सो तो बने नाहीं। परिणाम दुष्ट भये उपवासादिक से निर्जरा होनी कैसे संभवै। और जो कहिये जैसा अशुभ शुभ शुद्ध रूप उपयोग परिणमै तिस के अनुसार बंध निर्जरा है, तो उपवासादिक तप मुख्य निर्जरा का कारण कैसे रहा। अशुभ शुभ परिणाम बंध के कारण ठहरे। शुद्ध परिणाम निर्जरा के कारण ठहरे। —:(यहां प्रश्न):— जो तत्वार्थ सूत्र विषे ऐसा कैसे कहा है:—

तपसा निर्जरा च ॥

अर्थ—तपस्या से निर्जरा होती है ॥

—:(तिस का समाधान):— शास्त्र विषे ऐसा कहा है ॥

इच्छानिरोधस्तपः ॥

अर्थ—इच्छा का रोकना तिस का नाम तप है । सो शुभ अशुभ इच्छा मिटे उपयोग शुद्ध होय तहां निज्जंरा होय है । इसलिये तप कर निज्जंरा कही है । यहां कोई कहे आहारादिक रूप अशुभ की तो इच्छा दूर भये तप होय । परन्तु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादिक शुभ कार्य हैं तिनकी इच्छा तो रहे है । —:(तिस का समाधान):— ज्ञानी जनन के उपवासादिक की इच्छा नाहीं है । एक शुद्धोपयोग की इच्छा है । उपवासादिक किये शुद्धोपयोग वधे है, इसलिये उपवासादिक करे है । और जो उपवासादिक से शरीर वा परिणामन की शिथिलता कर शुद्धोपयोग शिथिल होता जाने तहां आहारादिक ग्रहे है । जो उपवासादिक ही से सिद्ध होय तो अजितनाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेई दोय उपवास ही कैसे धरते उन की तो शक्ति भी बहुत थी । परन्तु जैसे परिणाम भये तैसे वाह्य साधन कर एक वीतराग शुद्धोपयोग का अभ्यास किया । —:(यहां प्रश्न):— ऐसे है तो अनशनादिक को तप संज्ञा कैसे भई । —:(तिस का समाधान):— इन को वाह्य

तप कहिये है, सो वाह्य का अर्थ यह है जो वाह्य औरन को दीखे यह तपस्वी है। और आप तो फल जैसे अन्तरङ्ग परिणाम होय तैसा ही पावेगा इसलिये परिणाम शून्य शरीर की क्रिया फल दाता नाहीं है। —:(यहां प्रश्न):— जो शास्त्र विषे तो अकाम निर्ज्जरा कही है। तहां विना चाह भूख तृषादिक सहे निर्ज्जरा होय है तो उपवासादिक कष्ट सहे कैसे निर्ज्जरा न होय। —:(तिस का समाधान):— अकाम निर्ज्जरा विषे भी वाह्य निमित्त तो विना चाह भूख तृषा का सहना भया है। और तहां मन्द कषाय रूप भाव होय तो पाप की निर्ज्जरा होय देवादिक पुण्य का वन्ध होय और जो तीव्र कषाय भये भी कष्ट ही पुण्यवन्ध होय तो सर्व तिर्यञ्चादिक देव ही होवें सो बने नाहीं। तैसे ही चाह कर उपवासादिक किये तहां भूख तृषादिक कष्ट को सहिये सो यह वाह्य निमित्त है। तैसे यहां जैसा परिणाम होय तैसा फल पावे जैसे अन्न को प्राण कहा। और ऐसे वाह्य साधन भये अन्तरङ्ग तप की वृद्धि होय है इसलिये उपचार कर इन को तप कहे हैं। जो वाह्य तप तो करे और अन्तरङ्ग तप न होय तो उपचार से भी उस को तप संज्ञा नाहीं सो ही कहा है:—

"कषाय विषयाहार त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः सविज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः"॥

अर्थ—जहां कषाय विषे आहार का त्याग कीजिये है सो उपवास न जानना। इस को उलङ्घन श्री गुरु कहे हैं यहां कोई कहे जो ऐसे है, तो हम उपवासादिक न करेंगे। तिस को कहिये है। उपदेश तो ऊंचा चढ़ावने को दीजिये है। तू उलटा नीचा पड़ेगा तो हम क्या करें। जो तू मानादिक से उपवासादिक करे है तो कर वा मत कर कुछ सिद्धि है नाहीं। और जो धर्म्म बुद्धि से आहारादिक का अनुराग छोड़े है तो जितना राग छूटा तितना ही छूटा। परन्तु इस ही को इष्ट जान इस से निर्ज्जरा मान सन्तुष्ट मत हो। और अन्तरङ्ग तप विषे प्रायश्चित्त १ विनय २ वैयावृत्त ३ स्वाध्याय ४ त्याग ५ ध्यान ६ रूप जो क्रिया तिस विषे वाह्य प्रवर्त्तना सो तो वाह्य तपवत् ही जानना। जैसे अनशनादिक वाह्य क्रिया है तैसेयह भी वाह्य क्रिया है। इसलिये प्रायश्चितादिक वाह्य साधन अन्तरङ्ग तप नाहीं है। ऐसे वाह्य प्रर्त्तवन होतें जो अन्तरङ्ग परिणामन की शुद्धता होय तिस का नाम अन्तरङ्ग तप जानना। तहां तो निर्जरा ही है वंध नाहीं है। और स्तोक शुद्धता भये शुभोपयोग का भी अंश रहे तो जितनी विशुद्धता भई तिस कर तो निर्जरा है और जितना शुभ भाव है तिस कर बंध है ऐसा मिश्रभाव युगपत् होय है तहां बंध वा निर्जरा दोनों होय हैं। यहां कोई कहे। शुभ भावन से पाप की निर्जरा होय पुण्य का बंध होय है शुद्ध भावन से दोनों की निर्जरा होय है ऐसा क्यों न कहो। —:(तिस का उत्तर):— मोक्षमार्ग विषे स्थिति का तो घटना सर्व ही प्रक्रतिन से होय है तहां पुण्य पाप का विशेष है नाहीं, और अनुभाग का घटना पुण्य प्रक्रति का शुद्धोपयोग से भी होता नाहीं। पुण्य प्रक्रति के

ऊपर अनुभाग की तीव्रता उदय होय है और पाप प्रकृति के परमाणु पलट शुभ प्रकृति रूप होय हैं ऐसा संक्रमण शुभ और शुद्ध दोनों भाव होतें होय है। इस लिये पूर्वोक्त नियम संभवे नाहीं। विशुद्धता ही के अनुसार नियम संभवै है देखो। चतुर्थ गुण स्थान वाला शास्त्राभ्यास आत्मा चितवनादिक कार्य्य करे तहां भी उस के गुणश्रेणी निर्जरा हुआ करे बंध भी थोड़ा होय। और पंचमगुण स्थान वाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादिक तप करे तिस काल विषे भी उसकै निर्जरा थोड़ी होय है। और छठा गुण स्थान वाला आहार विहारादिक क्रिया करे तिस काल विषे भी उस कै निर्जरा घनी उस से भी बंध थोड़ा होय है। इसलिये वाह्य प्रवृत्ति के अनुसार निर्जरा नाहीं है, अंतरंग कषाय घटे शुद्धता भये निर्जरा होय है सो इस का प्रगट स्वरूप आगे निरूपण करेंगे तहां से जानना। ऐसे अनशनादिक क्रिया को तप संज्ञा उपचार से जानना। इसलिये इन को व्यवहार तप कहा है। व्यवहार उपचार का एक अर्थ है। और ऐसे साधन से जो वीतराग भाव रूप विशुद्धता होय सो सांचा तप निर्जरा का कारण जानना। यहां दृष्टांत जैसे अन्न को वा धन को प्राण कहा सो धन से अन्न लाय भक्षण किये प्राण पोषें जायें। इसलिये उपचार कर धन अन्न को प्राण कहा। कोई इन्द्रियादिक प्राणन को न जाने और इन ही को प्राण जान संग्रह करे तो मरण ही पावे। इसलिये अनशनादिक को वा प्रायश्चित्तादिक को तप कहा सो अनशनादिक साधन से प्रायश्चित्तादिरूप प्रवृत्ति वीतराग भावरूप सत्य तप पोषा जाय इसलिये उपचार कर अनशनादिक को वा प्रायश्चित्तादिक को तप कहा है। कोई वीतराग भाव रूप तप को न जाने और इन ही को तप जान संग्रह

करे तो संसार ही में भ्रमैं। बहुत क्या कहिये इतना ही समझ लेना। निश्चय धर्म्म तो बीतराग भाव है, अन्य नाना विशेष बाह्य साधन अपेक्षा उपचार से कहिये हैं तिन को व्यवहार मात्र धर्म्म संज्ञा है सो जाननी। जो इस रहस्य को न जाने उस के निर्जरा का भी सांचा श्रद्धान नाहीं है। और सिद्ध होना तिस को मोक्ष माने है और जन्म मरण रोग क्लेशादि दुःख दूर भये अनन्त ज्ञान कर लोक का जानना भया त्रैलोक्य पूज्य पना भया इत्यादि रूप कर तिस की महिमा जाने है, सो ऐसे तो सर्व जीवन के दुःख दूर करने का वा ज्ञेय जानने की वा पूज्य होने की चाह है इन ही के अर्थ मोक्ष की चाह कहनी तो इस के अन्य जीवन के श्रद्धान से क्या विशेषता भई। इस के ऐसा अभिप्राय है कि स्वर्ग विषे सुख है तिन से अनन्त गुणे मोक्ष विषे सुख हैं सो इस गुण कर स्वर्ग मोक्ष के सुख की एक जाति जाने है। तहां स्वर्ग विषे तो विषयादिक सामग्री जनित सुख होय है तिस की जाति इस को भासे है और मोक्ष विषे विषयादिक सामग्री है नाहीं। सो वहां के सुख की जाति इस को भासे तो नाहीं परन्तु स्वर्ग से भी मोक्ष को उत्तम महान् पुरुष कहे हैं। इसलिये यह भी उत्तम माने है। जैसे कोई ज्ञान का स्वरूप न पहिचाने परन्तु सर्व सभा के सराहवें है। इसलिये आप भी सराहे है। तैसे यह भी मोक्ष को उत्तम माने है यहां वह कहे है। शास्त्र विषे भी तो इन्द्रादिक से अनन्त गुणा सुख सिद्धन के प्ररूपैं हैं। —:(तिस का उत्तर):— जैसे तीर्थंकर के शरीर की प्रभा को सूर्य की प्रभा से कोटिगुणी कही। तहां तिन की एक जाति नाहीं। परन्तु लोक विषे सूर्य्य प्रभा की महिमा अधिक है इसलिये बहुत महिमा

जनावने को उपमा लंकार कीजिये है तैसे सिद्ध सुख को इन्द्रादिक सुख से अनन्त गुणा कहा है, तहां तिन की एक जाति नाहीं । परन्तु लोक विषे इन्द्रादिक सुख की महिमा अधिक है। इस लिये बहुत महिमा जनावने को उपमालङ्कार कीजियेहै। —:(यहां प्रश्न):— जो सिद्ध सुख और इन्द्रादिक सुख की एक जाति वह जाने है ऐसा निश्चय तुम ने कैसे किया।—:(तिस का समाधान):—जिस धर्म साधन का फल स्वर्ग माने है तिस धर्म साधन ही का फल मोक्ष माने है। तहां एक ही धर्म्म से कोई जीव इन्द्रादिक पद पावे। कोई मोक्ष पावे तब तिन दोनों कै एक जाति धर्म का फल भया माने। और ऐसा माने है कि जिस कै थोड़ा साधन होय है वह इन्द्रादिक पद पावे है। जिस कै सम्पूर्ण साधन होय है सो मोक्ष पावे है। परन्तु तहां धर्म्म की जाति एक जाने है सो जो कारण की एक जाति जाने तिस कै कार्य की भी एक जाति का श्रद्धान अवश्य होय है क्योंकि कारण विशेषभये ही कार्य विशेष होय है। इस लिये हमने यह निश्चय किया है कि इस के अभिप्राय विषे इन्द्रादिक सुख और सिद्ध सुख की एक जाति का श्रद्धान है। और कर्म निमित्त से आत्मा के औपाधिक भाव थे, तिन के अभाव होने से शुद्ध स्वभाव रूप केवल आत्मा आप भया। जैसे परमाणु स्कन्ध से बिछुड़कर, शुद्धहोय है, तैसे यह जीव कर्म्मादिक से भिन्न होय शुद्ध होय है। विशेष इतना वह दोनों ही अवस्था विषे दुःखी सुखी नाहीं। आत्मा अशुद्ध अवस्था विषे दुःखी था। अब तिस के अभाव होने से निराकुल लक्षण अनन्त सुख की प्राप्ति भई। और इन्द्रादिकन कै जो सुख है सो कषाय भावन कर आकुलता रूप है सो वह परमार्थ से दुःख

ही है। इसलिये इस की उस की एक जाति नाहीं है। और स्वर्ग सुख का कारण प्रशस्तराग है। मोक्ष सुख का कारण वीतराग भाव है। इसलिये कारण विषे भी विशेष है। सो ऐसा भाव भासे नाहीं। इसलिये मोक्ष का भी इस के सांचा श्रद्धान नाहीं है। इस प्रकार इस के सांचा श्रद्धान नाहीं इस ही वासते समयसार विषे कहा है। अभव्य के तत्व श्रद्धान भये भी मिथ्यादर्शन ही रहे। वा प्रवचनसार विषे कहा है। आत्मज्ञानशून्य तत्वार्थ श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। और यह व्यवहार दृष्टि कर सम्यग्दर्शन के जो आठ अङ्ग कहे हैं, तिन को पाले है, पचीस दोष कहे हैं तिन को टाले है। सम्वेगादिक गुण कहे हैं तिन को धारे है। परन्तु जैसे बीज बोये बिना खेत की सावधानी किये भी अन्न होता नाहीं, तैसे सांचा तत्वश्रद्धान भये बिना सम्यक्त होता नाहीं। सो पञ्चास्तिकाय व्याख्यान विषे जहां अन्त विषे व्यवहाराभास वालों का वर्णन किया है तहां ऐसा ही कथन किया है। इस प्रकार इस के सम्यग्दर्शन के अर्थ साधन करतैं भी सम्यग्दर्शन न होय है। अब यह सम्यग्ज्ञान के अर्थ शास्त्र विषे शास्त्राभ्यास किये सम्यग्ज्ञान होना कहा है। इसलिये शास्त्राभ्यास विषे तत्पर रहे है तहां सीखना सिखावना याद करना पढ़ना वाचना आदि क्रिया विषे उपयोग को रमावे है परन्तु उस के प्रयोजन ऊपर दृष्टि नाहीं है इस उपदेश विषे मुझ को कार्य्यकारी क्या है सो अभिप्राय नाहीं है आप शास्त्र अभ्यास कर औरन को सम्बोधन देने का अभिप्राय राखे है घने जीव उपदेश मानें तहां संतुष्ट होय है, सो ज्ञानाभ्यास तो आप के अर्थ कीजिये है प्रसंग पाय पर का भी भला होय तो पर का भी भला करे। और कोई उपदेश

न सुने तो मत सुने आप किस लिये विषाद कीजिये है। शास्त्रार्थ का भाव जान आप का भला करना और शास्त्राभ्यास विषे भी कहूं तो व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रन को बहुत अभ्यासे हैं सो तो लोक विषे पण्डिताई प्रगट करने का कारण है, इन विषे आत्महित निरूपण तो है नाहीं। इन का तो प्रयोजन इतना ही है अपनी बुद्धि बहुत होय तो थोड़ा वा बहुत इन का अभ्यास कर पीछे आत्महित के साधन शास्त्र तिन का अभ्यास करना। जो बुद्धि थोड़ी होय तो आत्महित के साधक सुगम शास्त्र तिन ही का अभ्यास करे। ऐसा न करना जो व्याकरणादिक ही अभ्यास करते करते आयु पूरा हो जाय और तत्वज्ञान की प्राप्ति न बने यहां कोई कहे ऐसे है तो व्याकरणादिक का अभ्यास न करना, तिस को कहिये है तिन के अभ्यास बिना महान् ग्रंथन का अर्थ खुले नाहीं इसलिये तिन का भी अभ्यास करना योग्य है। —:(यहां प्रश्न):— महान् ग्रंथ ऐसे क्यों किये जिनका अर्थ व्याकरणादिक बिना न खुले भाषा कर सुगम रूप हितोपदेश क्यों न लिखा, उन के कुछ प्रयोजन तो थाही नाहीं। —:(तिस का समाधान):— भाषा विषे भी प्राकृत संस्कृतादिक के ही शब्द हैं। परन्तु अपभ्रंश लिये हैं और देश विषे अन्य अन्य प्रकार हैं सो महंत पुरुष शास्त्रन विषे अपभ्रंश शब्द कैसे लिखें जो बालक तोतला बोले तो बड़े तो न बोलें। और एक देश की भाषा रूप शास्त्र दूसरे देश विषे जाय तो तहां तिस का अर्थ कैसे भासे इसलिये प्राकृतादिक संस्कृतादिक शुद्ध शब्द रूप ग्रन्थ रचे और व्याकरण बिना शब्द का अर्थ यथावत् न भासे, न्याय बिना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न

होय सकै, इत्यादिक वचन द्वारा वस्तु का स्वरूप निर्णय व्याकरणादिक विना नीका न होता जान तिन की आम्नाय अनुसार कथन किया, भाषा विषे भी तिन की थोड़ी वहुत आम्नाय आप ही उपदेश होय सके है । तिन की वहुत आम्नाय सें नीकै निर्णय होय सकै है । और जो कहोगे ऐसे है तो अव भाषा रूप ग्रंथ किस लिये वनाये हैं। —:(तिस का समाधान):— काल दोष से जीवन की मन्द वुद्धि जान जीवन के जितना ज्ञान होगा तितना ही सही ऐसा अभिप्राय विचार भाषा ग्रंथ कीजिये हैं, सो जो जीव व्याकरणादिक का अभ्यास न कर सकें तिनको ऐसे ग्रन्थन कर ही अभ्यास करना और जो जीव शब्दन की नाना युक्ति लिये अर्थ करने को ही व्याकरण अवगाहे हैं। वा वादादिक कर महंत होने को न्याय अवगाहे हैं। चतुर पना प्रगट करने के अर्थ काव्य अवगाहे हैं। इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिये इन का अभ्यास करे हैं सो धर्मात्मा नाहीं । इसलिये जितना वने थोड़ा बहुत इन का अभ्यास कर आत्महित के अर्थ तत्वादिक का निर्णय करे सोई धर्मात्मा पण्डित जानना । और कई जीव पुण्य पापादिक फल के निरूपक पुराणादि शास्त्र वा पुण्य पाप की क्रिया के निरूपक आचारादिक शास्त्र वा गुणस्थान मार्गणा कर्म प्रकृति त्रिलोकादिक के निरूपक करणानुयोग के शास्त्र तिन का अभ्यास करे हैं सो इन का प्रयोजन जो आप न विचारे सो यह तो तोते कैसा ही पढ़ना भया। और जो इन का प्रयोजन विचारे है, तहां पाप को बुरा जानना पुण्य को भला जानना गुण स्थानादिक

का स्वरूप जान लेना। जितना इनका अभ्यास करेंगे तितना ही हमारे लिये भला है। जिन्होंने इत्यादिक प्रयोजन विचारा सो उन के लिये इस से इतना तो होगा, कि नरकादिक छेद स्वर्गादिक होगा परन्तु मोक्षमार्ग की प्राप्ति होय नाहीं। पहिले सांचा तत्वज्ञान होय, तिस पीछे पुण्य पाप के फल को संसार जाने और शुद्धोपग से मोक्षमार्ग गुणस्थानादिक रूप जीव का व्यवहार निरूपण जान इत्यादिक जैसा का तैसा श्रद्धान करता सन्ता इन का अभ्यास करे तो सम्यग्ज्ञान होय सो तत्व ज्ञान का कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोग के शास्त्र हैं। और कई जीव तिन शास्त्रन का भी अभ्यास करे हैं। परन्तु जहां जैसा लिखा है। तैसे आप निर्णय कर आप को आप रूप पर को पर रूप आश्रवादिक को आश्रवादिक रूप नाहीं श्रद्धान करे हैं। मुख से तो यथावत् निरूपण ऐसा भी करें, कि जिस के उपदेश से सम्यग्दृष्टि हो जाय परन्तु जैसे लड़का स्त्री का स्वांग कर वैसा ही हाव भाव करे तिस को देख कर अन्य पुरुष काम रूप हो जायें। परन्तु वह जैसे का तैसा रहे उस को कुछ भाव भासे नाहीं। इसलिये आप आसक्त न होय है। तैसे यह जैसे लिखा तैसे उपदेश दे है परन्तु आप अनुभव नाहीं करे है। जो आप के श्रद्धान भया होता तो और तत्व का श्रद्धान अंश और तत्व विषे न मिलावता सो इस कै थल नाहीं। इसलिये सम्यग्ज्ञान होता नाहीं। ऐसे यह ग्यारह अङ्ग पर्यन्त पढ़े तौभी सिद्धि होती नाहीं। सो समयसारादिक विषे मिथ्यादृष्टि के ग्यारह अङ्ग का ज्ञान होना लिखा है। यहां कोई कहे ज्ञान तो इतना होय है परन्तु जैसे अभव्य

सैन कै श्रद्धान रहित ज्ञान भया तैसे होय है। —:(तिस का समाधान):— वह तो पापी था उस कै हिंसादिक की प्रवृत्ति का भय नाहीं था। परन्तु जो जीव ग्रैवेयक आदि विषे जाय है तिस कै ऐसा ज्ञान होय है सो तो श्रद्धान रहित नाहीं। उस कै तो ऐसा श्रद्धान है, कि यह ग्रन्थ सांचा है। परन्तु तत्वश्रद्धान सांचा न भया। समयसार विषे एक ही जीव के धर्म्म का श्रद्धान एकादशांग का ज्ञान और महाव्रतादिक का पालना लिखा है। "प्रवचनसार" विषे ऐसा लिखा है। आगमज्ञान ऐसा भया जिस कर सर्व पदार्थन को हस्तामलकवत् जांने है। यह भी जाने है, इन का जानन हारा मैं हूं। परन्तु मैं ज्ञान स्वरूप हूं ऐसा आप को परद्रव्य से भिन्न केवल चैतन्य द्रव्य नाहीं अनुभवे है। इसलिये आत्मज्ञान शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नाहीं। इस प्रकार उस कै सम्यग्ज्ञान नाहीं। और इन कै सम्यक् चारित्र के अर्थ कैसी प्रवृत्ति है सो कहिये है। वाह्यक्रिया ऊपर तो इन के दृष्टि है। और परिणाम शुद्ध रहने बिगड़ने का विचार नाहीं। और जो परिणाम का भी विचार होय तो जैसा अपना परिणाम होता दीखे तिन ही के ऊपर दृष्टि रहे है। परन्तु उन परिणामन की परंपरा को विचार अभिप्राय विषे जो वासना है उस को न विचारे है। और फल लगे है सो अभिप्राय विषे जो वासना है तिसका लगे है। सो इसका विशेष व्याख्यान आगे करेंगे, तहां स्वरूप नीके भासेगा। ऐसी पहिचान बिना वाह्य आचरण का ही उद्यम है। तहां कई जीव तो कुलक्रम कर वा देखा देखी वा क्रोध मान माया लोभादिक से आचरण आचरे हैं। सो इन कै तो धर्म्म

बुद्धि नाहीं। सम्यक् चारित्र कहां से होय, यह जीव कई तो भोले हैं कई कषायवान् हैं सो इनके अज्ञान भाव से कषाय होतैं सम्यक्चारित्र होता नाहीं। और कई जीव ऐसा माने हैं। जो जानने में क्या है और मानने में क्या है, जो कुछ करेगा तो फल लगेगा। ऐसे विचार व्रत तप आदि क्रिया ही में उद्यमी रहे है। और तत्वज्ञान का उपाय न करे है सो तत्वज्ञान बिना महाव्रतादिक का आचरण भी मिथ्याचारित्र नाम पावे है। और तत्वज्ञान भये कुछ भी व्रतादिक नाहीं है तौभी असंयत सम्यग्दृष्टि नाम पावे है। इसलिये पहिले तत्व ज्ञान का उपाय करना पीछे कषाय घटावने को वाह्य साधन करना। सोई योगेन्द्रकृत "श्रावकाचार" विषे कहा है :—

दंसणभूमिहं बाहिरा: जियवयरुक्खा ण होंदि ॥

अर्थ—हे जीव ! सम्यग्दर्शन भूमिका बिना व्रतरूपी वृक्ष न होय। भावार्थ—जिन जीवन कै तत्वज्ञान नाहीं। और वह यथार्थ आचरण न आचरे हैं। सो इस को विशेष दिखाइये है। कोई जीव पहिले तो प्रतिज्ञा बड़ी धार बैठे। अन्तरङ्ग विषे कषाय वासना मिटी नाहीं। तब जैसे तैसे प्रतिज्ञा पूरी किया चाहे। तहां तिस प्रतिज्ञा कर परिणाम दुःखी होय है। जैसे कोई बहुत उपवास कर बैठे और पीछे पीड़ा से दुःखी होय रोगी के समान काल गंमावै और धर्म्म साधन करे सो पहिले ही जितनी सधती जानिये तितनी ही प्रतिज्ञा क्यों न लीजिये दुःखी होने में आर्तध्यान होय तिस का फल भला कैसे लगेगा

अथवा उस प्रतिज्ञा का दुःख न सहा जाय तब तिस की इवज विषय पोषने को अन्य उपाय करे। जैसे तृषा लागे तब पानी तो न पीवे। और अन्य शीतल उपचार अनेक प्रकार करे वा घृत तो छोड़े और अन्य स्निग्ध वस्तु को उपाय कर भक्षण करे। ऐसे ही अन्य जानना। सो परीषह न सही जाय थी और विषय वासना न छुटी थी तो ऐसी प्रतिज्ञा किसलिये करी पहिले सुगम विषय छोड़ पीछे विषम विषय के छोड़ने का उपाय करना यहां तो उलटा राग भाव तीव्र होय है। विषयन का उपाय करना पड़े ऐसा कार्य किसलिये कीजिये। अथवा प्रतिज्ञा विषे दुःख होय तब परिणाम लगावने को कोई आलम्बन विचारे जैसे उपवास कर पीछे क्रीड़ा करें। कई पापी जूवा आदि कुव्यसन विषे लगें। अथवा सोवना चाहे। यह जाने की किसी प्रकार काल पूरा करना है ऐसे ही अन्य प्रतिज्ञा विषे जानना। अथवा कई पापी ऐसे भी हैं, पहिले प्रतिज्ञा करें पीछे तिस से दुःख होय तब प्रतिज्ञा छोड़ दें सो प्रतिज्ञा लेना छोड़ना तिन के ख्याल मात्र है। क्योंकि प्रतिज्ञा भङ्ग करने का महा पाप है इसलिये इससे तो प्रतिज्ञा न लेनी ही भली है। इस प्रकार पहिले तो निर्विचार होय प्रतिज्ञा करें पीछे ऐसी दशा होय सो जिनधर्म विषे प्रतिज्ञा न लेने का दण्ड तो है नाहीं। जैनधर्म विषे तो यह उपदेश है। कि पहिले तत्वज्ञानी होय पीछे जिस का त्याग करे उस का दोष पहिचाने त्याग किये गुण होय तिस को जाने। और अपने परिणामन को ठीक करे। वर्त्तमान परिणामन ही के भरोसे प्रतिज्ञा न कर बैठे जिस का आगामि निर्वाह होता जाने सो प्रतिज्ञा करे सो और शरीर की शक्ति वा

द्रव्यक्षेत्र काल भावादिक का विचार करै फिर ऐसे कर विचार पीछे प्रतिज्ञा करनी सो भी ऐसी करनी जिस प्रतिज्ञा से निरादरपना न होय, परिणाम चढ़ते रहैं ऐसे जैनधर्म्म की आम्नाय है । यहां कोई कहै चाण्डालादिक ने प्रतिज्ञा करी तिन के इतना विचार कहां होय है । —:(तिस का समाधान):— मरण पर्यन्त कष्ट होय तो होय परन्तु प्रतिज्ञा न छोड़नी ऐसा विचार कर प्रतिज्ञा करे है । प्रतिज्ञा विषे निरादरपना नाहीं । और सम्यग्दृष्टि प्रतिज्ञा करे है सो तत्वज्ञानादिक पूर्वक ही करे है । और जिन कै अन्तरङ्ग विरक्तता न भई और वाह्य प्रतिज्ञा धारे हैं । सो प्रतिज्ञा के पहिले वा पीछे जिस की प्रतिज्ञा करें उस विषे अति आसक्त होय लगें हैं । जैसे उपवास धार पारणा के भोजनादिक विषे अतिलोभी होय गरिष्टादिक भोजन करें हैं शीघ्रता घनी करे हैं सो जैसे जल को मून्द राखा था जब छूटा तब ही वहुत प्रवाह चलने लगा । तैसे प्रतिज्ञा कर विषय प्रवृत्ति मून्दी और अन्तरङ्ग आसक्तता बधती गई । पूरी होतैं ही अति विषय की प्रवृत्ति होने लगी सो प्रतिज्ञा के काल विषै विषय वासना मिटी नाहीं । आगे पीछे तिस की एवज् अधिक राग किया तो फल तो रागभाव मिटे होगा । इसलिये जितनी विरक्तता भई होय तितनी ही प्रतिज्ञा करनी । महामुनि भी थोड़ी प्रतिज्ञा करें पीछे आहारादिक विषे उत्कृष्ट करे हैं । और वड़ी प्रतिज्ञा करे हैं । सो अपनी शक्ति देख करे हैं जैसे परिणाम चढ़ते रहैं तैसे करे हैं प्रमाद भी न होय । और आकुलता भी न उपजे ऐसी प्रवृत्ति कार्यकारी है । और जिन की धर्म्म ऊपर दृष्टि नाहीं । सो कभी तो वड़ा धर्म्म आचरें हैं और

कभी अधिक स्वछन्द होय प्रवर्त्तें हैं। जैसे कोई धर्म्म पर्व्व विषे बहुत उपवासादिक करे। और कोई धर्म्म पर्व विषे वारम्वार भोजनादिक करे सो धर्म बुद्धि होय तो यथायोग्य सर्व धर्म्म पर्वन विषे यथायोग्य संयमादिक धरै। और कभी तो धर्म कार्य विषे बहुत धन खरचै। कभी कोई धर्म कार्य आन प्राप्त होय तौभी तहां थोड़ा भी वह धन न खरचे जो धर्म बुद्धि होय तो यथाशक्ति योग्य सर्व ही धर्म्म कार्यन विषे धन खरचा करे ऐसे ही अन्य जानना। और जिन कै सांचा धर्म साधन नाहीं। सो कोई क्रिया तो बहुत बड़ी अङ्गीकार करैं हैं। और कोई हीन क्रिया करैं हैं। जैसे धनादिक का तो त्याग करैं और चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादिक विषयन विषे विशेष प्रवर्त्तैं और कोई जामां पहरना स्त्री सेवन करना इत्यादिक कार्य्यन का तो त्याग कर धर्म्मात्मा पना प्रगट करैं और पीछे खोटे व्यवहारादिक कार्य्य करैं लोक निन्द्य पाप क्रिया विषे प्रवर्त्तैं ऐसे ही कोई क्रिया अति ऊंची करैं कोई क्रिया अति नीची करैं तहां लोक निन्द्य होय धर्म्म की हास्य करावैं देखो अमुक धर्म्मात्मा ऐसा कार्य्य करै है। जैसे कोई पुरुष एक वस्त्र तो अत्युत्तम पहिरे, एक वस्त्र अति हीन पहिरे तो हास्य ही होय, तैसे यह हास्य पावे है सांचे धर्म्म की तो यह रीति है। जितना अपना राग दूर भया होय तिसके अनुसार जिस पद विषे जो धर्म्म क्रिया संभवै सो सर्व अंगीकार करै जो थोड़ा रागादिक मिटा होय तो नीची ही पदवी विषे प्रवर्त्तैं परन्तु ऊंचा पद धार नीची क्रिया न करै। —:(यहां प्रश्न):— जो स्त्री सेवनादिक का त्याग ऊपर की प्रतिमा विषे कहा है

सो नीचली अवस्था वाला तिन का त्याग करे, कि न करे। —:(तिस का समाधान):— जो सर्वथा तिन का त्याग करे सो नीचली अवस्था वाला कर सकता नाहीं। कोई दोष लगे है, इस लिये ऊपर की प्रतिमा विषे त्याग कहा है, नीचली अवस्था विषे जिस प्रकार त्याग संभवे तैसा नीचली अवस्था वाला भी करे, परन्तु जिस नीचली अवस्था विषे जो कार्य संभवे ही नाहीं तिस का करना तो कषाय भावन से ही होय है। जैसे कोई सप्त व्यसन सेवे स्व स्त्री का त्याग करे तो कैसे बने यद्यपि स्वस्त्री का त्याग करना धर्म्म है तथापि पहिले सप्त व्यसनन का त्याग होय तब ही स्वस्त्री का भी त्याग करना योग्य है। ऐसे ही अन्य अन्य जानने॥ और सर्व प्रकार धर्म्म को न जाने ऐसा कोई जीव किसी धर्म्म के अंग को मुख्यकर अन्य धर्म्म को गौन करे है जैसे कोई जीव दया धर्म्म को मुख्य कर पूजा प्रभावनादिक को छोड़े है कोई पूजा प्रभावनादिक धर्म्म को मुख्य कर हिंसादिक का भय न राखे है। कोई तप की मुख्यता कर आर्तध्यानादिक करके भी उपवासादिक करे वा आप को तपस्वी मान निःशंक क्रोधादिक करे, कोई दान की मुख्यता कर बहुत पाप करके भी उपजाय दान दे है कोई आरम्भ त्याग की मुख्यता कर याचना करने लग जाय है कोई जीव हिंसा मुख्य कर जल से स्नान शौचादिक नाहीं करे है इत्यादिक प्रकार कर कोई धर्म्म को मुख्यकर अन्य धर्म्म को न गिने है और उस का आश्रय पाय पाप आचरे है सो जैसे किसी अविवेकी व्यापारी को किसी व्यापार में नफे के अर्थ अन्य प्रकार कर घना टोटा पड़े है तैसे यह कार्य भया सो जैसे व्यापारी का प्रयोजन नफा है। तैसे ज्ञानी के प्रयोजन वीत

राग भाव है सर्व विचार कर जैसे वीतराग भाव घना होय तैसें करे क्योंकि मूल धर्म्म वीतराग भाव है इस ही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म्म अंगीकार करे है तिन कै तो संम्यक् चरित्र का आभास भी न होय और कोई जीव अणुव्रत महाव्रतादिक रूप यथार्थ आचरण करे है, और आचरण के अनुसार ही परिणाम है। कोई माया लोभादिक का अभिप्राय नाहीं इन को धर्म जान मोक्ष के अर्थ इनका साधन करे है कोई स्वर्गादिक भोगने की भी इच्छा न करे है, परन्तु तत्त्वज्ञान पहिले न भया इसलिये आप तो जाने मैं मोक्ष का साधन करूं हूं और मोक्ष का साधन जो है उस को जाने भी नाहीं। केवल स्वर्गादिक ही का साधन करे है सो मिश्री को अमृत जान भक्षण करे तो अमृत के गुण तो न होय हैं। आप के परिणमन अनुसार फल होता नाहीं फल तो जैसा साधन करे तैसा ही लगे है शास्त्र विषे ऐसा कहा है।

तत्वश्रद्धानमसत्य सम्यग्ज्ञान निवृत्तये।

अर्थ—तत्त्वश्रद्धान जो है वह असत्य सम्यक् ज्ञान की निवृत्ति के लिये है। भावार्थ–चारित्र विषे जो सम्यक् पद है सो अज्ञान आचरण की निवृत्ति के अर्थ है इसलिये पहिले तत्वज्ञान होय तिस पीछे चारित्र होय सो सम्यक् चारित्र नाम पावे है। जैसे कोई खेती वाला बीज तो बोवे नाहीं, अन्य साधन करे तो अन्न प्राप्ति कैसे होय घास फूस ही होय, तैसे अज्ञानी निज तत्व ज्ञान का तो अभ्यास करे नाहीं। और अन्य साधन करे तो मोक्ष प्राप्ति कैसे होय। देव पदादिक ही होय तहां कई जीव ऐसे

हैं जो तत्वादिक का नाम भी न जाने केवल व्रतादिक विषे ही प्रवर्त्तें हैं। काई जीव ऐसे हैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञान का अयथार्थ साधन कर व्रतादिक विषे प्रवर्त्तें हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरैं तथापि यथार्थश्रद्धान ज्ञान बिना सर्वचारित्र ही मिथ्याचारित्र है सोई समयसार के कलशा विषे कहाहै :—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरै मोक्षोन्मुखै कर्मभि
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपो भारेण भग्नाश्चिरं ॥
साक्षान्मोक्षमिदं (मयं) निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं बिना कथमपि प्राप्तुं क्षमते न हि ॥

अर्थ—मोक्ष से पराङ्मुख ऐसे अतिदुर्द्धर पंचाग्नि तपनादिक कार्य्य तिन कर आप ही क्लेश करे है तो करो। और अन्य कोई जीव महाव्रत और तप के भार कर चिरकाल पर्यंत क्षीण होते क्लेश करे हैं तो करें। परन्तु यह साक्षात् मोक्ष स्वरूप सर्व रोग रहित पद जो आपे आप अनुभव में आवे ऐसा ज्ञान स्वभाव सो तो ज्ञान गुण बिना अन्य कोई भी प्रकार कर पावने को सामर्थ्य नाहीं है। और "पञ्चास्तिकाय" विषे जहां अन्त विषे व्यवहाराभास वालों का कथन किया है तहां तेरह प्रकार के चारित्र होतें भी तिस का मोक्षमार्ग विषे निषेध किया है। और "प्रवचनसार विषे" आत्मज्ञान

शून्य संयम भाव अकार्यकारी कहा है। और इन ही ग्रन्थों विषे वा अन्य परमात्मप्रकाशादिक शास्त्रों विषे इस प्रयोजन को लिये जहां तहां निरूपण है। इसलिये पहिले तत्वज्ञान भये ही आचरण कार्यकारी है यहां कोई जानेगा बाह्य तो अणुव्रत महाव्रतादिक साधे हैं। अन्तरंग परिणाम नाहीं। वा स्वर्गादिक की वाञ्छा कर साधे हैं। सो ऐसे साधे तो पापबन्ध होय है। द्रव्यलिङ्गी मुनि ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त जाय है। परावर्तन विषे इकतीससागर पर्यन्त देवायु की प्राप्ति अनन्त वार होनी लिखी है। ऐसे ऊंचे पद तो तब ही पावे। जब अन्तरङ्ग परिणाम पूर्वक महाव्रत पाले और महामन्द कषाय होय। और इस लोक परलोकके भोगादिक की भी चाह न होयकेवल धर्म्म बुद्धि से मोक्षाभिलाषी हुआ साधन साधै इसलिये द्रव्यलिङ्गी कै स्थूल तो अन्यथा पना है नाहीं। सूक्ष्म अन्यथापना है। सो सम्यग्दृष्टि को भासे है। अब इन कै धर्म साधन कैसे है। और तिस में अन्यथापना कैसे है सो कहिये है। प्रथम तो संसार विषे नरकादिक का दुःख जान वा स्वर्गादिक विषे भी जन्म मरण का दुःख जान संसार से उदास होय मोक्ष को चाहे है, सो इन दुःखन को तो दुःख सब ही जाने हैं। इन्द्र अहिमिन्द्रादिक विषयानुराग से इन्द्रियजनित सुख भोगवै हैं, तिस को भी दुःख जान निराकुल सुख अवस्था को पहिचान मोक्षमार्ग जाने है सो सम्यग्दृष्टि जानना। और विषय सुखादिक का फल नरकादिक है शरीर अशुचि विनाशीक है पोषने योग्य नाहीं। कुटुम्बादिक स्वार्थ के सगे हैं। इत्यादिक परद्रव्यन का दोष विचार तिन का तो त्याग करे है। और व्रतादिक का फल मोक्ष है। तपश्चरणादिक पवित्र

अविनाशी फल को दाता हैं। तिन कर शरीर सोखने योग्य है। देव गुरु शास्त्रादिक हितकारी हैं। इत्यादिक परद्रव्यन का गुण विचार तिन को अंगीकार करे है। इत्यादिक प्रकार कर कोई परद्रव्य को बुरा जान अनिष्ट श्रद्धै है। कोई परद्रव्य को भला जान इष्ट श्रद्धै है। सो परद्रव्य विषे इष्ट अनिष्ट रूप श्रद्धान सो मिथ्या है। और इस ही श्रद्धान से उस कै उदासीनता भी द्वेष बुद्धि रूप होय है। क्योंकि किसी को बुरा जाने इस ही का नाम द्वेष है। कोई कहेगा सम्यग्दृष्टि भी तो बुरा जान परद्रव्य को त्यागे है। —:(तिस का समाधान):— सम्यग्दृष्टि परद्रव्यन को बुरा नाहीं जाने है। अपने रागभाव को बुरा जाने है। आप उस राग भाव को छोड़ तिस के कारण का भी त्यागी होय है। वस्तु विचार कोई परद्रव्य तो बुरा भला है नाहीं। कोई कहेगा निमित्त मात्र तो है। —:(तिस का उत्तर):— परद्रव्य तो जोरावरी से कोई विगाड़ करता नाहीं अपने भाव विगड़ें तब वह भी बाह्य निमित्त है। और उस के निमित्त बिना भी भाव विगड़ें है। इसलिये यह नियमरूप निमित्त नाहीं। ऐसे परद्रव्य को दोष रूप देखना तो मिथ्याभाव है। रागादिक भाव ही बुरे हैं सो इस कै ऐसी समझ नाहीं। और परद्रव्यन का दोष देख तिन विषे द्वेष रूप उदासीनता करे है। सांची उदासीनता इस का नाम है, कि कोई भी द्रव्य का दोष गुण न भासे इस लिये किसी को बुरा भला न जाने आप को आप जाने पर को पर जाने। पर से कुछ भी मेरा प्रयोजन नाहीं। ऐसा मान साक्षीभूत रहे है। सो ऐसी उदासीनता ज्ञानी ही कै होय है।

और यह उदासीन होय शास्त्र विषे व्यवहार चारित्र अणुव्रत महाव्रतरूप कहा है। तिस को अङ्गीकार करे है। एक देश वा सर्व देश हिंसादिक पाप को छोड़े है। तिन की जगह अहिंसादिक पुण्य रूप कार्यन विषे प्रवर्त्तै है। और जैसे पर्यायाश्रित पाप कार्यन विषे कर्त्तापना माने था। तैसे ही अब पर्यायाश्रित पुण्य कार्यन विषे कर्त्तापना अपना मानने लगा। ऐसे पर्यायाश्रित कार्यन विषे अहं बुद्धि मानने की समानता भई। जैसे मैं जीव मारूं हूं। मैं परिग्रह धारी हूं इत्यादि रूप मानेथा तैसे ही मैं जीवन की रक्षा करूं हूं। मैं नग्न परिग्रह रहित हूं, ऐसी मान भई सो पर्यायाश्रित कार्यन विषे अहं बुद्धि सो ही मिथ्यादृष्टिहै। सोई समयसार विषे कहा है :—

येतु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसावृताः।
सामान्यजनवत् तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षताम्॥

अर्थ—जो जीव मिथ्या अन्धकार कर व्याप्त होते सन्ते आप को पर्यायाश्रित क्रिया का कर्त्ता माने हैं सो जीव मोक्षाभिलाषी हैं तौभी तिन कै जैसे सामान्य (अन्यमती) मनुष्यन कै मोक्ष न होय तैसे मोक्ष न होय है। क्योंकि इन कै कर्त्तापना के श्रद्धान की समानता है। और ऐसे आप कर्त्ता होय श्रावक धर्म वा मुनि धर्म्म की क्रिया विषे मन, वचन, काय, की प्रवृत्ति निरन्तर राखे है। जैसे उन क्रियान विषे भङ्ग न होय तैसे प्रवर्त्तै है, सो ऐसे भाव तो सराग हैं। चारित्र है सो वीतराग भाव

रूप है। इसलिये ऐसे साधन को मोक्षमार्ग मानना मिथ्या बुद्धि है। —:(यहां प्रश्न):— जो सराग वीतराग भेद कर दो ही प्रकार चारित्र कहा है सो कैसे है। —:(तिस का उत्तर):— जैसे चावल दोय प्रकार हैं। एक तुष सहित हैं। एक तुष रहित हैं तहां ऐसा जानना तुष है सो चावल का स्वरूप नाहीं। चावल विषे दोष है। कोई स्याना तुष सहित चावल का संग्रह करे था तिस को देख कोई भोला तुष ही को चावल मान संग्रह करे तो वृथा ही खेद खिन्न होय। तैसे चारित्र दोय प्रकार है। एक सराग है। एक वीतराग है। तहां ऐसा जानना राग है। सो चारित्र का स्वरूप नाहीं। चारित्र विषे दोष है। और कई ज्ञानी प्रशस्तराग सहित चारित्र धरे हैं। तिन को देख कई अज्ञानी प्रशस्त राग ही को चारित्र मान संग्रह करें तो वृथा खेद खिन्न ही होयें तहां कोई कहेगा पाप क्रिया करतें तो तीव्र रागादिक होते थे, अब इन क्रियान के करने से मन्द राग भया इसलिये जितने अंश रागभाव घटा उतना अंश तो चारित्र कहो। जितने अंश राग रहा उतने अंश राग कहो ऐसा उस कै सराग चारित्र सम्भवै है —:(तिस का समाधान):— जो तत्वज्ञान पूर्वक ऐसा होय तो जैसे कहे तैसे ही है। तत्वज्ञान बिना उत्कृष्ट आचरण है तोभी असंयम ही नाम पावे। क्योंकि रागभाव करने का अभिप्राय नाहीं मिटा है सोई दिखाइये है। द्रव्यलिङ्गी मुनि राज्यादिक को छोड़ निर्ग्रन्थ होय है। अठाईस मूल गुणन को पाले है। उग्रोग्र अनशनादि घना तप करे है। क्षुधादिक बाईस परीषह सहे है।

इस साधन कर इस लोक परलोक के विषय सुखों को न चाहे है। ऐसी तो इस की दशा भई है कि शरीर के खण्ड खण्ड भये भी व्यग्र न होय व्रत भङ्ग के कारण अनेक मिलैं तौभी दृढ़ रहे है। किसी सेती क्रोध न करे है। ऐसा साधन करे है। ऐसे साधन विषे कोई कपटाई नाहीं है। इस साधन कर इस लोक परलोक के विषय सुख को न चाहे है। ऐसी इस की दशा भई है। जो ऐसी इस की दशा न होय तो ग्रीवैयक पर्यन्त कैसे पहुंचे। परन्तु इस को मिथ्यादृष्टि असंयमी ही शास्त्र विषे कहा है। सो तिस का कारण यह है कि इस के तत्वन का श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं पूर्वें वर्णन किया तैसे तत्वन का श्रद्धान ज्ञान भया है। तिस ही अभिप्राय से सर्व साधन करे है सो इन साधनों के अभिप्राय की परम्परा को विचारे कषायन का अभिप्राय आवे है। कैसे सो कहिये है। यह पाप के कारण रागादिक को तो हेय जान छोड़े है परन्तु पुण्य के कारण प्रशस्तराग को उपादेय माने है। तिस के बन्ध का उपाय करे है। सो प्रशस्तराग भी तो कषाय है, कषाय को उपादेय मानना तब कषाय करने ही का श्रद्धान रहा। अप्रशस्त परद्रव्यन से द्वेष कर प्रशस्त परद्रव्यन विषे राग करने का अभिप्राय भया। कुछ परद्रव्यन विषे साम्यभाव रूप अभिप्राय न भया -:(यहां प्रश्न):- जो सम्यक्दृष्टि भी तो प्रशस्तराग का उपाय राखे है। -:(तिस का उत्तर):- जैसे किसी के बहुत दण्ड होता था, सो थोड़ा दण्ड देने का उपाय राखे है। सो थोड़ा दण्ड दिये हर्ष भी माने है। परन्तु श्रद्धान विषे दण्ड देना अनिष्ट ही माने है। तैसे सम्यग्दृष्टि के

पाप रूप बहुत कषाय होता था। सो यह पुण्य रूप थोड़ा कषाय करने का उपाय राखे है। सो थोड़ा कषाय भये हर्ष भी माने है। परन्तु श्रद्धान विषे कषाय को हेय ही माने है। और जैसे कोई कुमाई का कारण जान व्यापारादिक का उपाय राखे है। उपाय बन आये हर्ष माने है। तैसे द्रव्यलिङ्गी मोक्ष का कारण जान प्रशस्तराग का उपाय राखे है। उपाय बन आये सुख माने है। ऐसे प्रशस्तराग का उपाय विषे वा हर्ष विषे समानता होतैं भी सम्यग्दृष्टि कै तो दण्ड समान मिथ्यादृष्टि के व्यापार समान श्रद्धान पाइये है। इसलिये अभिप्राय विषे विशेष भेद भया और इस कै परिग्रह तपश्चरण आदि के निमित्त से दुःख होय तिस का इलाज तो करे है, परन्तु उस को दुःख वेदे है सो दुःख का वेदना कषाय ही है। जहां वीतरागता होय है तहां तो जैसै अन्य ज्ञेय को जाने है तैसे ही दुःख के कारण ज्ञेय को जाने है, सो ऐसी दशा इस की न होय है यह तो उन को कषाय के अभिप्राय रूप विचारते हुए सहे है सो विचार ऐसा होय है जो परवश से मैंने नरकादिक विषे तो घने दुःख सहे हैं। सो यह परीषहादिक का दुःख तो थोड़ा है, इस को स्वयमेव सहे स्वर्गमोक्ष सुख की प्राप्ति होय है सो इन को सहियें। और विषय सुख सहने से नरकादिक की प्राप्ति होगी तहां बहुत दुःख होगा। इत्यादि विचार परीषह विषे अनिष्ट बुद्धि राखे है। केवल नरकादिक के भय से वा सुख के लोभ से तिन को सहे है। सो यह सर्व कषाय भाव ही है, और ऐसा विचार होय है। जो कर्म बांधे थे सो भोगे विना छूटते नाहीं, इसलिये

मुझ को सहने आये सो ऐसे विचार से कर्म फल चेतना रूप प्रवर्त्तै है और पर्याय दृष्टि से जो परीषहादिक रूप अवस्था होय है तिस को आप के भई माने है । द्रव्यदृष्टि से अपनी या शरीरादिक की अवस्था को भिन्न भिन्न न पहिचाने है, ऐसे ही नाना प्रकार व्यवहार विचार से परीषहादिक सहे है । और इस ने राज्यादिक विषय सामग्री का त्याग किया है। वा इष्ट भोजनादिक का त्याग किया करे है। सो जैसे कोई दाह ज्वर वाला वाय होने के भय से शीतल वस्तु सेवन का त्याग करे है। परन्तु उस को यावत् शीतल वस्तु का सेवन रुचे तावत् तिस कै दाह का अभाव न कहिये। तैसे राग सहित नरकादिक के विषय सेवन न करे है, परन्तु यावत् विषय सेवन रुचे तावत् राग का अभाव न कहिये। और जैसे अमृत का स्वाद कर देवन को अन्य भोजन स्वयमेव न रुचे तैस स्वय रसका आस्वाद कर विषय सेवन की अरुचि इस कै होय है इस प्रकार फलादिक की अपेक्षा परीषह आदिक को सुख का कारण जाने है। और विषय सेवन को दुःख का कारण जाने है, और तत्काल विषे परीषह सहनादिक से दुःख माने है। विषय सेवनादिक से सुख माने है, और जिनसे सुख दुःख होना मानिये तिन विषे अनिष्ट इष्ट बुद्धि से राग द्वेष रूप के अभिप्राय का अभाव होय नाहीं, और जहां राग द्वेष है तहां चारित्र है नाहीं। इसलिये यह द्रव्यलिंगी विषय सेवन छोड़ तपश्चरणादिक करे है, तथापि असंयमी ही है। सिद्धान्त विषे असंयत देश संयत सम्यग्दृष्टि से भी इसको हीन कहा है। क्योंकि उन कै चौथा पांचवां गुणस्थान है। इस कै पहिला गुण स्थान है। यहां कोई कहै, कि असंयत संयत सम्यग्दृष्टि कै

कषायन की प्रवृत्ति विशेष है। और द्रव्यलिंगी मुनि के थोड़ी है। इस ही से असंयत संयत सम्यग्दृष्टि तो सोलह्वां स्वर्ग पर्यन्तही जाय है। और द्रव्यलिङ्गी ऊपर ग्रीवैयक पर्यन्त जाय है --:(तिसकासमाधान):-- असंयत देश संयत सम्यग्दृष्टि के कषायन की प्रवृत्ति तो है। परन्तु श्रद्धान विषे कोई कषाय करने का अभिप्राय नाहीं है और द्रव्यलिङ्गी के शुभ कषाय करने का अभिप्राय मानिये है। श्रद्धान विषे तिनको भले जाने है। इसलिये श्रद्धान अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि से भी इस के अधिक कषाय है और द्रव्यलिंगी के योगन की प्रवृत्ति शुभ रूप घनी है। और अघाती कर्मन विषे पुण्य पाप बन्ध का विशेष शुभ अशुभ योगन के अनुसार है। इसलिये ऊपर ग्रीवैयक पर्यन्त पहुंचे है। सो कुछ कार्यकारी नाहीं। क्योंकि अघाति कर्म्म आत्म गुण के घातक नाहीं। इनके उदय से ऊंचे नीचे पद पाये तो क्या है। यह तो वाह्य संयोगमात्र संसार दशा के स्वांग हैं आप तो आत्मा है इसलिये आत्मगुण के घातक घातिया कर्म हैं। तिनका हीनपना कार्यकारी है सो घातिया कर्मन का बन्ध वाह्य प्रकृति के अनुसार नाहीं। अन्तरङ्ग कषाय शक्ति के अनुसार है। इस ही से द्रव्यलिङ्गी से असंयत देश संयत सम्यग्दृष्टि के घाति कर्मन का बन्ध थोड़ा है। द्रव्यलिङ्गी के तो सर्व घाति कर्मन का बन्ध बहुत स्थित अनुभाग लिये होय है, और असंयत देश संयत सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी आदि कर्म का तो बन्ध है नाहीं। अवशेषण का बन्ध होय है। सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिये होय है, और द्रव्यलिङ्गी के कदाचित् गुणश्रेणी निर्जरा न होय है। सम्यग्दृष्टि के कदाचित् होयहै। देश सकल संयम भये निरन्तर होय है। इस ही से यह मोक्षमार्ग

भया है। इसलिये द्रव्यलिङ्गी मुनि को शास्त्र में असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टि से हीन कहा है। सो समयसार शास्त्र विषे द्रव्यलिंगी मुनि का हीनपना गाथा वा टीका कलशा विषे प्रगट किया है। और पञ्चास्तिकाय की टीका विषे जहां केवल व्यवहारावलम्बी का कथन किया है तहां व्यवहार पञ्चाचार होतें भी तिसका हीनपना ही प्रगट किया है। और प्रवचनसार विषे संसार तत्व द्रव्यलिङ्गी को कहा है। और परमात्माप्रकाशादिक अन्य शास्त्रन विषे भी इस व्याख्यान को स्पष्ट किया है। और द्रव्यलिङ्गी के जो व्रत तप शील संयमादिक क्रिया हैं तिनको भी अकार्यकारी इन शास्त्रन विषे जहां तहां दिखाया है सो तहां से देख लेना यहां ग्रन्थ बढ़ने के भय से नहीं लिखा है केवल व्यवहाराभास के अवलम्बी मिथ्यादृष्टिन का निरूपण किया है॥

अब जो निश्चय व्यवहार दोऊ नय के आभास को अवलम्बे हैं। ऐसे मिथ्यादृष्टिन का निरूपण कीजिये है॥

जो जीव ऐसा माने हैं, कि जैनमत विषे निश्चय व्यवहार दोय नय कही हैं। इसलिये हम को तिन दोनों का अङ्गीकार करना योग्य है, ऐसे विचार कर जैसे केवल निश्चयाभास के अवलम्बी का कथन किया था तैसे तो निश्चय को अङ्गीकार करे है। और जैसे केवल व्यवहाराभास के अवलम्बीन का कथन किया था, तैसे व्यवहार अङ्गीकार करे है। यद्यपि ऐसे अङ्गीकार करने विषे दोनों नयों के

परस्पर विरोध है तथापि क्या करें। सांचा स्वरूप तो दोनों नयों का भासता नहीं और जैनमत विषे दो नय कहे हैं, तिन विषे किसी को भी छोड़ा जाता नहीं, भ्रम से दोनों का साधन साधे है सो भी जीव मिथ्यादृष्टि जानना। अब इनकी प्रवृत्ति का विशेष दिखाइये है। अन्तरंग विषे आप तो निर्द्धारण कर यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचाना नाहीं। जिन आज्ञा मान निश्चय व्यवहार रूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार माने है सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं। मोक्षमार्ग का निरूपण दोय प्रकार है। सो जहां सांचे मोक्षमार्ग का निरूपण सो निश्चय मोक्षमार्ग है। और जहां मोक्षमार्ग तो है नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है वा सहकारी है तिसको उपचार कर मोक्षमार्ग कहिये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है। क्योंकि निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सांचा निरूपण सो निश्चय उपचार निरूपण सो व्यवहार है। इसलिये निरूपण अपेक्षा दोय प्रकार मोक्ष मार्ग जानना। और तहां एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है। ऐसे दोय मोक्षमार्ग जानने सो मिथ्यात्व है। और निश्चय व्यवहार दोनों को उपादेय माने है सो भी भ्रम है। क्योंकि निश्चय व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोध लिये है। सो समयसार विषे ऐसा कहा है:—

प्रा०   वि (वा) वहारो अभूदत्थो भूदत्थो (देसि) उत सुद्धणऊ।

अर्थ—व्यवहार जो है सो अभूतार्थ है और जो शुद्धनय (निश्चय) है वह भूतार्थ है॥

भावार्थ—व्यवहार अभूतार्थ है सत्य स्वरूप का निमित्त रूप है। किसी अपेक्षा उपचार कर अन्यथा निरूपै है। और शुद्ध नय जो निश्चय है सो भूतार्थ है। जैसे वस्तु का स्वरूप है तैसे निरूपै है। ऐसे इन दोनों का स्वरूप तो विरुद्धता लिये है। और तू ऐसा माने है जो सिद्ध समान शुद्ध आत्मा का अनुभवन सो निश्चय और व्रत शील संयमादिक रूप प्रवृत्ति सो व्यवहार सो ऐसा तेरा मानना ठीक नाहीं। क्योंकि किसी द्रव्यभाव का नाम निश्चय किसी का नाम व्यवहार ऐसे नाहीं है। एक ही द्रव्य के भाव को उस के स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चय है। उपचार कर उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करणा सो व्यवहार है। जैसे माटी के घड़े को माटी का घड़ा निरूपण करे सो निश्चय है। और घृत संयोग कर उस को ही घृत का घट कहिये सो व्यवहार है। ऐसे ही अन्यत्र जानना। इसलिये तू किसी को निश्चय मान किसी को व्यवहार माने है सो भ्रम है। और तेरे मानने विषे भी निश्चय व्यवहार के परस्पर विरोध आया। जो तू आप को सिद्ध समान शुद्ध माने है तो व्रत आदिक किस लिये करे है। और जो व्रतादिकका साधन कर सिद्ध भयाचाहे है तो वर्त्तमान विषे शुद्ध आत्मा का अनुभवन मिथ्या भया। ऐसे दोनों नयों का परस्पर विरोध है। इसलिये दोनों नयों को उपादेय मानना बने नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो समयसारादिक विषे शुद्ध आत्मा के अनुभव को निश्चय कहा है। व्रत, तप संयमादिक को व्यवहार कहा है तैसे ही हम माने हैं —:(तिस का-समाधान):— शुद्ध आत्मा का अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है। इसलिये उस को निश्चय कहा है। यहां स्व-

भाव से अभिन्न परभाव से भिन्न ऐसा शुद्ध शब्द का अर्थ जानना। संसारी को सिद्ध मानना ऐसा भ्रम रूप अर्थ शुद्ध शब्द का न जानना। और व्रत, तप, आदिक मोक्षमार्ग है नाहीं। निमित्तादिक की अपेक्षा उपाचार से इन को मोक्षमार्ग कहिये है। इसलिये इन को व्यवहार कहा है। ऐसे भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपना कर इन को दोय प्रकारमोक्षमार्ग निश्चय व्यवहार कर कहे हैं सो ऐसे ही मानना। और यह दोनों ही सांचे मोक्षमार्ग हैं। इन दोनों को उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि है। तहां वह कहे है श्रद्धान तो निश्चय का राखे हैं। और प्रवृत्ति व्यवहार रूप राखे है। ऐसे हम दोनों को अङ्गीकार करे हैं सो भी बने नाहीं। क्योंकि निश्चय का निश्चय रूप और व्यवहार का व्यवहार रूप श्रद्धान करना युक्त है। एक ही नय का श्रद्धान भये एकान्त मिथ्यात्व होय है। और प्रवृत्ति विषे नय का प्रयोजन नाहीं, प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। जिस द्रव्य की परिणति होय तिस को तिस ही कर प्ररूपिये है सो निश्चय है। और तिस ही को अन्य द्रव्य की प्ररूपिये सो व्यवहार नय है ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण में तिस प्रवृत्ति विषे दोनों नय बने हैं। कुछ प्रवृत्ति ही तो नय रूप है नाहीं, इसलिये इस प्रकार भी दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है तो क्या करिये सो कहिये है। निश्चय नय कर जो निरूपण किया होय, उस को सत्यार्थ मान उस का श्रद्धान अङ्गीकार करना। और व्यवहार नय कर जो निरूपण किया होय उस को असत्यार्थ मान तिस का श्रद्धान छोड़ना सोई समयसार विषे कहा है:—

श्लोकः—सर्वत्राऽध्यवसायमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्निश्चयमेकमेव परमं निष्कम्प(म्प्य)माक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि नयजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥

अर्थ—जिनदेव ने जो कहा है, कि सब पदार्थों में पूर्ण अध्यवसाय (यह पदार्थ मेरे हैं ऐसा निश्चय) जीव को छोड़ना योग्य है सो मैं यह मानता हूं, कि उन्होंने दूसरे पदार्थ के आधीन जो जीव का व्यवहार है वह सभी ही छुड़ाया है। इसलिये महात्मा लोग निश्चय सम्यक्त जो निष्कम्प और एक ही परम है उस को आश्रय कर निश्चय से उत्पन्न होने वाले शुद्धज्ञान घन आत्मा की महिमा में चित्त क्यों नहीं लगाते ॥

भावार्थ—यहां व्यवहार का त्याग कराया है इसलिये निश्चय अङ्गीकार कर निज महिमा-रूप प्रवर्त्तना युक्त है। और षट्पाहुड़ विषे ऐसा कहा है :—

प्रा॰— जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागई सकज्जम्मि।
जो जागई वा (वि) वहारे सो सुत्तो अपणे कज्जेमि ॥

अर्थ—जो योगी व्यवहार विषे सोता है सो वह अपने कार्य्य विषे जागे है। और जो व्यवहार विषे जागे है सो अपने कार्य विषे सोता है। भावार्थ—व्यवहार नय का श्रद्धान छोड़ निश्चय नय का श्रद्धान करना युक्त है, व्यवहार नय स्वद्रव्य परद्रव्य को वा तिन के भावन को वा कारण कार्यादिक को किसी के विषे मिलाय निरूपण करे है सो ऐसा श्रद्धान मिथ्यात्व है। इसलिये इस का त्याग करना। और निश्चय नय तिन को यथावत् निरूपै है, किसी को किसी के विषे न मिलावे है। सो ऐसे श्रद्धान से सम्यक्त होय है, इसलिये इस का श्रद्धान करना। —:(यहां प्रश्न):— जो ऐसे है तो जिनमार्ग विषे दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है सो कैसे है। —:(तिस का समाधान):— जैनमार्ग विषे कहीं तो निश्चय नय की मुख्यता लिये व्याख्यान है। तिस को तो सत्यार्थ ऐसे ही है, सो ऐसा जानना। और कहीं व्यवहार नय की मुख्यता लिये व्याख्यान है तिस को ऐसे है नाहीं निमित्तार्थ अपेक्षा उपचार किया है, ऐसा जानना। इस प्रकार जानने ही का नाम दोनों नयों का ग्रहण है, और दोनों नयों के व्याख्यान को सामान्य सत्यार्थ जान ऐसे भी है ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्ते ऐसे तो दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो व्यवहार नय असत्यार्थ है तो उस का उपदेश जिनमार्ग विषे किसलिये दिया। एक निश्चय नय का ही निरूपण करना था। —:(तिस का समाधान):— ऐसी ही तर्क "समयसार" विषे करी है, तहां यह उत्तर दिया है :—

जहणविसकमणिज्जो अणज्जो भासं विणा उगाहेउ।
तह विवहारेण विणा परम कुएवणासन मसक्कं॥

अर्थ—जैसे अनार्य जो म्लेच्छ सो म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण करवाने को समर्थ न होय है। तैसे व्यवहार बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है, (नामुमकिन है) तैसे व्यवहार का उपदेश है। और इस ही सूत्र के व्याख्यान विषे ऐसा कहा है:–

"व्यवहारनयोनानुसर्त्तव्य:"

अर्थ—व्यवहार नय है। सो अङ्गीकार करना योग्य नाहीं॥ भावार्थ—निश्चय के अङ्गीकार करावने को व्यवहार कर उपदेश दीजिये है। —:(यहां प्रश्न):— व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश न हो सकै तो व्यवहार नय को कैसे अङ्गीकार न करना सो कहो। —:(तिस का समाधान):— निश्चय नय कर तो आत्मा परद्रव्यन से भिन्न स्व भाव से अभिन्न स्वयं सिद्ध वस्तु है। तिस को जो न पहिचाने तिन को ऐसे ही कहा करिये तो वह समझें नाहीं। तब उन को व्यवहार नय कर शरीरादिक परद्रव्यन की सापेक्षा कर नर नारक पृथ्वी कायादिक रूप जीव के विशेष किये, कि मनुष्य जीव है, नारकी जीव है, इत्यादिक प्रकार लिये उस के जीव की पहिचान भई। अथवा अभेद वस्तु विषे भेद उपजाय ज्ञान दर्शनादिक गुण पर्याय रूप जीव के विशेष किये कि जानने वाला जीव

है, देखने वाला जीव है। इत्यादिक प्रकार लिये उस के जीव की पहिचान भई। और निश्चय कर वीतराग भाव मोक्षमार्ग है, तिस को जो न पहिचानें उस को ऐसे ही कहा कहिये तो वह समझे नाहीं। तब उन को व्यवहार नय कर तत्व श्रद्धान ज्ञान पूर्वक परद्रव्य का निमित्त मेटने की सापेक्षा कर व्रत शील संयमादिक रूप वीतराग भाव के विशेष दिखाये। तब उस के वीतराग भाव की पहिचान भई। इस ही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार बिना निश्चय के उपदेश का न होना जानना। और यहां व्यवहार कर नर नारकादिक पर्याय ही को जीव कहा सो पर्याय ही को जीव न मानना पर्य्याय तो जीव पुद्गल संयोग रूप है, तहां निश्चय कर जीव द्रव्य जुदा है तिस ही को जीव मानना। जीव के संयोग कर शरीरादिक को भी उपचार कर जीव कहिये सो कहने मात्र ही है, परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नाहीं ऐसा ही श्रद्धान करना, और अभेद आत्मा विषे ज्ञान दर्शनादिक भेद किये सो तिन को भेदरूप ही न मान लेने। भेद तो समझावने के अर्थ किया है। निश्चय कर आत्मा अभेद ही है। तिस ही को जीव वस्तु मानना। संज्ञा संख्यादिक कर भेद कहे सो कहने मात्र हैं। परमार्थ से जुदे जुदे हैं नाहीं ऐसा ही श्रद्धान करना। और परद्रव्य के निमित्त मिटने की अपेक्षा व्रत शील संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा, सो इन ही को मोक्षमार्ग न मान लेना। क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण त्याग आत्मा के होय तो आत्मा परद्रव्य का कर्त्ता हर्त्ता हो जावे सो कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नाहीं। इसलिये आत्मा अपने भाव जो रागादिक हैं तिन को छोड़

वीतरागी होय है। सो निश्चय कर वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है वीतराग भावन के और व्रतादिकन के कदाचित् कार्य्य कारणपना है, इसलिये व्रतादिक को मोक्षमार्ग कहे हैं सो कहने मात्र है। परमार्थ से वाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं है इसलिये ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसे ही अन्यत्र भी व्यवहार नय को अङ्गीकार न करना। –:(यहां प्रश्न):– जो व्यवहार नय पर के उपदेश विषे कार्यकारी है, सो अपना भी प्रयोजन साधे है, कि नाहीं। –:(तिसका समाधान):–आप भी यावत् निश्चय नय कर प्ररूपक वस्तु को नाहीं पहिचाने तब तक व्यवहार नय कर वस्तु का निश्चय करिये है। इसलिये नीचली दशा विषे आप को भी व्यवहार नय कार्यकारी है। परन्तु व्यवहार को उपचार मात्र मान उस के द्वारा वस्तु को ठीक करे तो कार्यकारी होय और जो निश्चयवत् व्यवहार को भी सत्य भूत वस्तुमान ऐसे ही है, ऐसा श्रद्धान करे तो उलटा अकार्यकारी होय है। सोई "पुरुषार्थसिद्धयुपाय" विषे कहा है :—

अबुद्धस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थं
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।
माणवक (मार्ज्जार) एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य॥

अर्थ—मुनिराज अज्ञानी के समझावने को असत्यार्थ जो व्यवहारनय तिस को उपदेशे हैं और जो केवल व्यवहार ही को जाने है तिस को उपदेश देना योग्य नहीं, जैसे जो सांचे सिंह को न जाने तिस के विलाव ही सिंह है तैसे जो निश्चय को न जाने तिस कै व्यवहार ही निश्चयपना को प्राप्त होय है। यहां कोई निर्विचार पुरुष ऐसे कहे, कि तुम व्यवहार को असत्यार्थ हेय कहो हो तो हम व्रत शील संयमादिक व्यवहार कार्य किसलिये करें सर्व को छोड़देवेंगे तिसको कहिए है कुछ व्रत शील संयमादिक का नाम व्यवहार नाहीं है। इनको मोक्षमार्ग जानना व्यवहार है सो छोड़ दे, और श्रद्धान कर जो इनको वाह्य सहकारी जान उपचार से मोक्षमार्ग कहा है यह तो पर द्रव्याश्रित हैं। और सांचा मोक्षमार्ग वीतराग भाव है सो स्व द्रव्याश्रित है। ऐसे व्यवहार को असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिक को छोडने से तो व्यवहार का हेयपना होता है नाहीं। और हम पूछे हैं व्रतादिक को छोड़ क्या करेगा जो हिंसादिक रूप प्रवर्त्तेगा तो तहां मोक्षमार्ग का उपचार भी संभवे नाहीं। तहां प्रवर्त्तने से क्या भला होगा, नरकादिक पावोगे। इसलिये ऐसा करना तो निर्विचार है। और व्रतादिकरूप परिणति मेट केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बने तो भला ही है। सो नीचली दशा विषे होय सके नाहीं। इसलिये व्रतादिक साधन छोड़ स्वच्छन्द होना योग्य नाहीं। इस प्रकार श्रद्धान विषे निश्चय की प्रवृत्ति में व्यवहार को उपादेय मानना सो भी मिथ्याभाव ही है। और यह जीव दोनों नयों के अंगीकार करने के अर्थ कदाचित् आपको शुद्ध सिद्ध समान रागादिक रहित केवल ज्ञानादिक सहित आत्मा

अनुभवै है ध्यान मुद्राधार ऐसे विचार विषे लगे है सो ऐसा आप नाहीं परन्तु भ्रम से निश्चय कर मैं ऐसा ही हूं ऐसे मान कर संतुष्ट होय है। कदाचित् वचन द्वारा निरूपण ऐसे ही करे है। सो निश्चय तो यथावत् वस्तु को प्ररूपे प्रत्यक्ष आप जैसा नाहीं तैसे आपको मानना सो निश्चय नाम कैसे पावे। जैसे केवल निश्चयाभास वाले जीवकै पूर्वं अयथार्थपना कहा था तैसे ही इसको जानना। अथवा यह ऐसे माने है कि इस नय कर आत्मा ऐसा है इस नय कर ऐसा है, आत्मा तो जैसा है तैसा ही है, तिस विषे नय कर निरूपण किये का जो अभिप्राय है तिसको नाहीं पहिचाने है। जैसे आत्मा निश्चय कर तो सिद्ध समान केवल ज्ञानादिक सहित द्रव्यकर्म्म, नोकर्म, भावकर्म्म, रहित है। व्यवहार नय कर संसारी मति ज्ञानादिक सहित वा द्रव्यकर्म्म, भावकर्म्म, नोकर्म, सहित है ऐसा मांने है सो एक-आत्मा कै ऐसे दोय स्वरूप तो होय नाहीं जिस भाव ही का सहितपना तिस भाव ही का रहितपना एक वस्तु विषे कैसे सम्भवै। इसलिये ऐसा मानना भ्रम है तो कैसे है, सो कहिये है। जैसे राजा और रङ्क मनुष्यपने की अपेक्षा समान हैं। तैसे सिद्ध और संसारी जीवतत्त्वपने की अपेक्षा समान कहे हैं 'केवल ज्ञानादिक की अपेक्षा समानता मानिये सो है नाहीं। संसारी कै निश्चय कर मति ज्ञानादिक ही है। सिद्धन कै केवल ज्ञान है। इतना विशेष है, संसारी कै मति ज्ञानादिक कर्म के निमित्त से हैं, इसलिये स्वभाव की अपेक्षा संसारी कै केवल ज्ञान की शक्ति कहिये तो दोष नाहीं जैसे रङ्क मनुष्य कै राजा होने की शक्ति पाइये है, तैसे यह शक्ति जाननी। और द्रव्यकर्म नोकर्म पुद्गल कर निपजै है। इसलिये निश्चय

कर संसारी के भी इन का भिन्नपना है, परन्तु सिद्धवत् इन का कार्य कारण अपेक्षा सम्बन्ध भी न माने तो भ्रम ही है। और भावकर्म आत्मा का भाव है इसलिये निश्चय कर आत्मा ही का है। कर्म के निमित्त से होय है, इसलिये व्यवहार कर कर्म का कहिये है। और सिद्धवत् संसारी के भी रागादिक न मानना कर्म ही का मानना यह भ्रम ही है, इस प्रकार दोनों नयों कर एक ही वस्तु को एक भाव अपेक्षा ऐसा भी मानना वैसा भी मानना सो तो मिथ्याबुद्धि है। और जुदे भावन की अपेक्षा नय की प्ररूपणा है ऐसे मान यथासम्भव वस्तु को मानना सो सांचा श्रद्धान है। इसलिये मिथ्यादृष्टि अनेकान्त रूप वस्तु को माने है, परन्तु यथार्थ भाव को पहिचान मान सके नाहीं, ऐसा जानना। और इस जीव के व्रत शील संयमादिक का अङ्गीकार पाइये है। सो व्यवहार कर यह भी मोक्षमार्ग के कारण हैं, ऐसा मान तिन को उपादेय माने है। सो जैसे केवल व्यवहारावलम्बि जीव के पूर्व अयथार्थ पना कहा था तैसे ही इस के अयथार्थ पना जानना। और यह ऐसे भी माने है सो यथार्थ योग्य व्रतादिक क्रिया तो करनी योग्य है। परन्तु इन विषे ममत्व न करना सो जिस का आप कर्त्ता होय तिस विषे ममत्व कैसे न करिये। आप कर्त्ता न हो तो मुझ को करना योग्य है, ऐसा भाव कैसे किया। और जो कर्त्ता है तो वह अपना कर्म भया। तब कर्त्ता कर्म सम्बन्ध स्वयमेव ही भया। सो ऐसे मानना भ्रम है तो कैसे है सो कहिये है। वाह्य व्रतादिक हैं सो तो शरीरादिक परद्रव्य के आश्रय है। परद्रव्य का आप कर्त्ता है नाहीं। इसलिये तिस विषे कर्तृत्वबुद्धि भी न करनी। और तहां ममत्व भी

न करना, और व्रतादिक विषे ग्रहण त्याग रूप अपना शुभोपयोग होय सो अपने आश्रय है। तिस का आप कर्त्ता है। इसलिये तिस विषे कर्त्तृत्वबुद्धि माननी तहां ममत्व भी करना। और इस शुभोपयोग को बन्ध का भी कारण जानना, मोक्ष का कारण न जानना। क्योंकि बन्ध और मोक्ष कै तो प्रतिपक्षी पना है। इसलिये एक ही भाव पुण्यबन्ध का भी कारण होय और मोक्ष का भी कारण होय ऐसा मानना भ्रम है। इसलिये व्रत अव्रत दोनों विकल्प रहित जहां परद्रव्य के ग्रहण त्याग का कुछ प्रयोजन नाहीं ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्षमार्ग है। और नीचली दशा विषे कई जीवन कै शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का युक्तिपना पाइये है। इसलिये उपचार कर व्रतादिक शुभोपयोग को मोक्षमार्ग कहा है। और विचार किये शुभोपयोग मोक्ष का घातक ही है। क्योंकि जो बन्ध का कारण सोई मोक्ष का घातक है। ऐसा श्रद्धान करना, और शुद्धोपयोग ही को उपादेय मानतिसका उपाय करना। शुभोपयोग को हेय जान तिन के त्याग का उपाय करना। जहां शुद्धोपयोग न हो सके तहां अशुभोपयोग को छोड़ शुभ ही विषे प्रवर्त्तना। इसलिये शुभोपयोग से अशुभोपयोग विषे अशुद्धता की अधिकता है। और शुद्धोपयोग होय तब तो परद्रव्य का साक्षीभूत ही रहे है। तहां तो कुछ परद्रव्य का प्रयोजन ही नाहीं। और शुभोपयोग होय तो तहां वाह्य व्रतादिक की प्रवृत्ति होय। और जो अशुभोपयोग होय तो तहां वाह्य अव्रतादिक की प्रवृति होय। क्योंकि अशुभोपयोग कै और परद्रव्य की प्रवृत्ति कै निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध पाइये है, और पहिले अशुभोपयोग छूट शुभोपयोग होय

पीछे शुभोपयोग छूट शुद्धोपयोग होय । ऐसी परपाटी है। और कोई ऐसे माने कि शुभोपयोग है सो शुद्धोपयोग का कारण है। सो जैसे अशुभोपयोग छूट शुभोपयोग होय है । तैसे शुभोपयोग छूट शुद्धोपयोग होय है। ऐसे ही कार्यकारणपना होय तो शुभोपयोग का कारण अशुभोपयोग ठहरे। अथवा द्रव्यलिङ्गी कै शुभोपयोग तो उत्कृष्ट होय है और शुद्धोपयोग होता नाहीं। इसलिये परमार्थ से इन कै कार्य कारणपना है नाहीं। जैसे रोगी कै बहुत रोग था, पीछे स्तोक रोग भया तो वह स्तोक रोग तो नीरोग होने का कारण है नाहीं, केवल इतना है जो आरोग्य होने का उपाय करे तो हो जाय सके है परन्तु जो स्तोक रोग ही को भला जान तिस के राखने का यत्न करे तो नीरोग कैसे होय, तैसे कषायी कै तीव्र कषाय रूप अशुभोपयोग था, पीछे मन्द कषाय रूप शुभोपयोग भया, तो वह शुभोपयोग तो निकषाय शुद्धोपयोग होने का कारण है नाहीं। इतना है शुभोपयोग भये शुद्धोपयोग का यत्न करे तो होय सकै है। और जो शुभोपयोग ही को भला जान तिस का साधन किया करे तो शुद्धोपयोग कैसे होय। इसलिये मिथ्यादृष्टि का शुभोपयोग तो शुद्धोपयोग का कारण है नाहीं, सम्यग्दृष्टि कै शुभोपयोग भये अवश्य शुद्धोपयोग प्राप्त होय है ऐसे मुख्यपने कर कहीं शुभोपयोग को शुद्धोपयोग का कारण भी कहिये है ऐसा जानना, और यह जीव आप को निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का साधक माने है। तहां पूर्वोक्त प्रकार आत्मा को शुद्ध माना सो तो सम्यग्दर्शन भया। तैसे ही जाना सो सम्यग्ज्ञान भया। तैसे ही विचार विषै प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया ऐसे तो

आपकै निश्चय रत्नत्रय भया माने। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्धको शुद्ध कैसे मानूं जानूं और विचारूं। इत्यादिक विवेक रहित भ्रम से संतुष्ट होय है। और अरहन्तादिक बिना अन्य देवादिक को न माने है। वा जैन शास्त्र अनुसार जीवादिक के भेद सीख लिये हैं तिन ही को माने है। और को न मानें है। सो तो सम्यग्दर्शन भया। और जैन शास्त्रन के अभ्यास विषे बहुत प्रवर्त्तै है। सो सम्यग्ज्ञान भया। और व्रतादिक रूप क्रिया विषे प्रवर्त्तै है सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसे आप कै व्यवहार रत्नत्रय भया मांने सो व्यवहार तो उपचार का नाम है। सो उपचार भी तो तब बने जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रय का कारणादिक होय जैसे निश्चय रत्नत्रय सधै, तैसे इन को साधै तो व्यवहारपनो भी सम्भवै है। सो इस कै तो सत्य भूत निश्चय रत्नत्रय की पहिचान भई नाहीं। यह ऐसे कैसे साध सकै। आज्ञानुसार हुवा वा देखादेखी साधन करे है। इसलिये इस कै निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगे निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का निरूपण करेंगे। उस के समाधान भये ही मोक्षमार्ग होगा। ऐसे यह जीव निश्चयाभास को माने हैं। जाने हैं, परन्तु व्यवहार साधन को भी भला जाने हैं, इसलिये स्वच्छन्द होय अशुभ रूप न प्रवर्त्तै हैं, व्रतादिक शुभोपयोग रूप प्रवर्त्तै हैं। इसलिये अन्त में ग्रीवैयक पर्यन्त पद को पावे है, और जो निश्चयाभास की प्रबलता से अशुभ रूप प्रवृत्ति हो जाय तो कुगति विषे भी गमन होय, परिणामन के अनुसार फल पावे है। परन्तु संसार का ही भोक्ता रहे है। सांचा मोक्षमार्ग पाये बिना सिद्ध पद को न पावे है। ऐसे निश्चयाभास व्यवहाराभास दोनों के

अवलम्बी मिथ्यादृष्टि तिन का निरूपण किया ॥

॥ अब सम्यक्त के सन्मुख जो मिथ्यादृष्टि तिनका निरूपण कीजिये है ॥

कोई मन्द कषायादिक का कारण पाय ज्ञानावरणादिक कर्म्मन का क्षयोपशम भया तिस से तत्त्व विचार करने की शक्ति भई और मोह मन्द भया तिस से तत्व विचार विषे उद्यमी भया और बाह्य निमित्त देव अपने गुरु शास्त्रादिक का निमित्तभया तिन कर सांचे उपदेश का लाभ भया। तहां अपने प्रयोजन भूत मोक्षमार्ग का वा देवगुरु धर्मादिक का वा जीवादि तत्वन का वा आपा पर का वा आप के हितकारी अहितकारी भावन का इत्यादिक के उपदेश से सावधान होय ऐसा विचार किया अहो मुझ को तो इन बातन की खबर भी नाहीं थी। मैं भ्रम से पर्याय विषे ही तन्मय भया सो इस पर्याय की तो थोड़े ही काल की स्थिति है। और यहां मुझ को सर्व निमित्त मिले हैं। इस लिये मुझ को इन बातन का ठीक करना योग्य है। क्योंकि इन विषे तो मेरा ही प्रयोजन भासे है। ऐसे विचार जो उपदेश सुना तिस का निर्द्धारण करने का उद्यम किया। तहां उपदेश लक्षण निर्देश परीक्षा द्वारा कर तिन का निर्द्धारण होय इसलिये पहिले तो तिन के नाम सीखे फिर तिन के लक्षण जाने और ऐसे सम्भवे है कि नाहीं ऐसा विचार कर परीक्षा करने लगा। तहां नाम सीख लेना, और लक्षण जान लेना यह दोनों तो उपदेश के अनुसार होय हैं। जैसे उपदेश दिया तैसे याद

कर लेना और परीक्षा करने विषे अपना विवेक चाहिये है । और विवेक कर एकान्त अपने उपयोग विषे विचारे जैसे उपदेश दिया तैसे ही है, कि अन्यथा है। तहां अनुमानादिक प्रमाण कर ठीक करे वा उपदेश तो ऐसे है । और न मानियें तो ऐसे होय सो इन विषे प्रवल युक्ति कौन है। और निर्बल युक्ति कौन है । जो प्रवल भासे तिस को सांच जाने और जो उपदेश से अन्यथा सांच भासे वा संदेह रहे निर्द्धार न होय तो और विशेष ज्ञानी होय तिन को पूछे । और वह उत्तर दे उस को विचारे, ऐसे ही जब तक निर्द्धार न होय तब तक प्रश्न उत्तर करे । अथवा समान बुद्धि के धारक होयें तिन को अपना विचार जैसा भया होय तैसा कहे, प्रश्न उत्तर कर परस्पर चर्चा करे और जो प्रश्नोत्तर विषे निरूपण भया होय तिस को एकान्त विषे विचारे इस ही प्रकार अपने अंतरंग विषे जैसे उपदेश दिया था तैसे ही निर्णय होय भाव भासे, तब तक ऐसे ही उद्यम किया करे और जो अन्य मत विषे कल्पित तत्वन का उपदेश दिया है तिस कर जो जैनमत का उपदेश अन्यथा भासे वा संदेह होय तो फिर पूर्वोक्त प्रकार कर उद्यम करे ऐसे उद्यम किये जैसे जिनदेव का उपदेश है तैसे ही सांच है मुझको भी ऐसे ही भासे है ऐसा निर्णय होय । क्यों कि जिनदेव अन्यथा वादी है नाहीं यहां कोई कहे, कि जिनदेव अन्यथा वादी नाहीं तो जैसे उन का उपदेश है तैसे श्रद्धान कर लीजिये, परीक्षा किसलिये कीजिये –:(तिस का समाधान):– परीक्षा किये विना यह तो मानना होय सो जिनवर देव ऐसा कहा है सो सत्य है । परन्तु उन का भाव आप को भासे नाहीं । और भाव भासे विना निर्मल श्रद्धान कैसे होय कदापि न होय । जिस की किसी का

वचन कर प्रतीति करिये तिसको अन्य वचन कर अन्यथा भी प्रतीति होजाय है इसलिये शक्ति अपेक्षा वचन कर करी हुई प्रतीत अप्रतीतवत् है और जिस का भाव भासा होय तिसको अनेक प्रकार कर भी अन्यथा न माने है इसलिये भाव भासे प्रतीति होय, सोई साची प्रतीति है। और जो कहोगे पुरुष प्रमाण से वचन प्रमाण कीजिये है तो पुरुष की भी प्रमाणता स्वयमेव तो न होय उस के कितने ही वचनों की परीक्षा पहिले कर लीजिये तब पुरुष की प्रमाणता होय है। —:(यहां प्रश्न):— उपदेश तो अनेक प्रकार किस किस की परीक्षा करिये —:(तिस का समाधान):— उपदेश विषे कई उपादेय कई हेय, तत्व निरूपे हैं। तहां उपादेय तत्वन की तो परीक्षा कर लेनी। क्योंकि इन विषे अन्यथापना भये अपना बुरा होय है। उपादेय को हेय मान ले तो बुरा होय, हेय को उपादेय मान ले तो बुरा होय और जो कहोगे आप परीक्षा न करी और जिन वचनन ही से उपादेय को उपादेय जाने, हेय को हेय जाने तो इस में कैसे बुरा होय। —:(तिस का समाधान):— अर्थ का भाव भासे विना वचन का अभिप्राय जो न पहिचाने, और यह मान लें कि मैं जिन वचन अनुसार मानूं हूं, सो भाव भासे विना अन्यथापना हो जाय है। लोक विषे भी किंकर को किसी कार्य को भेजिये है जो वह उस कार्य का भाव जाने तो भाव सुधारे, जो भाव न भासे तो कहीं चूक हो जाय इसलिये भाव भासने के अर्थ हेय उपादेय तत्वन की परीक्षा अवश्य करनी। तब वह कहे है परीक्षा अन्यथा होजाय तो क्या करिये। —:(तिस का समाधान):— जिन वचन और अपनी परीक्षा इन की समानता होय,

तब तो जानिये सत्य परीक्षा भई, जब तक ऐसा न होय तब तक जैसे कोई लेखा करे है तिस की विधि न मिले तब तक अपनी चूक को ढूंडे है। तैसे यह अपनी परीक्षा विषे विचार किया करे। और जो ज्ञेय तत्व है तिन की परीक्षा होय सके तो परीक्षा करे नाहीं तो यह अनुमान करे जो हेय उपादेय तत्व ही को अन्यथा न कहें तो ज्ञेय तत्व को अन्यथा किस अर्थ कहैं। जैसे कोई प्रयोजन रूप कार्य्यों विषे हो झूठ न बोले तो अप्रयोजन विषे झूठ किस लिये बोले, इसलिये ज्ञेय तत्वन की परीक्षा कर वा आज्ञा कर स्वरूप जाने है तिन का यथार्थ भाव न भासे तौभी दोष नाहीं। क्योंकि जैन धर्म्म शास्त्रन विषे जो तत्वादिक का निरूपण किया सो तो हेतु युक्ति आदि कर जैसे इस के अनुमानादिक कर प्रतीति आवे तैसे कथन किया, और त्रैलोक्य गुण स्थान मार्गणा पुराणादिक का कथन आज्ञानुसार किया इसलिये हेयोपादेय तत्वन की परीक्षा करनी योग्य है तहां जीवादिक द्रव्य वा तत्वन को पहि-चानना और त्यागने योग्य मिथ्यात्व रागादिक और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना, और निमित्त नैमित्तिकादिक को जैसे हैं तैसे पहिचानना इत्यादिक मोक्षमार्ग विषे जिन के जानें प्रवृत्ति होय तिन को अवश्य जानने। सो इन की तो परीक्षा करनी और सामान्यपने किसी हेतु युक्ति कर इनको जानने वा प्रमाण नय कर जानने। वा निर्देश स्वामित्वादिक कर वा शत संख्यादिक कर इन का विशेष जानना और जैसी बुद्धि होय और तैसा निमित्त बने, तैसे ही इन के सामान्य विशेष रूप पहिचानने और इस जानने का उपकारी गुण स्थान मार्गणादिक वा पुराणादिक वा व्रतादिक क्रिया-

दिक का भी जानना योग्य है। जहां परीक्षा होय सके तिस की तो परीक्षा करनी न होय सके तिस को आज्ञानुसार जानना। ऐसे इस जानने के अर्थ कभी आप विचार करे कभी शास्त्र वांचे कभी सुने, कभी अभ्यास करे इत्यादिक रूप प्रवृत्ति होय है, और अपना कार्य करने का जिस के हर्ष बहुत है, सो अंतरंग प्रतीति से तिस का समाधान करे इस प्रकार साधन करते यावत् सांचा तत्व श्रद्धान न होय यह ऐसे ही है। ऐसी प्रतीति लिये जीवादिक तत्वन का स्वरूप आप को न भासे जैसे पर्याय विषे अहं बुद्धि है तैसे केवल आत्मा विषे अहं बुद्धि आवे है, हित अहित रूप अपने भावन को न पहिचाने तावत् सम्यक्त के सन्मुख मिथ्यादृष्टि है। यह जीव थोड़े ही काल में सम्यक्त को प्राप्त होगा। इस ही भव में वा अन्य पर्याय विषे सम्यक्त को पावेगा। इस भव में अभ्यास कर परलोक विषे तिर्यंचादिक गति विषे जाय तो तहां संस्कार के बल से देव गुरु शास्त्र के निमित्त बिना भी सम्यक्त होजाय क्योंकि ऐसे अभ्यास के बल से मिथ्यात्व कर्म का अनुभाग हीन होय है जहां उस का उदय न होय तहां ही सम्यक्त होजाय है। इसलिये ऐसा अभ्यास ही मूल कारण है। देवादिक का तो बाह्य निमित्त है। सो मुख्यता कर तो इन के निमित्त से ही सम्यक्त होय है। तारतम्य से पूर्व अभ्यास संस्कार से वर्तमान इन का निमित्त न होय तोभी सम्यक्त होय सके है। सिद्धान्त विषे ऐसा सूत्र है :—

"तन्निसर्गादधिगमाद्वा"

अर्थ--सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगम से होय है। तहां देवादिक वाह्य निमित्त विना होय सो निसर्ग से भया कहिये। देवादिक निमित्त से होय सो अधिगम से भया कहिये। देखो तत्व विचार की महिमा तत्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करै और बहुत शास्त्र अभ्यास करै और व्रतादिक तपश्चरणादिक करै तिस कै तो सम्यक्त होने का अधिकार नाहीं। और तत्व विचार वाला इन बिना भी सम्यक्त का अधिकारी होय है। और कई जीवों कै तत्व विचार होने से पहिले किसी कारण से देवादिक की प्रतीति होय वा व्रत तप को अङ्गीकार करे पीछे तत्व विचार करै परन्तु सम्यक्त का अधिकारी तत्व विचार भये ही होय, और किसी कै तत्व विचार होतें भी तत्व प्रतीति न होने से सम्यक्त तो न भया। और व्यवहार धर्म्म की प्रतीति की रुचि हो गई, इससे देवादिक की प्रतीति का तो नियम है। इस विना सम्यक्त न होय व्रत आदिक का तो नियम नाहीं घने जीव तो पहिले सम्यक्ति होयें पीछे ही व्रतादिक को धारे हैं, किसी को युगपत् भी होजाय है। ऐसे यह तत्व विचार वाला जीव सम्यक्त का अधिकारी है। परन्तु इस कै सम्यक्त ही होय ऐसा नियम नाहीं। क्योंकि शास्त्र विषै सम्यक्त होने से पञ्च लब्धि का होना कहा है। क्षयोपशम १, विशुद्धि २, देशना ३, परायोग ४, करण ५, तहां जिसकै होते सन्ते तत्व विचार होय सके ऐसा ज्ञानावरणादिक कर्म्मन का क्षयोपशम होय उदय काल को प्राप्त सर्व्व स्पर्द्धकन के निषेपन के उदय का अभाव सो क्षय, और अनागत काल विषै उदय आवने योग्य तिन ही का सत्तारूप रहना सो उपशम,

ऐसे देशघाती स्पर्द्धकन का उदय सहित कर्म्मन की अवस्थिति का क्षयोपशम है। तिस की प्राप्ति सो क्षयोपशम लब्धि है। और मोह का मन्द उदय आवते मन्द कषाय रूप भाव होयें, तहां तत्वविचार होय सकै सो विशुद्धि लब्धि है। और जिनदेव और साततत्व का धारण होय सो देशना लब्धि है, जहां नरकादिक विषे उपदेश का निमित्त न होय तहां पूर्व्व संस्कार से होय, और कर्म्मन की पूर्व्व शक्ति घट कर अनन्त कोटा कोटी सागर परमाण रहती जाय, और नवीन बन्ध अनन्त कोटा कोटी परमाण जिस के संख्यात में भाग मात्र होय सोभी तिस लब्धि काल से लगाय क्रम से घटता होय, कितनीक, पाप प्रकृतिन का बन्ध क्रम से मिटता जाय इत्यादि योग अवस्था का होना सो परायोग लब्धि है। सो यह चारों लब्धि भव्य वा अभव्य कै होय हैं इसलिये तिस तत्व विचार वाले कै सम्यक्त होने का नियम नाहीं, जैसे कोई किसी को हित की शिक्षा दे, और वह तिसको जानकर विचार करै कि यह जो सीख दे है सो कैसी है, पीछे विचार कर उसकै ऐसे होय ऐसे उस सीख की प्रतीति होजाय है और जो अन्यथा विचार होय तो वा अन्य विचार विषे लग जाय तो तिस उपदेश का निर्द्धार करे तो प्रतीति नाहीं भी होय, सो इस का मूल कारण मिथ्यात्व कर्म्म है। इस का जिस कै उदय मिटे तो उसकै प्रतीति होजाय है। और न मिटे तो नाहीं होय है ऐसा नियम है। इस का उद्यम तो विचार करने मात्र है। और पञ्चमी करण लब्धि भये सम्यक्त होय ही होय ऐसा नियम है। जो जिसकै पूर्व्वें कही थी चार लब्धि सो तो भई होवें और अन्तर्मुहूर्त्त पीछे जिस कै सम्यक्त होना होय तिस ही जीव कै करणलब्धि होय है। सो इस करण

लब्धि वाले कै बुद्धि पूर्वक तो इतना उद्यम होय है कि तत्व विचार विषे उपयोग को तद्रूप होय लगावे तिस कर समय समय परिणाम निर्म्मल होते जायें। जैसे किसी के सीख का विचार ऐसे निर्म्मल होने लगा जिस कर इस कै शीघ्र ही तिसकी प्रतीति होजाय तैसे तत्व उपदेश का विचार ऐसा निर्म्मल होने लगा जिस कर इस कै शीघ्र ही तिस का श्रद्धान होय। और इन परिणामन का तारतम्य केवल ज्ञान कर देखा तिस कर निरूपण करणानुयोग विषे किया है। सो इस करण लब्धि के तीन भेद हैं। अधःकरण १, अपूर्वकरण २, अनिवृतिकरण ३, इन का विशेष व्याख्यान तो लब्धिसार शास्त्र विषे किया है तिस से जानना। यहां संक्षेपसा कहिये है। त्रिकालवर्त्ती सर्व्व करणलब्धि वाले जीव तिन के परिणामन की अपेक्षा यह तीन नाम हैं। तहां करण नाम तो परिणामन का है। और जो पहिले पिछले समयन के परिणाम समान होयें सो अधःकरण कहिये, जैसे किसी जीव का परिणाम तिस करण के पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिये भया पीछे समय समय अनन्त गुणी विशुद्धता कर बधते भये। और उस कै जैसे द्वितीय तृतीयादिक समयन विषे परिणाम होयें तैसे कई अन्य जीवन के प्रथम समय विषे ही होयें तिस कै तीसरे समय समय अनन्तगुणी विशुद्धता कर बधते होयें ऐसे अधःकरण जानना। और तिस विषे पहिले पिछले समयन के परिणाम समान न होयें अपूर्व ही होयें, जैसे तिस करण के परिणाम पहिले समय होयें तैसे किसी जीव के द्वितायादिक समयन विषे न होयें बधते ही होयें तिस करण के परिणाम जैसे जिन जीवन के करण के पहिले समय ही होयें

तिन अनेक जीवन के परस्पर परिणाम समान भी होयें। और अधिक विशुद्धता लिये भी होयें, परन्तु यहां इतना विशेष भया जो इस की उत्कृष्टता से भी द्वितीयादिक समय वाले का जघन्य परिणाम भी अनंत गुणी विशुद्धता लिये होय,ऐसे ही जिनकै करण माण्डे द्वितीयादिक समय भया होय तिनकै तिस समय वालों कै तो परस्पर परिणाम समान वा असमान होयें परन्तु ऊपरले समय वालों के तिस समय समान सर्वथा न होयें। अपूर्व ही होयें ऐसे अपूर्वकरण जानना, और जिस विषे समान समयवर्त्ती जीवन के परिणाम समान ही होयें, निवृत्त कहिये परस्पर भेदता कर रहित होयें। जैसे जिस करण के पहिले समय विषे सर्व जीवन कै परस्पर समान नहीं होयें। ऐसे ही द्वितीयादिक समय विषे समानता परस्पर जाननी। और प्रथमादिक समयवालों से द्वितीयादिक समय वालोंकैअनंत गुणी विशुद्धता लिये होयें ऐसे अनिवृत्तिकरण जानना, ऐसे यह तीन कर्ण जानने। तहां पहिले अंतर्मुहूर्त्त काल पर्य्यन्त अधःकरण होय, तहां चार आवश्यक होय हैं समय समय अनंत गुणी विशुद्धता होय और एक अंतर्मुहूर्त्त कर नवीन बंधकी स्थिति घटती होय सो स्थिति बंधापसरण होय। और समय समय प्रशस्त प्रकृतिन का अनंतगुणा अनुभाग बधै और समय समय अप्रशस्त प्रकृतिन का अनुभाग बन्ध अनंतवें भाग होय। ऐसे चार आवश्यक होयें तहां पीछे अपूर्वकरण होय तिसकाल अधःकरणके कालके असंख्यातवें भाग है तिसविषे यह आवश्यक और होय,एक२ अंतर्मुहूर्त्त कर सत्ताभूत पूर्वकर्म्म की स्थिति थी,तिस को घटावे सो स्थितिकाण्ड घात होजाय और तिससे स्तोक एक२ अंतर्मुहूर्त्त कर पूर्व कर्म्म के अनुभाग को घटावे सो अनुभागकाण्ड का

घात होय,और गुणश्रेणी का कालविषे क्रम से असंख्यात गुणा प्रमाण लिये कर्म्म निर्जरने योग्य कर ऐसे गुणश्रेणी निर्जरा होय,और गुण संक्रमण यहां नाहीं होय है। अन्यत्र अपूर्वकरण होय है। ऐसे अपूर्वकरण भये पीछे अनिवृतिकरण होय तिसकाल अपूर्वकरण के भी असंख्यातवें भाग है। तिस विषे पूर्वोक्त आवश्यक सहित कितनेक काल गये पीछे अनिवृत्तिकरण करे है। अनिवृतिकरण के काल पीछे उदय आवने योग्य ऐसे मिथ्यात्व कर्म्म प्रकृति मुहूर्त्तमात्र निषेकन का अभाव करे है तिन परिणामन को अन्य स्थितिरूप परिणमावे है। और अंतःकरण के पीछे उपशम करे है। अंतःकरण कर अभाव रूप किये निषेकन के ऊपर जो मिथ्यात्व के निषेक तिन के उदय आवने को अयोग्य करे है। इत्यादिक क्रिया कर अनिवृत्तिकरण का अन्त समय के अनन्तर जिन निषेकन का अभाव किया था तिन का उदयकाल आया, तब निषेकन बिना उदय किस का आवे इसलिये मिथ्यात्व उदय न होने से प्रथमोपशम सम्यक्त की प्राप्ति होय है। अनादि मिथ्यादृष्टि कै सम्यक्त मोहनी मिश्रमोहनी की सत्ता नाहीं है, इसलिये एक मिथ्यात्व कर्म ही को उपशमाय उपशम सम्यग्दृष्टि होय है। और कोई जीव सम्यक्त पाये, पीछे भ्रष्ट होय है, तिस की भी दशा अनादि मिथ्यादृष्टि कैसी हो जाय है।

—:(यहां प्रश्न):— जो परीक्षा कर तत्व का श्रद्धान किया था तिस का अभाव कैसे होय।

—:(तिस का समाधान):— जैसे किसी पुरुष को शिक्षा दई तिस की परीक्षा कर उस कै ऐसे ही है। ऐसी प्रतीति भी आई थी पीछे अन्यथा किसी प्रकार कर विचार भया। इसलिये उस

शिक्षा विषै सन्देह भया। ऐसे है कि ऐसे है। अथवा न जाने कैसे है। अथवा तिस शिक्षा को झूठ जान तिस से विपरीति भई। तब उस कै अप्रतीति भई। तब उस कै तिस शिक्षा की प्रतीति का अभाव होय। अथवा पूर्वै तो अन्यथा प्रतीति ही थी बीच में शिक्षा के विचार से यथार्थ प्रतीति भई थी। और तिस शिक्षा का विचार किये बहुत काल हो गया तब तिस को भूल कर जैसे पूर्वै अन्यथा प्रतीति थी तैसे ही स्वयमेव होगई। तब तिस शिक्षा की प्रतीति का अभाव हो जाय अथवा यथार्थ प्रतीति पहिले कीन्ही पीछे न तो कुछ अन्यथा विचार किया न बहुत काल भया परन्तु तैसे ही कर्म्म के उदय से होनहार के अनुसार स्वयमेव ही तिस प्रतीति का अभाव होय अन्यथापना भया। ऐसे अनेक प्रकार तिस शिक्षा की यथार्थ प्रतीति का अभाव होय है। तैसे जीव कै जिनदेव का तत्वादिक रूप उपदेश भया तिस की परीक्षा कर उस कै ऐसे ही है ऐसा श्रद्धान भया। पीछे पूर्वै जैसे कहे तैसे अनेक प्रकार तिस यथार्थ श्रद्धान का अभाव होय है। सो यह कथन स्थूलपने दिखाया है। तारतम्य कर केवल ज्ञान विषै भासे है। इस समय श्रद्धान है, कि इस समय नाहीं है। क्योंकि यहां मूल कारण मिथ्यात्व कर्म है। तिस का उदय होय तब तो अन्य विचारादिक कारण मिलो वा मति मिलो। स्वयमेव सम्यक्श्रद्धान का अभाव होय है। और तिस का उदय न होय तब अन्य कारण मिलो वा मत मिलो स्वयमेव सम्यक्श्रद्धान होजाय है। सो ऐसे अन्तरङ्ग समय सम्बन्धी सूक्ष्म दशा का जानना छद्मस्थ के होता नाहीं। इसलिये अपनी

मिथ्या सम्यक्श्रद्धानरूप अवस्था का तारतम्य इस कै निश्चय होय सके नाहीं । केवल ज्ञान विषे भासे है । तिस अपेक्षा गुणस्थान की पलटन शास्त्र विषे कही है। इस प्रकार जो सम्यक्त से भ्रष्ट होय सो सादि मिथ्यादृष्टि कहिये तिस कै भी और सम्यक् की प्राप्ति विषे पूर्वोक्त पांच लब्धि ही होय हैं। विशेष इतना यहां किसी जीव कै दर्शन मोह की तीन प्रकृतिन की सत्ता होय है । सो तिन को उपशमाय प्रथमोपशम सम्यक्त होय है। अथवा किसी कै सम्यक्त मोहनी का उदय आवे है। दोय प्रकृतिन का उदय न होय है सो क्षयोपशम सम्यक्ती ही होय है । इस कै गुण श्रेणी आदि क्रिया न होय है। वा अनिवृत्तिकरण न होय है। और किसी कै मिश्रमोहनी का उदय आवे है दोय प्रकृतिन का उदय न होय है। सो मिश्र गुणस्थान को प्राप्त होय है। इस कै क्षायिक सम्यक्त को कारण न होय है। ऐसे सादि मिथ्यादृष्टि कै मिथ्यात्व छुटे दशा होय है । वेदक सम्यग्दृष्टि ही पावे है। इसलिये तिस का कथन यहां नहीं किया है। ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि का जघन्य तो मध्य अन्तर्मुहूर्त्त मात्र उत्कृष्ट किञ्चित् ऊन अर्द्ध पुद्गल परिवर्त्तन मात्र काल जानना देखो परिणामन की विचित्रता कोई जीव तो ग्यारवें गुणस्थान यथाख्यात चारित्र पाय फिर मिथ्यादृष्टि होय किञ्चित् ऊन अर्द्ध पुद्गल परिवर्त्तन काल पर्यन्त संसार में रुले। और कोई नित्य निगोद में से निकस मनुष्य होय आठ वर्ष की आयु में मिथ्यात्व से छुटे पीछे अन्तर्मुहूर्त्त में केवल ज्ञान पावे। ऐसा जान अपने परिणाम विगड़ने का भय राखना। और तिन के सुधारने का

उपाय करना और इस सादि मिथ्यादृष्टि के थोड़े काल मिथ्यात्व का उदय रहे तो वाह्य जैनीपना नष्ट न होय है। वा तत्वन का अश्रद्धान व्यक्त न होय है, वा बिना विचार किये ही वा स्तोक विचार होने पर फिर सम्यक्त की प्राप्ति हो जाय है। और बहुत काल मिथ्यात्व का उदय रहे तो जैसी अनादि मिथ्यादृष्टि की दशा तैसी इस के भी होय है। गृहीत मिथ्यात्व को भी ग्रहे है। निगोदादि विषे भी रुले है इस का कुछ प्रमाण नाहीं। और कोई जीव सम्यक्त से भ्रष्ट होय सासाधन करे है सो तहां जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली प्रमाण काल रहे है। सो इस के परिणामन की दशा वचन कर कहने में आवे नाहीं सूक्ष्म काल मात्र किसी जाति के परिणाम केवल ज्ञानगम्य होय हैं तहां अनन्तानुबन्धी का तो उदय होय है। और मिथ्यात्व का उदय न होय है सो आगम परिणाम से इस का स्वरूप जानना। और कोई सम्यक्त से भ्रष्ट होय मिश्र गुणस्थान को प्राप्त होय है। तहां मिश्रमोहनी का उदय होय है। इस का काल मध्य अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है। सो इस का भी काल थोड़ा है। सो इस का भी परिणाम केवल ज्ञान गम्य है। यहां इतना भासे है। जैसे किसी को सीख दई तिस को वह कुछ सत्य कुछ असत्य एकैकाल माने तैसे तत्वन का श्रद्धान अश्रद्धान एकैकाल होय सो मिश्र दशा है। कई कहे हैं हम को तो जिनदेव वा अन्य देव सब ही बन्दिवे योग्य हैं। इत्यादि मिश्रश्रद्धान को मिश्र गुणस्थान कहे हैं सो नाहीं। यह तो प्रत्यक्ष मिथ्यादर्शन है। सत्य रूप देवादिक श्रद्धान भये भी मिथ्यात्व रहे है तो इस के तो देव कुदेव का कुछ भी ठीक नाहीं। इस

के तो यह मिथ्यात्व प्रगट है ऐसे जानना। ऐसे सम्यक्त को सन्मुख मिथ्यादृष्टीन का कथन किया है। प्रसंग पाय अन्य भी कथन किया है इस प्रकार जैनमत वाले मिथ्यादृष्टीन का स्वरूप निरूपण किया है। यहां नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीन का कथन किया है। तिस का प्रयोजन यह जानना कि इन प्रकारों को पहिचाने जो आप विषे कोई ऐसा दोष होय तो तिस को दूर कर सम्यक्श्रद्धानी होना औरन ही के ऐसे दोष देख कर कषायी न होना। क्योंकि अपना भला बुरा तो अपने परिणामन से होय है। औरन को रुचिवान देखे तो कुछ उपदेश दे उन का भी भला करे। इसलिये अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना। और सर्व प्रकार के मिथ्यात्व भाव को छोड़ सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। क्योंकि संसार का मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाहीं है। एक मिथ्यात्व के साथ अनन्तानुबन्धी के अभाव भये इकतालीस प्रकृतीन का तो बन्ध ही मिट जाय है और स्थिति अन्तः कोटा कोटी सागर की रह जाय है अनुभाग थोड़ा रह जाय शीघ्र ही मोक्ष पद को पावे है। और मिथ्यात्व का सद्भाव रहे अन्य अनेक उपाय किये भी मोक्ष न होय है। इसलिये जिस तिस उपाय कर सर्व प्रकार मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है॥

इति श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नाम शास्त्र विषे जिनमत वाले मिथ्यादृष्टीन का निरूपण जिस में किया ऐसा सातवां अधिकार संपूर्ण भया॥

अब मिथ्यादृष्टि जीवन को जैनमत अनुसार मोक्षमार्ग का उपदेश दीजिए है ॥

मिथ्यादृष्टि जीवन का उपकार करना भी उत्तम उपकार है। तीर्थङ्कर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करे हैं । इसलिये इस शास्त्र विषे भी उन ही के उपदेश के अनुसार उपदेश दीजिये है तहां उपदेश का स्वरूप जानने के अर्थ कुछ व्याख्यान कीजिये है क्योंकि उपदेश को यथावत् पहिचाने तो अन्यथा न प्रवर्त्तें इसलिये उपदेश का स्वरूप कहिये है । जिनमत विषे उपदेश चार अनुयोग कर दिया है । प्रथमानुयोग १, करणानुयोग २, चरणानुयोग ३, द्रव्यानुयोग ४, यह चार अनुयोग हैं । तहां तीर्थङ्कर चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषन के चरित्र का जिस विषे निरूपण किया होय सो प्रथमानुयोग है, और त्रिलोक का वा गुणस्थान मार्गणा कर्म प्रकृतिन का कथन होय सो करणानुयोग है, और गृहस्थी और निर्ग्रन्थ मुनि के धर्म आचरण करने का जिस विषे निरूपण होय सो चरणानुयोग है, और षट्द्रव्य सप्त तत्वादिक का वा स्वपर भेद विज्ञानादिक का जिस विषे निरूपण होय सो द्रव्यानुयोग है, अब इन का प्रयोजन कहिये है ॥

॥ अब प्रथमानुयोग का निरूपण करिये है ॥

प्रथमानुयोग विषे तो संसार की विचित्रता वा पुण्य पाप का फल महन्त पुरुषन की प्रवृत्ति इत्यादिक

निरूपण कर जीवन को धर्म्म विषे लगाईये है। जो जीव तुच्छ बुद्धि होयें तौभी तिसकर धर्म्म सन्मुख होय हैं। क्योंकि जो जीव सूक्ष्म निरूपण को पहिचाने नाहीं और लौकिक वार्त्ता को ही जानें तहां उन का उपयोग लगे, सो प्रथमानुयोग विषे तो लौकिक प्रवृत्ति रूप ही निरूपण है तिस को नीके समझें और लौकिक विषे राजादिकन की कथान विषे पाप का वा पुण्य का पोषण है तहां महंत पुरुष राजादिक तिन की कथा तो हैं परन्तु प्रयोजन जहां तहां पापको छुड़ाय धर्म्म विषे लगावनें काही प्रगट किया है ता कि संसारी जीव कथान को पहिले तो लालच कर वांचै सुनैं पीछे पापको बुरा और धर्म्म को भला जान धर्म्म विषे रुचिवंत होयें इस अभिप्रायसे तुच्छबुद्धीन के समझावनेको यह अनुयोग प्रथम कहियेहै अनुचित मिथ्यादृष्टि तिन के अर्थ जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग कहिये है, ऐसा अर्थ गोमट्टसार की टीका विषे किया है। और जिन जीवन कै तत्वज्ञान हुवा होय पीछे इस प्रथमानुयोग को वांचे सुनें तो तिन को यह तिस का उदाहरण रूप भासे है। जैसे जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ है, ऐसे यह जाने था और पुराणन विषे जीवन के भवान्तर निरूपण किये सो तिस जानने के उदाहरण भये और शुभाशुभ शुद्धोपयोग को जाने था वा तिन के फल को जाने था और पुराणों विषे तिन उपयोगन की प्रवृत्ति और तिन का फल जीवन कै भया सो निरूपण किया है सो तिस जानने का उदाहरण भया ऐसे अन्यत्र जानने। यहां उदाहरण का अर्थ यह है जैसे यह जाने था तैसे तहां कोई जीव कै अवस्था भई। इसलिये यह तिस जानने की साची भई, और जैसे कोई सुभट है सो सुभटन की प्रशंसा और कायर की निन्दा

जिस विषे होय जैसे पुराने पुरुषन की कथा सुन कर सुभटपने विषे अतिउत्साहवान होय तैसे धर्म्मी है सो धर्म्मात्मा की प्रशंसा और पापीन की निन्दा जिस विषे होय ऐसी कोई पुराने पुरुषन की कथा सुनने कर धर्म्म विषे अति उत्साहवान होय है, ऐसे यह प्रथमानुयोग का प्रयोजन जानना ॥

॥ अब करणानुयोग का प्रयोजन कहिये है ॥

करणानुयोग विषे जीवन की वा कर्मनकी विशेषता वा त्रिलोकादिक की रचना निरूपण कर जीवन को धर्म विषे लगाइए है, जो जीव धर्म्म विषे उपयोग लगाया चाहे सो जीव जीवन के गुणस्थानादि मार्गणा विशेष और कर्म्मन के कारण अवस्था फल कौन २ के कैसे २ पाइये हैं, इत्यादिक विशेष और त्रिलोक विषे नरक स्वर्गादिक के ठिकाने पहिचान पापसे विमुख होय धर्म्म विषे लगे हैं और ऐसे विचार विषे जा उपयोग रम जाय तो तब पाप प्रकृति छूट स्वयमेव तत्काल धर्म्म उपजे है। तिस अभ्यास कर तत्व-ज्ञान की भी प्राप्ति शीघ्र होय है और ऐसा सूक्ष्म पदार्थ कथन जिन मत विषे कहा है अन्यत्र नाहीं। ऐसी महिमा जान जिन मत का श्रद्धानी होय है। और जो जीव तत्वज्ञानी होय इस करणानुयोग को अभ्यासे हैं, तिनको यह तिसका विशेषण रूप भासे है और जो जीवादिक तत्व आप जाने है तिनही के विशेष करणानुयोग विषे किये हैं। तहां काहूं विशेषण तो यथावत् निश्चय रूप हैं, काहूं उपचार लिये व्यवहार रूप हैं काहूं द्रव्य क्षेत्र काल भावादिक का स्वरूप प्रमाणादिक रूप हैं, काहूं निमित्त आश्रयादिक

अपेचा लीये हैं इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषण निरूपण कीये हैं तिन को जैसा का तैसा जान
तिस करणानुयोग को अभ्यासे है। इस अभ्यास से तत्त्वज्ञान निर्मल होय है। जैसे कोई यह तो जाने
है यह रत्न है परन्तु उस रत्न के विशेषण घने जाने तो निर्मल रत्न का पारखी होय है। तैसे तत्त्वन
को जाने कि यह जीवादिक हैं, परन्तु तिन तत्त्वन के घने विशेषण जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होय।
तत्त्वज्ञान निर्मल भये आप ही विशेष धर्म्मात्मा होय है। और अन्य ठिकाने उपयोग को लगाइये तो
रागादिक की वृद्धि होय है और छद्मस्थ का एकाग्र निरन्तर उपयोग रहे नाहीं इस लिये ज्ञानी इस कर-
णानुयोग के अभ्यास विषे उपयोग को लगावे हैं। तिस कर केवल ज्ञान कर देखे पदार्थ तिन का जानपना
इस के होय है केवल प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष ही का भेद है। भासने विषे विरोध है नाहीं, ऐसे यह करणानु-
योग का प्रयोजन जानना, करण कहिये गणित कार्य्य का कारण सूत्र तिन का जिस विषे अनुयोग अधि-
कार होय सो करणानुयोग है। इस विषे गणित वर्णन की मुख्यता है ऐसा जानना।

अब चरणानुयोग का प्रयोजन कहिये है॥

चरणानुयोग विषे नाना प्रकार धर्म्म के साधन निरूपण कर जीवों को धर्म्म विषे लगाइये है
जो जीव हित अहित को जाने नाहीं हिंसादिक पाप कार्यन विषे तत्पर होय रहे हैं तिन को जैसे
वह पाप कार्यन को छोड़ धर्म्म कार्य्यन विषे लगें तैसे उपदेश दिया है, तिस को जान धर्म्म आचरण

जिस विषे सन्मुख भये सो जीव गृहस्थधर्म्म मुनिधर्म्म का निधान सुन आप जैसा धर्म्म सधै तैसे धर्म्म धर्म्मों विषे लगे हैं। ऐसे साधन से कषाय मंद होय है, तिस के फल से कषाय मंद रहे है, तिस के फल कथा सना तो होय है जो कुगति विषे दुःख न पावै और सुगति विषे सुख पावे और ऐसे साधन से जैन निमित्त बना रहे है, तहां तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होनी होय तो होजाय। और जो जीव तत्त्वज्ञानी ...य चरणानुयोग को अभ्यासे हैं। तिन को यह सर्व आचरण अपने बीतराग भाव के अनुसार ही भासे हैं एकदेश वा सर्वदेश बीतरागता भये ऐसी श्रावगदशा और मुनिदशा होय है। इसलिये इन कै निमित्तनैमित्तिकपनो पाइये है, ऐसा जान श्रावकमुनिधर्म्म की विशेष पहिचान होय है जैसा अपना बीतराग भाव भया होय तैसा अपने योग्य धर्म्म को साधे है। तहां जितना अंश बीतरागता होय है, तिस को कार्य्यकारी जाने है। जितना अंश राग रहे है, तिस को हेय जाने है। सम्पूर्ण बीतरागता को परमधर्म्म माने है, ऐसे चरणानुयोग का प्रयोजन है।

अब द्रव्यानुयोग का प्रयोजन कहिये है।

द्रव्यानुयोग विषे द्रव्यन का वा तत्त्वन का निरूपण कर जीवों को धर्म्म विषे लगाइये है। जो जीव जीव अजीवादिक द्रव्यन को वा तत्त्वन को पहिचाने नाहीं, आपा पर को भिन्न जाने नाहीं तिन को हेतु दृष्टान्त युक्ति कर वा प्रमाण न्यायादिक कर तिन का स्वरूप ऐसे दिखाया। जैसे इस की

प्रतीति हो जाय तिस के अभ्यास से अनादि अज्ञानता दूर हो जाय, अन्यमत कल्पित तत्त्वादिक झूठे भासें तब इस के जैनमत की प्रतीति होय, और उनके भाव पहिचानने का अभ्यास राखे तो शीघ्र ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाय और जिन जीवों के तत्त्वज्ञान भया होय सो जीव द्रव्यानुयोग को अभ्यासें और तिन के अपने श्रद्धान के अनुसार से सर्व कथन अनुभासे हैं। जैसे किसी ने किसी विद्या को सीखा परन्तु जो तिस का अभ्यास किया करे तो वह याद रहे न करे तो भूल जाय। तैसे इस के तत्त्वज्ञान भया परन्तु यह तिस की प्राप्ति को द्रव्यानुयोग का अभ्यास किया करे तो वह तत्त्वज्ञान रहै न करे तो भूल जाय अथवा संक्षेप से तत्वज्ञान भया था सो नाना युक्ति हेतु दृष्टान्तादिक कर स्पष्ट हो जाय तो तिस विषे शिथिलता न होय सके और इस अभ्यास से रागादिक घटने से शीघ्र मोक्ष सधे ऐसा द्रव्यानुयोग का प्रयोजन जानना। अब इन अनुयोगन विषे किस प्रकार व्याख्यान हैं सो कहिये है॥

॥ अब प्रथमानुयोग विषे किस प्रकार व्याख्यान है सो कहिये है॥

प्रथमानुयोग विषे जो मूल कथाहैं सो तो जैसी थी तैसी ही निरूपीहैं। और तिन विषे प्रसंग पाय जो व्याख्यानक होय है सो कोई तो जैसा का तैसा होय है और कोई ग्रन्थकर्त्ता के विचार के अनुसार होय है। परन्तु प्रयोजन अन्यथा न होय है। -(तिस का उदाहरण)- जैसे तीर्थंकर देवन के कल्याणकन विषे इन्द्र आया, यह कथा तो सत्य है। और इन्द्रनेस्तुति करी तिसका व्याख्यान किया सो इन्द्रने तो

और ही प्रकार स्तुति करी थी। और यहां ग्रन्थकर्त्ता ने और ही प्रकार स्तुति लिखी परन्तु स्तुति रूप
प्रयोजन अन्यथा न भया, और परस्पर कोसी ही के वचनालाप भया। तहां उन के तो और प्रकार
अक्षर निकसे थे यहां ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावे है। और वन नगर
ग्रामादिक के नामादिक तो यथावत् ही लिखे। और वर्णन हीनाधिक प्रयोजन पोषता निरूपे है।
इत्यादिक ऐसे ही जानना। और प्रसंग रूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपने विचार अनुसार कहे है जैसे धर्म्म
परीक्षा विषे मूर्खन की कथा लिखी, सो यही कथा मनोवेगा कही थी। ऐसा नियम नाहीं परन्तु मूर्ख
पना को पोषती कोई वार्त्ता कही थी ऐसा अभिप्राय पोषे है। ऐसे ही अन्यत्र जानना। यहां कोई कहे,
अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्र विषे संभवता नाहीं। —:(तिस का उत्तर):— अन्यथा तो उस
का नाम है, जो प्रयोजन और का और प्रगट करे जैसे किसी को कहा तू ऐसे कहियो उस ने वही अक्षर
तो कहे नाहीं, परन्तु तिस ही प्रयोजन लिये कहा तिस को मिथ्यावादी न कहिये तैसे जानना, जैसे को
तैसा लिखने का संप्रदाय होय तो किसी ने बहुत प्रकार वैराग्य चितवन किया था तिस का वर्णन सब
लिखने से ग्रन्थ बढ जाय, बिना लिखने से उस का भाव भासे नाहीं इसलिये वैराग्य के ठिकाने थोड़ा
बहुत अपने विचार के अनुसार वैराग्य पोषता ही कथन करे सराग पोषता न करे यहां प्रयोजन अन्यथा
न भया। इसलिये इसको अयथार्थ न कहियेहै। ऐसे ही अन्यत्र जानना। और प्रथमानुयोग विषे जिसकी
मुख्यता होय तिस को ही पोषे है। जैसे किसी ने उपवास किया तिस का तो फल स्तोक था, और

उस के अन्य धर्म परिणति की विशेषता भई। इसलिये विशेष उच्चपद की प्राप्ति भई तहां तिस को उपवास ही का फल निरूपण करे। ऐसे ही अन्यत्र जानना। और जैसे किसी ने शील ही की दृढ़ प्रतिज्ञा राखी वा नमस्कार मन्त्र स्मरण किया वा अन्य धर्म साधन किया तिस के कष्ट दूर भये अतिशय प्रगट भया। तहां तिन ही का तैसा फल भया। और अन्य कोई कर्म उदय से वैसे कार्य भये तौभी तिनको तिन शीलादिक का ही फल निरूपण करै, ऐसे ही कोई पाप कार्य किया तिस को तिस ही का तैसा फल तो न भया। और अन्य कर्म उदय से नीचगति को प्राप्त भया। वा कष्टादिक भये तिस को तिस ही पाप का फल निरूपण करे। इत्यादिक ऐसे ही जानना। यहां कोई कहे झूठा फल दिखावना तो योग्य नाहीं। ऐसे कथन को प्रमाण कैसे कीजिये। —:(तिस का समाधान):— यह अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाये बिना धर्म विषे न लगें। वा पाप से न डरें तिन का भला करने के अर्थ ऐसे वर्णन करिये है। और झूठ तो तब होय जब धर्म के फल को पाप का फल बतावें पाप के फल को धर्म का फल बतावें सो तो है नाहीं। जैसे दस पुरुष मिल कोई कार्य करें तहां उपचार कर एक पुरुष का भी किया कहिये तो दोष नाहीं। अथवा जिस के पिता(त्रा)दिक ने कोई कार्य किया होय तिस को एक जाति अपेक्षा उपचार कर पुत्रादिक का किया कहिये तो दोष नाहीं। जैसे बहुत शुभ अशुभ कार्यन का एक फल भया तिस को उपचार कर एक शुभ वा अशुभ कार्य का फल कहिये तो दोष नाहीं अथवा और शुभ अशुभ कार्य का फल जो भया होय

तिस को एक जाति अपेक्षा उपचार कर कोई और भी शुभ वा अशुभ कार्य का फल कहे तो दोष नाहीं उपदेश विषे कहीं व्यवहार वर्णन है कहीं निश्चय वर्णन है। यहां उपचार रूप व्यवहार वर्णन किया है। ऐसे इस को प्रमाण कीजिये इस को तारतम्य न मान लेना। तारतम्य करणानुयोग विषे वर्णन किया है। सो जानना। और प्रथमानुयोग विषे उपचार रूप कोई धर्म का अङ्ग भये सम्पूर्ण भया कहिये हैं जैसे जीवन कै शङ्काकाङ्क्षा न किये सम्यक्त होय। सम्यक्त तो तत्त्वश्रद्धान भये ही होय है। परन्तु निश्चय सम्यक्त का तो व्यवहार सम्यक्त विषे उपचार किया। और व्यवहार सम्यक्त का कोई एक अङ्ग विषे सम्पूर्ण व्यवहार सम्यक्त का उपचार किया। ऐसे उपचार कर सम्यक्त भया कहिये है और कोई जैन शास्त्र का एक अङ्ग जाने सम्यग्ज्ञान कहिये। सो संशयादिक के रहित तत्त्वज्ञान भये सम्यग्ज्ञान होय है, परन्तु पूर्ववत् उपचार कहिये। और कोई भला आचरण भये सम्यक् चारित्र भया कहिये है। तहां जिसने धर्म अङ्गीकार किया होय वा छोटी मोटी प्रतिज्ञा ग्रही होय तिस को श्रावक कहिये सो श्रावक तो पञ्चम गुणस्थानवर्ती भये होय है। परन्तु पूर्ववत् उपचार कर इस को श्रावक कहा है। उत्तरपुराण विषे श्रेणिक को उत्तम श्रावक कहा सो वह तो असंयत था, परन्तु जैनी था इसलिये कहा। ऐसे ही अन्यत्र जानना। और जो सम्यक्त रहित मुनिलिङ्ग धारे उस को द्रव्यत्व भी यत्याचार लगता होय तिस को मुनि कहिये सो मुनि तो षष्ठादि गुणस्थान भये होय है परन्तु पूर्ववत् उपचार कर मुनि कहा है। समवसरण सभा विषे मुनियों की

संख्या कही तहां सर्व ही शुद्धभाव लिङ्गी नाहीं थे। परन्तु मुनिलिङ्ग धारणे से सबन को मुनि कहे हैं ऐसे ही अन्यत्र जानना। और प्रथमानुयोग विषे कोई धर्म बुद्धि से अनुचित कार्य करे तिस की प्रशंसा कहिये है, जैसे विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों का उपसर्ग दूर किया सो धर्म्म अनुराग से किया परन्तु मुनि पद छोड़ यह कार्य करना योग्य न था क्योंकि ऐसा कार्य तो गृहस्थ धर्म्म विषे सम्भवे है और गृहस्थधर्म से मुनिधर्म को ऊंचा कहें सो ऊंचा धर्म्म छोड़ नीचा धर्म्म अङ्गीकार किया है सो अयोग्य है। परन्तु वात्सल्य अङ्ग की प्रधानता कर विष्णुकुमार जी की प्रशंसा करी, इस छल कर औरन को ऊंचा धर्म छोड़ नीचा धर्म अङ्गीकार करना योग्य नाहीं। और जैसे गुवालिये ने मुनि को अग्नि कर तपाया (सिकाया) सो करुणा से यह कार्य किया परन्तु इस उपसर्ग को तो दूर करे, सहज अवस्था में जो शीतादिक की परीषह होय है तिस को दूर किये रति मानने का कारण होय है सो उनको रति करनी नाहीं। तब उलटा उपसर्ग होय इसलिये विवेकी उन के शीतादिक का उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेकी था, करुणा कर यह कार्य किया। इसलिये इस की प्रशंसा करी औरन को धर्ममार्ग पद्धति विषे जो विरुद्ध होय सो कार्य करना योग्य नाहीं। और जैसे वज्रकरण राजा सिंहोदर राजा को नमा नाहीं। मुद्रिका विषे प्रतिमा राखी सो बड़े बड़े सम्यग्दृष्टि राजादिक को नमैं, इस का दोष नाहीं। और मुद्रिका विषे प्रतिमा राखने में अविनय होय है यथावत् विधि से ऐसी प्रतिमा न होय इसलिये इस कार्य विषे दोष ही है। परन्तु उस के ऐसा ज्ञान न था धर्म्मानुराग

से औरन को नसुं नाहीं ऐसी बुद्धि भई इसलिये उस की प्रशंसा करी है इस छल कर औरन को ऐसा कार्य करना युक्त नाहीं । और कई पुरुषों ने पुत्रादिक की प्राप्ति के अर्थं वा रोग कष्टादिक दूर करने के अर्थं चैत्यालय पूजादिक कार्य किये सो पूजनादिक किये नमस्कार मन्त्र स्मरण किया सो ऐसे किये तो निष्कांक्षित गुण का अभाव होय है। निदान बन्ध नामा आर्त ध्यान होय है । पाप ही का प्रयोजन अन्तरङ्ग विषे है। इसलिये पाप ही का बन्ध होय है परन्तु मोहित होय कर भी बहुत पाप बन्ध का कारण कुदेवादिक का तो पूजनादिक न किया, इतना इस का गुण ग्रहण कर उस की प्रशंसा करिये है। इस छल कर लौकिक कार्यन के अर्थं धर्म साधन करना युक्त नाहीं, ऐसे ही अन्यत्र जानना ऐसे ही प्रथमानुयोग विषे अन्य कथन भी होय तिस को यथासम्भव जान भ्रम रूप न होना ॥

॥ अब करणानुयोग विषे किस प्रकार व्याख्यान है सो कहिये है ॥

जैसे केवल ज्ञान कर जाना तैसे करणानुयोग विषे व्याख्यान है सो केवल ज्ञान कर तो बहुत जाना। परन्तु जीव को जीव कर्म्मादिक का वा त्रिलोकादिक का ही निरूपण कार्य्य कारी है सो तिन का भी स्वरूप सर्वं निरूपण होय न सके। इसलिये जैसे वचन गोचर होय छद्मस्थ के ज्ञान विषे उन का कुछ भाव भासे तैसे संकोच कर निरूपण करिये है और तिन का भी स्वरूप सर्व निरूपण

न होय सके। इसलिये जैसे वचन गोचर होय तैसे निरूपै हैं। —:(यहां उदाहरण):— जैसे जीवके भाव की अपेक्षा गुण स्थान कहे हैं सो भाव तो अनन्त स्वरूप लिये हैं वचन गोचर नाहीं। तहां वहुत भावन की एक जाति कर चौदह गुण स्थान कहे हैं। और जीवके जानने की अनेक प्रकार हैं तहां मुख्य चौदह मार्गणा का निरूपण किया है। और कर्म परमाणु अनन्त प्रकार शक्ति युक्त हैं। तिन विषे वहुतन की एक जाति कर आठ वा एक सौ अठतालीस प्रकृति कही हैं। और त्रिलोक विषे अनेक रचना हैं तहां मुख्य कितनीक रचना निरूपण करी हैं। और प्रमाण के अनन्त भेद हैं तहां संख्यातादिक तीन भेद वा इन के इकीस भेद निरूपण किये हैं। ऐसे ही अन्यत्र जानना। और करणानुयोग विषे यद्यपि वस्तु क्षेत्रकाल भावादिक अखण्डित है। तथापि छद्मस्थ कै हीनाधिक ज्ञान होने के अर्थ प्रदेश समय अविभाग प्रतिच्छेदादिक की कल्पना कर तिन का प्रमाण निरूपिये है और एक एक वस्तु विषे जुदे जुदे गुणन का वा पर्यायन का भेद कर निरूपण कीजिये है। और जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तथापि सम्बन्धादिक कर अनेक द्रव्यन कर निपजे गति जाति आदि भेद तिन को एक जीव के निरूपे हैं। इत्यादि व्यवहार नय की प्रधानता लिये व्याख्यान के जानना। क्योंकि व्यवहार बिना विशेष जानता नाहीं और जान सके नाहीं। और कहीं निश्चय वर्णन भी पाइये है। जैसे जीवादिक द्रव्यन का प्रमाण निरूपण किया सो जुदे जुदे इतने ही द्रव्य हैं। सो यथासम्भव जान लेने, और करणा-नुयोग विषे जो जो कथन हैं सो कई तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष अनुमानादिक गोचर होय हैं। और जो न होवें

तिन को आज्ञा प्रमाण कर ही मानने जैसे जीव पुद्गल के स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादिक पर्याय वा घटादिक पर्याय निरूपण किये । तिन का तो प्रत्यक्ष अनुमानादिक होसके है । और समय समय प्रति सूक्ष्म परिणाम अपेक्षा ज्ञानादिक के वा स्निग्ध सूक्ष्मादिक के अंश निरूपण किये सो आज्ञा ही से प्रमाण होय हैं ऐसे ही अन्यत्र जानना । और करणानुयोग विषे छद्मस्थन की प्रवृत्ति के अनुसार वर्णन नाहीं । केवल ज्ञान गम्य पदार्थन का निरूपण है जैसे कई जीव तो द्रव्यादिक का विचार करे हैं, वा व्रतादिक पाले हैं । परन्तु तिनके अन्तरङ्ग सम्यक् चारित्र नाहीं है। इसलिये इनको मिथ्यादृष्टि अव्रती कहिये हैं। और कई जीव द्रव्यादिक के वा व्रतादिक के विचार रहित हैं। अन्यकार्यन विषे प्रवर्त्ते हैं, वा निद्रा कर निर्विचार होय रहे हैं परन्तु उनके सम्यक्त्वादिक शक्ति का सद्भाव है। इसलिये उन को सम्यक्ती वा व्रती कहिये है। और कई जीवन कै कषायन की प्रवृत्ति तो घनी है। और उनकै अन्तरङ्ग कषाय थोड़ी है। सो उन को मन्दकषायी कहिये है। और कई जीवनकै कषाय की प्रवृत्ति थोड़ी है। और उन के अन्तरंग कषाय घनी है तो उनको तीव्रकषायी कहिये है। जैसे व्यन्तरादिक देव कषायन से नगर नाशादिक कार्य करें तौभी तिन कै थोड़ी कषाय शक्तिसे पीत लेश्या कही है। और एकेन्द्रियादिक जीव कषाय के कार्य करते दीखें नाहीं। सो तिन कै बहुत कषाय शक्ति से कृष्णादिक लेश्या कही है। और सर्वार्थसिद्ध के देव कषाय रूप थोड़े प्रवर्त्ते है तिनकै बहुत कषाय शक्तिसे असंयम कहा है। और पञ्चम गुण स्थानवर्त्ती मनुष्य व्यापार और ब्रह्मचर्य्यादिक कषाय कार्य रूप बहुत प्रवर्त्तै हैं तिन के मन्द कषाय

शक्ति से देश संयम कहा ऐसे ही अन्यत्र जानना। और किसी जीव के मन, वचन, काय, की चेष्टा थोड़ी होती दीखे है तौभी कर्म्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा बहुत योग कहा है। किसी कै चेष्टा बहुत दीखे है तौभी शक्ति की हीनता से स्तोक योग कहा है। जैसे केवली गमनादिक रहित भया तहां भी तिस कै योग बहुत कहा है वह इन्द्रियादिक जीव गमनादिक करें हैं तौभी तिनकै योग स्तोक कहा है ऐसे ही अन्यत्र जानने। और कहीं जिस की व्यक्तता कुछ न भासे तौभी सूक्ष्म शक्ति के सद्भाव से तिस का तहां अस्तित्व कहा जैसे मुनि कै अब्रह्म कार्य कुछ नाहीं है तौभी नवमें गुण स्थान पर्य्यन्त मैथुन संज्ञा कही है अहमिन्द्र कै दुःख का कारण व्यक्त नाहीं है तौभी कदाचित् असाता का उदय कहा है नारकीन कै सुख का कारण व्यक्त नाहीं है तौभी कदाचित् साता का उदय कहा है ऐसे ही अन्यत्र जानना, और करणानुयोग विषे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादिक धर्म प्रकृतिन का उपशमादिक की अपेक्षा लिये सूक्ष्म शक्ति जैसी पाइये है तैसी गुण स्थानादिक विषे निरूपण करे हैं। वा सम्यग्दर्शनादिक के विषयभूत जीवादिक तिन का भी निरूपण सूक्ष्म भेदाभेद लिये करे हैं। यहां कोई और करणानुयोग के अनुसार आप उद्यम करे तो होय सके नाहीं। करणानुयोग विषे तो यथार्थ पदार्थ जानने का मुख्य प्रयोजन है आचरण करावने की मुख्यता नाहीं। इसलिये यह तो चरणानुयोग के अनुसार प्रवर्त्ते तिस से जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसे आप कर्म्मन का उपशमादिक किया चाहे तो कैसे होय आप तो तत्त्वादिक के निश्चय करने का उद्यम करे इसलिये स्वयमेव ही उपशमादिक सम्यक्त होय है ऐसे अन्यत्र भी जानना। एक

अंतर्मुहूर्त्त विषे ग्यारहवां गुणस्थान सो परिक्रम से मिथ्यादृष्टि होय है और चढ़ कर केवलज्ञान उपजावे
है सो ऐसे सम्यक्तादिक के सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाहीं, क्योंकि करणानुयोग के अनुसार जैसा
का तैसा जान तो लेना और प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसे भला होय तैसे करे। और करणानुयोग विषे भी
कहीं उपदेश मुख्यता लिये व्याख्यान होय हैं तिस को सर्वथा तैसे ही मानना। जैसे हिंसादिक उपाय
को कुमति ज्ञान कहा है अन्य मतादिक के शास्त्राभ्यासको कुश्रुतज्ञान कहा है बुरा भला न दीखे तिस
को विभंगज्ञान कहा है सो इन को छुड़ाने के अर्थ उपदेश दे ऐसा कहा है तारतम्यसे मिथ्यादृष्टि के सर्व
ही ज्ञान कुज्ञान हैं सम्यग्दृष्टि के सर्वही ज्ञान सुज्ञान हैं ऐसेही अन्यत्र जानना, और कहीं स्थूलकथन किया
होय तिस को तारतम्य रूप न जानना जैसे व्यास (कुत्त) से तिगुणी परिधि (दायिरा) कही सूक्ष्मपने कुछ
अधिक तिगुणी होय है ऐसे ही अन्यत्र जानना। और कहीं मुख्यता की अपेक्षा व्याख्यान होय तिस को
सर्व प्रकार जानना जैसे मिथ्यादृष्टि सासादन गुणस्थान वाले को पापीजीव कहे हैं असंयतादिक गुणस्थान
वाले को पुण्य जीवकहेहैं सो मुख्यपने ऐसे कहेहैं, तारतम्य से दोनोंके पाप पुण्य यथासंभव पाइयेहै ऐसे
ही औरभी नानाप्रकार पाइयेहैं सो यथासंभव जानने ऐसे करणानुयोग विषे व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोग विषे जैसे जीवन के अपनी बुद्धिगोचर धर्म्म का आचरण होय तैसा उपदेश दिया सो कहिये है।

तहां धर्म तो निश्चय रूप मोक्षमार्ग है सोई है तिस के साधनादिक उपचार धर्म हैं सो व्यवहार नय की प्रधानता कर नाना प्रकार उपचार धर्म्म के भेदादिक इस विषे निरूपण किये हैं क्योंकि निश्चय धर्म्म विषे तो कुछ ग्रहण त्याग का विकल्प नाहीं और जीव के नीचली अवस्था विषे विकल्प छूटता नाहीं इसलिये इस जीव के धर्म्म विरोधी कार्यन को छुड़ावने का और धर्म साधनादिक कार्यन के ग्रहण करावने का उपदेश इस विषे है, सो उपदेश दोय प्रकार दीजिये है एक तो व्यवहार ही का उपदेश दीजिये है, एक निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश दीजिये है तहां जिन जीवन के निश्चय का ज्ञान नाहीं है, और उपदेश दिये भी होता दीखे नाहीं सो मिथ्यादृष्टि जीव कुछ धर्म सन्मुख भये तिन को व्यवहार ही का उपदेश दीजिये है। और जिन जीवन के निश्चय व्यवहार का ज्ञान है, वा उपदेश दिये तिन को ज्ञान होता दीखे है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव वा सम्यक्त के सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीव तिनको निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश दीजिये है क्योंकि श्री गुरु तो सर्व ही जीवन के उपकारी हैं सो असंज्ञी जीव तो उपदेश ग्रहण करने योग्य नाहीं तिनका तो उपकार इतना ही किया है जो अन्य जीवन को तिन की दया का उपदेश दिया और जो जीव कर्म प्रबलता से निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त होय

सकै नाहीं तिन का इतनाही उपकार किया जो उन को व्यवहार धर्म का उपदेश दे कुगति के दुःखन का कारण पाप कार्य छुड़ाय सुगति इन्द्रिय के सुखन का कारण पुण्यकार्य तिन विषे लगाया है जितना दुःख मिटा तितना ही उपकार भया, और पापी के तो पाप वासना ही रहै है, और कुगति विषे जाय तहां धर्म का निमित्त नाहींहै, इस लिये परम्परा दुःख ही को पावेहै औरपाप करेहै। और पुण्यवान् के धर्मवासना रहे है, और सुगति विषे जाय तहां धर्म के निमित्त पाइये हैं इस लिये परम्परा सुख को पावे है अथवा कर्म्म शक्ति हीन होजाय तो मोक्षमार्ग को प्राप्त होजाय है इसलिये व्यवहार उपदेश कर हिंसादिक पाप छुड़ाय पुण्य कार्यन विषे लगाइये हैं, और जो जीव मोक्षमार्ग को प्राप्त भये हैं वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिन का ऐसा उपकार किया है जो उन को निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश दे मोक्षमार्ग विषे प्रवर्त्ताय हैं इसलिये श्री गुरु तो सर्व का ऐसा ही उपकार करे हैं। परन्तु जिन जीवन का ऐसा उपकार न बने तो श्री गुरु क्या करें जैसा बना तैसा ही उपकार किया है इसलिये दोय प्रकार उपदेश दीजियेहै तहां व्यवहार विषे तो बाह्य क्रिया न ही की प्रधानताहै तिस उपदेशसे जीवपाप क्रियाछोड़पुण्य क्रियान विषे प्रवर्त्तेहैं तहां क्रियाकेअनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ कुछ मंदकषायरूप होजायहैं सो मुख्यपने तो ऐसा है यद्यपि किसी के न होय तो मत होय,श्री गुरु तो परको सुधारनेके अर्थ बाह्यक्रियान को उपदेशे हैं और निश्चय सहित व्यवहारके उपदेश विषे तो मुख्यपने परिणामन ही की प्रधानता है,तिस के उपदेश से तत्वज्ञानका अभ्यास कर वा वैराग्य भावना कर परिणाम सुधारे हैं, तहां परिणामनके अनुसार बाह्य भी

मुख्यउपदेशे हैं
सुधरजाय है परिणाम सुधारनेसे वाह्यक्रिया सुधरे हैं इसलिये श्रीगुरु परिणाम सुधारनेको
ऐसे दोय प्रकार उपदेश विषे जहां व्यवहारही का उपदेश होय तहां सम्यग्दर्शनके अर्थ अरहंतदेवनिर्ग्रन्थ
गुरु दयामयी धर्म्मही मानना किसी औरको न मानना और जीवादिक तत्वनका व्यवहार स्वरूप कहा है
तिस का श्रद्धान करना शंकादिक पचीस दोष न लगावने। निःशंकतादिक अंग वा संवेगादिक पालने
इत्यादि उपदेश दीजिये है और सम्यग्ज्ञान के अर्थ जिनमत के शास्त्रन का अभ्यास करना अर्थ व्यंज-
नादिक अंगन का साधन करना इत्यादि उपदेश दीजिये है, और सम्यक् चारित्र के अर्थ एकोदेश वा
सर्वोदेश हिंसादिक पापनका त्याग करना। व्रतादिक अंगनको पालने इत्यादि उपदेश दीजिये है और
किसी जीव के धर्म्म का अधिक साधन न होता जान एक आखड़ी आदिक का भी उपदेश दीजिये है जैसे
भील को कागले का मांस छुड़ाया, गुंवालिये को नमस्कार मंत्र का उपदेश दिया गृहस्थीको चैत्यालय
पूजा प्रभावनादिक कार्य का उपदेश दीजिये है इत्यादि जैसा जीव होय तिस को तैसा उपदेश दीजिये
है और जहां निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश होय तहां सम्यग्दर्शन के अर्थ यथार्थ तत्वन का श्रद्धान
कराइये है। तिन का जो निश्चय स्वरूप है सो भूतार्थ है। व्यवहार स्वरूप है सो उपचार रूप है ऐसा
श्रद्धान लिये वा स्वपर का भेद विज्ञान कर परद्रव्यन विषे रागादिक छोड़ने का प्रयोजन लिये तिन
तत्वन का श्रद्धान करने का उपदेश दीजिये है। ऐसे श्रद्धान से अरहंतादिक विना अन्य देवादिक झूठ
भासें, तव स्वयमेव तिन का मानना छूटे है तिस का निरूपण करिये है, और सम्यग्ज्ञान के अर्थ,

संशयादिक रहित तिन ही तत्वन के जानने का उपदेश दीजिये है तिस जानने को कारण जिन शास्त्रन का अभ्यास है इसलिये तिस प्रयोजन के अर्थ जिन शास्त्रन का भी अभ्यास स्वयमेव होय है तिस का निरूपण करिये है और सम्यक् चारित्र के अर्थ रागादिक दूर करने को उपदेश दीजिये है। यहां एक देश वा सर्वदेश तीव्र रागादिक का अभाव भये तिन के निमित्त से होती थी जो एक देश सर्व देश पाप क्रिया सो छूटे हैं। और मंदराग से श्रावक मुनीन के व्रतन की प्रवृत्ति होय है, और मंद रागादिक के भी अभाव भये शुद्धोपयोग की प्रवृत्ति होय है, तिस का निरूपण करिये है। और यथार्थ श्रद्धान लिये सम्यग्दृष्टि के जैसे कोई यथार्थ आखड़ी होय है, वा भक्ति होय है, वा पूजा प्रभावनादिक कार्य होयहै, वा ध्यानादिक होय है, तिन का उपदेश दीजिये है। जैसा जिनमत विषे सांचा परम्परा मार्ग है तैसा उपदेश दीजिये है ऐसे दोय प्रकारकेउपदेश चरणानुयोग विषे जानने, और चरणानुयोग विषे तीव्र कषायन का कार्य छुड़ाय मंद कषाय रूप कार्य करने का उपदेश दीजिये है यद्यपि कषाय करना बुराही है तथापि सर्व कषाय न छूटते जान जितने कषाय घटें तितनाही भला होगा ऐसा प्रयोजन जानना। जैसे जिन जीवन के आरम्भादिक करने की वा मंदरादिक बनावने की वा विषय सेवने की वा क्रोधादिक करने की इच्छा सर्वथा दूर होती न जानी तिनको पूजा प्रभावनादिक करने का वा चैत्यालयादिक बनावने का, वा जिन देवादिक के आगे शोभादिक वा नृत्यादिक करने का वा धर्मात्मा पुरुषन की सहायता करने का उपदेश दीजिये है, क्योंकि इन विषे परंपरा कषाय का पोषण न होय है। पाप कार्यन विषे

परंपरा कषाय पोषण होय है इसलिये पाप कार्यंन से छुड़ाय इन कार्यंन विषे लगाइये है, और थोड़ा
बहुत जितना छूटता जानें तितना पाप कार्य छुड़ाय सम्यक्त अणुव्रतादिक पालने का तिन को उपदेश
दीजिये है और जिन जीवन के सर्वथा आरंभादिक करने की इच्छा दूर भई है तिन को पूर्वोक्त पूजादिक
कार्य वा सर्व पाप छुड़ाय महाव्रतादिक का उपदेश दीजिये है। और जिन के किञ्चित् रागादिक छुटता
जाने तिन को दयामयी धर्मोपदेश प्रतिक्रमनादिक कार्य्य करने का उपदेश दीजिये है जहां सर्व राग
दूर होय तहां कुछ करने का कार्य ही रहा नाहीं इसलिये तिन को कुछ उपदेश ही नाहीं ऐसे क्रम से
जानना। और चरणानुयोग विषे कषायी जीवन को कषाय उपजाय कर पाप छुड़ाइये है और धर्म विषे
लगाइये है जैसे पाप के फल नरकादिक के दुःख दिखाय तिन से भय उपजाय पाप कार्य छुड़ाइये है
और पुण्य का फल स्वर्गादिक के सुख दिखाय तिन को लोभ कषाय उपजाय धर्म कार्यंन विषे लगाइये
है और यह जीव इन्द्रिय विषय शरीर पुत्र धनादिक के अनुराग से पाप करे है धर्म से पराङ्मुख होय है
इसलिये इन्द्रिय विषयन को मरण क्लेशादिक के कारण दिखावने कर तिन विषे अरति कषाय कराइये
है शरीरादिक को अशुचि दिखावने कर तहां जुगुप्सा कषाय कराइये है और पुत्रादिक को धन आदिक
के ग्राहक दिखाय तहां द्वेष कराइए है और धनादिक को मरण क्लेशादिक का कारण दिखाय तहां अनिष्ट
बुद्धि कराइये है इत्यादिक उपाय से तिन के विषयादिक विषे तीव्रराग दूर कर पाप क्रिया छूट धर्म विषे
प्रवृत्ति होय है और नाम स्मरण स्तुति करण पूजा दान शीलादिक से इस लोक विषे दरिद्र कष्ट दुःख दूर

होय है पुत्र धनादिक की प्राप्ति होय है ऐसे निरूपण कर तिन कै लोभ उपजाय तिन धर्म कार्यन विषे लगाइये है ऐसे ही अन्यत्र उदाहरण जानने। —:(यहांप्रश्न):— कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावने का प्रयोजन क्या है —:(तिस का समाधान):— जैसे रोगी को शीताङ्ग है परन्तु शीताङ्ग से मरण होता जान। तहां वैद्य है सो उसकै ज्वर होने का उपाय करैहै। और उसकै ज्वर भये पीछे उस के जीवने की आशा होय है तब पीछे ज्वर मेटने का उपाय करैहै, तैसे कषाय तो सर्व ही हेय हैं परन्तु जिन कषायन से जीवन कै पाप कार्य होता जाने तहां श्री गुरु हैं सो उन कै पुण्य कषाय होने का उपाय करैं हैं पीछे उनकै जब सांची धर्म्म बुद्धि भई जानें तब तिस कषाय मेटने का भी उपाय करैहैं ऐसा प्रयोजन जानना। और चरणानुयोग विषे जैसे जीव पाप को छोड़ धर्म्म विषे लगै तैसे अभिप्राय लिये अनेक युक्ति कर वर्णन करिये है। तहां लौकिक दृष्टान्त युक्ति कर उदाहरण न्याय प्रवृत्ति के द्वारा समझाइये है। वा कहीं अन्यमत के भी उदाहरणादिक कहिये हैं। जैसे सूक्त मुक्तावलि विषे लक्ष्मी को कमलवासनी कही वा समुद्र विषे विष और लक्ष्मी उपजे हैं तिस अपेक्षा विष की भगिनी कही, ऐसे ही अन्यत्र कहिये है। तहां कोई उदाहरणादिक झूठे भी हैं परन्तु सांचे प्रयोजन को पोषैहैं, तहां दोष नाहीं। यहां कोई कहै झूठ का तो दोष लगै है। —:(तिस का उत्तर):— जो झूठहै और सांचे प्रयोजन को पोषैहै तो उसको झूठ न कहियेहै। और जो सांच भी है और झूठे प्रयोजन को पोषै है तो वह झूठ ही है। ऐसे अलङ्कार युक्त नामादिक विषे वचन अपेक्षा झूठ सांच नाहीं। प्रयोजन अपेक्षा झूठ सांचहै। और बृहस्पति का नाम सुर-

गुरु लिखिये है। वा मङ्गल का नाम कुज लिखिये है सो ऐसे नाम अन्य मत अपेक्षा हैं। इन का जो अक्षरार्थ है सो झूठा है। परन्तु वह नाम तिस ही पदार्थ को प्रगट करे हैं इसलिये झूठ नाहीं है। जैसे तुच्छ शोभा सहित नगरी को इन्द्रपुरी के समान कहिये है सो झूठ है। परन्तु शोभा के प्रयोजन को पोषेहै इसलिये झूठ नाहीं। और इस नगरी विषे छत्र ही कै दण्ड है अन्यत्र नाहीं ऐसा कहा सो झूठ है। अन्यत्र भी दंडना पाइयेहै, परन्तु तहां अन्यायवान थोड़ेहैं, न्यायवान बहुतहैं। परन्तु वह नाम तिस पदार्थ का अर्थ प्रगट करे है। इसलिये झूठा नाहीं। ऐसे ही अन्य मतादिक के उदाहरणादिक दीजिये हैं सो झूठ हैं, परन्तु उदाहरणादिक का तो श्रद्धान करावना है नाहीं, श्रद्धान तो प्रयोजन का करावना है। सो जब प्रयोजन सांचा है तब दोष नाहीं है। और चरणानुयोग विषे छद्मस्थ की बुद्धि गोचर स्थूलपने की अपेक्षा लोक प्रवृत्ति की मुख्यता लिये उपदेश दीजिये है। और केवल ज्ञान गोचर सूक्ष्मपने की अपेक्षा न दीजियेहै, क्योंकि तिसका आचरण न होय सकैहै, और यहां आचरण करावने का प्रयोजनहै। जैसे अणुव्रती कै त्रस हिंसा का त्याग कहा और उस कै स्त्री सेवनादिक क्रियान विषे त्रस हिंसा होय है और वह यह भी जानेहै कि जिन वाणी विषे यहां त्रस कहे हैं। परन्तु उसकै त्रस मारने का अभिप्राय नाहीं है। और लोक विषे जिसका नाम त्रस घात है, तिसको करै नाहीं। इसलिये तिस अपेक्षा उस कै त्रस हिंसा का त्याग है। और मुनि कै स्थावर हिंसा का भी त्याग कहा है। सो मुनि पृथ्वी जलादिक विषे गमनादिक करे हैं तहां सर्वथा त्रस का भी अभाव नाहीं। क्योंकि त्रस जीव की

भी अवगाहना ऐसी छोटी होय है जो दृष्टिगोचर नाहीं आवे । और तिन की स्थिति पृथ्वी जलादिक विषे ही है सो मुनि जिनवाणी से जानें हैं वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिक कर भी जाने हैं। परन्तु उन कै प्रमाद से स्थावर त्रस हिंसा का अभिप्राय नाहीं । और भूमि खोदना लोक विषे अप्रासुख जल से क्रिया करनी। इत्यादि प्रवृति का नाम स्थावर हिंसा है । और स्थूल मात्र त्रसन के पीड़ने का नाम त्रस हिंसा है तिस को न करें। इसलिये मुनि कै सर्वथा हिंसा का त्याग कहिये है। और ऐसे ही अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रह का त्याग कहा। और केवल ज्ञान के जानने की अपेक्षा असत्य वचन योग बारहवां गुणस्थान पर्यन्त कहा। अदत्त कर्म्म परमाणु आदि परद्रव्य का ग्रहण तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त है। वेद का उदय नवमें गुणस्थान प्रयन्त है। अन्तर परिग्रह दशवें गुणस्थान पर्यन्त है वाह्य परिग्रह समवसरणादिक केवली कै भी होय है। परन्तु प्रमाद से पाप रूप अभिप्राय नाहीं और लोक प्रवृत्ति विषे जिन क्रियान कर यह झूठ बोले है चोरी करे है कुशील सेवे है परिग्रह राखे है जो ऐसा नाम पावै सो क्रिया इन कै है नाहीं। इसलिये अनृतादिक का इन कै त्याग कहिये है। और जैसे मुनि कै मूल गुणन विषे पञ्च इन्द्रियन के विषयन का त्याग कहा सो जानना तो इन्द्रियन का मिटे नाहीं । और विषयन विषे राग द्वेष सर्वथा दूर भया होय तो यथाख्यात चारित्र हो जायहै सो भया नाहीं। परन्तु स्थूलपने विषय इच्छा का अभाव भयाहै। और वाह्य सामग्री मिलावने की प्रवृत्ति दूर भई है। इसलिये इस कै इन्द्रिय विषयन का त्याग कहा है ऐसे ही अन्यत्र

जानना, और व्रती जीव त्याग वा आचरण करे है सो चरणानुयोग की पद्धति अनुसार वा लोक की प्रवृत्ति के अनुसार करे है। जैसे किसी ने त्रस हिंसा का त्याग किया है केवल ज्ञानादिक कर जो त्रस देखिये हैं तिन की हिंसा का त्याग बने नाहीं। तहां त्रस हिंसा का त्याग किया तिस रूप मन का विकल्प न करना सो मन कर त्याग है। वचन न बोलना सो वचन त्याग है। काय कर न प्रवर्त्तना सो काय कर त्याग है। ऐसे अन्य त्याग वा ग्रहण होय है। सो ऐसी पद्धति लिये ही होय है, ऐसा जानना।

—:(यहां प्रश्न):— जो करणानुयोग विषे केवल ज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है तहां छठा गुणस्थानी कै सर्वथा बारह अव्रतन का अभाव कहा सो कैसे है। —:(तिस का उत्तर):— अव्रत भी योग कषाय विषे गर्भित थे परन्तु तहां भी चरणानुयोग अपेक्षा अभाव है तिस ही को अव्रत कहा है। इसलिये तहां तिन का अभाव है मन अव्रत का अभाव कहा। सो मुनिके मन का विकल्प होय है। परन्तु स्वेच्छाचारी मुनि का पापरूप प्रवृत्ति के अभाव से मुनी कै अव्रत का अभाव कहा है सो ऐसा चरणानुयोग विषे व्यवहार लोक प्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिये हैं जैसे सम्यग् दृष्टि पात्र कहा है मिथ्याती को अपात्र कहा है सो यहां जिस कै जिन देवादिक का श्रद्धान नाहीं तिन को मिथ्याती जानना। क्योंकि दान देना चरणानुयोग विषे कहा है सो चरणानुयोग ही की अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करिये है। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहे जीव भी ग्यारहवें गुणस्थान से अन्तर्मुहूर्त्त में पहिले गुणस्थान आवे तहां दातार पात्र अपात्र का कैसे निर्णय करसकै

और द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहे मुनि संघ विषे द्रव्यलिङ्गी भी हैं, भावलिङ्गी भी हैं, सो प्रथम तो तिन का ठीक होना कठिन है। क्योंकि वाह्य प्रवृत्ति समान है, और जो कदाचित् सम्यक्त के किसी चिन्ह कर ठीक पड़े। और वह उस की भक्ति न करे तब औरन कै संशय होय कि इस की भक्ति क्यों न करी। ऐसे उसका मिथ्यादृष्टिपना प्रगट होय तब संयम विषे विरोध उपजै इसलिये यहां व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्व की अपेक्षा कथन जानना। यहां कोई प्रश्न करे सम्यक्ती तो द्रव्यलिङ्गी को आप से हीन गुणयुक्त मानेहै तिसकी भक्ति कैसे करे —:(तिसका समाधान):— व्यवहार धर्म का साधन द्रव्य लिङ्गी कै बहुत है और भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। इसलिये जैसे कोई धनवान न होय परन्तु जो कुल विषे बड़ा होय तिस को कुल अपेक्षा बड़ा जान तिस का सत्कार करे हैं तैसे आप सम्यक्त गुण सहितहै परंतु जो व्यवहार धर्म विषे प्रधान होय तिस को व्यवहार धर्म अपेक्षा गुणाधिक मांन तिस की भक्ति करे है ऐसा जानना। और ऐसे ही जो जीव बहुत उपवासादिक करै तिस को तपस्वी कहिए है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादिक विशेष करेहै सो उत्कृष्ट तपस्वी है। तथापि यहां चरणानुयोग विषे वाह्य तप की प्रधानता है इसलिये तिसको भी तपस्वी कहिये है। इस ही प्रकार अन्य नामादिक जानने। ऐसें ही अन्य अनेक प्रकार लिये चरणानुयोग विषे व्याख्यान का विधान जानना॥

॥ अब द्रव्यानुयोग विषे जो कथन किये हैं सो कहिये है ॥

जीवन कै जीवादिक द्रव्यन का यथार्थ श्रद्धान जैसे होय तैसे विशेष युक्ति हेतु दृष्टांतादिक का निरूपण कीजियेहै क्योंकि इस विषे यथार्थ श्रद्धान करावने का प्रयोजनहै। तहां यद्यपि जीवादिक वस्तु अभेद हैं तथापि तिनविषे भेदकल्पना कर व्यवहारसे द्रव्यगुण पर्यायादिक का भेदनिरूपण कीजिए सोभी युक्तिहै। और वस्तु का अनुमान प्रत्यक्ष ज्ञानादिक करनेका हेतु दृष्टांतादिक दीजिए हैं ऐसे तहां वस्तुकी प्रतीति करावने को उपदेश दीजिए है। और यहां मोक्षमार्ग का आचरण करावने के अर्थ जीवादिक तत्वन का विशेष युक्ति दृष्टान्तादिक कर निरूपण कीजिए है। तहां स्वपर भेद विज्ञानादिक जैसे होय तैसे जीव अजीव का निर्णय कीजिए है और वीतराग भाव जैसे होय तैसे आस्रवादिक का स्वरूप दिखाइए है। और तहां मुख्यपने ज्ञान वैराग्य के कारण आत्मा अनुभवनादिक तिनकी महिमा पाइये है। और द्रव्यानुयोग विषे निश्चय अध्यात्म उपदेश की प्रधानता होय है तहां व्यवहार धर्म के भी उपदेश का निषेध कीजिए है। जो जीवात्मानुभवन के उपाय को न करे हैं और वाह्य क्रियाकांड विषे मग्न हैं तिनको तहां से उदास कर आत्मानुभवन विषे लगावनें को व्रत शील संयमादिक का हीनपना प्रगट कीजिये है तहां ऐसा न जान लेना जो इनकोछोड़ पाप विषे लगावना। क्योंकि तिस उपदेश का प्रयोजन अशुभ विषे लगावने का नाहीं है। केवल शुद्धोपयोग विषे लगावने को शुभोपयोग का निषेध कीजिये है। यहां

कोई कहै अध्यात्मशास्त्रन विषे पुण्य पापको समान कहे हैं। क्योंकि शुद्धोपयोग होय तो भलाही है, नाहीं होय तो पुण्य विषे ही लगे यह कैसे कहा है। —:(तिस का उत्तर):— जैसे शूद्र जाति अपेक्षा जाट चाण्डाल समान हैं। परन्तु चाण्डाल से जाट कुछ उत्तम हैं यह स्पर्श है वह अस्पर्श है तैसे बन्ध कारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं परन्तु पापसें पुण्य कुछ भला है। वह तीव्र कषाय रूप है। यह मन्द कषाय रूप है। इसलिये पुण्य को छोड़ पाप विषे लगना युक्त नाहीं। ऐसा जानना, और जितने जीव जिनबिम्ब भक्त्यादि कार्यन विषे मग्न हैं। तिन को आत्मा श्रद्धानादिक करावने को कि तुम्हारी देह विषे देव है देहरा विषे देवनाहीं। इत्यादिक उपदेश दीजिये है तहां ऐसा न जान लेना जो भक्ति छुड़ाय भोजनादिक से आपको सुखी करना। क्योंकि तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाहीं है, ऐसेही अन्यत्र व्यवहार का निषेध जहां किया होय तिसको जान प्रमादी न होना ऐसा जानना, जो केवल व्यवहार साधन में ही मग्न हैं तिन को निश्चय रुचि करावने के अर्थ व्यवहार को हीन दिखाइये है। और तिन ही शास्त्रन विषे सम्यग्दृष्टि के विषय भोगादिक को बन्ध का कारण न कहा निर्ज्जरा का कारण कहा सो भोगन को उपादेय न जान लेना। तहां सम्यग्दृष्टि की महिमा दिखावने को जो तीव्र बन्ध के कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे तिन भोगादिकों के होते सन्ते भी केवल श्रद्धान शक्ति से मन्द बन्ध होने लगा तिस को तो गिना नाहीं। और तिस ही बल से निर्ज्जरा विशेष होने लगी इसलिये उपचार से भोगन को भी बन्ध का कारण न कहा। निर्ज्जरा का कारण कहा। विचार किये भोग निर्ज्जरा के

यहां इस कथन का
कारण होयें तो तिन को छोड़ सम्यग्दृष्टि मुनि पद का ग्रहण किसलिये करें । यहां इस कथन का
इतना ही प्रयोजन है कि देखो सम्यक्त की महिमा जिस के बल से भोग भी अपने गुण का फल न दे
सकै हैं । इस ही प्रकार और भी कथन होयें तो तिनका यथार्थपना जान लेना और द्रव्यानुयोग विषे भी
चरणानुयोगवत् ग्रहण का त्याग करावने का प्रयोजन है। इसलिये छद्मस्थ की बुद्धि गोचर परिणामन
की अपेक्षा ही तहां कथन कीजिये है। इतना विशेष है जो चरणानुयोग विषे तो वाह्य क्रिया की
मुख्यता कर वर्णन करिये है। द्रव्यानुयोग विषे आत्म परिणामन की मुख्यता कर निरूपण कीजिये है
और करणानुयोगवत् सूक्ष्म वर्णन कीजिये है तिस के उदाहरण कहिये हैं। उपयोग के शुभ अशुभ शुद्ध
ऐसे तीन भेद कहे हैं तहां धर्मानुराग रूप परिणाम सो शुभोपयोग है और पापानुराग द्वेष रूप परिणाम
सो अशुभोपयोग है राग द्वेष रहित परिणाम सो शुद्धोपयोग है ऐसे कहा है। सो इस छद्मस्थ के बुद्धिगोचर
परिणामन की अपेक्षा यह कथन है। और करणानुयोग विषे कषाय शक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिक विषे संक्लेश
विशुद्ध परिणाम अपेक्षा निरूपण किया है। सो विवक्षा यहां नाहीं है । करणानुयोग विषे तो रागादिक
रहित शुद्धोपयोग यथाख्यात चारित्र भये होय है सो मोह के नाश से स्वयमेव होय है। नीचली अवस्था
वाला शुद्धोपयोग का साधन कैसे करे। और द्रव्यानुयोग विषे शुद्धोपयोग करने ही का मुख्य उपदेश है।
इसलिये यहां छद्मस्थ जिस काल विषे बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसादिक कार्य्य रूप परिणामन को छुड़ाय
आत्मानुभवनादिक कार्यन विषे प्रवर्त्तै है तिसकाल उसकै शुद्धोपयोग ही कहिये है। यद्यपि यहां केवल ज्ञान

गोचर सूक्ष्म रागादिक हैं तथापि तिस की विवक्षा यहां न करनी और अपनी बुद्धि गोचर रागादिक छोड़ तिस अपेक्षा इस को शुद्धोपयोग ही कहा है ऐसे ही स्वपर श्रद्धानादिक भये सम्यक्तादिक हैं सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावन की अपेक्षा गुणस्थानादिक विषे सम्यक्तादिक का निरूपण करणानुयोग विषे पाइये है। ऐसे ही अन्यत्र जानना इसलिये द्रव्यानुयोग कथन को करणानुयोग से विधि मिलाइये है। सो कहीं तो न मिले कहीं मिले है। जैसे यथाख्यात चारित्र भये दोनों अपेक्षा शुद्धोपयोग है। और नीचली दशा विषे द्रव्यानुयोग अपेक्षा तो कदाचित् शुद्धोपयोग होय भी परन्तु करणानुयोग अपेक्षा सदाकाल कषाय अंश के सद्भाव से शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसे ही अन्य कथन जान लेने, और द्रव्यानुयोग विषे परमत विषे कहे तत्वादिक तिनको असत्य दिखावने के अर्थ तिन का निषेध कीजिये है। तहां द्वेष न जानना तिनको असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावने का प्रयोजन जानना ऐसे ही और भी अनेक प्रकार कर द्रव्यानुयोग विषे व्याख्यान के विधान हैं इस प्रकार चारों अनुयोग कहे व्याख्यान का विरोध न कहा सो किसी ग्रन्थ विषे एक अनुयोग की किसी विषे दोय की किसी विषे तीन की किसी विषे चारों की प्रधानता लिये व्याख्यान होय है सो जहां जैसा सम्भवे तहां तैसा समझ लेना॥

अब इन अनुयोगनविषे कैसी पद्धति की मुख्यता पाइये है सो कहिये है।

प्रथमानुयोग विषे तो अलङ्कार शास्त्रन की वा काव्यादिक शास्त्रन की पद्धति मुख्य है। क्यों

कि अलङ्कारादिक से मन रञ्जायमान होय है सीधी बात कहे से ऐसा उपयोग लगे नाहीं जैसा
अलङ्कारादिक युक्त कथन में उपयोग लगे है और परोक्ष बात को कुछ अधिकता कर निरूपण करिये
तो उसका स्वरूप नीके भासे है। और करणानुयोग विषे गणित आदि शास्त्र की पद्धति मुख्यता
है। क्योंकि यहां द्रव्यक्षेत्र कालभाव का प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रन्थन की आम्नाय
से तिस का सुगम जानपना होय है। और चरणानुयोग विषे सुभाषित नीति शास्त्रन की पद्धति मुख्य है
क्योंकि यहां आचरण करावना मुख्य है। सो लोक विषे प्रवृत्ति के अनुसार नीतिमार्ग दिखाया वह आच-
रण करे। और द्रव्यानुयोग विषे न्याय शास्त्रन की मुख्य पद्धति है क्योंकि यहां निर्णय करने का प्रयो-
जन है और न्यायशास्त्रन विषे निर्णय करने का मार्ग दिखाया है। क्योंकि इन अनुयोगन विषे मुख्य
पद्धति है। और भी अनेक पद्धति लिये व्याख्यान इन पद्धति विषे पाइये हैं। यहां कोई कहे अलंकार
गणित नीति न्याय का तो ज्ञान पण्डित कै मुख्य है। तुच्छ बुद्धि समझैं नाहीं। इसलिये सीधा कथन
क्यों न किया —:(तिस का समाधान):— शास्त्र है सो पण्डित चतुरन के अभ्यास करने योग्य है।
सो अलङ्कार आदि आम्नाय लिये कथन होय तो तिन का मन लगे। और जो तुच्छ बुद्धि हैं तिन को
पण्डित समझायदें। और जो न समझ सकै तो तिन को मुख से सीधा ही कथन कहैं परन्तु ग्रन्थन
में सीधा कथन लिखें तो विशेष बुद्धिमान जन तिन के अभ्यास विषे विशेष न प्रवर्तें इसलिये अलङ्का-
रादिक आम्नाय लिये कथन कीजिये है। ऐसे इन चार अनुयोगन का निरूपण किया और जिनमत विषे

घने शास्त्र तो इन चारों अनुयोगन विषे गर्भित हैं और व्याकरण न्याय छंद कोशादिक वा वैद्यक ज्योतिष मंत्रादिक शास्त्र भी जिनमत विषे पाइये हैं। तिन का क्या प्रयोजन है सो सुनों व्याकरण न्यायादिक का अभ्यास भये अनुयोग रूप शास्त्रन का अभ्यास होय सके है। इसलिये व्याकरणादिक शास्त्र कहे हैं। कोई कहे भाषा रूप सीधा निरूपण करते तो व्याकरणादिक का क्या प्रयोजन था। —:(तिस का समाधान):— भाषा तो अपभ्रंश रूप अशुद्ध वाणी है। देश देश विषे और और है सो महन्त पुरुष शास्त्रन विषे ऐसी रचना कैसे करें। और व्याकरण न्यायादिक कर जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण होय है तैसा सीधी भाषा विषे होय सके नाहीं। इसलिये व्याकरणादिक आम्नाय कर वर्णन किया है सो अपनी बुद्धि अनुसार थोड़ा बहुत इन का अभ्यास कर अनुयोग रूप प्रयोजनभूत शास्त्रन का अभ्यास करना। और वैद्यकादिक चमत्कार से जिनमत की प्रभावना होय है औषधादिक से उपकार भी बने है अथवा जो जीव लौकिक कार्य विषे अनुरक्त हैं सो वैद्यकादिक चमत्कार से जैनी होय पीछे सांचा धर्म पाय अपना कल्याण करें। इत्यादिक प्रयोजन लिये वैद्यकादिक शास्त्र कहे हैं यहां इतना जानना इन को जैन शास्त्र जान इनके अभ्यास विषे बहुत काल लगना नाहीं। जो बहुत बुद्धि से इन का सहज जानना होय और इन को जाने आप के रागादिक विकार बधता न जाने तो इन का भी जानना होय परन्तु अनुयोग शास्त्रवत् यह शास्त्र बहुत कार्यकारी नाहीं। इसलिये इन के अभ्यास का विशेष उद्यम करना युक्त नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो ऐसे

-:(तिस का उत्तर):- पूर्वोक्त किञ्चित्
है तो गणधरादिक इन की रचना किसलिये करी । जैसे बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तु को भी संचय
प्रयोजन जान इनकी रचना करीहै । जैसे बहुत धनवान कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तु को भी संचय करे तो धन तो तहां लग जाय प्रयोजनभूत
करे। और थोड़ा धनवान भी कदाचित् उन वस्तुन का संचय करे तो धन तो तहां लग जाय प्रयोजनभूत
बहुत कार्यकारी वस्तु का संग्रह कैसे करे। इसलिये बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोक
कार्यकारी वैद्यकादिक शास्त्र का भी सञ्चय करे हैं, और जो थोड़ा बुद्धिमान् उनका अभ्यास करने
लगे तो बुद्धि तो तहां लग जाय। उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रन का अभ्यास कैसे करे। और जैसे मन्दरागी
पुराणादिक विषे शृंगारादिक निरूपण करे तौभी विकारी न होय तीव्ररागी तिन के अभ्यासविषे लगजाय तो
रागादिक वधाय पाप कर्म को बांधै ऐसा जानना इस प्रकार जिनमत के उपदेश का स्वरूप जानना।
अब इन विषे कोई दोष कल्पना करे है तिसका निराकरण कीजिएहै। कोई जीव कहेहै प्रथमानुयोग विषे
शृंगारादिक वा संग्रामादिक के बहुत कथन करे हैं तिनके निमित्त से रागादिक वधजाय इसलिये
ऐसा कथन न करना था, वा ऐसा कथन सुनना नाहीं जो अलङ्कारादिक कर कथन किया तो वढ़ाकर
किस लिये किया। तिसको कहिए है कथा कहनी होय तव तो सर्व ही अवस्था का कथन किया चाहिए
और जो अलङ्कारादि वधाय कथन करें हैं सो पंडितन के बचन युक्ति लिये ही निकसे हैं, और जो तू
कहेगा संवन्ध मिलावने को सामान्य कथन किया होता वधाय कर कथन किसलिये किया तिस का
उत्तर परोक्ष कथन को वधाय कर कहे विना उस का स्वरूप भासे नाहीं पहिले तो भोग संग्रामादिक

ऐसे किये पीछे सर्व का त्याग कर मुनि भये इत्यादिक चमत्कार तब ही भासे जब बधाय कर कथन कीजिये। और तू कहे है तिस के निमित्त से रागादिक बध जाय है। सो जैसे कोई चैत्यालयादि बनावे तो उस के तो प्रयोजन तहां धर्म कार्यकरावने का है और कोई पापी तहां पाप कार्य करेतो चैत्यालय बनावने वाले का तो दोष नाहीं है। तैसे श्रीगुरु पुराणादि विषे शृङ्गारादिक वर्णन करें तो तहां उन का प्रयोजन रागादिक करावने का तो है नाहीं धर्म्म विषे लगावने का प्रयोजन है, और कोई पापी धर्म्म न करे और रागादिक ही बधावे तो श्री गुरु का क्या दोष है। और जो तू कहे कि रागादिक का निमित्त न होय सो ही कथन करना था। —:(तिस का उत्तर):— सरागी जीवन का मन केवल वैराग्य विषे लगे नाहीं इसलिये जैसे बालकन को पतासे के आश्रय से औषधि दीजिये है, तैसे सरागी को भोगादिक कथन कर उस के आश्रय धर्म विषे रुचि कराइये है। और तू कहेगा ऐसे है तो वैरागी पुरुषन को तो ऐसे ग्रन्थन का अभ्यास करना युक्त नाहीं। —:(तिस का उत्तर):— जिन के अङ्ग विषे राग नाहीं तिन के शृङ्गारादिक के कथन सुनने से रागादिक उपजे नाहीं ऐसे ही यहां कथन करने की पद्धति है। जो तू कहेगा जिन के शृङ्गारादिक कथन सुन कर रागादिक होय आवे तिन को तो वैसा कथन सुनना योग्य नाहीं। —:(तिस का उत्तर):— जहां धर्म्म ही का तो प्रयोजन और जहां तहां धर्म ही को पोषैं। ऐसे जिन पुराणादिक तिन विषे प्रसङ्ग पाय शृङ्गारादिक का कथन किया तिस को सुने भी जो बहुत रागी होय तो वह अन्यत्र कैसे वैरागी होगा. पुराण

सुनना छोड़ और कार्य भी ऐसा ही करेगा। जहां बहुत रागादिक होयें इसलिये उस
के भी पुराण सुनने से थोड़ी बहुत धर्म्म बुद्धि होय ही होय। और कार्य्यन से तो यह कार्य भला ही है।
और कोई कहे प्रथमानुयोग विषे अन्य जीवन की कहानी हैं, उस से अपना क्या प्रयोजन
सधे हैं। तिस को कहिये है जैसे कामी पुरुषन की कथा सुनने से आप के काम का प्रेम बधे है।
तैसे धर्मात्मा पुरुषन की कथा सुनने से आप के धर्म की प्रतीति विशेष होय है इसलिये प्रथमानुयोग का
अभ्यास करना योग्य है। और कई जीव कहे हैं कि करणानुयोग विषे गुणस्थान मार्गणादिक का वा कर्म्म
प्रकृतिन का कथन किया है, वा त्रिलोकादिक का कथन किया है तिन को जान लेना यह ऐसे है यह ऐसे है
इस में अपना कार्य क्या सिद्ध भया, क्या भक्ति करिये क्या व्रत दानादिक करिये अथवा आत्मानुभवन
करिये जिस से अपना भला होय है, तिस को कहिये है परमेश्वर तो वीतराग है भक्ति किये प्रसन्न होय
कर कुछ करते नाहीं। भक्ति कर तो मंद कषाय होय है तिसका स्वयमेव उत्तम फल होय है सो करणानुयोग
के अभ्यास विषे तिस से भी अधिक मंद कषाय होय सके है इसलिये इस का फल अत्युत्तम होय है और
व्रत दानादिक तो कषाय घटावने के बाह्य निमित्त साधन हैं और चरणानुयोग का अभ्यास किये जब
उपयोग लगजाय तब रागादिक दूर होयें सो यह अंतरंग निमित्त का साधन है इसलिये यह विशेष
कार्यकारी है व्रतादिक धार अध्ययनादिक कीजिये है और आत्मानुभवन सर्वोत्तम कार्य है। परन्तु
सामान्य अनुभव विषे उपयोग थंभे नाहीं तब अन्य विकल्प होय तहां करणानुयोग का अभ्यास होय

तो तिस विचार विषे उपयोग को लगावे और यह विचार वर्त्तमान रागादिक भी घटावे है और आगामि रागादिक घटावने का कारण है इसलिये यहां उपयोग लगावना और जीव कर्मादिक के नाना प्रकार भेद जान तिन विषे रागादि करने का प्रयोजन नाहीं इसलिये रागादिक वधै नाहीं वीतराग होने का प्रयोजन जहां तहां प्रगट है, इसलिये रागादिक मिटावने का कारण है यहां कोई कहे कोई तो कथन ऐसा ही है परन्तु द्वीप समुद्रादिक किस प्रयोजन निरूपे हैं और तिन में क्या सिद्धि होय है। —:(तिस का उत्तर):— तिन को जाने परन्तु तिन विषे कुछ इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय इसलिये पूर्वोक्त सिद्धि होय है तव वह कहे है,ऐसे है तो जिस से कुछ प्रयोजन नाहीं ऐसे पाषाणादिक को भी जाने तहां इष्ट अनिष्टपना न मानियें है। सो भी कार्यकारी भया। —:(तिस का उत्तर)—: सरागी जीव रागादिक प्रयोजन विना किसी को भी जानने का उद्यम न करें परन्तु जो स्वयमेव उनका जानना हो जाय तो अंतरंग रागादिक के अभिप्राय के वश कर तहां से उपयोग को छुड़ाया ही चाहे हैं यहां उद्यमकर द्वीप समुद्रादिक को जाने हैं तहां उपयोग लगावे हैं सो रागादिक घटें ऐसा कार्य होय और पाषाणादिक विषे इस लोक का प्रयोजन कोई भास जाय तो रागादिक होय आवे। और द्वीपादिक विषे इस लोक संबंधी कार्य कुछ नाहीं इसलिये रागादिक का कारण नाहीं। जो स्वर्गादिक की रचना सुन तहां राग होय तो परलोक संबंधी होय तिस का कारण पुण्य को जानें तव पाप छोड़ पुण्य विषे प्रवर्त्ते इतनाही नफ़ा होय और द्वीपादिक के जाने यथावत रचना भासे। तव अन्य मतादिक का कहा झूठ भासे सत्य श्रद्धानी

कार्यकारी है
होय और यथावत् रचना जानने कर भ्रम मिटै उपयोग निर्मल होय इसलिये यह अभ्यास कार्यकारी है
और कोई कहै कि करणानुयोग विषे कठिनता घनी है इसलिये तिस के अभ्यास विषे खेद होय है तिस
को कहिये है। जो वस्तु शीघ्र जानने में आवे तहां उपयोग उलझै नाहीं। और जानी वस्तु को बारंबार
जानने का उत्साह होय नाहीं। तब पाप कार्यन विषे उपयोग लग जाय इसलिये अपनी बुद्धि के अनुसार
कठिनता कर भी जिसका अभ्यास होता जानें तिसका अभ्यास करना योग्य है। और जिसका अभ्यास होय
सके नाहीं तिस का अभ्यास कैसे करे। और तू कहै खेद होय है सो प्रमादी रहने में तो धर्म है नाहीं।
प्रमाद से सुखिया रहिये तहां तो पाप ही है इसलिये धर्म के अर्थ उद्यम करना ही युक्त है ऐसा विचार
कर करणानुयोग का अभ्यास करना योग्य है और कई जीव ऐसे कहै हैं कि चरणानुयोग विषे बाह्य व्रता-
दिक साधनका उपदेश है सो इनसे कुछ सिद्धि नाहीं अपने परिणाम निर्मल चाहियें बाह्य चाहे जैसे प्रवर्तो
इसलिये इस उपदेश से पराङ्मुख रहै हैं तिनको कहिये है आत्म परिणामन के और बाह्य प्रवृत्ति के निमित्त
नैमित्तिक संबंध है क्योंकि छद्मस्थ के क्रिया परिणाम पूर्वक होय है। कदाचित् बिना परिणाम कोई
क्रिया होय है सो परवश से होय है। अपने उद्यम कर कार्य करिये और कहिये परिणाम इस रूप
नाहीं है सो यह भ्रम है। अथवा बाह्यपदार्थन का आश्रय पाय परिणाम होय सके है। इसलिये परि-
णाम मेटने के अर्थ बाह्यवस्तु का निषेध करना समयसारादि विषे कहा है। इसी वास्ते रागादिक भाव
घटे बाह्य ऐसे अनुक्रम से श्रावक मुनि धर्म होय है। अथवा ऐसे श्रावक मुनि धर्म अंगीकार किये पंचम

षष्ठम आदि गुण स्थानों विषे रागादिक घटावनें रूप परिणामन की प्राप्ति होय है ऐसा निरूपण चरणानुयोग विषे किया है। और जो वाह्यसंयम से कुछ सिद्ध न होय तो सर्वार्थसिद्धवासी देव सम्यग्दृष्टि बहुत ज्ञानी तिन कै तो चौथा गुण स्थान होय और गृहस्थ श्रावक मनुष्य कै पंचमगुण स्थान होय सो कारण क्या और तीर्थंकरादि गृहस्थ पद छोड़ किस लिये संयम ग्रहैं क्योंकि यह नियम है। वाह्य संयम साधन विना परिणाम निर्मल न होय सके हैं इसलिये वाह्य साधन का विधान जानने को चरणानुयोग का अभ्यास अवश्य करना चाहिये और कई जीव कहे हैं जो द्रव्यानुयोग विषे व्रत संयमादिक व्यवहार धर्म का हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टि कै विषय भोगादिक को निर्जरा का कारण कहा है। इत्यादि कथन सुन जीव हैं सो स्वच्छन्द होय पुण्य छोड़ पाप विषे प्रवर्त्तेंगे, इसलिये इन का वाचना सुनना युक्त नाहीं तिसको कहिये है जैसे गर्धभ मिश्री खाये मरे तो मनुष्य तो न छोड़ें हैं तैसे विपरीत बुद्धि अध्यात्म ग्रंथ सुन स्वच्छन्द होयें तो विवेकी तो अध्यात्म ग्रंथन का अभ्यास न छोड़ें हैं। इतना उचित है कि जिस को स्वच्छन्द होता जाने तिस को जैसे वह स्वच्छन्द न होय तैसे उपदेश दें। और अध्यात्म ग्रंथन विषे भी स्वच्छन्द होने का जहां तहां निषेध कीजिये है। इस लिये जो नीकै तिन को सुने सो तो स्वच्छन्द होता नाहीं। और जो केवल एक ही बात सुनकर अपने अभिप्राय से कोई स्वच्छन्द होगा तो ग्रन्थ का तो कुछ दोष है नाहीं, उस जीव ही का दोष है और जो झूठे दोष की कल्पना कर अध्यात्म ग्रन्थ का वाचना सुनना निषेधिये तो मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो तहां ही है तिस का निषेध किये मोक्षमार्ग के उपदेश का निषेध होय है

जैसे मेघ वर्षा भये बहुत जीवनका कल्याण होय और किसीके उलटा टोटा पड़े तो उसकी मुख्यता कर मेघ
का तो कुछ निषेध न करना। तैसे सभा विषे अध्यात्म उपदेश भये बहुत जीवन कै मोक्षमार्ग की
प्राप्ति होय है और किसी के उलटा पाप प्रवर्त्तें तो तिस की मुख्यता कर अध्यात्म शास्त्र का तो निषेध
न करना और अध्यात्म ग्रंथन से कोई स्वछन्द होय तो पहिले भी मिथ्यादृष्टि था अब भी मिथ्या
दृष्टि रहा और अध्यात्म उपदेश भये बहुत जीवन कै मोक्षमार्ग की प्राप्ति का सद्भाव होय है सो इस
से घने जीवन का घना भला होय है इसलिये अध्यात्म उपदेश का निषेध न करना। और कई जीव
कहै हैं कि जो द्रव्यानुयोग रूप अध्यात्म उपदेश है सो उत्कृष्ट है सो जो ऊंची दशा को प्राप्त भये
तिन को कार्यकारी है नीची दशा वालों को तो व्रत संयमादिक का ही उपदेश देना योग्य है। उसको
कहिये है। जिन मत विषे तो यह परपाटी है जो पहिले सम्यक्त होय पीछे व्रत होय सो सम्यक्त तो
स्वपर का श्रद्धान भये होय है। और वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग के अभ्यास किये होय है। इसलिये पहिले
द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान कर सम्यग्दृष्टि होय पीछे चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक धार व्रती
होय ऐसे मुख्यपने तो नीचली दशा विषे ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है। गौनपने जिस को मोक्षमार्ग
की प्रतीति न होती जानिये तो व्रतादिक का उपदेश दीजिये है इसलिये ऊंची दशावाले को अध्यात्म
उपदेश अभ्यास करना योग्य है। ऐसा जान नीचली दशावालों को तहां से पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।
और कहोगे ऊंचे उपदेश का स्वरूप नीचली दशा वालों को भासे नाहीं। —:(तिस का उत्तर):—

और तो अनेक प्रकार चतुराई जाने यहां मूर्खपना प्रगट कीजिये है सो युक्त नाहीं। अभ्यास किये स्वरूप नीके भासे है अपनी बुद्धि अनुसार थोड़ा बहुत अभ्यासे परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होने को पोषिये सोतो जिन मार्ग का द्वेषी ही है। और जो कहोगे अवार काल निकृष्ट है इसलिये उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेश की मुख्यता न करना। तिसको कहिये है अवार काल साचात् मोच न होने की अपेचा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिक कर सम्यक्तादिक होने का इस समय में निषेध नाहीं इसलिये आत्मानुभवनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना। सोई षट् पाहुड़ विषे कहा है :—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाजाऊण जान्ति सुरलोयें (ये)।
लोयंते देवं तातचुयाणि क्षुपा ब्वुदिज्जंति ॥

अर्थ—अब भी त्रिकरण कर शुद्ध जीव आत्मा को ध्याय कर सुरलोक विषे प्राप्त होय हैं वा लोकान्तिक विषे देवपना पावें हैं तहां से चय कर मनुष्य होय मोच जाय हैं। इसलिये इस काल विषे द्रव्यानुयोग का उपदेश मुख्य चाहिये और कई कहे हैं द्रव्यानुयोग विषे अध्यात्म शास्त्र हैं तहां स्वपर भेद विज्ञानादिक का उपदेश दीजिये है सो तो कार्यकारी भी घना है और समझ में भी शीघ्र आवे है परन्तु द्रव्य गुण पर्यायादिक का वा प्रमाण नयादिक का अन्यमत के कहे तत्वादिक के निराकरण का कथन किया सो तिन के अभ्यास से विकल्प विशेष होय है बहुत अभ्यास करने

से जानने में आवे इसलिये इन का अभ्यास न करना तिन को कहिये है सामान्य के जानने
से विशेष का जानना बलवान है। ज्यूं ज्यूं विशेष जाने त्यूं त्यूं वस्तु का स्वभाव निर्मल भासे
श्रद्धान दृढ़ होय है रागादिक घटैं हैं इसलिये तिस अभ्यास विषे प्रवर्त्तना योग्य है ऐसे चारों अनुयोगों
विषे दोष की कल्पना कर अभ्यास से पराङ्मुख होना योग्य नाहीं और व्याकरण न्यायादिक
शास्त्र है तिन का भी थोड़ा बहुत अभ्यास करना क्योंकि ज्ञान बिना बड़े शास्त्रन का अर्थ
भासे नाहीं और वस्तु का भी स्वरूप इनकी पद्धति जानें जैसा भासे है तैसा भाषादिक कर भासे
नाहीं। इसलिये परम्परा कार्य्यकारी जान इन का भी अभ्यास करना परन्तु इन ही विषे
फस न जाना कुछ इन का अभ्यास कर प्रयोजनभूत शास्त्रन का अभ्यास विषे प्रवर्त्तना और वैद्यका-
दिक शास्त्र हैं तिन से मोक्षमार्ग विषे कुछ प्रयोजन नाहीं इसलिये कोई व्यवहार धर्म के अभि
प्राय से बिना खेद इन का अभ्यास होजाय तो उपकारादिक करना पाप रूप न प्रवर्त्तना।
और इन का अभ्यास न होय तो मत होय कुछ बिगाड़ नाहीं ऐसे जिनमत के शास्त्र निर्दोष जान
तिन का उपदेश मानना अब शास्त्रन विषे अपेक्षादिक को न जाने परस्पर विरुद्ध भासे है तिस का
निराकरण कीजिये है प्रथमानादि अनुयोगन की आम्नाय के अनुसार जहां जैसा कथन किया होय तहां
तैसे जान लेना और अनुयोग के कथन को और अनुयोग के कथन से अन्यथा जान सन्देह न करना
जैसे कहीं तो निर्मल सम्यग्दृष्टि ही के शंका कांक्षा विचिकित्सा का अभाव कहा कहीं भय का आठवां

गुणस्थान पर्यन्त लोभ का दशवां पर्यन्त जुगुप्सा का आठवां पर्यन्त उदय कहा तहां विरुद्ध न जानना श्रद्धान पूर्वक तीव्र शंकादिक का सम्यग्दृष्टि कै अभाव भया अथवा मुख्यपने सम्यग्दृष्टि शंकादिक न करै। तिस अपेक्षा चरणानुयोग विषे शंकादिक का सम्यग्दृष्टि के अभाव कहा है और सूक्ष्म शक्ति अपेक्षा भयादिक का उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यन्त पाइये है इसलिये करणानुयोग विषे तहां प्रर्यन्त तिन का सद्भाव कहा ऐसे ही अन्यत्र जानना। पूर्वैं अनुयोगन का उपदेश विधान विषे कहूं उदाहरण कहे हैं सो जानने, अथवा अपनी बुद्धि से समझ लेने। और तिस ही अनुयोग विषे विवक्षा के वश से अनेक रूप कथन करिये है जैसे करणानुयोग विषे प्रमाद के सप्तम गुणस्थान विषे अभाव कहा तहां कषायादिक प्रमाद के भेद कहे हैं और तहां ही कषायादिक का सद्भाव दशम गुणस्थान पर्यन्त कहा है तहां विरोध न जानना क्योंकि यहां प्रमादीन विषे तो जो शुभ अशुभ भावन का अभिप्राय लिये कषायादिक होयें तिन का ग्रहण है सो सप्तम गुणस्थान विषे ऐसा अभिप्रायं दूर भया इसलिये तिन का तहां अभाव कहा। और सूक्ष्मादिक भावन की अपेक्षा तिन ही का दशमा गुणस्थान पर्यन्त सद्भाव कहा है। और चरणानुयोग विषे चोरी परस्त्री आदि सप्त व्यसनन का त्याग प्रथम प्रतिमा विषे कहा है और तहां ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमा विषे कहाहै तहां विरोध न जानना। क्योंकि सप्त व्यसनन विषे तो चोर आदि कार्यं ऐसे ग्रहे हैं जिन कर दण्डादिक पावे है लोक विषे अति निन्दा होय है और व्रतन विषे चोरी आदिक का त्याग करना ऐसे कहा है। जो गृहस्थ धर्म्म

विषे विरुद्ध होय वा किञ्चित् लोक निन्द्य होय ऐसा अर्थ जानना ऐसे ही अन्यत्र जानना। और नाना भावन की अपेक्षा से एक ही भाव को अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिये है। जैसे कहीं तो महाव्रतादिक चारित्र के भेद कहे हैं कहीं महाव्रतादिक होय हैं तौभी द्रव्यलिङ्गी को असंयमी कहा है। तहां विरोध न जानना। क्योंकि सम्यग्ज्ञान सहित महाव्रतादिक तो चारित्र है और अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भये भी असंयम ही है। और जैसे पांच मिथ्यात्वन विषे भी विनय कहा और बारह प्रकार तपन विषे भी विनय कहा तहां विरोध न जानना। इसलिये विनय करने योग्य नाहीं। तिन का भी विनय कर धर्म मानना सो तो विनय मिथ्यात्व है और धर्म पद्धति कर जो विनय करने योग्य हैं तिन का यथायोग्य विनय करना सो विनय तप है। और जैसे कहीं तो अभिमान की निन्दा करी है कहीं प्रशंसा करी है क्योंकि मान कषाय से आप को ऊंचा मनावने के अर्थ विनयादिक न करे सो अभिमान तो निन्द्य ही है और निर्लोभी पना से दीनता आदि न करे सो अभिमान प्रशंसा योग्य है और जैसे कहीं चतुराई की निन्दा करी है कहीं प्रशंसा करी है तहां विरुद्ध न जानना क्योंकि माया कषाय से किसी को ठगने के अर्थ चतुराई कीजिये है सो तो निन्दा ही है और विवेक लिये यथा सम्भव कार्य करने विषे जो चतुराई होय सो श्लाघ्य ही है ऐसे ही अन्यत्र जानना। और एक ही भाव की कहीं तो तिस से उत्कृष्ट भाव की अपेक्षा कर निन्दा करी होय सो और कहीं तिस से हीन भाव की अपेक्षा कर प्रशंसा करी होय तहां विरुद्ध न जानना। तैसे किसी शुभ क्रिया की जहां

निन्दा करी होय सो तो तिस से ऊंची शुभ क्रिया वा शुद्ध भाव तिन ही की अपेक्षा जानना। और जहां प्रशंसा करी होय तिस से नीची क्रिया वा शुभ क्रिया तिन की अपेक्षा जानना। ऐसे ही किसी जीव की ऊंचे जीव की अपेक्षा निन्दा करी होय तहां सर्वथा निन्दा न जाननी किसी की नीचे जीव की अपेक्षा प्रशंसा कीनी होय तो सर्वथा प्रशंसा न जाननी यथा सम्भव वा गुण दोष जान लेने ऐसे ही अन्यव्याख्यान जिस अपेक्षा लिये किया होय तिस ही अपेक्षा उस का अर्थ समझना और शास्त्र विषे एक ही शब्द का कहीं तो कोई अर्थ है और कहीं कोई अर्थ है। तहां प्रकरण पहिचान उस का सम्भवतां अर्थ जानना जैसे मोक्षमार्ग विषे सम्यग्दर्शन कहा तहां दर्शन शब्द का अर्थ श्रद्धान है और उपयोग वर्णन विषे दर्शन शब्द का अर्थ वस्तु का सामान्य रूप ग्रहण मात्र है और इन्द्रिय वर्णन विषे दर्शन शब्द का अर्थ नेत्र कर देखने मात्र का है और जैसे सूक्ष्म वादर का अर्थ वस्तु के प्रमाणादिक कथन विषे छोटा परिमाण लिये होय तिस का नाम सूक्ष्म और बड़ा प्रमाण लिये होय तिस का नाम वादर है और जहां ऐसा अर्थ होय पुद्गल स्कन्धादिक का कथन विषे इन्द्रिय गम्य न होय सो सूक्ष्म इन्द्रिय गम्य होय सो वादर ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिक के कथन विषे महीन का नाम सूक्ष्म है मोटे का नाम वादर है ऐसा अर्थ है और करणानुयोग कथन विषे पुद्गल स्कन्ध के निमित्त से रुके नाहीं तिस का नाम सूक्ष्म है और रुक जाय तिस का नाम वादर है। और प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ लोक व्यवहार विषे तो इन्द्रियन कर जानने का नाम प्रत्यक्ष है

आत्मानुभवनादिक विषे अवस्था होय तिस का नाम प्रत्यक्ष है और जैसे मिथ्यादृष्टि को अज्ञान कहा तहां सर्वथा ज्ञान का अभाव भया न जानना सम्यग्ज्ञान के अभाव से अज्ञान कहा है और जैसे उदीरणा शब्द का अर्थ जहां देवादिक के उदीरणा न कही तहां तो अन्यनिमित्त से मरण होय तिस का नाम उदीरणा है और दश करणान का कथन विषे उदीरणा करण देवायु के भी कहा है तहां ऊपर के निषेकन का द्रव्य उदयावली विषे दीजिये तिस का नाम उदीरणा है ऐसे ही अन्यत्र यथासम्भव अर्थ जानना और एक ही शब्द का पूर्वशब्द जोड़े अनेक प्रकार अर्थ होय है वा उस ही शब्द के अनेक अर्थ हैं तहां जैसा सम्भवै तैसा अर्थ जानना जैसे जो जीते तिस का नाम जिन है परन्तु धर्मपद्धति विषे कर्मशत्रु को जीते तिस का नाम जिन जानना यहां कर्मशत्रु शब्द को पूर्वै जोड़ने से जो अर्थ होय सो ग्रहण किया है अन्य नहीं किया है जैसे जो प्राण धारे तिस का नाम जीव है। तहां जीवन मरण व्यवहार अपेक्षा कथन होय वहां तो इन्द्रियादि प्राण धारे सो भी जीव है और द्रव्यादिक की निश्चय अपेक्षा निरूपण होय तो तहां चैतन्य प्राण धारे सो जीव है। और जैसे समय शब्द के अनेक अर्थ हैं आत्मा का नाम समय है सर्व पदार्थों का नाम समय है काल का नाम समय है शास्त्र का नाम समय है मत का नाम समय है ऐसे अनेक अर्थन विषे जैसा संभवै तैसा तहां अर्थ जान लेना और कहीं तो अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिये हैं जहां रूढ़ि अपेक्षा नामादिक लिखा होय तहां उसका शब्दार्थ न ग्रहण करना उस का जो रूढ़ रूप अर्थ होय सो ही ग्रहण करना जैसे सम्यक्त को धर्म कहा तहां यह जीव को

उत्तम स्थान विषे धारे है इस लिये तिस का नाम सार्थक है और धर्मद्रव्य का नाम धर्म कहा तहां रूढ़ि नाम है इस का अक्षरार्थ न ग्रहण करना इस नाम धारक एक वस्तु है। ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसे ही अन्यत्र जानना और कहीं जो शब्द का अर्थ होता होय सोतो न ग्रहण करना और तहां जो प्रयोजन-भूत अर्थ होय सो ग्रहण करना जैसे कहीं किसी का अभाव कहा होय और तहां किंचित् सद्भाव पाइये तो तहां सर्वथा अभाव न ग्रहण करना किंचित्सद्भाव को न गिन अभाव कहा है। ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टि कै रागादिक का अभाव कहा है। सो तहां ऐसा अर्थ जानना, और नोकषाय का अर्थ कषाय नाहीं यह अर्थ न ग्रहण करना यहां क्रोधादि सारिखी यह कषाय नाहीं हैं किंचित् कषाय है इसलिये नोकषाय है ऐसा अर्थ ग्रहण करना ऐसे ही अन्यत्र जानना समयसारकलश विषे यह कहा है। धोबी के दृष्टान्तवत् परभाव के त्याग की दृष्टि यावत् प्रवृत्ति को न प्राप्त भई तावत् यह अनुभूति प्रगट न भई सो यहां यह प्रजोजन है परभाव का त्याग होतें ही अनुभूति प्रगट होय है। लोक विषे किसी के आवतें ही कोई कार्य भया होय तहां ऐसे कहिये है जो यह आया ही नाहीं, और यह कार्य हो गया ऐसा ही यहां प्रयोजन ग्रहण न करना ऐसे ही अन्यत्र जानना और जैसे कहीं प्रमाणादिक कुछ कहा होय सो तहां न मान लेना, तहां प्रयोजन होय सो जान लेना। ज्ञानार्णव विषे ऐसा कहा है अवार होय तीन सत्पुरुष हैं सो नियम से इतने ही नाहीं। यहां थोड़े हैं ऐसा प्रयोजन जानना, ऐसे ही अन्यत्र जानना इस ही रीति लिये और भी अनेक प्रकार शब्दन के अर्थ होय हैं। तिनको यथासंभव जानने विपरीत

अर्थ न जानना। और जो उपदेश होय तिस को यथार्थ पहिचान जो अपने योग्य उपदेश होय तिस को अंगीकार करना जैसे वैद्यक शास्त्रन विषे अनेक औषधियें कही हैं तिन को जाने और ग्रहण तिसही का करे जिस कर अपना रोग दूर होय आपके शीतका रोग होय तो उष्ण औषधिका ग्रहण करे शीतल औषधि का ग्रहण न करे यह औषधि औरन को कार्यकारी है ऐसा जाने तैसे जैन शास्त्रों विषे अनेक उपदेश हैं तिन को जाने और ग्रहण तिस ही का करे जिस कर अपना विकार दूर होय आप कै जो विकार होय तिस के निषेध करनहारा उपदेश को ग्रहै तिस का पोषक उपदेश को न ग्रहै यह उपदेश औरन को कार्यकारी है ऐसे जाने। —:(यहां उदाहरण कहिये है):— जैसे शास्त्र विषे कहीं निश्चय पोषक उपदेश हैं कहीं व्यवहार पोषक उपदेश है तहां आप कै व्यवहार का अधिक होय तो निश्चय पोषक उपदेश का ग्रहण कर यथावत् प्रवर्त्तै। और आप कै निश्चय का आधिक्य होय तो व्यवहार पोषक उपदेश का ग्रहण कर यथावत् प्रवर्त्ते। और पूर्वैं जो व्यवहार श्रद्धान से आत्मज्ञान से भ्रष्ट हो रहा था पीछे व्यवहार उपदेश ही की मुख्यता कर आत्मज्ञान का उद्यम न करे। अथवा पूर्वैं तो निश्चय श्रद्धान से वैराग्य से भ्रष्ट होय रहा था पीछे निश्चय उपदेश ही की मुख्यता कर विषय कषाय को पोषे ऐसें विपरीत उपदेश ग्रहे बुरा ही होय और आत्मानुशासन विषे ऐसा कहा है जो तू गुणवान् होय दोष को लगावे है जो दोषवान् होना था तो दोषमय ही क्यों न भया सो जो जीव आप तो गुणवान् होय और कोई दोष लगता होय तहां तिस दोष दूर करने के अर्थ

तिस उपदेश को अंगीकार करना और आप तो दोषवान् होय और उस उपदेश को ग्रहण कर गुणवान् पुरुषन को नीचा दिखावे तो बुरा ही होय सर्व दोषमय होने से किंचित् दोष रूप होना बुरा नाहीं है इसलिये तेरे से तो वह भला ही है और यहां यह कहा तू दोषमय ही क्यों न भया सो यह तर्क कारी है कुछ सर्व दोषमयी होने के अर्थ यह उपदेश नाहीं है और जो गुणवान् के किंचित् दोष भये भी निन्दा है इस लिये सर्व दोष रहित तो सिद्ध ही हैं नीचली दशा विषे तो कोई गुण कोई दोष ही होय यहां कोई कहे ऐसे है तो मुनिलिंग धार किंचित् परिग्रह राखें सो भी निगोद जाय ऐसे षट्पाहुड़ विषे कैसे कहा है। –:(तिस का उत्तर):– ऊंची पदवी धार तिस पदवी विषे असंभवता नीचा कार्य करे तो प्रतिज्ञा भंगादिक होने से महादोष लगे है और नीची पदवी विषे तहां संभवता गुण दोष होय तो तहां उस का दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं ऐसा जानना और उपदेश सिद्धान्तरत्नमाला विषे कहा है आज्ञानुसार उपदेश देने वाले का क्रोध भी क्षमा का भण्डार है सो इस उपदेश विषे वक्ता का क्रोध ग्रहण योग्य नाहीं क्योंकि इस उपदेश से वक्ता क्रोध किया करे तो उस का बुरा ही होय कदाचित् वक्ता क्रोध करके भी सांचा उपदेश दे तो श्रोता गुण ही माने ऐसे ही अन्यत्र जानना। और जैसे किसी के अति शीतांग रोग होय तिस के अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि देनी योग्य है और जिस के दाह होय वा तुच्छ शीत होय सो अति उष्ण रसादिक औषधि ग्रहण करे तो दुःख ही पावे तैसे किसी के कोई कार्य की मुख्यता होय तिस के निषेध का अति

खैंच कर उपदेश दिया जाय तो योग्य है और जिसके तिस कार्य की मुख्यता न होय वा थोड़ी मुख्यता होय सो ग्रहण करे तो बुरा ही होय। —:(यहां उदाहरण) जैसे किसी कै शास्त्राभ्यास की अति मुख्यता है और आत्मानुभवन का उद्यम नाहीं तिस के अर्थ बहुत शास्त्राभ्यास का निषेध किया और जिस के शास्त्राभ्यास है नाहीं वा थोड़ा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेश से शास्त्राभ्यास छोड़े और आत्मानुभवन विषे उपयोग रहे नाहीं तो उस का बुरा ही होय और जैसे किसी कै यज्ञ स्नानादिक कर हिंसा से धर्म मानने की मुख्यता है तिस के अर्थ जो पृथ्वी उलटे तौभी हिंसा किये पुण्य फल न होय ऐसा उपदेश दिया है और जो जीव पूजनादि कार्यन कर किंचित् हिंसा करे और बहुत पुण्य उपजावे सो जीव इस उपदेश से पूजनादिक कार्य छोड़े और हिंसा रहित सामायिकादिक धर्म विषे उपयोग लगे नाहीं तब उस का तो बुरा ही होय ऐसे ही अन्यत्र जानना। और जैसे कोई औषधि गुणकारी है परन्तु आपकै जब तक तिस औषधि से हित होय तब तक तिसका ग्रहण करे जो शीत मिटे भी उष्ण औषधि का सेवन किया ही करे तो उलटा रोग होय तैसे कोई धर्म कार्य है परन्तु आप कै जब तक सर्व धर्म कार्य से हित होय तावत् तिस का ग्रहण करे जो ऊंची दशा होतैं नीची दशा सम्बन्धी धर्म्म के सेवन विषे लगे तो उलटा विकार ही होय। —:(तिस का उदाहरण):— जैसे पाप मेटने के अर्थ प्रतिक्रमणादिक धर्म्म कार्य कहे और आत्मानुभवन विषे प्रतिक्रमणादिक का विकल्प करे तो उलटा विकार बधे इस ही से समयसार विषे प्रतिक्रमण-

दिक को विष कहा और जैसे अव्रती के करने योग्य प्रभावनादिक धर्म्म कार्यं कहे तिन को व्रती होय कर करे तो पाप ही बांधे व्यवहारादिक आरम्भ छोड़ चैत्यालयादिक कार्यन का अधिकारी होय सो कैसे बने ऐसे ही अन्यत्र जानना। और जैसे पाकादिक औषधियें पुष्टि कारी हैं परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करे तो महा दोष उपजे तैसे ऊंचा धर्म बहुत भला है परन्तु अपने विकारभाव दूर होय नाहीं और ऊंचा धर्म ग्रहे तो महा दोष उपजे। —:(यहां उदाहरण):— जैसे अपना अशुभ विकार भी न छूटा और निर्विकल्प दशा को अंगीकार करे तो दोष ही उपजे और जैसे व्यापारादिक करने का विकार तो न छूटे और त्याग का भेष रूप धर्म अंगीकार करे तो महा दोष उपजे। और जैसे भोजन आदि विषयन विषे आसक्त होय और आरंभ त्यागादिक धर्म को अंगीकार करे तो बुरा ही होय ऐसेही अन्यत्र जानना इसही प्रकार और भी सांचे विचार से उपदेशको यथार्थ जान अंगीकार करना बहुत विचार कहां तक कहिये अपने सम्यक्त न भये आपही यथार्थ भासे है उपदेश तो वचन आत्मिक है और वचनकर अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाहीं इसलिये उपदेश तो एकही अर्थकी मुख्यतालिये होय है और जिस अर्थ का जहां वर्णन होय तहां तिस ही की मुख्यता है दूसरे अर्थ की तहां मुख्यता करे तो दोऊ उपदेश दृढ़ न होय हैं इसलिये उपदेश विषे एक अर्थ को दृढ़ करे परन्तु सर्व जिन मत का चिन्ह स्याद्वाद है सो स्याद्वाद का अर्थ कथंचित् है इसलिये जो उपदेश होय तिस को सर्वथा जान लेना उपदेश के अर्थ को जान कर तहां इतना विचार करना कि यह उपदेश किस प्रकार है किस प्रयोजन लिये है

किस जीव को कार्यकारी है इत्यादि विचार कर तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण कर पीछे अपनी दशा देख जो उपदेश जैसे आपको कार्यकारीहोय तिसको तैसे आप अंगीकारकरना और जो उपदेश जानने योग्य ही होय तो उसको यथार्थ जानलेना ऐसे उपदेशके फलको पावे है यहां कोई कहै कि जो कोई तुच्छ बुधि इतना विचार न कर सके तो क्या करे । –:(तिस का उत्तर):– जैसे व्यापारी अपनी बुद्धि के अनुसार जिसमें नफा समझै सो थोड़ा वा बहुत व्यापार करे है परन्तु नफे टोटे का ज्ञान तो अवश्य होना चाहिये तैसे ही विवेकी अपनी बुद्धि के अनुसार जिस में हित समझै सो थोड़े वा बहुत उपदेश को ग्रहण करे परन्तु मुझको यह कार्यकारी है वह कार्यकारी नाहीं है इतना तो ज्ञान अवश्य चाहिये सो कार्य तो इतनाही है कि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान कर रागादिक घटावना सो जैसे यह कार्य सधे सोई उपदेश का प्रयोजन है विशेष ज्ञान न होय तो तौभी प्रयोजन को तो भूले नाहीं यह तो सावधानी अवश्य करनी चाहिये जिस में अपने हित की हानि होय ऐसे उपदेश का अर्थ समझना योग्य है नाहीं। इस कर स्याद्वाद दृष्टि लिये जैनशास्त्रन का अभ्यास किये अपना कल्याण होय है । –:(यहां कोई प्रश्न करे):– जहां अन्य अन्य प्रकार सम्भवे तहां तो स्याद्वाद कहिये परन्तु जहां एक ही प्रकार कर शास्त्रन विषे परस्पर विरुद्धता भासे तहां क्या करिये जैसे प्रथमानुयोग विषे एक तीर्थंकर के साथ हजारों मुक्ति गये बताये। करणानुयोग विषे छह महीना आठ समय विषे छह से आठ जीव मुक्ति जाय है ऐसा नियम लिखा है प्रथमानुयोग विषे ऐसा कथन किया है कि देव देवाङ्गना उपज पीछे मर साथ ही मनुष्यादि पर्याय विषे

उपजे करणानुयोग कथन विषे देव का सागरों प्रमाण देवांगना का पलों प्रमाण आयु कहा इत्यादि विधि कैसे मिले —:(तिस का उत्तर):— करणानुयोग विषे कथन है सो तो तारतम्य लिये है अन्य अनुयोगन विषे कथन प्रयोजन अनुसार है। इसलिये करणानुयोग का कथन तो जैसे किया है तैसे ही है। औरन के कथन की जैसे विधि मिले तैसे मिलाय लेनी हजारों मुनि तीर्थङ्कर के साथ मुक्ति गये बताये हैं तहां यह जानना एक ही काल इतने मुक्ति गये नाहीं। जहां तीर्थङ्कर गमनादिक क्रिया मेट स्थिर भये तहां तिन के साथ इतने मुनि तिष्टे और मुक्ति आगे पीछे गये ऐसे प्रथमानुयोग करणानुयोग के कथन का विरोध दूर होय है और देवाङ्गना साथ उपजी पीछे देवाङ्गना चय कर बीच में अन्य पर्याय धरी तिन का प्रयोजन कुछ न जान कथन नहीं किया। पीछे वह साथ मनुष्य पर्याय विषे उपजे। ऐसे विध मिलाये विरोधि दूर होय है। ऐसे ही अन्यत्र विधि मिलाय लेनी। —:(यहां प्रश्न):— जो ऐसे कथनन विषे तो कोई प्रकार विधि मिले है परन्तु अन्य विरोध भी तहां पाइये हैं। जैसे नेमिनाथ स्वामी का सूरीपुर विषे कहीं द्वारावती विषे जन्म कहा रामचन्द्रादिक की कथा अन्य प्रकार लिखी इत्यादिक और कहीं एकेन्द्रियादिक के सासादन गुणस्थान होना लिखा, कहीं न लिखा, इत्यादि इन कथनों की विधि कैसे मिले। —:(तिस का उत्तर):— ऐसे विरोध लिये कथन काल दोष से भये हैं। इस काल विषे प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुत श्रुतिन का तो अभाव भया और स्तोक बुद्धि ग्रन्थ करने के अधिकारी भये तिनको भ्रम से कोई अर्थ अन्यथा भासे

तिस को तैसे लिखा अथवा इस काल विषे काईं जैनमत विषे भी कषायी भये हैं सो कोईं कारण पाय
अन्यथा कथन उन्होंने मिलाये हैं इसलिये जैनशास्त्रों के विषे विरोध भासने लगा सो जहां विरोध भासे
तहां इतना करना इस कथन करने वाला बहुत प्रामाणिक है। या इस कथन वाला बहुत प्रामाणिक
है। ऐसा विचार कर बड़े आचार्यादिकन कर कहा कथन प्रमाण करना। ऐसे विचार किये भी जो
असत्य सत्य का निर्णय न होय सके तो जैसे केवली को भासा है तैसे प्रमाण है ऐसा मान
लेना। और देवादिक वा तत्त्वन का निर्द्धारण भये बिना तो मोक्षमार्ग है नाहीं सो तिनका तो निर्द्धारण
होय सके है। जो कोईं इन का स्वरूप विरुद्ध कहे तो आप ही को भास जाय है और जिन अन्य
कथनन का निर्द्धारण न होय सके वा संशयादि रहे वा अन्यथा भी जानपना हो जाय और केवली
का कहा प्रमाण है ऐसा श्रद्धान रहे तो मोक्षमार्ग विषे विघ्न नाहीं ऐसा जानना। यहां कोईं तर्क
करे कि जैसे नाना प्रकार कथन जैनमत विषे कहे तैसे अन्य मत विषे भी कथन पाइये हैं, तुम्हारे मत
का कथन का तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया और अन्यमत विषे ऐसे कथन को तुम
दोष लगावो हो सो यह तुम्हारे राग द्वेष है। —:(तिस का समाधान):— कथन तो नाना
प्रकार होय और प्रयोजन एक ही को पोषे तो कोईं दोष नाहीं। और कहीं कोईं प्रयोजन पोषे
और कहीं कोईं प्रयोजन पोषे तो दोष ही है। सो जैनमत विषे तो एक प्रयोजन रागादिक मिटने
का है सो कहीं बहुत रागादिक छुड़ाय थोड़ा रागादिक करावने का प्रयोजन पोषा है। कहीं सर्व

रागादिक मिटावने का प्रयोजन पोषा है परन्तु रागादिक वधावने का प्रयोजन कहीं नाहीं है इसलिये जैनमत का कथन सर्व निर्दोष है और अन्य मत विषे कहीं रागादिक मिटावने का प्रयोजन लिये कथन करे हैं कहीं रागादिक वधावने का प्रयोजन लिये कथन करे हैं ऐसे ही और भी प्रयोजन की विरुद्धता लिये कथन करे हैं इसलिये अन्य मत का कथन सदोष है, लोक विषे एक प्रयोजन को पोषते नाना वचन कहैं तिस को प्रामाणिक कहिये है। और जो अप्रयोजनपोषती बातें करे तिस को बावला कहिये है। और जैनतम विषे नाना प्रकार कथन हैं सो जुदी जुदी अपेचा लियेहैं इसलिये दोष नाहीं। अन्यमत विषे एक ही अपेचा अन्य अन्य कथन करे तहां दोष है। जैसे जिनदेव कै वीतराग भाव है और समवसरणादि विभूति भी पाइये है तहां विरोध नाहीं। इन समवसरणादिक विभूति की रचना इन्द्रादिक करे हैं इन कै तिस विषे रागादिक नाहीं इसलिये दोनों बातें सम्भवे हैं और अन्य मत विषे ईश्वर को साचीभूत वीतराग भी कहे हैं। और तिस ही कर किये काम क्रोधादिक भाव निरूपण करे हैं सो एक ही आत्मा कै वीतरागपनो और काम क्रोधादिक भाव कैसे सम्भवैं ऐसे ही अन्यत्र जानना और काल दोष से जैनमत विषे एक ही प्रकार कर कोई कथन विरुद्ध लिखा है सो यह तुच्छवुद्धिवालों की भूल है कुछ मत विषे दोष नाहीं सो भी जैनमत का अतिशय इतना है कि प्रमाण विरुद्ध कोई कर सके नाहीं कहीं सूरीपुर विषे कहीं द्वारावती विषे नेमिनाथ स्वामी का जन्म लिखा है सो कहीं ही होय परन्तु नगर विषे जन्म होना प्रमाण है। नगर

विषे जन्म होना प्रमाण विरुद्ध नाहीं अब भी होता दीखे है अन्यमत विषे सर्व्वज्ञादिक
यथार्थज्ञानी के किये ग्रन्थ बतावे हैं और तिन विषे परस्पर विरोध भासे है कहीं तो बाल ब्रह्मचारी की
प्रशंसा करें कहीं कहें पुत्र बिना गति होय नाहीं सो दोनों सांचे कैसे होयें सो ऐसे कथन तहां
बहुत पाइये हैं बहुत प्रमाण विरुद्ध कथन तिन विषे पाइये हैं वीर्य मुख विषे पड़ते ही मछली के पुत्र हुवा
सो ऐसे अबार किसी के होता दीखे नाहीं अनुमान से मिले नाहीं सो ऐसे भी कथन बहुत पाइये हैं।
सो यहां सर्वज्ञादिक की भूल मानिये सो तो कैसे भूलें और विरुद्ध कथन मानने में आवें नाहीं
इसलिये तिन के मत विषे दोष ठहराइये हैं, ऐसा जान एक जिनमत ही का उपदेश ग्रहण करना
योग्य है तहां प्रथमानुयोगादिक का अभ्यास करना। तहां पहिले इस का अभ्यास करना पीछे इस
का करना ऐसा नियम नाहीं। अपने परिणामन की अवस्था देख जिस के अभ्यास से अपने धर्म
विषे प्रवृत्ति होय तिस ही का अभ्यास करना अथवा कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करे।
कदाचित् किसी शास्त्र का अभ्यास करे जैसे रोजनामचे विषे तो अनेक रकमें जहां तहां लिखी
हैं तिन को खाते ठीक खतावे तो लेने देने का निश्चय होय तैसे शास्त्र विषे तो अनेक प्रकार
का उपदेश जहां तहां दिया है। तिस को सम्यक् ज्ञान विषे यथार्थ प्रयोजन लिये पहिचाने तो हित
अहित का ठीक पड़े इसलिये स्याद्वाद की अपेक्षा लिये सम्यग्ज्ञान कर जो जीव वचनन विषे रमे
हैं सो जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त होय हैं मोक्षमार्ग विषे पहिले उपाय आगमज्ञान

कहा है आगम ज्ञान बिना और धर्म का साधन होय सकै नाहीं इसलिये तुम को भी यथार्थ बुद्धि कर आगम अभ्यास अवश्य करना इससे तुम्हारा सर्वथा कल्याण होगा ॥

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र विषे उपदेश स्वरूप का प्रतिपादिक नामा अष्टम अधिकार सम्पूर्ण भया ॥

॥ ॐनमः सिद्धेभ्यः ॥

॥ अब मोक्षमार्ग का स्वरूप कहिये है ॥

॥ दोहा ॥

शिव उपाय करते प्रथम, कारण मङ्गल रूप ।
बिघ्न विनाशक सुखकरन, नमो शुद्धशिव भूप ॥

पहिले मोक्षमार्ग के प्रतिपक्षी मिथ्या दर्शनादिक तिन का स्वरूप दिखाया तिन को तो दुःख रूप दुःख का कारण जान हेय मान तिन का त्याग करना और बीच में उपदेश का स्वरूप दिखाया सो

तिस को जान उपदेश को यथार्थ समझना अव मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिन का स्वरूप दिखाइये
है इन को सुख रूप सुख का कारण जान उपदेश मान इन को अङ्गीकार करना क्योंकि आत्मा
का हित मोक्ष ही है तिस ही का उपाय आत्मा को कर्त्तव्य है इसलिये इस ही का उपदेश यहां
दीजिये है। तहां आत्मा का हित मोक्ष ही है और नाहीं ऐसा निश्चय कैसे होय सो कहिये है आत्मा कै
नाना प्रकार गुण पर्याय रूप अवस्था पाइये हैं तिन विषे और कोई अवस्था होय कुछ आत्मा का
विगाड़ सुधार नाहीं। एक सुख दुःख रूप अवस्था से विगाड़ सुधार होय है सो यहां कुछ हेतु दृष्टान्त
चाहिये नाहीं प्रत्यक्ष ऐसे ही प्रतिभासे है लोक विषे जितने आत्मा हैं तिन कै एक उपाय यह
पाइये है कि दुःख न होय सुख ही होय और अन्य उपाय जितने करें हैं तितने सर्व एक इस ही प्रयोजन
लिये करे हैं दूसरा प्रयोजन कोई नाहीं है जिन के निमित्त से दुःख होता जानें तिन को दूर करने का उपाय
करें हैं और जिन के निमित्त से सुख होता जानें तिन के होने का उपाय करें हैं और संकोच विस्तार आदिक
अवस्था भी आत्मा कै होय है वा अनेक परद्रव्य का भी संयोग मिले परन्तु जिनकर सुख दुःख होता न
जाने तिन के दूर करने का वा होने का कुछ भी उपाय कोई करे नाहीं सो इस आत्मा द्रव्य का ऐसा
ही स्वभाव जानना और तो सर्व अवस्था को सह सके है एक दुःख को सह सकता नाहीं परवश दुःख
होय तो यह क्या करे तिस को भोगवे है परन्तु स्ववश पने होय तो किञ्चित् दुःख को भी न सहे
है और संकोच विस्तार अवस्था जैसी होय तैसी होय तिनको स्ववशपने भी भोगवै है सो स्वभाव विषे तर्क

नाहीं आत्मा का ऐसा ही स्वभाव जानना देखो दुःखी होय तब सोया चाहे यद्यपि सोवने में ज्ञानादिक मंद हो जाय हैं परन्तु जड़ सारिखा भी होयकर दुःखको दूर किया चाहेहै वा मूवा चाहे है यद्यपि मरने में अपनानाश माने है परन्तु अपना अस्तित्व भी खोय दुःख दूर किया चाहे है इसलिये एक दुःख रूप पर्याय का अभाव करना ही कर्त्तव्य है। और दुःख न होय सो ही सुख है क्योंकि आकुलता लक्षण लिये दुःख तिस का अभाव सोही निराकुल लक्षण लिये सुख है सो यह भी प्रत्यक्ष भासे है, बाह्य कोई सामग्री संयोग मिले जिस के अंतरंग विषे आकुलता है सो दुःखी ही है जिस कै आकुलता नाहीं सो सुखी है और आकुलता होय है सो रागादिक कषाय भाव भये होय है क्योंकि रागादिक भावन कर यह तो द्रव्यन को और भांति परिणमाया चाहे है और वह द्रव्य और भांति परिणमें तब इसके यह आकुलता होय है तहां कै तो आप कै रागादिक दूर होयें कै आप चाहे तैसे ही सर्व द्रव्य परिणमें तो आकुलता मिटे सो सर्व द्रव्य तो उस के आधीन नाहीं कदाचित् कोई द्रव्य जैसी इस की इच्छा होय तैसे ही परणमें तौभी इस की सर्वथा आकुलता दूर न होय है जो सर्व कार्य इस का चाहा ही होय और अन्यथा न होय तब यह निराकुल होय है सो यह तो होय ही सके नाहीं क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नाहीं है इसलिये अपने रागादिक भाव दूर भये निराकुलता होय है सो यह कार्य बन सके है क्योंकि रागादिक भाव आत्मा का स्वभाव भाव तो है नाहीं औपाधिक भाव है परनिमित्त से भये हैं सो निमित्त मोह कर्म का उदय है तिस के अभाव भये सर्व रागादिक विलय होजाय हैं तब

आकुलता के नाश भये दुःख दूर होय सुख की प्राप्ति होय है इसलिये मोह कर्म का नाश हितकारी है और तिस आकुलता का सहकारी कारण ज्ञानावरणादिक का उदय है ज्ञानावरणदर्शनावरण के उदय से ज्ञान दर्शन सम्पूर्ण नाहीं प्रगटे है इसलिये इस के देखने जानने की आकुलता होय है अथवा यथार्थ सम्पूर्ण वस्तु का स्वभाव न जानें तव रागादिक रूप होय प्रवर्त्ते है तहां आकुलता होय है और अंतराय के उदय से इच्छानुसार दानादिक कार्य न वने तव आकुलता होय है इन का उदय है सो मोह के उदय से सहकारी कारण है मोह के उदय का नाश भये इन का वल नाहीं अंतर्मुहूर्त्त काल कर आपो आप नाश को प्राप्त होय हैं। परन्तु सहकारण दूर होजाय तव प्रगट रूप निराकुल दशा भासे तहां केवल ज्ञानी भगवान् अनन्त सुख रूप दशा को प्राप्ति कहिये है और अघातिया कर्मन के उदय के निमित्त से शरीरादिक का संयोग होय है सो मोह कर्म के उदय होतें शरीरादिक संयोग आकुलता का वाह्य सहकारी कारण है अंतरंग मोह के उदय से रागादिक होय है और वाह्य अघाति कर्मन के उदय से रागादिक का कारण शरीरादिक का संयोग होय तव आकुलता उपजे है और मोह उदय का नाश भये भी अघाति कर्म का उदय रहे है सो कुछ भी आकुलता उपजाय सके नाहीं परन्तु पूर्व आकुलता का सहकारी कारण था, इसलिये अघाति कर्मन का भी नाश आत्मा को इष्ट ही है सो केवली के इन के होतें कुछ दुःख नाहीं है इसलिये इन के नाश का उद्यमी नाहीं परन्तु मोह के नाश भये कर्म आपे आप थोड़े ही काल में सर्व नाश को प्राप्त हो जाय हैं। ऐसे सर्व कर्म का नाश होना आत्मा के हित है

और सर्व कर्म के नाश ही का नाम मोक्ष है। इसलिये आत्मा का हित एक मोक्ष ही है और कुछ नाहीं ऐसा निश्चय करना। यहां कोई कहे संसार दशा विषे पुण्य कर्म के उदय होतें भी जीव सुखी होते देखिये हैं इसलिये केवल ज्ञान मोक्ष ही हित है ऐसा किस लिये कहा। —:(तिस का समाधान):—

संसार दशा विषे सुख का संभव तो सर्वथा है ही नाहीं दुःख ही है परन्तु किसी के कभी बहुत दुःख होय है किसी के कभी थोड़ा दुःख होय है सो पूर्व बहुत दुःख था वा अन्य जीवन के बहुत दुःख पाइये है तिस अपेक्षा थोड़े दुःख वालों को सुखी कहिये है और तिस ही अभिप्राय से थोड़े दुःख वाला आप को सुखी माने है परमार्थ से सुखी नाहीं और जो थोड़ा भी सुख सदा काल रहे तो उस को भी हित ठहराइये सो भी नाहीं थोड़े काल ही पुण्य का उदय रहे तहां थोड़ा दुःख होय है थोड़ी असाता होय तब वह आप को भी नीका मानें लोक भी कहें यह नीका है परन्तु परमार्थ से जब तक ज्वर का सद्भाव है तब तक नीका नाहीं है तैसे संसारी के मोह का उदय है तिस के कभी आकुलता बहुत होय है कभी थोड़ी होय है थोड़ी आकुलता होय तब वह आप को सुखी मानें है लोक भी कहें यह सुखी है परन्तु परमार्थ से जब तक मोह का सद्भाव है तब तक सुखी नाहीं है। और संसार दशा विषे भी आकुलता घटे सुख नाम पावे है आकुलता वधे दुःख नाम पावे है कुछ वाह्य सामग्री से सुख दुःख नाहीं है जैसे किसी दरिद्री के किंचित् धन की प्राप्ति भई कुछ आकुलता घटने से उस को सुखी कहिये है और वह भी आप को सुखी माने है और किसी बहुत धनवान् के किंचित् धन की हानि

भई तहां कुछ आकुलता बधने से उस को दुःखी कहिये और वह भी आप को दुःखी माने है ऐसे ही सर्वत्र जानना और आकुलता घटना वधना भी वाह्य सामग्री के अनुसार नाहीं कषाय भावन के घटने बधने के अनुसार है जैसे किसी कै थोड़ा धन है और उस कै सन्तोष है तो उस कै आकुलता थोड़ी है, और किसी कै बहुत धन है और उस के तृष्णा है तो उस कै आकुलता घनी होय है। और किसी ने किसी को बहुत बुरा कहा और उस कै थोड़ा क्रोध भया तो आकुलता भी थोड़ी होय है। और जो थोड़ीसी बात कहे क्रोध बहुत होय आवे तो उस कै आकुलता घनी होय है। और जैसे गऊ कै बछड़े से कुछ भी प्रयोजन नाहीं परन्तु मोह बहुत है इसलिये उस कै उस की रक्षा करने की बहुत आकुलता होय है। और सुभट कै शरीरादिक से घने कार्य सधे हैं परन्तु रण विषे मानादिक कर शरीरादिक से मोह घट जाय तब मरने से भी थोड़ी आकुलता होय है इसलिये ऐसा जानना। संसार अवस्था विषे भी आकुलता घटने बधने से ही सुख दुःख मानिये है। और आकुलता घटना बधना रागादिक कषाय घटने बधने के अनुसार है और परद्रव्यरूप वाह्य सामग्री के अनुसार सुख दुःख नाहीं कषाय से इस कै इच्छा उपजै है। और इस की इच्छानुसार वाह्य सामग्री मिले तब इस का कुछ कषाय उपशम होने से आकुलता घटे है तब सुख माने है और जो इच्छानुसार सामग्री न मिले तो तब कषाय बधने से आकुलता बधे है तब दुःख माने है सो है तो ऐसे और यह जाने मुझ को परद्रव्य के निमित्त से सुख दुःख होय है सो ऐसा जानना भ्रम है। इसलिये यहां ऐसा विचार करना योग्य है, कि संसार अवस्था

विषे जब किञ्चित् कषाय घटने से सुख मानिये है तिस को हित जानिये है जहां सर्वथा कषाय दूर भये वा
कषाय के कारण दूर भये तहां तो परम निराकुलता होने कर अनन्त सुख पाइये है ऐसी मोक्ष अवस्था
को कैसे हित न मानिये और संसार अवस्था विषे उच्चपद को पावे तौभी कै तो विषय सामग्री
मिलावने की आकुलता होय है के विषय सेवने की आकुलता होय है कै अपने और कोई क्रोधादिक
कषाय से इच्छा पूर्ण करने की आकुलता होय है कदाचित् सर्वथा निराकुलता होय सके नाहीं। अभि-
प्राय विषे तो अनेक प्रकार आकुलता बनी ही रहे है। और बाह्य कोई आकुलता मेटने के उपाय
करे सो प्रथम तो कार्य सिद्ध होय नाहीं। और जो भवतव्य योग्य से वह कार्य सिद्ध हो जाय
तो तत्काल और आकुलता मेटने के उपाय विषे लगे है ऐसे आकुलता मेटने की आकुलता निर-
न्तर रहा करे है और जो आकुलता न रहे है तो नये नये विषय सेवनादिक कार्यन विषे किसलिये
प्रवर्त्तें है इसलिये संसार अवस्था विषे पुण्य के उदय से जो इन्द्र अहमिन्द्रादिक पद को पावे तौभी निरा-
कुलता न होय है दुःखी ही रहे है इसलिये संसार अवस्था हितकारी नाहीं। और मोक्ष अवस्था विषे किसी
प्रकार की भी आकुलता रहे नाहीं इसलिये आकुलता मेटने का उपाय करने का भी प्रयोजन तहां
रहे नाहीं सदा काल शान्त रस कर सुखी ही रहे है। इसलिये मोक्ष अवस्था ही हितकारी है पूर्वे
भी संसार अवस्था का दुःख और मोक्ष अवस्था का सुख विशेष वर्णन किया है। सो इस ही प्रयोजन के
अर्थ किया है तिस को भी विचार मोक्ष को हित रूप जान मोक्ष का उपाय करना सर्व उपदेश का

तात्पर्य्य इतना ही है। —:(यहां प्रश्न):— जो मोक्ष का उपाय काललब्धि आये भवतव्य अनुसार बने है, कि मोहादिक का उपशमादिक भये बने है, कि अपने पुरुषार्थ से उद्यम किये बने है, सो कहो। जो पहिले दोय कारण मिले बने है तो हम को उपदेश किसलिये दीजिये है। और पुरुषार्थ से बने है तो उपदेश सर्व सुनें तिन विषे कोई उपाय कर सके कोई न कर सके सो कारण क्या है। —:(तिस का समाधान):— एक कार्य होने विषे अनेक कारण मिले हैं सो जब मोक्ष का उपाय बने है तब तहां पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिले हैं, और जो न बने है तो कोई कारण भी न मिले है। जो पूर्वोक्त तीन कारण कहे हैं तिन विषे काललब्धि वा होनहार तो कुछ वस्तु नहीं है जिस काल विषे कार्य बने सो ही काललब्धि है। और जो कार्य भया सो ही होनहार है और जो कर्म का उपशमादिक है सो पुद्गल की शक्ति है तिस का आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाहीं है और जो पुरुषार्थ से उद्यम करिये है सो यह आत्मा का कार्य है। इसलिये आत्मा को पुरुषार्थ कर उद्यम करने का उपदेश दीजिये है तहां यह आत्मा जिस कारण से कार्य सिद्धि अवश्य होय तिस कारण रूप उद्यम करे तहां तो अन्य अन्य कारण मिलें ही मिलें और कार्य की भी सिद्धि होय है और जिस कारण से कार्य सिद्धि होय अथवा नाहीं भी होय तिस कारण रूप उद्यम करे तहां अन्य कारण भी मिलें तो कार्य सिद्धि होय न मिलें तो न सिद्धि होय सो जिनमत विषे जो मोक्ष का उपाय कहा है तहां मोक्ष होय है। इसलिये जो जीव पुरुषार्थ कर जिनेश्वर के उपदेश अनुसार मोक्ष का उपाय करे है तिस के काल-

लब्धि वा होनहार भी भया और कर्म्म का उपशमादिक भया है तो यह ऐसा उपाय करे है इस लिये जो पुरुषार्थ कर मोक्ष का उपाय करे है तिस कै सर्व कारण मिले हैं ऐसा निश्चय करना और उस कै अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होय है। और जो जीव पुरुषार्थ कर मोक्ष का उपाय न करे है तिस कै काललब्धि होनहार भी नाहीं और कर्म का उपशमादिक न भया है तो यह उपाय न करे है इसलिये जो पुरुषार्थ कर मोक्ष का उपाय न करे है तिस कै कोई कारण मिले नाहीं ऐसा निश्चय करना और उस कै मोक्ष की प्राप्ति न होय है और तू कहे है उपदेश तो सर्व सुने हैं कोई मोक्ष का उपाय कर सके नाहीं कोई कर सके है सो कारण क्या है, सो कारण यह है, जो उपदेश सुन पुरुषार्थ करे है सो मोक्ष का उपाय कर सकै है। और जो पुरुषार्थ न करे है सो मोक्ष का उपाय न कर सके है उपदेश तो शिक्षा मात्र है फल जैसा पुरुषार्थ करे तैसा लगे है। —:(यहां प्रश्न):— जो द्रव्यलिङ्गी मुनि मोक्ष के अर्थ गृहस्थपनो छोड़ तपश्चरणादिक करे है तहां पुरुषार्थ तो किया परन्तु कार्य सिद्ध न भया। इस लिये पुरुषार्थ किये तो कुछ सिद्धि नाहीं। —:(तिस का समाधान):— अन्यथा पुरुषार्थ कर फल चाहे तो कैसे सिद्धि होय तपश्चरणादिक व्यवहार साधन विषे अनुरागी होय प्रवर्त्तै तो तिस का फल शास्त्र विषे तो शुभबन्ध कहा है और यह तिस से मोक्ष चाहे है तो कैसे होय यह तो भ्रम है। —:(यहां प्रश्न):— जो भ्रम का भी तो कारण कर्म ही है पुरुषार्थ क्या करे। —:(तिस का उत्तर):— सांचे उपदेश से निर्णय किये भ्रम दूर होय है सो ऐसा पुरुषार्थ न करे है जिस से भ्रम दूर होय जो

निर्णय करने का पुरुषार्थ करे तो भ्रम का कारण जो मोह कर्म तिस का भी उपशमादिक होय तब भ्रम दूर होजाय है। क्योंकि निर्णय करने से परिणामन की विशुद्धता होय है तिस से मोह की स्थिति अनुभाग घटे है। —:(यहां प्रश्न):— जो निर्णय करने विषे उपयोग न लगावे है तिस का भी तो कारण कर्म है। —:(तिस का समाधान):— एकेन्द्रियादिक कै विचार करने की शक्ति नाहीं तिन कै तो कर्म ही का कारण है इस कै तो ज्ञानावरणादिक के क्षयोपशम से निर्णय करने की शक्ति प्रगट भई है, जहां उपयोग लगावे तिस ही का निर्णय होय सकै है। यहां अन्य निर्णय करने विषे उपयोग लगावै है यहां उपयोग न लगावे है सो यह तो इस ही का दोष है कर्म का तो कुछ प्रयोजन नहीं। —:(यहां प्रश्न):— सम्यक् चारित्र का घातक तो मोह है तिस के अभाव भये विना मोक्ष का उपाव कैसे बने। —:(तिस का उत्तर):— तत्व निर्णय करने विषे जो उपयोग को न लगावे सो यह तो इस ही का दोष है। और जो पुरुषार्थ कर तत्व निर्णय विषे उपयोग लगावे तो तब स्वयमेव ही मोह के अभाव भये सम्यक्तादि रूप मोक्ष का उपाय (कारण) पुरुषार्थ बने है सो मुख्यपने तत्व निर्णय विषे उपयोग लगावने का पुरुषार्थ करना, और जो उपदेश दीजिये है सो इस ही पुरुषार्थ करावने के अर्थ दीजिये है और इस पुरुषार्थ से मोक्ष के पुरुषार्थ का उपाय आप ही से सिद्ध होगा, और तत्व निर्णय करने विषे कोई कर्म का दोष है नाहीं तेरा ही दोष है। और तू आप तो महन्त रहा चाहे और अपना दोष कर्मादिक को लगावे है सो जिन आज्ञा मानें तो ऐसी अनीति

सम्भवे नाहीं तुझ को विषय कषाय रूप ही रहना है इसलिये झूठ बोले है जो मोक्ष का सांचा अभिप्राय होय तो ऐसी युक्ति किसलिये बनावे, संसारी कार्यन विषे जो अपना पुरुषार्थ सिद्ध न होता जाने तौभी पुरुषार्थ कर उद्यम किया करे है। यहां पुरुषार्थ खोय बैठे सो जानिये है, कि मोक्ष को देखा देखी उत्कृष्ट कहे है उस का स्वरूप पहिचान तिस को हित रूप जान तिस का उद्यम बने सो न करे सो यह असम्भव है। —:(यहां प्रश्न):— जो तुम ने कहा है सो तो सत्य है परन्तु द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म्म होय है भावकर्म से द्रव्यकर्म्म का बन्ध होय है और तिस के उदय से भावकर्म्म होय है ऐसे ही अनादि से परम्परा है मोक्ष का उपाय कैसे होय सके —:(तिस का समाधान):— कर्मबन्ध वा उदय सदाकाल समान ही हुआ करे तो ऐसे ही होय परन्तु परिणामन के निमित्त से पूर्वबन्ध कर्म का भी उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमणादिक होतें तिन की शक्ति हीन अधिक होय है। कर्म उदय के निमित्त कर इसलिये तिन का उदय भी मन्द तीव्र होय है। तिन के निमित्त से नवीन बन्ध भी मन्द तीव्र होय है। इसलिये संसारी जीवन कै कभी ज्ञानादिक घने प्रगट होय हैं, कभी थोड़े प्रगट होय हैं कभी रागादिक मन्द होय हैं कभी तीव्र होय हैं ऐसे ही पलटना हुआ करे है कदाचित् तहां संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय पावे तब मन कर विचार करने की शक्ति होय है। और कभी तीव्र रागादिक होय कभी मन्द होय तहां रागादिक का तीव्र उदय होतें तो विषय कषायादिक के कार्यन विषे ही प्रवृत्ति होय है। और जो रागादिक का मन्द उदय होय तब बाह्य उपदेशादिक

का निमित्त बने और आप पुरुषार्थ कर तिन उपदेशादिक विषे उपयोग को लगावे तो धर्म कार्य
विषे प्रवृत्ति होय है। और निमित्त बने वा आप पुरुषार्थ करे तो अन्य कार्यन विषे ही प्रवर्त्तें परन्तु
मन्द रागादिक लिये प्रवर्त्तें इस अवसर विषे उपदेश कार्यकारी है विचार शक्ति रहित एकेन्द्रिया-
दिक तिन कै तो उपदेश समझने का ज्ञान ही नाहीं और तीव्र रागादिक सहित जीवन का
उपदेश विषे उपयोग लगे नाहीं इसलिये जो जीव विचार शक्ति सहित होयें और तिन कै रागादिक
मन्द होयें तिन कै उपदेश के निमित्त से धर्म कार्य होजाय तो तिन का भला होय और इस ही
अवसर विषे पुरुषार्थ कार्यकारी है, एकेन्द्रियादिक तो धर्म कार्य करने में सामर्थ्य नाहीं वाह्य कैसे
पुरुषार्थ करें तीव्र कषायी पुरुषार्थ करे सो पाप ही को करै धर्म कार्य का पुरुषार्थ होय सके नाहीं।
इसलिये विचार शक्ति सहित होय और जिन कै रागादिक मन्द होय सो जीव पुरुषार्थ कर उपदेशादिक
के निमित्त से तत्व निर्णयादिक विषे उपयोग लगावें तो उन का उपयोग तहां लगे है, तब उन का भला
होय है, जो इस अवसर विषे भी तत्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करें तो प्रमाद से काल गमावें, या तो
मन्द रागादिक लिये विषय कषायन के कार्यन विषे प्रवर्त्तें, या व्यवहार धर्म्म कार्य्यन विषे प्रवर्त्तें सो इस
अवसर से जाते रहे हैं संसार ही विषे भ्रमण करे हैं, और इस अवसर विषे जो जीव पुरुषार्थ कर तत्व
निर्णय करने विषे उपयोग लगावने का अभ्यास राखें तो तिन कै शुद्धता बधे है तिस कर कर्मन की शक्ति
हीन होय है, कितनेक काल विषे आप ही आप दर्शन मोह का उपशम होय है, तब इन कै तत्त्वन

की यथावत् प्रतीति आवे है, सो इसकै तो कर्त्तव्य तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है, इसलिये दर्शन मोह का उपशम तो स्वयमेव ही होय है, इस में कर्म का कर्त्तव्य कुछ नहीं है, और तिस के होते सन्ते जीव कै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय है, और सम्यग्दर्शन होतैं श्रद्धान तो यह भया मैं तो आत्मा हूं मुझ को रागादिक न करने परन्तु चारित्र मोह के उदय से रागादिक होय हैं तहां तीव्र उदय होय तब तो विषयादिक विषे प्रवर्त्तै है, और जब मंद उदय होय तब अपने पुरुषार्थ से धर्म कार्यन विषे वा वैरागादिक भावना विषे उपयोग को लगावे है। तिस के निमित्त से राग मंद होता जाय है ऐसे होतैं देशचारित्र वा सकलचारित्र अङ्गीकार करने का पुरुषार्थ प्रगट होय है और चारित्र को धार अपना पुरुषार्थ कर धर्म विषे परणति को बधावै है, तहां विशुद्धता कर कर्म की हीन शक्ति होय है इसलिये विशुद्धता बधे है। तिस कर अधिक कर्म की शक्ति हीन होय है। ऐसे क्रम से मोह का नाश होय है, तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होय हैं तिन कर ज्ञानावर्णादिक का नाश होय है, तब सर्वथा परिणाम विशुद्धि होय केवल ज्ञान प्रगट होय है, तिस पीछे विना उपाय किये ही अघाति कर्म का नाश कर सिद्ध पदको पावै है, ऐसे उपदेश का तो निमित्त बने और अपना पुरुषार्थ करे तो कर्म का नाश होय है, और जब कर्म का उदय तीव्र होय तब पुरुषार्थ न होय सके है, ऊपरले स्थान से भी गिर जाय है, तहां तो जैसा होनहार होय तैसा होय है परन्तु जहां मंद उदय होय और पुरुषार्थ होय सके तहां तो प्रमादी न होना सावधान होय अपना कार्य करना, जैसे कोई पुरुष नदी के प्रवाह विषे पड़ा वहे है, तहां पानी का जोर होय तब उस का पुरुषार्थ

कुछ नाहीं उपदेश भी कार्यकारी नाहीं और पानी का जोर थोड़ा होय तब पुरुषार्थ कर निकस आवे
तिस ही को निकसने की शिक्षा दीजिये है, और न निकसे तो धीरे २ बहे पीछे पानी का जोर भये वहा
चला जाय है, तैसे ही यह जीव संसार विषे भ्रमे है तहां कर्मन का तीव्र उदय होय तब तो उस का पुरुषार्थ
कुछ नाहीं उपदेश भी कार्यकारी नाहीं और जब कर्म्म का मंद उदय होय तब पुरुषार्थ कर मोक्षमार्ग विषे
प्रवर्त्तै तो मोक्ष पावै तिस ही को मोक्षमार्ग का उपदेश दीजिये है, और जो मोक्षमार्ग विषे न प्रवर्त्तै तो किंचित्
शुद्धता पाय पीछे फिर तीव्र उदय आए निगोदादिक पर्याय को पावे इसलिये अवश्य चूकना योग्य नाहीं अब
सर्व प्रकार अवसर आया है ऐसा अवसर पावना कठिन है इसलिये श्री गुरु दयाल होय मोक्षमार्ग
का उपदेश दे हैं तिस विषे भव्य जीवन को प्रवृत्ति करनी ही योग्य है ॥

अब मोक्षमार्ग का स्वरूप कहिये है ।

जिन के निमित्त से आत्मा अशुद्ध दशा को धार दुःखी भया ऐसे जो मोहादिक कर्म तिन का
सर्वथा नाश होने से केवल आत्मा की सर्व प्रकार जो शुद्ध अवस्था का होना सो मोक्ष है, तिस का जो उपाय
कारण सो मोक्षमार्ग जानना सो कारण तो अनेक प्रकार होय हैं, कोई कारण तो ऐसा है कि जिस के
भये बिना कार्य न होय है, और जिस के भये कार्य होय वा न होय, जैसे मुनिलिंग धारे बिना तो मोक्ष न
होय है, और मुनिलिंग धारे मोक्ष होय और नाहीं भी होय। और कोई कारण ऐसा है, मुख्यपने तो जिस

के भये कार्य होय और किसी कै बिना कारण भये भी कार्य सिद्ध होय जैसे अनशनादिक बाह्य तप का साधन किये मुख्यपने मोक्ष पाइये है, भरतादिक कै बाह्य तप किये बिना ही मोक्ष प्राप्ति भई और कोई कारण ऐसा है जिस के भये कार्य सिद्ध होय ही होय और जिस के न भये कार्य सिद्ध सर्वथा न होय जैसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता भये तो मोक्ष होय ही होय तिस के न भये सर्वथा मोक्ष न होय, ऐसे यह कारण कहे, तिन विषे अतिशय कर नियम से जो मोक्ष का साधक जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का एकीभाव सो मोक्षमार्ग जानना, इन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रन में से एक भी न होय तो मोक्ष न होय। सूत्र विषे ऐसा कहा है :--

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

अर्थ---सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र मोक्ष का मार्ग है ॥

भावार्थ--यह तीनों मिले ही एक मोक्षमार्ग है जुदे २ तीन मार्ग नाहीं हैं --:(यहां प्रश्न):-- जो असंयत सम्यग्दृष्टि कै तो चारित्र नाहीं उस के मोक्षमार्ग भया है कि न भया है। --:(तिस का समाधान):-- मोक्षमार्ग इस के होगा यह तो नियम भया इसलिये उपचार से इस के मोक्षमार्ग भया भी कहिये, परमार्थ से सम्यक्चारित्र भये ही मोक्षमार्ग होय है जैसे किसी पुरुष कै किसी नगर को चलने का निश्चय भया इसलिये उस को व्यवहार से ऐसा भी कहिये यह तिस नगर को चला है परमार्थ से मार्ग

विषे गमन किये ही चलना होगा तैसे असंयत सम्यग्दृष्टि कै वीतराग भाव रूप मोक्षमार्ग का श्रद्धान भया है, इसलिये उस को उपचार से मोक्षमार्गी कहिये है, परमार्थ से वीतराग भाव रूप परणमें ही मोक्षमार्ग होगा और प्रवचनसार विषे भी तीनों की एकाग्रता भये ही मोक्षमार्ग कहा है इसलिये यह जानना कि तत्व श्रद्धान ज्ञान से भी मोक्षमार्ग नाहीं तीनों मिले साक्षात् मोक्षमार्ग होय है अब इन का निर्देश और लक्षण निर्देश और परीक्षा द्वारा कर निरूपण कीजिये है। तहां सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग है, ऐसा नाम मात्र कथन सो तो निर्देश जानना और अतिव्याप्ति अव्याप्ति और असंभव कर रहित होय और जिस कर इन को पहिचानिये सो लक्षण जानना तिस का जो निर्देश कहिये निरूपण सो लक्षणनिर्देश जानना। तहां जिस को पहिचानना होय तिस का नाम लक्ष्य है उस बिना और का नाम अलक्ष्य है, सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोनों विषे पाइये ऐसा लक्षण जहां कहिये तहां अतिव्याप्तिपना जानना जैसे आत्मा का लक्षण अमूर्त्तत्व कहा सो अमूर्त्तत्व लक्षण है सो लक्ष्य जो है आत्मा तिस विषे भी पाइये है और अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिन विषे भी पाइये है इस लिये यह अतिव्याप्ति लक्षण है जिस कर आत्मा पहिचाने आकाशादिक भी आत्मा हो जाय यह दोष लगे है, और जो कोई लक्षण किसी लक्ष्य विषे तो होय और किसी विषे न होय ऐसा लक्षण एक देश विषे पाइये सो ऐसा लक्षण जहां कहीं पाइये तहां अव्याप्तिपना जानना जैसे आत्मा का लक्षण केवल ज्ञानादिक कहे सो केवल ज्ञान किसी आत्मा विषे तो पाइये किसी विषे न पाइये इसलिये यह अव्याप्ति लक्षण है या कहीं आत्मा पहिचाने तो

स्तोक ज्ञानी आत्मा न होय यह दोष लगे और जो लक्ष्य विषे पाइये ही नाहीं ऐसा लक्षण जहां कहिये तहां असंभवपना जानना। जैसे आत्मा का लक्षण जड़पना कहिये सो प्रत्यक्षादिक प्रमाण कर यह विरुद्ध है क्योंकि यह असंभव लक्षण है ऐसे कहे जो आत्मा माने तो पुद्गलादिक आत्मा हो जाय और आत्मा है सो अनात्मा हो जाय यह दोष लगे है ऐसे अतिव्याप्ति अव्याप्ति असंभव लक्षण होय सो लक्षणाभास है और लक्षण है सो लक्ष्य विषे तो सर्वत्र पाइये और अलक्ष्य विषे कहीं न पाइये, सो सांचा लक्षण है जैसे आत्मा का स्वरूप चैतन्य है सो यह लक्षण सर्व ही आत्मा विषे तो पाइये अनात्मा विषे कहीं न पाइये है इसलिये यह सांचा लक्षण है तिस कर आत्मा माने आत्मा का यथार्थ ज्ञान होय है कुछ दोष लगे नाहीं ऐसा लक्षण का स्वरूप उदाहरणमात्र कहा है। अब सम्यग्दर्शन का सांचा लक्षण कहिये है। जो विपरीताभिनिवेशरहित जीवादि तत्वार्थ श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन का लक्षण है जीव १, अजीव २, आस्रव ३, बन्ध ४, संवर ५, निर्ज्जरा ६, मोक्ष ७, ये सात तत्त्व हैं इन का जो श्रद्धान कि यह ऐसे ही है अन्यथा नाहीं ऐसा प्रतीतिभाव सो तत्त्वार्थ श्रद्धान है और विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय उसकर रहित सो सम्यग्दर्शन है यहां विपरीताभिनिवेश का निराकरण के अर्थ सम्यक् पद कहा है क्योंकि सम्यक् ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धान विषे विपरीताभिनिवेश का अभाव भये ही प्रसंशा संभवे है ऐसा जानना।

—: (यहां प्रश्न) :— तत्त्व अर्थ यह दोदोय पद कहे हैं तिनका प्रयोजन क्या है। —: (तिसका समाधान) :— तत् शब्द है सो यत् शब्द की अपेक्षा लिये है इसलिये जिसका प्रकरण होय सो तत् कहिये तिसका जो

भाव कहिये स्वरूप सो तो तत्त्व जानना क्योंकि तस्य भावस्तत्त्वम् ऐसा तत्त्व शब्द का समास होय है और जो जानने में आवै ऐसा द्रव्य वा गुण पर्याय तिसका नाम अर्थ है ॥

"तत्त्वेन अर्थस्तत्त्वार्थः"

तत्त्व कहिये अपना स्वरूप तिस का पदार्थ तिन का श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है यहां जो तत्त्व श्रद्धान ही कहते तो जिस का यह भाव है तिस का श्रद्धान बिना केवल भाव ही का श्रद्धान कार्यकारी नाहीं और जो अर्थ श्रद्धान ही का है तो भाव का श्रद्धान बिना पदार्थ का श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। जैसे किसी के ज्ञानदर्शनादिक वा वर्णादिक का तो श्रद्धान होय यह जानपना है। यह श्वेत वर्ण है इत्यादि प्रतीत होय परन्तु ज्ञानदर्शन आत्माका स्वभाव है। मैं आत्मा हूं और वर्णादिक पुद्गल का स्वभाव है पुद्गल मेरे से भिन्न पर पदार्थ है। ऐसा पदार्थ का श्रद्धान न होय तो भाव का श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। और जैसे मैं आत्मा हूं ऐसा श्रद्धान किया परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान न किया तो भाव के श्रद्धान बिना पदार्थ का श्रद्धान भी कार्यकारी नाहीं इसलिये तत्त्व कर अर्थ का श्रद्धान होय है। सोई कार्यकारी है। अथवा जीवादिक को तत्त्व संज्ञा भी है और अर्थ संज्ञा भी है ॥

"यथा तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः"

जो तत्त्व सोई अर्थ तिस का श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थ कर तत्त्व श्रद्धान को सम्य-

ग्दर्शन कहे हैं वा कहीं पदार्थ श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहे हैं तहां विरोध न जानना। ऐसा तत्त्व और अर्थ दोय पद कहने का प्रयोजन है —:(यहां प्रश्न):— जो तत्त्वार्थ तो अनन्ते हैं सो सामान्य अपेक्षा कर जीव अजीव विषे सर्व गर्भित हैं इसलिये दोय ही कहने थे या अनन्त कहने थे। आस्रवादिक तो जीव अजीव ही के विशेष हैं इन ही को जुदा जुदा कहने का प्रयोजन क्या है? —:(तिसका समाधान):— जो यहां पदार्थ श्रद्धान करने ही का प्रयोजन होता तो सामान्य कर वा विशेष कर जैसे सर्व पदार्थन का जानना होय तैसे ही कथन करते सो तो यहां प्रयोजन नाहीं। यहां तो मोक्ष का प्रयोजन है सो जिन सामान्य वा विशेष भावन का श्रद्धान किये मोक्ष होय, और जिनका श्रद्धान किये विना मोक्ष न होय तिन ही का यहां निरूपण किया सो जीव अजीव यह दोय तो बहुत द्रव्यन की एक जाति अपेक्षा सामान्य रूप तत्त्व कहे हैं सो यह दोय जाति जाने जीव कौं आपा पर का श्रद्धान होय तब पर से भिन्न आप को जाने अपने हित के अर्थ मोक्ष का उपाय करे। और आप से भिन्न पर को जाने तब पर द्रव्य से उदासीन होय रागादिक त्याग मोक्षमार्ग विषे प्रवर्त्ते इसलिये यह दोनों जाति का श्रद्धान भये ही मोक्ष होय है। और दोय जाति जाने विना आपा पर का श्रद्धान न होय तब पर्यायबुद्धि से संसारी प्रयोजन ही का उपाय करे। परद्रव्य विषे राग द्वेष रूप होय प्रवर्त्ते तब मोक्षमार्ग विषे कैसे प्रवर्त्ते, इसलिये इन दोय जातिन का श्रद्धान न भये मोक्ष न होय ऐसे यह दोय तो सामान्य तत्त्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य हैं और आस्रवादि पांच कहे सो जीव पुद्गल के पर्याय हैं इसलिये यह विशेष रूप तत्त्व हैं। सो

इन पांच पर्यायन को जाने मोक्षका उपाय करने का श्रद्धान होय है तहां मोक्ष को पहिचाने तो तिस को हित मान तिसका उपाय करै इसलिये मोक्ष का उपाय संवर निर्ज्जरा है। सो इनको पहिचाने तो जैसे संवर निर्ज्जरा होय तैसे प्रवर्त्तै। इसलिये संवर निर्ज्जरा का श्रद्धान करना और संवर निर्ज्जरा तो अभावलक्षण लिये हैं। सो जिनका अभाव किया चाहिये तिन को पहिचानना चाहिये। जैसे क्रोध के अभाव भये क्षमा होय सो क्रोध को पहिचाने तो तिस का अभाव कर क्षमा रूप प्रवर्तै। तैसे आश्रव का अभाव भये संवर होय और बन्धका एकदेश अभाव भये निर्ज्जरा होय सो आश्रवबन्ध को पहिचाने तो तिन का नाश कर संवर निर्ज्जरा रूप प्रवर्त्तै। इसलिये आश्रवबन्ध का श्रद्धान करना ऐसे इन पांच पर्यायन का श्रद्धान भये ही मोक्षमार्ग होय इनको पहिचाने तो मोक्ष को पहिचाने इनको न पहिचाने तो मोक्ष की पहिचान बिना तिसका उपाय कैसे करै। संवर निर्ज्जरा की पहिचान बिना तिन विषे कैसे प्रवर्त्तै। आश्रवबन्ध की पहिचान बिना तिनका नाश कैसे करै ऐसे इन पांच पर्यायन का श्रद्धान भये मोक्षमार्ग होय है इस प्रकार यद्यपि तत्त्वार्थ अनन्ते हैं तिनका सामान्य विशेष कर अनेक प्रकार प्ररूपण होय है परन्तु यहां एक मोक्षमार्ग का प्रयोजन है, इसलिये दोय तो जाति अपेक्षा सामान्य तत्त्व और पांच पर्याय रूप विशेष तत्त्व मिलाय सात ही तत्त्व कहे हैं इनके यथार्थ श्रद्धान के आधीन मोक्षमार्ग है इन बिना औरन का श्रद्धान होय वा न होय वा अन्यथा श्रद्धान होय किसी के आधीन मोक्षमार्ग नाहीं ऐसा जानना। और कहीं पाप पुण्य सहित नव पदार्थ कहे हैं। सो पुण्य पाप आश्रवादिक के

ही विशेष हैं इसलिये सात तत्त्व विषे गर्भित भये अथवा पाप पुण्य का श्रद्धान भये
पुण्य को मोक्षमार्ग न माने वा स्वच्छन्द होय पाप रूप न प्रवर्त्तैं इसलिये मोक्षमार्ग विषे इनका श्रद्धान भी
उपकारी जान दोय तत्त्व विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे । वा समयसारादिक विषे इनको नव तत्त्व भी
कहे हैं। —:(यहां प्रश्न):— इनका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहा सो दर्शन तो सामान्य अवलोकन
मात्र है और श्रद्धान प्रतीति मात्र है इनकै एकार्थपना कैसे संभवै —:(तिसका उत्तर):— प्रकरण के वश
से धातु का अर्थ अन्यथा होय है सो यहां प्रकरण मोक्षमार्ग का है तिस विषे दर्शन शब्द का अर्थसामान्य
अवलोकन है सो सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि कै समान होय है। इसलिये यहां दर्शन शब्द का अर्थ सामान्य
अवलोकन मात्र ग्रहण न करना क्योंकि चक्षु अचक्षु दर्शन कर सामान्य अवलोकन सम्यग्दृष्टि
मिथ्यादृष्टि कै समान होय है कुछ इस कर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होती नाहीं। और श्रद्धान होय है सो
सम्यग्दृष्टि कै होय है इस कर मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति होय है इसलिये दर्शन शब्द का अर्थ भी यहां
श्रद्धान मात्र ही ग्रहण करना। —:(यहां प्रश्न):— यहां विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान करना
कहा सो प्रयोजन क्या है। —:(तिस का समाधान):— अभिनिवेश नाम अभिप्राय का है।
सो जैसा तत्त्वार्थ श्रद्धान का अभिप्राय है तैसा न होय अन्यथा अभिप्राय होय तिसका नाम विपरीता
भिनिवेश है। सो तत्त्वार्थ श्रद्धान करने का नाम अभिप्राय है केवल तिनका निश्चय करण मात्र भी
नाहीं है। तहां अभिप्राय ऐसा है जीव अजीव को पहिचान आप को वा परको जैसा का तैसा मानें

और आश्रव को पहिचान तिसको हेय माने और बन्ध को पहिचान तिस को अहित माने। और संवर को पहिचान तिसको उपादेय माने। और निर्ज्जरा को पहिचान तिस को हित कारण माने। और मोक्षको पहिचान तिसको अपना परमहित माने ऐसे तत्त्वार्थ श्रद्धान का अभिप्राय है। तिस से उलटे अभिप्राय का नाम विपरीताभिनिवेश है सो सांचा श्रद्धान भये तिसका अभाव होय है इसलिये जो तत्त्वार्थ श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेश रहित है। ऐसा यहां कहा है अथवा किसी के अभ्यासमात्र तत्त्वार्थश्रद्धान होय है परन्तु अभिप्राय विषे विपरीतपना नाहीं छूटे है किसी प्रकार कर पूर्वोक्त अभिप्राय से अन्यथा अभिप्राय अन्तरङ्ग विषे पाईये है तो उसके सम्यग्दर्शन न होय है, जैसे द्रव्यलिङ्गी मुनि जिनवचन से तत्त्वन की प्रतीति करे है परन्तु शरीराश्रित क्रियान विषे अहंकार वा पुण्याश्रव विषे उपादेयपनो इत्यादिक विपरीत अभिप्राय से मिथ्यादृष्टि रहे है। इसलिये जिस के तत्त्वार्थ श्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है तिस ही के सम्यग्दर्शन है ऐसे विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्त्वन का श्रद्धानपना सो सम्यग्दर्शन का लक्षण है सम्यग्दर्शन लक्ष्य है सो तत्त्वार्थसूत्र विषे कहा है॥

"तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"

तत्त्वार्थन का श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है और सर्वार्थ सिद्ध नामा सूत्र की टीका है। तिस विषे तत्त्वादिक पदनका अर्थ प्रगट लिखा है। वा सात ही तत्त्व कैसे कहे सो प्रयोजन लिखा है तिसके अनुसार ही कुछ कथन किया है ऐसा जानना। और पुरुषार्थसिद्धोपाय विषे ऐसे ही कहा है॥

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत् ॥

अर्थ–विपरीताभिनिवेश रहित जीव अजीव आदि तत्त्वार्थन का श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है सो यह श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है। दर्शन मोह उपाधी दूर भये प्रगट होय है इसलिये आत्मा का स्वभाव है। चतुर्थादिक गुण स्थान विषे प्रगट होय है पीछे सिद्ध अवस्था विषे भी सदाकाल इसका सद्भाव रहे है ऐसा जानना। यहां प्रश्न उपजे है। जो तिर्यंचादिक तुच्छ ज्ञानी कई जीव सात तत्त्व का नाम भी न जान सकें तिनकै भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति शास्त्र विषे कही है इसलिये तत्त्वार्थ श्रद्धानपना तुम सम्यक्त का लक्षण कहा तिस विषे अव्याप्ति दूषण लगे है —: (तिसका समाधान) :— जीव अजीव का नामादिक जानो वा मत जानो वा अन्यथा जानो उनका स्वरूप यथार्थ पहिचान श्रद्धान किये सम्यक्त होय है। तहां कोई सामान्यपने स्वरूप पहिचान श्रद्धान करे कोई विशेषपने पहिचान श्रद्धान करे इसलिये तुच्छ ज्ञानी तीर्यंचादिक सम्यग्दृष्टि हैं सो जीवादिक का नाम भी न जाने हैं तथापि उनका सामान्यपने स्वरूप पहिचान श्रद्धान करे हैं इसलिये उनको सम्यक्त की प्राप्ति होय है। जैसे कोई तिर्यंच अपना वा औरन का नामादिक तो नाहीं जाने और परन्तु आप ही विषे आपा माने है। औरन को पर माने है तैसे तुच्छज्ञानी जीव अजीव का नाम न जाने परन्तु जो ज्ञानादिक स्वरूप आत्मा है

तिस विषे आपा माने है। और जो शरीरादिक तिन को पर माने है ऐसा श्रद्धान उसकै होय है, सोई जीव अजीव का श्रद्धान है, जैसे वह तिर्य्यंच सुखादिक का नामादिक न जाने है। तथापि सुख अवस्था को पहिचान तिसके अर्थ आगामि दुःख के कारण को पहिचान तिस के त्याग को किया चाहता है और जो दुःख का कारण बन रहा है तिस के अभाव का उपाय करे है तैसे तुच्छज्ञानी मोक्षादिक का नाम न जाने है तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्ष अवस्था को श्रद्धान करता तिस के अर्थ आगामि बंध का कारण जो रागादिक आश्रव तिस को त्याग संवर को किया चाहे है। और संसार दुःख का कारण है तिस को शुद्धभाव कर निर्ज्जरा किया चाहे है ऐसे आश्रवादिक का उस कै श्रद्धान है इस प्रकार उस के भी सप्त तत्त्वन का श्रद्धान पाइये है। जो ऐसा श्रद्धान न होय तो रागादिक को त्याग कर शुद्धभाव करने की चाह न होय सोई कहिये है जो जीव अजीव की जाति जानें आपा पर को पहिचाने तो पर विषे रागादिक को न करे और रागादिक को न पहिचाने तो तिन का त्याग कैसे किया चाहे सो रागादिक ही आश्रव हैं रागादिक का फल बुरा न जाने तो किसलिये रागादिक को छोड़ना चाहे जो रागादिक का फल सोई बंध है और रागादिक रहित परिणाम को पहिचाने है तो तिस रूप हुआ चाहे है सो रागादिक रहित परिणाम का ही नाम संवर है और पूर्व संसार अवस्था के कारण की हानि को पहिचाने है तो तिस के अर्थ तपश्चरणादिक कर शुद्धभाव किया चाहे है। सो पूर्व संसार अवस्था का कारण कर्म्म है जो तिस की हानि सोई निर्ज्जरा है। और संसार अवस्था के अभाव को न पहिचाने

तो सम्बर निर्जरा रूप किस लिये प्रवर्त्तें जो संसार अवस्था का अभाव सो ही मोक्षहै। इसलिये सातों तत्त्वन का श्रद्धान भये ही रागादिक छोड़ शुद्धभाव होने की इच्छा उपजे है, यदि इन विषे एक भी तत्त्व का श्रद्धान न होय तो ऐसी चाह न उपजे और ऐसी चाह तुच्छ ज्ञानी तीर्यंचादिक सम्यग्दृष्टि के होय ही है, इस लिये उस के सप्त तत्त्वन का श्रद्धान पाइये है ऐसा निश्चय करना ज्ञानावरण का क्षयोपशम थोड़ा होतें विशेषपने तत्त्वन का ज्ञान न होय तथापि दर्शन मोह के उपशमादिक से सामान्यपने तत्त्वश्रद्धान की शक्ति प्रगट होय है ऐसे इस लक्षण विषे अव्याप्ति दूषण नाहीं है। —:(यहां प्रश्न):— जो जिस काल विषे सम्यग्दृष्टि विषय कषायन के कार्यन विषे प्रवर्त्ते है तिस काल विषे सप्त तत्त्वन का विचार नाहीं तहां श्रद्धान कैसे संभवै। और सम्यक्त्व रहे ही है इसलिये तिस लक्षण विषे अव्याप्ति दूषण आवे है। —:(तिस का समाधान):— विचार है सो तो उपयोग के आधीन है जहां उपयोग लगे तिस ही का विचार है और श्रद्धान है सो प्रतीति रूप है। इसलिये अन्य ज्ञेय का विचार होतें वा सोवने आदि क्रिया होतें भी तत्त्वन का विचार नाहीं तथापि तिन की प्रतीति बनी रहे है नष्ट न होय है। इसलिये उसके सम्यक्त्व का सद्भाव है।' जैसे कोई रोगी मनुष्य के ऐसी प्रतीति है मैं मनुष्य हूं तिर्यंचादिक नाहीं हूं मेरे इस कारण से रोग भया है सो अब कारण मेट रोग को घटावना नीरोग होना और वही मनुष्य अन्य विचारादिक रूप प्रवर्त्ते है तब उसका ऐसा विचार न होय है। परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रहा करे है तैसे इस

आत्मा कै ऐसी प्रतीति है कि मैं आत्मा हूं पुद्गलादिक नाहीं हूं मेरे आश्रव से बन्ध भया है। सो अब
सम्बर कर निर्ज्जरा कर मोक्ष रूप होना। और सोही आत्मा अन्य विचार रूप प्रवर्त्तै है उस के
ऐसा विचार न होय है, परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रहा करे है। —:(यहां प्रश्न):— जो ऐसा
श्रद्धान रहे तो बन्ध होने के कारणों विषे कैसे प्रवर्त्तै है। —:(तिस का उत्तर):— जैसे कोई
मनुष्य किसी कारण के वश से रोग बन्धन के कारणों विषे भी प्रवर्त्तै है व्यापारादिक कार्य वा क्रोधा-
दिक कार्य करे है तथापि तिस श्रद्धान का उस कै नाश न होय है। तैसे सोई आत्मा कर्म उदय के
निमित्त के वश से बन्ध होने के कारण विषे भी प्रवर्त्तै है विषय सेवनादिक कार्य को क्रोधादिक कार्य
करे है तथापि श्रद्धान का उसकै नाश न होय है इसका विशेष निर्णय आगे करेंगे। ऐसे सप्त तत्त्वन
का विचार न होतैं भी श्रद्धान का सद्भाव पाइये है। इसलिये तहां अव्याप्तिपना नाहीं होय है।
—:(यहां प्रश्न):— ऊंची दशा विषे जहां निर्विकल्प आत्मानुभव होय है तहां तो सप्त तत्त्वा-
दिक का विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त के लक्षण का निषेध करना कैसे संभवै। और
तहां निषेध संभवै है इसलिये अव्याप्ति दूषण आया। —:(तिसका उत्तर):— नीची दशा विषे सप्त
तत्त्वन के विकल्प विषे उपयोग लगाया तिस कर प्रतीति दृढ़ करी और विषयादिक से उपयोग
छुड़ाय रागादिक घटाया और कार्यसिद्धि भये कारण का भी निषेध कीजिये है। इसलिये जहां प्रतीति
भी दृढ़ भई और रागादिक दूर भये तहां उपयोग भ्रमावनें का खेद किसलिये करिये। इसलिये तहां

तिन विकल्पन का निषेध किया है। और सम्यक्त का लक्षण तो प्रतीत है सो प्रतीति का तो निषेध न किया जो प्रतीति छुडाई होय तो इस लक्षण का निषेध कहिये, सो तो है नाहीं। सो तत्त्वन की प्रतीति तो तहां भी बनी रहे है। इसलिये यहां अव्याप्तिपना नाहीं है। —:(यहां प्रश्न):— जो छद्मस्थ कै तो प्रतीति अप्रतीति कहना संभवै इसलिये तहां सप्त तत्त्वन की प्रतीति सम्यक्त का लक्षण कहा है सो हमने माना, परन्तु केवलीसिद्ध भगवान् कै तो सर्व का जानना समान रूप है। तहां सप्त तत्त्वन की प्रतीति कहना संभवै नाहीं। और तिनकै सम्यक्त गुण पाइये ही है। इसलिये तहां तिस लक्षण का अव्याप्तिपना आया। —:(तिस का समाधान):— जैसे छद्मस्थ कै श्रुतज्ञान के अनुसार प्रतीति पाइये है तैसे केवलीसिद्ध भगवान् कै केवल ज्ञान के अनुसार प्रतीति पाइये है, सो सप्त तत्त्वन का स्वरूप पहिले ठीक किया था सोई केवल ज्ञान कर जाना तहां प्रतीति कै परमावगाढ़ पना भया इसलिये तहां परमावगाढ़ सम्यक्त कहा है। जो पूर्वोक्त श्रद्धान किया था तिस को झूठ जाना होता तो तहां अप्रतीति होती सो तो जैसा सप्त तत्त्वन का श्रद्धान छद्मस्थ कै भया था तैसा ही केवलीसिद्ध भगवान् कै पाइये है इसलिये ज्ञानादिक की हीनता अधिकता होतैं भी तिर्यञ्चादिक वा केवलीसिद्ध भगवान् कै सम्यक्त गुण समान ही कहा है। और पूर्व अवस्था विषे यह माने था सम्वर निर्ज्जरा कर मोक्ष का उपाय करना पीछे मुक्ति अवस्था भये ऐसे मानने लगे, जो सम्वर निर्ज्जरा कर हमारे मोक्ष भई है और पूर्व ज्ञान को हीनता कर जीवादिक के

थोड़े विशेष जाने था पीछे केवल ज्ञान भये तिन के सर्व विशेष जाने । परन्तु मूलभूत जीवादिका के
स्वरूप का श्रद्धान जैसा छद्मस्थ कै पाइये है तैसा ही केवली कै पाइये है । यद्यपि केवली सिद्ध
भगवान् अन्य पदार्थन को भी प्रतीति लिये जाने है, तथापि सो पदार्थ प्रयोजनभूत नाहीं । इसलिये
सम्यक्त गुण विषे सप्त तत्त्वन ही का श्रद्धान ग्रहण किया है । केवलीसिद्ध भगवान् रागादिकरूप न
परिणमे हैं । संसार अवस्था को न चाहे हैं सो यह श्रद्धान का बल जानना । —:(यहां प्रश्न):— जो
सम्यग्दर्शन तो मोक्षमार्ग कहा था मोक्ष विषे इस का सद्भाव कैसे कहिये । —:(तिस का उत्तर):— कोई
कारण ऐसा भी होय है, जो कार्य सिद्ध भये भी नष्ट न होय है । जैसे किसी वृक्ष कै कोई एक
शाखा कर अनेक शाखा युक्त अवस्था भई तिस के होते संते वह एक शाखा नष्ट न होय है । तैसे किसी
आत्मा कै सम्यक्त गुण कर अनेक गुण युक्त अवस्था भई तिसके होते संते वह एक शाखा नष्ट न होय
है । तैसे किसी आत्मा कै सम्यक्त गुण कर अनेक गुण युक्त अवस्था भई तिस के होतैं सम्यक्त
गुण नष्ट न होय है । ऐसे ही केवली सिद्ध भगवान् कै भी तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण ही सम्यक्त पाइये है ।
इसलिये तहां अव्याप्तिपना नाहीं । —:(यहां प्रश्न):— मिथ्यादृष्टि के भी तत्त्वार्थ श्रद्धान
होय है ऐसा शास्त्र विषे निरूपण है "प्रवचनसार" विषे आत्मज्ञान शून्य तत्त्वार्थ श्रद्धान अकार्यकारी है
ऐसा कहा है । इसलिये सम्यक्त का लक्षण तत्त्वार्थ श्रद्धान है तिस विषे अव्याप्ति दूषण लगेहै । —:(तिस
का समाधान):— मिथ्यादृष्टि कै जो तत्त्वश्रद्धान कहा है, सो नाम निक्षेप [illegible] है । जिस में

तत्त्व श्रद्धान का गुण नाहीं। और व्यवहार विषे जिस का नाम तत्त्व श्रद्धान कहिये सो मिथ्यादृष्टि के होय है। अथवा आगम द्रव्य निक्षेप कर होय है। तत्त्वार्थ श्रद्धान के प्रतिपादक शास्त्रन को अभ्यासे है तिन का स्वरूप निश्चय करने विषे उपयोग नाहीं लगावे है ऐसा जानना। और यहां सम्यक्त का लक्षण तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा है सो भाव निक्षेप कर कहा है। सो गुण सहित सांचा तत्त्वार्थ श्रद्धान मिथ्यादृष्टि के कदाचित् न होय है। और आत्मज्ञान शून्य तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा है। तहां भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिक का जिस के श्रद्धान होय तिस के आत्मज्ञान कैसे न होय अवश्य होय ही होय। ऐसे किसी ही मिथ्या दृष्टि के सांचा तत्त्वार्थ श्रद्धान सर्वथा न पाइये है। इसलिये तिस लक्षण विषे अतिव्याप्ति दूषण न लगे है। और जो यह तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण कहा सो असम्भव नाहीं। क्योंकि सम्यक्त का प्रतिपक्षी मिथ्यात्व ही है। यह लक्षण इस से विपरीतता लिये है। ऐसे अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भवपना कर रहित सर्व सम्यग्दृष्टीन विषे तो पाइये है और किसी मिथ्यादृष्टि विषे न पाइये है, ऐसा सम्यग्दर्शन का सांचा लक्षण तत्त्वार्थ श्रद्धान है।

—:(यहां प्रश्न):— जो यहां सातों तत्त्वन के श्रद्धान का नियम कहो हो सो बने नाहीं। क्योंकि कहीं पर से भिन्न आप के श्रद्धान ही को सम्यक्त कहे हैं। समयसार विषे ऐसा कहा है :—

"एकत्वे नियतस्य"

इत्यादि लिखा है तिस विषे ऐसा कहा है जो इस आत्मा का परद्रव्यन से भिन्न अवलोकन
सोई नियम से सम्यग्दर्शन है। इसलिये नव तत्वन की सन्तति छोड़ हमारे एक आत्मा ही होहु।
और कहीं एक आत्मा के निश्चय ही को सम्यक्त कहे हैं पुरुषार्थ सिद्धोपाय विषे ऐसा कहा है :—

"दर्शनमात्म विनश्चयः"

अर्थ---जीव अजीव का वा केवल जीव ही का श्रद्धान भये भी सम्यक्त होय है। सातों तत्त्वों के
पर से श्रद्धान का नियम होता तो ऐसे किस लिये लिखते। —:(तिस का समाधान):—
भिन्न आप का श्रद्धान होय है सो आस्रवादिक का श्रद्धान कर रहित होय है, या सहित होय है।
जो रहित होय है तो मोक्ष के श्रद्धान बिना तिस प्रयोजन के अर्थ ऐसा उपाय करे है। सम्वर निर्ज्जरा
का श्रद्धान बिना रागादिक रहित होय अपने स्वरूप विषे उपयोग लगावने का किस लिये उद्यम
राखे है। आस्रवबन्ध के श्रद्धान बिना पूर्व अवस्था को किसलिये छोड़े है। इसलिये आस्रवादिक के
श्रद्धान रहित आपा पर का श्रद्धान करना सम्भवे नाहीं। और जो आस्रवादिक का श्रद्धान सहित होय है,
सो स्वयमेव ही सातों तत्वन के श्रद्धान का नियम भया। और केवल आत्मा का निश्चय है सो
पर का श्रद्धान रूप भये बिना आत्मा का श्रद्धान न होय है। क्योंकि अजीव का श्रद्धान भये ही जीव
का श्रद्धान होय है। और पूर्ववत् आस्रवादिक का भी श्रद्धान अवश्य होय है। इसलिये यहां

भी सप्त तत्वन का श्रद्धान भया ऐसा जानना। और आश्रवादिक श्रद्धान बिना आपा पर का श्रद्धान वा केवल आत्मा का श्रद्धान सांचा होता नाहीं। क्योंकि आत्मा द्रव्य है सो शुद्ध अशुद्ध पर्याय लियेहै। इसलिये जैसे तन्तु (तागा) अवलोकन बिना पट (वस्त्र) का अवलोकन न होय तैसे शुद्ध अशुद्ध पर्य्याय पहिले पहिचाने बिना आत्म द्रव्य का श्रद्धान न होय है शुद्ध अशुद्ध अवस्था की पहिचान आश्रव आदिक की पहिचान से होय है। और आश्रव आदिक के श्रद्धान बिना आपा पर का श्रद्धान वा केवल आत्मा का श्रद्धान कार्य्यकारी नाहीं है क्योंकि श्रद्धान करो वा मत करो आप है सो आप ही है पर है सो पर ही है। और आश्रवादिक श्रद्धान होय तो आश्रवबन्ध का अभाव कर सम्वर निर्ज्जरा रूप उपाय से मोक्षपद को पावै। और जो आपा पर का भी श्रद्धान कराइये है सो तिस ही प्रयोजन कै अर्थ कराइये है। इसलिये आश्रवादिक के श्रद्धान सहित आपा पर का जानना कार्य्यकारी है, क्योंकि ऐसा कहा है:–

"निर्विशेषो हि सामान्यो भवेत्खर विषाणवत्"

अर्थ–यह जो विशेष रहित सामान्य है सो गधे के सींग समान है। इसलिये प्रयोजनभूत आश्रवादिक विशेष सहित आपा पर का वा आत्मा का श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातों तत्वन का श्रद्धान कर रागादिक मेटने के अर्थ पर द्रव्यन को भिन्न भावे है, वा अपने आत्मा ही को भावे है तिस कै प्रयोजन की सिद्धि होय है। इसलिये मुख्यता कर भेदविज्ञान को वा आत्मज्ञान को कार्य-

कारी कहा है। और तत्वार्थं श्रद्धान किये विना सर्वं जानना कार्यकारी नाहीं। इसलिये प्रयोजन तो रागादिक मेटने का है सो आश्रवादिक के श्रद्धान विना यह प्रयोजन भासे नाहीं तव केवल जानने ही से मान को वधावे है रागादिक छोड़े नाहीं तव इस का कार्यं कैसे सिद्ध होय। और नव तत्व संतति का छोड़ना कहा है सो पूर्वं नव तत्वन के विचार कर सम्यग्दर्शन भया पीछे निर्विकल्प दशा होने के अर्थं नव तत्वन का भी विकल्प छोड़ने की चाह करी। और जिस के पहिले ही नव तत्वन का विचार नाहीं तिस के तिस विकल्प छोड़ने का क्या प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आप के पाइये हैं तिन ही का त्याग करो। ऐसे आपा पर के श्रद्धान विषे वा आत्मा के श्रद्धान विषे सप्त तत्वन के श्रद्धान की सापेक्षा पाइये है इसलिये तत्वार्थं श्रद्धान सम्यक्त का लक्षण है। —:(यहां प्रश्न):— जो कहीं शास्त्रन विषे अरहंत देव निर्ग्रन्थ गुरु हिंसा रहित धर्म के श्रद्धान को सम्यक्त कहा है सो कैसे है। —:(तिस का समाधान):— अरहन्त देवादिक का श्रद्धान होने से वा कुदेवादिक का श्रद्धान दूर होने कर गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होय है तिस अपेक्षा से इस को सम्यक्त कहा है सर्वथा सम्यक्त का लक्षण यह नाहीं है। क्योंकि द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्म के धारक मिथ्यादृष्टीन कै भी ऐसा श्रद्धान होय है। अथवा जैसे अणुव्रत महाव्रत होतैं तो देशचारित्र वा सकलचारित्र होय वा न होय परन्तु अणुव्रत भये विना देशचारित्र कदाचित् न होय। और महाव्रत धारे विना सकलचारित्र न होय। इसलिये इन व्रतन को अन्वय रूप कारण जान कारण विषे कार्य का उपचार कर इन को चारित्र

कहा है सो अरहंत देवादिक का श्रद्धान होतैं तो सम्यक्त होय वा न होय। परन्तु अरहंतादिक का श्रद्धान भये बिना तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त कदाचित् न होय इसलिये अरहंतादिक के श्रद्धान को अन्वयरूप कारण जान कारण विषे कार्य का उपचार कर इस श्रद्धान को सम्यक्त कहा है इस ही से इस का नाम व्यवहार सम्यक्त है। अथवा जिस कै तत्वार्थ श्रद्धान होय तिस कै सांचा अरहंतादिक के स्वरूप का श्रद्धान होय ही होय। तत्वार्थ श्रद्धान भये बिना पच्छ कर अरहंतादिक के स्वरूप का श्रद्धान करे परन्तु यथावत् स्वरूप की पहिचान लिये श्रद्धान होय नाहीं। और जिस कै सांचा अरहंतादिक के स्वरूप का श्रद्धान होय तिस कै तत्व श्रद्धान होय ही होय। क्योंकि अरहंतादिक का स्वरूप पहिचानें जीव अजीव आस्रवादिक की पहिचान होय है, ऐसे इन को परस्पर अविनाभावी जान कहीं अरहंतादिक के श्रद्धान को सम्यक्त कहा है। —:(यहां प्रश्न):— जो नारकी आदि जीवन कै देव कुदेवादिक का व्यवहार नाहीं और तिन कै सम्यक्त पाइये है। इसलिये सम्यक्त होतैं अरहंतादिक का श्रद्धान होय ही होय ऐसा नियम संभवे नाहीं। —:(तिस का समाधान):— सप्त तत्वन के श्रद्धान विषे अरहंतादिक का श्रद्धान गर्भित है क्योंकि तत्वार्थ श्रद्धान विषे मोक्ष तत्व को सर्वोत्कृष्ट माने है सो मोक्ष तत्व तो अरहंतादिक का लक्षण है। सो लक्षण को उत्कृष्ट माने सो तिस के लक्ष्य को उत्कृष्ट माने ही माने। इसलिये उन को भी सर्वोत्कृष्ट माना और को न माना सो ही देव का श्रद्धान भया। और मोक्ष के कारण संवर निर्जरा हैं सो उन को भी उत्कृष्ट माने है सो संवर निर्जरा के धारक मुख्यपने

मुनि हैं इसलिये मुनि को उत्तम माने है, किसी और को न माने है सोई गुरु का श्रद्धान भया। और रागादिक रहित भाव का नाम हिंसा है तिस ही को उपादेय माने है सोई धर्म का श्रद्धान भया ऐसे तत्व के श्रद्धान विषे गर्भित अरहंतादिक का श्रद्धान है। अथवा जिस निमित्त से इस के तत्वार्थ श्रद्धान होय है तिस निमित्त से अरहंत देव का भी श्रद्धान होय है। इसलिये सम्यक्ती के देवादिक के श्रद्धान का नियम है। —:(यहां प्रश्न):— कई जीव अरहंतादिक का श्रद्धान करे हैं और तिन के गुण पहिचाने हैं और उन के तत्व श्रद्धानरूप सम्यक्त न होय है। इसलिये जिस के सांचा अरहंतादिक का श्रद्धान होय तिस के तत्वार्थ श्रद्धान भी होय ऐसा नियम संभवे नाहीं। —:(तिस का समाधान):— तत्वार्थ श्रद्धान बिना अरहंतादिक के छियालीस आदि गुण जाने हैं सो पर्यायाश्रित गुण जानना भी न होय है। इसलिये जीव अजीव जाति पहिचाने बिना अरहंतादिक के आत्माश्रित गुणन को वा शरीराश्रित गुणन को भिन्न २ न जाने है जो जाने है तो अपने आत्मा को पर द्रव्य से भिन्न क्यों न माने है। क्योंकि प्रवचनसार विषे ऐसा कहा है।

जो जाणदि अरहंतदेवत्तगुणत्त्वपजपत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्सलयं॥

अर्थ—यह जो अरहंत को द्रव्यत्व गुणत्व परजाइत्व कर जाने है सो आत्मा को जाने है तिसका

मोह विलय को प्राप्ति होयहै इसलिये जिसकै जीवादिक तत्वन का श्रद्धान नाहीं तिसकै अरहंतादिक का भी सांचा श्रद्धान नाहीं और मोक्षादिक तत्वन के श्रद्धान बिना अरहंतादिक का महात्म्य यथार्थ न जाने है, लौकिक अतिशयादिक कर अरहंत के तपश्चरणादिक कर गुणका और पर जीवनकी अहिंसादिक कर धर्म की महिमा पहिचानेहै सो यह तो पराश्रित भावहैं। और आत्माश्रित भावन कर अरहंतादिक का स्वरूप तत्व श्रद्धान भये ही जानिये है। इसलिये जिस के सांचा अरहंतादिक का श्रद्धान होय तिस कै तत्वश्रद्धान होय ही होय ऐसा नियम जानना। इस प्रकार सम्यक्त का लक्षण निर्देश किया। —:(यहां प्रश्न):— जो सांचा तत्वार्थ का श्रद्धान वा आपा पर का श्रद्धान वा आत्मा का श्रद्धान वा देव गुरु धर्म का श्रद्धान सम्यक्त का लक्षण कहा और इन सर्व लक्षणों की परस्पर एकता भी दिखाई, सो जानी परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहने का प्रयोजन क्या है। —:(तिस का उत्तर):— यह चार लक्षण कहे तिन विषे सांची दृष्टि कर एक लक्षण ग्रहण किये चारों लक्षणों का ग्रहण होय है तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा २ विचार अन्य २ प्रकार लक्षण कहे हैं जहां तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण कहा है तहां तो यह प्रयोजन है जो इन तत्वन को पहिचाने तो यथार्थ वस्तु का स्वरूप वा हित अहित का श्रद्धान करे तब मोक्षमार्ग विषे प्रवर्त्तै और जहां आपा पर का भिन्न श्रद्धान लक्षण कहा है तहां तत्वार्थ श्रद्धान का प्रयोजन जिस कर सिद्ध होय तिस श्रद्धान को मुख्य लक्षण कहा है। जीव अजीव के श्रद्धान का प्रयोजन आपा पर का भिन्न श्रद्धान करना है और आस्रवादिक के श्रद्धान का प्रयोजन रागादिक छोड़ना है सो आपा पर का

भिन्न श्रद्धान भये ही परद्रव्यन विषे रागादिक करने का श्रद्धान होयहै। ऐसे तत्वार्थ श्रद्धान का प्रयोजन आपा पर के भिन्न श्रद्धान से सिद्ध होता जान इस लक्षण को कहाहै। और जहां आत्माका श्रद्धान लक्षण कहा है तहां आपा पर के भिन्न श्रद्धान का प्रयोजन इतना ही है आप को आप जानना आप को आप जाने पर का भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसे मूलभूत प्रयोजन की प्रधानता जान आत्म श्रद्धान को मुख्य लक्षण कहा है, और जहां देव गुरु धर्म का श्रद्धान लक्षण कहा है तहां वाह्य साधन की प्रधानता करी है। क्योंकि अरहंत देवादिक का श्रद्धान सांचे तत्वार्थ श्रद्धान का कारण है। और कुदेवादिक का श्रद्धान विकल्प अतत्वश्रद्धान का कारण है, सो वाह्य कारण की प्रधानता कर कुदेवादिक का श्रद्धान छुड़ाय सुदेवादिक का श्रद्धान करावने के अर्थ देव गुरु धर्म का मुख्य लक्षण कहा है। ऐसे जुदे २ प्रयोजन की मुख्यता कर जुदे २ लक्षण कहे हैं। —:(यहां प्रश्न):— जो जुदे २ चार लक्षण कहे हैं तिन विषे यह जीव किस लक्षण को अंगीकार करे। —:(तिस का समाधान):— मिथ्या कर्म का उपशमादिक होतें विपरीताभिनिवेश का अभाव होय है। तहां चारों लक्षण युगपत् पाइये हैं यहां विचार अपेक्षा मुख्यपने तत्वार्थन को विचारेहै, या आपा पर का भेद विज्ञान करे है या आत्मस्वरूप ही को संभाले है। या देवादिक का स्वरूप विचारे है ऐसे ज्ञान विषे नाना प्रकार का विचार होय है परन्तु श्रद्धान विषे सर्वत्र परस्पर सापेक्षपना पाइयेहै। तत्व विचार करे है तो भेद विज्ञानादिक का अभिप्राय लिये करे है ऐसे ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपना है। इसलिये सम्यग्दृष्टि श्रद्धान विषे

चारों ही लक्षणों को अंगीकार करे है। और जिस के मिथ्यात्व का उदय है तिस के विपरीताभिनिवेश
पाइये है तिस के यह लक्षण आभासमात्र होयहैं सांचे न होयहैं जिनमत के जीवादिक तत्वन को माने है,
और को न माने है तिनके नाम भेदादिक को सीखे है ऐसे तत्वार्थ श्रद्धान होयहै, परंतु तिस यथार्थभाव
का श्रद्धान न होय है और आपा पर के भिन्नपने की बातें करेहै, और वस्त्रादिक विषे पर बुद्धि को चित-
वन करेहै परन्तु जैसे पर्याय विषे अहं बुद्धिहै, तैसे आत्मा विषे अहं बुद्धि शरीर विषे पर बुद्धि न होयहै।
और आत्मा को जिन वचन अनुसार चितवे परन्तु प्रतीति रूप आप को आप श्रद्धान न करे है। और
अरहन्तादिक विना और कुदेवादिक को न माने। परन्तु तिन के स्वरूप को यथार्थ पहिचान श्रद्धान
न करे है। ऐसे यह लक्षणाभास मिथ्यादृष्टि के होय हैं। इन विषे कोई होय कोई न होय तहां इन
का भिन्नपना भी न सम्भवे है। और इन लक्षणाभासन विषे इतना विशेष है जो पहिले तो देवादिक
का श्रद्धान होय पीछे तत्वन का विचार होय पीछे आपा पर का चितवन करे। पीछे केवल आत्मा को
चितवे इस अनुक्रम से साधन करे तो परम्परा सांचे मोक्षमार्ग को पाय जीव सिद्ध पद को पावे और जो
इस अनुक्रम को उलङ्घन करे उस के देवादिक मानने का तो कुछ ठीक नाहीं। और बुद्धि की तीव्रता
से तत्व विचारादिक विषे प्रवर्त्ते है इसलिये आप को ज्ञानी माने है। अथवा तत्व विचारादिक विषे भी
उपयोग न लगावे है। और आपा पर का भेद विज्ञानी हुआ विचारे है अथवा आपा पर का भी ठीक न करे
है। और आप को आत्मज्ञानी माने है सो यह सर्व चतुराई की वात है। मानादिक कषाय के साधन हैं।

कछु भी कार्यकारी नाहीं इसलिये जो जीव अपना भला किया चाहिहै तिस कै जब तक सांचे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न होय तब तक इन को भी अनुक्रम ही से अङ्गीकार करना योग्य है सोई कहियेहै। पहिले तो आज्ञादिक कर वा कोई परीक्षा कर कुदेवादिक का मानना छोड़ अरहन्त देवादिक का श्रद्धान करना । क्योंकि यह श्रद्धान भये गृहीतमिथ्यात्व का तो अभाव होय है । और मोक्षमार्ग क विघ्न करन हारे कुदेवादिक का निमित्त दूर होय है । और मोक्षमार्ग के सहाई अरहन्त देवादिक का निमित्त मिले है। इसलिये पहिले देवादिक का श्रद्धान करना । पीछे जिनमत विषे कहे जीवादिक तत्त्व तिन का विचार करना नाम लक्षणादिक सीखने क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्वार्थ श्रद्धान की प्राप्ति होय है। और पीछे आपा पर का भिन्नपना जैसे भासे तैसे विचार किया करे। क्योंकि इस अभ्यास से भेद विज्ञान होय है फिर पीछे आप विषे आपा मानने के अर्थ स्वरूप विचार किया करे। क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होय है। और ऐसे अनुक्रम से इन को अङ्गीकार कर पीछे इन ही विषे कभी देवादिक के विचार विषे कभी तत्त्व विचार विषे कभी आपा पर के विचार विषे कभी आत्म विचार विषे उपयोग लगावे। ऐसे अभ्यास से दर्शनमोह मन्द होता जाय तब कदाचित् सांचे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होय है। क्योंकि ऐसा नियम तो है नाहीं कि किसी जीव कै कोई विपरीत कारण प्रबल बीच में होजाय तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नाहीं भी होय। परन्तु मुख्यपने घने जीवन कै तो इस अनुक्रम से कार्य सिद्ध होयहै। इसलिये इनको ऐसे अङ्गीकार करना। जैसे कोई पुत्र का अर्थी विवाहादिक

कारणान को मिलावे पीछे घने पुरुषन कै तो पुत्र की प्राप्ति होय ही है। किसी कै न होय तो न होय इस का तो उपाय करना। तैसे सम्यक्त का अर्थी इन कारणान को मिलावे है पीछे घने पुरुषन कै तो सम्यक्त की प्राप्ति होय ही है किसी कै न होय तो नाहीं भी होय। परन्तु इस को तो आप से बने सो उपाय करना। ऐसे सम्यक्त का लक्षण निर्देश किया —:(यहां प्रश्न):— जो सम्यक्त के लक्षण तो अनेक प्रकार के हैं तिन विषे तुम तत्त्वार्थ श्रद्धान के लक्षण को ही मुख्य किया सो कारण क्या। —:(तिस का समाधान):— तुच्छ बुद्धीन को अन्य लक्षण विषे प्रयोजन प्रगट भासे नाहीं वा भ्रम उपजे। और इस तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण विषे प्रगट प्रयोजन भासे है कुछ भ्रम उपजता नाहीं। इसलिये इस लक्षण को मुख्य किया है सोई दिखाइये है। देव गुरु धर्म्म के श्रद्धान विषे तुच्छ बुद्धीन को यह भासे है, कि अरहन्त देवादिक को मानना। और को न मानना इतना ही सम्यक्त है। तहां जीव अजीव का वा बन्ध मोक्ष का कारण कार्य का स्वरूप न भासे तब मोक्षमार्ग प्रयोजन की सिद्धि न होय वा जीवादिक के श्रद्धान भये विना इस ही श्रद्धान विषे सन्तुष्ट होय आप को सम्यक्ती माने एक कुदेवादिक से द्वेषता राखे अन्य रागादिक छोड़ने का उद्यम न करे ऐसा भ्रम उपजे, और आपा पर के श्रद्धान विषे तुच्छ बुद्धीन को यह भासे है कि आपा पर का जानना ही कार्यकारी है इस से ही सम्यक्त होय है। तहां आस्रवादिक स्वरूप न भासे तब मोक्षमार्ग प्रयोजन की सिद्धि न होय। वा आस्रवादिक के श्रद्धान भये विना इतने ही जानने विषे सन्तुष्ट होय। आप को सम्यक्ती मान स्वच्छन्द होय रागादिक छोड़ने का उद्यम न करे

ऐसे भ्रम उपजे। और आत्मश्रद्धान विषे तुच्छ बुद्धीन को यह भासेहै, कि आत्मा ही का विचार कार्य्य-
कारी है। इस ही से सम्यक्त होय है तहां जीव अजीवादिक का विशेष वा आश्रवादिक का स्वरूप न
भासे तब मोक्षमार्ग के प्रयोजन की सिद्धि न होय, वा जीवादिक का विशेष वा आश्रवादिक के स्वरूप का
श्रद्धान भये विना इतने ही विचार से आप को सम्यक्ती माने है। स्वच्छन्द होय रागादिक छोड़ने का
उद्यम न करेहै। इसकै भी भ्रम उपजेहै। ऐसा जान इन लक्षणन को मुख्य न किये और तत्त्वार्थ श्रद्धान
लक्षण विषे जीव अजीवादिक का वा आश्रवादिक का श्रद्धान होय तहां सर्व का स्वरूप नीकै भासे तब
मोक्षमार्ग के प्रयोजन की सिद्धि होय और इस श्रद्धान भये सम्यक्त होय। परन्तु यह संतुष्ट न होयहै।
और आश्रवादिक का श्रद्धान होने से रागादिक छोड़ मोक्ष का उद्यम राखे। इस कै भ्रम न उपजे है।
इसलिये तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण को मुख्य किया है। अथवा तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण विषे तो देवादिक
का श्रद्धान वा आपा पर का श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित होय है। सोतो तुच्छ बुद्धीन को भी भासे है।
और अन्य लक्षणन विषे तत्त्वार्थ श्रद्धान का गर्भितपना विशेष बुद्धि होय तिन ही को भासे। तुच्छ
बुद्धीन को न भासे। इसलिये तत्त्वार्थ श्रद्धान को मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टि कै आभास
मात्र यह होयें तहां तत्त्वार्थ श्रद्धान का विचार तो शीघ्रपने विपरीताभिनिवेश दूर करने का कारण
होय है। अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होयें वा विपरीताभिनिवेश का भी कारण हो जाय।
इसलिये यहां सर्व प्रकार प्रसिद्ध जान विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्त्वन का श्रद्धान सोई

सम्यक्त का लक्षण है ऐसा निर्देश किया है। ऐसे लक्षणनिर्देश का निरूपण किया ऐसा। लक्षण जिस आत्मा के स्वभाव विषे पाइये है सो ही सम्यक्ती जानना। अब इस सम्यक्त के भेद दिखाइये हैं। तहां प्रथम निश्चय व्यवहार का भेद दिखाइये है। विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान रूप परिणाम सो तो निश्चय सम्यक्त है। इसलिये यह सत्यार्थ सम्यक्त का स्वरूप है सत्यार्थ ही का नाम निश्चय है और विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान का कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त है। क्योंकि कारण विषे कार्य का उपचार किया है सो उपचार ही का नाम व्यवहार है। तहां सम्यग्दृष्टि जीव कै देव गुरु धर्मादिक का सांचा श्रद्धान होय है। तिस ही के निमित्त से इसके श्रद्धान विषे विपरीताभिनिवेश का अभाव होयहै। सो यहां विपरीताभिनिवेश रहित जो श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त है। और देव गुरु धर्मादिक का श्रद्धान है। ऐसे एक ही काल विषे दोनों सम्यक्त पाइये हैं। और मिथ्यादृष्टि जीव कै देव गुरु धर्मादिक का श्रद्धान आभासमात्र होय है। और इस के श्रद्धान विषे विपरीताभिनिवेश का अभाव न होय है क्योंकि यहां निश्चय सम्यक्त तो है नाहीं। और व्यवहार सम्यक्त भी आभासमात्र है। क्योंकि इस के देव गुरु धर्मादिक का श्रद्धान है सो विपरीताभिनिवेश के अभाव को साक्षात् कारण भया नाहीं कारण भये बिना उपचार सम्भवे नाहीं। इसलिये नियमरूप साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त भी इस कै न सम्भवे है। अथवा इस कै देव गुरु धर्म्मादिक का श्रद्धान नियम रूप होय है। सो विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान का परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियम रूप कारण

नाहीं। तथापि मुख्यपने कारण है और कारण विषे कार्य का उपचार सम्भवे है। इसलिये परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टि कै भी व्यवहार सम्यक्त कहिये है। -:(यहां प्रश्न):- जो किसी शास्त्र विषे देव गुरु धर्म के श्रद्धान को वा तत्त्वश्रद्धान को तो व्यवहार सम्यक्त कहा है। और आपा पर के श्रद्धान को वा केवल आत्मा के श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त कहा है सो कैसे है। -:(तिस का समाधान):- देव गुरु धर्म के श्रद्धान विषे तो प्रवृत्ति की मुख्यता है। सो प्रवृत्तिविषे अरहन्तादिक को देवादिक माने और को न माने सो देवादिक का श्रद्धानी कहिये है। और तत्त्व श्रद्धान विषे तिन के विचार की मुख्यता है जो ज्ञान विषे जीवादिक तत्त्वन को विचारै तिस को तत्त्व श्रद्धानी कहिये है। ऐसे मुख्यता पाइये है। सो यह दोनों किसी जीव कै सम्यक्त के कारण तो होवैं परन्तु इन का सद्भाव मिथ्यादृष्टि कै भी सम्भवे है। इसलिये इन को व्यवहार सम्यक्त कहा है। और आपा पर के श्रद्धान विषे वा आत्मश्रद्धान विषें विपरीताभिनिवेश रहितपना मुख्यता है। जो आपा पर का भेद विज्ञान करै वा अपने आत्मा को अनुभवै तिस कै मुख्यपने विपरीताभिनिवेश न होयहै। इसलिये भेदविज्ञानी को वा आत्मज्ञानी को सम्यग्दृष्टि कहिये है। ऐसे मुख्यता कर आपा पर का श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान तो सम्यग्दृष्टि ही के पाइये है। इसलिये इन को निश्चय सम्यक्त कहा है। सो ऐसा कथन मुख्यता की अपेक्षा है तारतम्य से यह चारों आभासमात्र तो मिथ्यादृष्टि कै होयें और सांचे सम्यग्दृष्टि कै होयें तहां आभासमात्र है सो तो नियम बिना परम्परा कारण है। और

सांचे हैं सो यह नियम रूप साक्षात् कारण है। इसलिये इन को व्यवहार रूप कहिये है। इनके निमित्त से जो विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान भया सो निश्चय सम्यक्त है, ऐसा जानना। –:(यहां प्रश्न):– कहूं शास्त्रन विषे लिखा है। कि आत्मा है सो निश्चयसम्यक्त है, और सर्वव्यवहार सम्यक्त है सो कैसे है। –:(तिस का समाधान):– विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान भया सो आत्मा ही का स्वरूप है। तहां अभेद बुद्धि कर आत्मा और सम्यक्त विषे भिन्नता नाहीं। इसलिये निश्चय कर आत्मा ही को सम्यक्त कहा है। और सर्वसम्यक्त तो निमित्त मात्र है। वा भेदकल्पना किये आत्मा और सम्यक्त के भिन्नता कहिये है इसलिये और सर्वव्यवहार कहा है। ऐसा जानना। इस प्रकार निश्चय सम्यक्त और व्यवहार सम्यक्त कर सम्यक्त के दोय भेद होय हैं। और अन्यनिमित्तादिक की अपेक्षा आज्ञा सम्यक्तादि सम्यक्त के दस भेद कहे हैं सो आत्मानुशासन विषे कहा है :–

आज्ञमार्ग समुद्भव मुपदेशात्सूत्र बीज संक्षेपात्।
विस्तारार्थभ्यां भवमव गाढ परमाव गाढे च ॥ ११ ॥

अर्थ–आज्ञा और मार्ग से उत्पन्न और उपदेश से उत्पन्न और सूत्र और बीज और संक्षेप से उत्पन्न और विस्तार और अर्थन से उत्पन्न और अवगाढ और परमावगाढ ऐसे दस १० भेद सम्यक्त के जानने॥

भावार्थ—जिन आज्ञा से तत्त्व श्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त है। यहां इतना जानना मुझ को जिन आज्ञा प्रमाण है। इतना ही श्रद्धान सम्यक्त नाहीं। आज्ञा मानना तो कारण भूत है इस ही से यहां आज्ञा से उपजा कहा है। इसलिये पूर्वं जिन आज्ञा मानने से पीछे जो तत्त्व श्रद्धान भया होय सो आज्ञा सम्यक्त है। ऐसे ही निर्ग्रन्थमार्ग के अवलोकन से जो तत्त्वश्रद्धान होय सो मार्गसम्यक्त है। ऐसे आठ भेद तो कारण अपेक्षा किये। और श्रुतकेवली के जो तत्त्वश्रद्धान है। तिस को अवगाढ़ सम्यक्त कहिये है। केवलज्ञानी के जो तत्त्व श्रद्धान है तिस को परमावगाढ़ सम्यक्त कहिये है। ऐसे दोय भेद ज्ञान के सहकारीपना की अपेक्षा किये हैं इसप्रकार दश भेद सम्यक्त के किये हैं तहां सर्वत्र सम्यक्त का स्वरूप तत्त्व श्रद्धान ही जानना, और सम्यक्त के तीन भेद कहे हैं। औपशमिक १, क्षायिक २, क्षयोपशमिक ३, यह तीन भेद दर्शनमोह की अपेक्षा किये हैं। तहां औपशमिक सम्यक्त के दो भेद हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त १, द्वितीयोपशम सम्यक्त २, तहां मिथ्यात्व गुण स्थान विषे करण कर दर्शन मोह को उपशमाय सम्यक्त उपजे तिस को प्रथमोपशम सम्यक्त कहिये है, तहां इतना विशेष है अनादि मिथ्यादृष्टि के तो एक मिथ्यात्व प्रकृति ही का उपशम होय है इसलिये उस के मिश्रमोहनी सम्यक्तमोहनी की सत्ता है नाहीं। जब जीव उपशम सम्यक्त को प्राप्त होय है, तब तिस सम्यक्त के काल विषे मिथ्यात्व के परिमाणुन को मिश्रमोहनी रूप वा सम्यक्तमोहनी रूप परिणमावे है तब तीन प्रकृतिन की सत्ता होय है इस लिये अनादि मिथ्या-

दृष्टि कै एक मिथ्यात्व प्रकृति ही कीसत्ता होय है तिस ही का उपशम होय है, और सादि मिथ्यादृष्टि कै तीन प्रकृतिन की सत्ता है किसी के एक की ही सत्ता है तिस कै सम्यक्त काल विषे तीन की सत्ता भई थी सो सत्ता पाइये तिन कै तीन की सत्ता है और जिस कै मिश्रमोहनी सम्यक्त मोहनी की उद्वेलना हो गई होय उन के परिणाम सिथ्यात्वरूप परिणाम गये होयें तिन कै एक मिथ्यात्व की सत्ता है। इसलिये सादि मिथ्यादृष्टि कै तीन प्रकृति वा एक प्रकृति का उपशम होय है तिन का उपशम कहिये है, अनिवृति करण विषे किया अंतरकरण विधान से जो सम्यक्त काल विषे उदय आवने योग्य निषेकथे, तिन का तो अभाव किया तिन के प्रमाण अन्यकाल विषे उदय आवने योग्य निषेक रूप किये और अनिवृति करण ही विषे किया उपशम विधान से तिस काल के पीछे उदय आवने योग्य निषेकथे सो उदीरणा रूप होय इस काल विषे उदय न आय सकें ऐसे किये जहां सत्ता पाइये और उदय न पाइये तिस का नाम उपशम है सो यह मिथ्यात्व से भया प्रथमोपशम सम्यक्त सो चतुर्थादिक सप्तम गुण स्थान पर्यन्त है और उपशमश्रेणी को सन्मुख होते सप्तम गुण स्थान विषे क्षयोपशमसम्यक्त से जो उपशमसम्यक्त होय तिस का नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त है यहां करण कर तीन ही प्रकृतिन का उपशम होय है क्योंकि उस कै तीन प्रकृतिन की सत्ता पाइये है तहां भी अंतरकरण विधान से वा उपशम विधान से तिन के उदय का अभाव करे है सो ही उपशम है सो यह द्वितीयोशम सम्यक्त सप्तमादि ग्यारवें गुण स्थान पर्यन्त होय है पड़ता हुआ कोई छठे पाचवें चौथे भी रहै है ऐसा

जानना ऐसे उपशमसम्यक्त दो प्रकार का है सो यह सम्यक्त वर्त्तमान काल विषे चायिकवत् निर्मल है। इस के प्रतिपची कर्म की सत्ता पाइये है इसलिये अन्तर्मुहूर्त्तकाल मात्र यह सम्यक्त रहे है पीछे दर्शनमोह का उदय आवे है ऐसा जानना। ऐसे उपशम सम्यक्त का स्वरूप कहा। और जहां दर्शन मोह की तीन प्रकृतिन विषे सम्यक्तमोहनी का उदय पाइये है, ऐसी दशा जहां होय सो चयोपशम है क्योंकि समलतत्त्वार्थ श्रद्धान होय सो चयोपशमसम्यक्त है अन्य दोय का उदय न होय तहां चयोपशम सम्यक्त का काल पूर्ण भये यह सम्यक्त होय है वा सादि मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व गुणस्थान से वा मिश्रगुण स्थान से भी इस की प्राप्ति होय है। चयोपशम कहा सो कहिये है दर्शनमोह की तीन प्रकृतिन विषे जो मिथ्यात्व का अनुभाग है, तिस के अनन्तवें भाग मिश्रमोहनी का है, तिस के अनन्तवें भाग सम्यक्तमोहनी का है सो इन विषे सम्यक्तमोहिनी प्रकृति देशघाती है इस के उदय होतैं भी सम्यक्त का घात न होय है किंचित् मलीनता करे है मूल घात न करे है तिस ही का नाम देशघाती है सो जहां मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्व के वर्त्तमान काल विषे उदय आवने योग्य निषेक तिन के उदय दिये बिना ही निर्जरा होय है सो तो चय जानना। और इन ही का आगामिकाल विषे उदय आवने योग्य निषेकन की सत्ता पाइये है, सोई उपशम है और सम्यक्तमोहनी का उदय पाइये है ऐसी दशा जहां होय सो चयोपशम है इस लिये समल तत्त्वार्थ श्रद्धान होय सो चयोपशम सम्यक्त है। यहां जो मल लगे है तिस का तारतम्य स्वरूप तो केवली जाने हैं। उदाहरण दिखावने के अर्थ चल मल अवगाढ़पना कहा

है। तहां व्यवहार मात्र देवादिक की प्रतीति तो है परन्तु अरहन्तादिक विषे यह मेरा है यह अन्य का है इत्यादि भाव सो चलनपना है। शंकादिक मल लगे सो मलिन पना है यह शान्तिनाथ शान्तिकर्त्ता है इत्यादि भाव सो अवगाढ़ पना है सो ऐसा उदाहरण व्यवहार मात्र दिखाये परन्तु नियम रूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त विषे जो नियम रूप कोई मल लगे है सो केवली जानैं हैं इतना जानना इस का तत्त्वार्थश्रद्धान विषे किसी प्रकार कर समलपना है सो इसलिये यह सम्यक्त निर्मल नाहीं है इस क्षयोपशम सम्यक्त का एक ही प्रकार है इस विषे कुछ भेद नाहीं है इतना विशेष है जो कोई क्षायिक सम्यक्त के सन्मुख होय अन्तर्मुहूर्त्त काल मात्र जहां मिथ्यात्व की प्रकृति का लोप करे है तहां दोय ही प्रकृति की सत्ता रहे है फिर पीछे मिश्रमोहनी का भी क्षय करे है तहां सम्यक्त मोहनी की सत्ता रहे है पीछे सम्यक्तमोहनी के काण्डघातादि क्रिया न करे है तहां कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि नाम पावे है। ऐसा जानना। और इस क्षयोपशम सम्यक्त ही का नाम वेदकसम्यक्त है जहां मिथ्यात्वमिश्रमोहनी की मुख्यता कर कहिये है तहां क्षयोपशमसम्यक्त नाम पावे है। सम्यक्तमोहनी की मुख्यता कर कहिये तहां वेदक नाम पावे है। सो कहने मात्र दोय नाम पावे है स्वरूप विषे भेद है नाहीं और यह क्षयोपशम सम्यक्त चतुर्थादिक सप्तम गुणस्थान पर्यन्त ही पाइये है ऐसा क्षयोपशम सम्यक्त का स्वरूप कहा। और तीनों प्रकृतिन के सर्वथा सर्व निषेकन का नाश भये अत्यन्त निर्मल तत्त्वार्थ श्रद्धान होय सो क्षायिकसम्यक्त है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थान विषे कहीं क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि

कै इसकी प्राप्ति होयहै कैसे होयहै। सो कहिये है। प्रथम तीन करण करे है तहां मिथ्यात्व के परमाणुन
को मिश्रमोहनी रूप परिणमावे वा सम्यक्तमोहनी रूप परिणमावे, वा निर्जरा करे ऐसे मिथ्यात्व
का सत्ता नाश करे और मिश्र मोहनी के परमाणुन को सम्यक्त मोहनी रूप परिणमावे वा निर्ज्जरा करे
ऐसे मिश्रमोहनी का नाश करे और सम्यक्तमोहनी का निषेक उदय आय खिरै उस की बहुत स्थिति
आदि होय तिस को स्थितिकाण्डादिक कर घटावे जहां अन्तर्मुहूर्त्त स्थिति रहे तब कृतकृत्य वेदक
सम्यग्दृष्टि होय है। और अनुक्रम से इन निषेकन का नाश करे चायिक सम्यग्दृष्टि होय है सो यह
प्रतिपची कर्म के अभाव से निर्मल है मिथ्यात्व रूप रज तिस के अभाव से वीतराग है इस का नाश
न होय जहां उपजे तहां तो सिद्ध अवस्था पर्यन्त इस का सद्भाव है ऐसे चायिक सम्यक्त का स्वरूप कहा।
ऐसे तीन भेद सम्यक्त के कहे। और अनन्तानुबंधी कषाय सम्यक्त की दोय अवस्था होय हैं कै तो अप्रशस्त
उपशम होय है कै विसंयोजन होय है। तहां जो करण कर उपशम विधान से उपशम होय तिस का नाम
प्रशस्तउपशम है। उदय का अभाव तिस का नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनन्तानुबंधी का प्रशस्त उपशम
तो होय नाहीं अन्य मोह की प्रकृतिन का ही होय फिर इस का अप्रशस्त उपशम होय है, और जो तीन
करण कर अनन्तानुबंधीन के परमाणुन को अन्य चारित्र मोह की प्रकृति रूप परिणमाय तिस का सत्ता
नाश करे तिस का नाम विसंयोजन है। सो इन विषे प्रथमोपशम सम्यक्त विषे तो अनन्तानुबन्धी का
अप्रशस्त उपशम ही है। और द्वितीयोपशम सम्यक्त की प्राप्ति पहिले अनन्तानुबन्धी का विसं-

योजन भये ही होय ऐसा नियम कोई आचार्य लिखे हैं कोई नियम नाहीं लिखे हैं और क्षयोपशम सम्यक्त विषे किसी जीव कै अप्रशस्त उपशम होय है वा किसी कै विसंयोजन होय है और क्षायिक सम्यक्त है सो पहिले अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन भये ही होय है ऐसा जानना। यहां यह विशेष है उपशम क्षयोपशम सम्यक्ती के अनन्तानुबंधी के विसंयोजन से सत्ता नाश भया था और वह मिथ्यात्व विषे आवे तो अनन्तानुबन्धी का बंध करे और तहां उस की सत्ता का सद्भाव होय है और क्षायिक सम्यक्ती मिथ्यात्व विषे आवे नाहीं। इसलिये उस कै अनन्तानुबन्धी की सत्ता कदाचित् न होय। —:(यहां प्रश्न):— जो अनन्तानुबन्धी तो चारित्र मोह की प्रकृति है सो सर्व निमित्त चारित्र को घाते है। इस कर सम्यक्त घात कैसे सम्भवे। —:(तिस का समाधान):— अनंतानुबन्धी के उदय से क्रोधादिकरूप परिणाम होय हैं, कुछ अतत्त्व श्रधान होता नाहीं। इसलिये अनन्तानुबन्धी चारित्र ही को घाते है, सो प्रत्यक्ष तो ऐसे ही है। परन्तु अनन्तानुबंधी के उदय से जैसे क्रोधादिक होय हैं तैसे क्रोधादिक सम्यक्त होतें न होय हैं, ऐसे निमित्तनैमित्तिकपना पाइये है जैसे त्रसपना को घातक तो स्थावर प्रकृति ही है परंतु त्रसपना होतें एकेंद्रिय जाति प्रकृति का भी उदय न होय है। इसलिये उपचार कर एकेन्द्रिय प्रकृति के भी त्रसपना का घातकपना कहिये तो दोष नाहीं। जैसे सम्यक्त का घातक तो दर्शनमोह है। परन्तु सम्यक्त होतें अनंतानुबन्धी कषायन का भी उदय न होय इसलिये उपचार कर अनंतानुबन्धी के भी सम्यक्त का घातकपना कहिये तो दोष नाहीं। —:(यहां प्रश्न):— जो अनन्तानुबन्धी चारित्र ही को घाते है तो इसके गये

कुछ चारित्र भया कहो। असंयत गुणस्थान विषे असंयम किसलिये कहो हो । —:(तिसका समाधान):— अनन्तानुबन्धी आदि भेदहैं सो तीव्रमंद कषाय की अपेक्षा नाहींहैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि के तीव्रकषाय होतैं वा मन्दकषाय होतैं अनन्तानुबन्धी आदि चारों का उदय युगपत् होयहै। तहां चारों का उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहेहैं, यहां इतना विशेषहै जो अनन्तानुबंधी के साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिक का होय तैसा तिसके गये न होय। तैसे ही अप्रत्याख्यान की साथ जैसा प्रत्याख्यान संज्वलन का उदय होय तैसा तिसको गये न होय। और जैसा प्रत्याख्यान के साथ संज्वलन का उदय होय तैसा केवल संज्वलन का उदय न होय। इसलिये अनन्तानुबन्धी के गये कुछ कषायन की मन्दता तो होय परन्तु ऐसी मन्दता न होय है जिस कर कोई चारित्र नाम पावै । क्योंकि कषायन के असंख्यात लोक प्रमाण स्थान हैं। तिन विषे सर्वत्र पूर्वस्थान से उत्तरस्थान विषे मन्दता पाइये है। परन्तु व्यवहार कर तिन स्थानन विषे तीन मर्यादा करी। आदि के बहुत स्थान तो असंयम रूप कहे। पीछे कितनेक देशसंयम-रूप कहे। पीछे कितनेक सकलसंयमरूप कहे। तिनविषे प्रथमगुणस्थान से लगाय चतुर्थगुणस्थान पर्यंत कषाय के स्थान होय हैं। सो सर्व असंयमी के होय हैं। इसलिये कषायन की मंदता होतैं भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थ से कषाय का घटना चारित्र का अंश है, तथापि व्यवहार से जहां ऐसा कषायन का घटना होय जिस कर श्रावकधर्म मुनिधर्म का अङ्गीकार होय तहां ही चारित्र नाम पावैहै। सो असंयत विषे ऐसे कषाय घटे नाहीं। इसलिये यहां असंयम कहा। कषायन का अधिक हीनपना के होतैं भी तैसे

प्रमत्तादिक गुणस्थान विषे सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावेहै । तैसे मिथ्यात्वादिक असंयत पर्यंत गुण स्थानन विषे असंयत नाम पावेहै। सर्वत्र असंयम की समानता जाननी । —:(यहां प्रश्न):— जो अनंतानुबंधी सम्यक्त को न घातेहै तो उस के उदयहोतें सम्यक्त से भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थान को कैसे पावे है । —:(तिस का समाधान):— जैसे कोई मनुष्य के मनुष्य पर्याय नाश का कारण तीव्ररोग प्रगटभया होय तिसको मनुष्य पर्याय का छोड़न हाराहै सो कहियेहै । और मनुष्यपना दूरभये देवादिक पर्यायहोय सो तो रोग अवस्था विषे न भई यहां मनुष्य हीं की आयु से भई तैसे सम्यक्ती के सम्यक्त के नाश का कारण अनंतानुबंधी का उदय प्रगट भया । तिसको सम्यक्त का विरोधक सासादन कहा। और सम्यक्त का अभावभये मिथ्यात्व होय सो तो सासादन विषे न भया। यहां उपशम सम्यक्त ही का कालहै ऐसा जानना । ऐसे अनंतानुबंधी चतुष्क की सम्यक्त होतें अवस्था होयहै । इसलिये सात प्रकृतिनके उपशमादिक से भी सम्यक्त की प्राप्ति कहिये है । —:(यहांप्रश्न):—सम्यक्त मार्गणा के छः भेद किये हैं,सो कैसे हैं । —:(तिसका समाधान):—सम्यक्तके तो भेद तीनही हैं। और सम्यक्त का अभावरूप मिथ्यात्वहै। दोनों का मिश्रभाव सो मिश्रहै। सम्यक्त का घातकभाव सो सासादन है,ऐसे सम्यक्त मार्गणाकर जीवका विचारकिये ६ भेद कहेहैं । यहां कोई कहे कि सम्यक्तसे भ्रष्टहोय मिथ्यात्वविषे आयाहोय तिसके मिथ्यात्व सम्यक्त कहिये सो यह असत्य है । क्योंकि अभव्यके भी तिस का सद्भाव पाइयेहै। और मिथ्यात्वसम्यक्त कहनाही अशुद्धहै जैसे संयम मार्गणा विषे असंयम कहा भव्यमार्गणा विषे अभव्य कहा तैसेही सम्यक्त मार्गणाविषे मिथ्यात्व कहाहै मिथ्यात्व

सम्यक्त अपेक्षाविचार करते कोई जीवकै सम्यक्तके अभाव से ही मिथ्यात्व को सम्यक्तका भेद न जानना। ऐसेही सासादनमिश्र भी सम्यक्त पाइयेहै,ऐसा अर्थ प्रगटकरनेके अर्थ सम्यक्तमार्गणा विषे मिथ्यात्वकह्याहै। यहां कर्म के उपशमादिक से उपशमादिक के भेद नाहीं हैं, सम्यक्त के भेद तीन ही हैं, ऐसा जानना। सम्यक्त कहे सो कर्म का उपशमादिक इस का किया होता नाहीं यह तो तत्त्व श्रद्धान करनेका उद्यम करे तिस के निमित्त से स्वयमेव कर्मका उपशमादिक होय है। तब इसकै तत्त्वश्रद्धान की प्राप्ति होय है ऐसा जानना। इस प्रकार सम्यक्त के भेद जानने ऐसे सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा। और सम्यक्दर्शन के आठ अंग कहे हैं निःशङ्कितत्त्व निकांक्षितत्त्व निर्विचिकित्सत्त्व अमूढ़दृष्टित्त्व उपबृंहण स्थितिकरण प्रभावना, वात्सल्य। तहां भय का अभाव अथवा तत्त्वन विषे संशय का अभाव सो निशंकितत्वहै। और परद्रव्यादि विषे राग रूप वाञ्छा का अभाव सो निकांक्षितत्त्वहै और परद्रव्यादि विषे द्वेषरूप ग्लानि का अभाव सो निर्विचिकित्सत्त्व है। और तत्त्वन विषे वा देवादि विषे अन्यथा प्रतीतिरूप मोह का अभाव सो अमूढ़दृष्टित्त्व है। और आत्मधर्म्म वा जिनधर्म्म का बधावना तिसका नाम उपबृंहणहै इस ही अंग का नाम उपग्रहण भी कहियेहै। तहां धर्मात्मा जीवन का दोष ढाकना ऐसा तिसका अर्थ जानना और अपने स्वभाव विषे वा जिनधर्म्म विषे आप को वा पर को स्थापन करना सो स्थितिकरण है। और अपने स्वरूप का वा जिनधर्म का महिमा प्रगट करना सो प्रभावना है और स्वरूप विषे वा जिनधर्म विषे वा धर्मात्मा जीवन विषे अतिप्रीतिभाव सो वात्सल्य है। ऐसे आठ अंग जानने। जैसे मनुष्य शरीर

के हस्तपादादिक अंग हैं तैसे यह सम्यक्त के अंग हैं। —:(यहां प्रश्न):— जो किसी सम्यक्ती जीव कै तो भयइच्छा ग्लानि आदि पाइये हैं और किसी मिथ्यादृष्टि कै न पाइये हैं, इसलिये निःशंकितादिक अंग सम्यक्त के कैसे कहो हो। —:(तिसका समाधान):— जैसे मनुष्य शरीर के हस्तपादादि अंग कहिये हैं तहां किसी मनुष्य कै ऐसा भी होय कि उस के हस्तपादादिक में से कोई अङ्ग न होय। तहां उस कै मनुष्य शरीर तो कहिये परन्तु तिन अंगन बिना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसे सम्यक्त के निःशंकितत्त्वादिक अंगकहिये हैं, तहां कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय जिसकै निःशंकितत्वादि विषै कोई अंग न होय, तहां उस कै सम्यक्त तो कहिये। परन्तु तिन अंगन विना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय, जैसे वांदर कै हस्तपादादि अंग होय हैं परन्तु जैसे मनुष्य कै होंय तैसे न होय हैं तैसे मिथ्यादृष्टिन कै भी व्यवहार रूप निःशंकितत्त्वादिक अंग होय हैं परन्तु जैसे निश्चय की अपेक्षा लिये सम्यक्ती कै होंय, तैसे न होय हैं। और सम्यक्त विषै पच्चीस मल कहे हैं आठ शंकादिक आठ मद तीन मूढ़ता षट् अनायतन सो यह सम्यक्ती कै न होय हैं॥

॥ इति शम् ॥

यह अत्यन्त शोक का विषय है कि यह ग्रन्थ (मोक्षमार्गप्रकाश) समाप्त न हुआ क्योंकि इसके रचने हारे पण्डित टोडरमल्ल जी इस ग्रन्थ को यहां तक रच कर कालवश भये। यह इस निकृष्टकाल का प्रभाव है।

॥ इति शुभमस्तु सर्वजगताम् ॥